विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

****

भाग ६०	तुला, सम्वत् २००१ अक्टूबर १९४४	संख्या १

****

मङ्गलाप्रसाद-पुरस्कार

बड़े आनन्दकी बात है कि इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका १२००) वाला मंगलाप्रसाद-पुरस्कार श्री महावीरप्रसादजी श्रीवास्तवको उनकी रचना सूर्यसिद्धांत-के विज्ञान-भाष्यपर मिला है। पुरस्कार सब प्रकारसे उचित ही ग्रंथपर मिला है। 'विज्ञान-भाष्य' के टक्करकी पुस्तकें कम देखनेमें आती हैं।

हमारे लिए गौरवकी बात यह है कि यह विज्ञान-भाष्य पहले-पहल इसी विज्ञान मासिक-पत्रमें धारावाहिक रूपमें निकला था। वस्तुतः विज्ञान-परिषद् ऐसी संस्थाने ही 'विज्ञान-भाष्य' का छपना संभव कर दिया, क्योंकि ऐसी पुस्तकोंकी बिक्री अपेक्षाकृत कम होती है और लाभकी लालचसे प्रकाशन करनेवाले व्यापारी ऐसी पुस्तकोंके छापनेके लिये सहमत नहीं होते हैं।

विशेष संतोषकी बात यह है कि महावीरप्रसादजी हेडमास्टरीसे अवकाश ग्रहण करते ही विज्ञान-परिषद्के मन्त्री हो गये और तबसे बराबर अपना सारा समय हिन्दी-सेवामें लगा रहे हैं। भारतीय ज्योतिषपर उनकी एक पुस्तिका हमारे सरल विज्ञान-सागरमें शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है, इसके अतिरिक्त वे आर्यभट्टकी ज्योतिष-पुस्तकों पर भाष्य लिख रहे हैं। ईश्वर उन्हें स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करे जिसमें वे अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रंथोंसे हिन्दीका भंडार भर सकें।

गोरखप्रसाद

अखिल भारतवर्षीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

के ३२वें अधिवेशन के विज्ञान-परिषद्के सभापति

श्री डा० सत्यप्रकाशके भाषणका सारांश

उपस्थित साहित्यानुरागी देवियो और सज्जनो,

आजसे लगभग चार वर्ष पूर्व इसी अखिल भारत-वर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २९वें अधिवेशनमें जो पुणेमें हुआ था मुझे इस विज्ञान-परिषद्के सभापति होनेका गौरव प्राप्त हुआ, और आज फिर जयपुरके इस अधिवेशन-में मुझे इसी प्रकारकी सेवाका अवसर दिया जा रहा है, उससे सम्मेलनका मेरे ऊपर अनुग्रह स्पष्ट है। इस कृपाके लिये धन्यवाद तो दिया जा सकता है, पर इतने शीघ्र ही इस आसनपर मुझे दोबारा बिठा देनेसे यह अभिप्राय भी व्यञ्जित होता है, कि हिन्दी साहित्यके वैज्ञानिक क्षेत्रमें सेवा करनेवालोंकी संख्या बहुत सीमित और संकुचित है। हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें इस समय ८ विश्वविद्यालय हैं। इस दृष्टिसे हिन्दी-भाषियोंको एक विशेष सुविधा प्राप्त है। ऐसी परिस्थितिमें जहाँ वैज्ञानिक विभागोंमें सैकड़ों विशेषज्ञ हिन्दी प्रान्तोंमें कार्य कर रहे हों, हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र-में इतने कम वैज्ञानिकोंका सहयोग होना देशके लिये कुछ अधिक गौरवकी बात नहीं है। इसके तीन कारण रहे हैं। हिन्दी-प्रान्तोंके विश्वविद्यालयोंके वैज्ञानिक विभागोंपर अन्य-भाषी वैज्ञानिकोंका प्रभुत्व, जो अब शनैः शनैः कुछ कम अवश्य हो रहा है; हिन्दी-भाषी वैज्ञानिकोंमें भी भाषा-ज्ञान-का कुछ अभाव और फिर अंग्रेज़ीके होते हुए हिन्दीके प्रति उनकी उदासीनता। २० वर्ष पूर्वकी अपेक्षा इस समय परिस्थिति कुछ उन्नत अवश्य हुई है, और यह सन्तोषकी बात है, पर अभी हमें इस ओर बहुत कुछ करना है।

पुणेके अधिवेशनमें जिस समय मैंने भाग लिया था, उस समय इस विश्वव्यापी युद्धकी परिस्थिति कुछ और थी, और इन चार वर्षोंमें युद्ध अब दूसरी स्थितिमें आगया है। मैंने युद्ध-सम्बन्धी परिस्थितिकी ओर इसलिये निर्देश किया कि आजकलके युद्धका बहुत कुछ संचालन वैज्ञा-निकोंके हाथमें है और युद्धकालीन कारखानोंका इस दृष्टिसे विशेष महत्व है। सफल युद्धके लिये सफल वैज्ञानिक

शिक्षणका होना अनिवार्य है । युद्ध जब तक भारतीय जनसमूहका युद्ध नहीं होगा, तब तक भाड़के टट्टू सैनिकों, स्वार्थमें निरत व्यवसायियों, एवं बलात् सहयोग देनेवाले वैज्ञानिकोंसे इसमें वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती। सफल युद्धके लिये केन्द्रस्थ स्वराष्ट्रीय परिषद्की जहाँ आवश्यकता है, वहाँ उसके लिये स्वदेशीय भाषा द्वारा उत्पन्न साहित्य और उसके द्वारा दिये गये वैज्ञानिक शिक्षणकी भी आवश्यकता है । कोई भी राष्ट्रीय संस्था तब तक पूर्णरूपेण राष्ट्रीय नहीं कही जा सकती, जब तब वह अपने समस्त दृष्टिकोणोंमें राष्ट्रीय न हो।

युद्धानन्तरीय योजनाओंमें हमें बारबार यह स्मरण दिलाया जा रहा है कि यह देश "कृषि-प्राधान्य" है, और कृषिके उद्योगको युद्धके अनन्तर प्रोत्साहन दिये जानेकी आयोजना हो रही है । बाह्यदृष्टिसे यह बात कोई बुरी नहीं प्रतीत होती, पर इस भावनाके अन्तर्गत एक कुटिल-नीति भी है । इस भावनाका अर्थ यह है, कि हमारा देश केवल कच्चे मालकी पूर्तिका क्षेत्र बना रहे, और देशके उद्योगों और कारखानोंको युद्धके अनन्तर बन्द कर दिया जाय । युद्धके इन पाँच वर्षों में अनेक सामग्रियोंके कारखाने देशमें खुले हैं, और इन्होंने गौरव भी प्राप्त किया है, व्यवसायियों ने प्रचुर लक्ष्मी इनके कारण कमायी है, और वे युद्धके अनन्तर कारखानों और उद्योगोंका इस देशमें पाश्चात्य ढंगपर प्रसार करनेके लिये उत्सुक भी हैं । इन कारखानोंको शासन-सत्ताकी ओरसे जहाँ संरक्षण मिलना चाहिये था, वहाँ इनके मार्गमें विभिन्न प्रकारके अवरोध प्रस्तुत किये जायँगे । साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि यूरोप और अमरीकासे हमारे देशमें रासायनिक पदार्थ और यांत्रिक सामग्री पूर्वापेक्षया बहुत अधिक मात्रामें आने लगेगी, जिसका निश्चित परिणाम यह होगा कि हमारे नवस्थापित कारखाने बन्द हो जावेंगे । इन कारखानोंमें इस समय वैज्ञानिक शिक्षा-प्राप्त-युवक संलग्नता-से काम कर रहे हैं; वे बेकार हो जायँगे । ऐसी परिस्थिति-में वैज्ञानिक शिक्षणकी आयोजनाओंको धक्का पहुँचेगा । आवश्यक तो यह था कि इस युद्धके अनन्तर अपनी शिक्षण-योजनाओंमें क्रान्ति उत्पन्न करते, पर संभवतः हमारे भाग्यमें ऐसा अवसर आना अभी दूर-भविष्यकी बात है । अभी हमें विपरीत परिस्थितियोंसे संघर्ष करना है । वैज्ञानिक शिक्षाके दृष्टिकोणको परिवर्त्तित करना है । मेरा विश्वास तो यह है कि युद्धानन्तरीय कालमें भारतका यदि गौरवपूर्ण सहयोग वाञ्छित समझा गया तो यहाँकी वैज्ञानिक शिक्षण पद्धतिमें विशेष परिवर्त्तन करने पड़ेंगे, और इन परिवर्त्तनोंमें सबसे मुख्य परिवर्तन होना चाहिये—हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक शिक्षण । जनतामें वैज्ञानिक प्रवृत्ति जागृत करनेके लिये हिन्दीमें लोकप्रिय साहित्यकी वृहद् परिमाणमें सृष्टि करना नितान्त आवश्यक होगा ।

हैदरी समिति

पूनेके अधिवेशनमें मैंने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंके संबंधमें कुछ विचार प्रस्तुत किये थे। इधर गत चार वर्षोंमें इस संबंधमें कुछ विशेष कार्य तो हिन्दी साहित्यके क्षेत्रमें नहीं हो सका है, पर यह संतोषका विषय है कि किसी न किसी रूपमें इसकी कुछ विशेष चर्चा रही है । मैंने अपने गत भाषणमें 'सेन्ट्रल एडवाइज़री बोर्ड ऑफ एजुकेशनकी' साइंटिफिक टर्मिनोलोजी कमिटीका, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय सर अकबर हैदरी थे, थोड़ा-सा निर्देश किया था । उस समय तक इस कमिटीकी पूरी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई थी । सन १६४१ ई० में यह प्रकाशित हुई ।

इस कमिटीके निश्चयोंका सारांश उन्हींके शब्दोंमें इस प्रकार है :—

१—दैट इन आर्डर टु प्रोमोट दि फर्दर डेवेलपमेंट आव् सायंटिफिक स्टडीज़ इन इंडिया, इट इज़ डिज़ाइरेबुल टु एडोप्ट ए कामन टर्मिनोलोजी सो फार एज़ मे बि प्रैक्टिकेबल एण्ड फुल रिगार्ड शुड बि हैड टु एटेम्प्ट्स व्हिच हैव आलरेडी बीन कैरिड आउट विद् दिस आब्जेक्ट इन व्यू ।

२—दैट इन आर्डर टु मेनटेन दि नेसेसरी कॉन्टैक्ट बिट्वीन सायंटिफिक डेवेलपमेंट इन इंडिया एण्ड सिमिलर डेवेलपमेंट्स इन अदर कंट्रीज़, दि सायंटिफिक टर्मिनोलोजी एडोप्टेड फार इंडिया शुड एसिमिलेट व्हेरेवर पासिबल दोज़ टर्म्स व्हिच हैव आलरेडी सिक्योर्ड जनरल इंटरनेशनल एक्सेप्टेन्स । इन व्यू, हाउएवर, आव् दि वेराइटीज़

आव् लैंग्वेजेज़ इन यूज़ इन इंडिया एण्ड आव् दि फैक्ट दैट दीज़ आर नौट डिराइव्ड फ्रौम वन कामन पेरेंट स्टाक. इट विल बि नेसेस्सरी टु इम्प्लोय, इन ऐडिशन टु ऐन इंटरनेशनल टर्मिनोलोजी, टर्म्स बारोड और एडोप्टेड फ्रौम दि टू मेन स्टाक्स टु व्हिच मोस्ट इंडियन लैंग्वेजेज़ बिलौंग ऐज़ वेल ऐज़ टर्म्स व्हिच आर इन कामन यूज़ इन इंडिविड्अल लैंग्वेजेज़।

ऐन इंडियन सायंटिफिक टर्मिनोलोजी विल, देयरफ़ोर, कन्सिस्ट आव् :—

(i) ऐन इंटरनेशनल टर्मिनोलोजी, इन इट्स इंग्लिश फ़ौर्म, व्हिच विल बि इम्प्लोयेब्ल थ्रू आउट इंडिया:

(iii) टर्म्स पिक्युलियर टु इंडिविड्अल लैंग्वेजेज़ इज़ रिटेन्शन औन दि ग्राउंड्स आव् फैमिलयारिटी मे बि इसैंशल इन दि इंटेरेस्ट आव् पौपुलर एजुकेशन। इन दि हायर स्टेजेज़ आव् एजुकेशन टर्म्स फ्रौम कैटिगोरी (i) मे बि प्रोग्रेसिवली सब्सटिट्यूटेड फौर दोज़ इन कैटिगोरी (iii)

हैदरी कमिटीके ये परामर्श न तो नये हैं, और न इनमें कोई विशेषता ही है। पर तब भी इस कमिटीके निश्चयोंसे कई बातें ऐसी प्रतिध्वनित होती हैं, जो हमारे परिवर्तित दृष्टिकोणकी परिचायक हैं। इस कमिटीमें तीन तो डाइरेक्टर शिक्षा-विभागके थे एवं श्री जान सारजेंट भारतीय सरकारके एजुकेशनल कमिश्नर थे और उनकी ओरसे इस प्रकारके परामर्शोंका मिलना इतना तो प्रमाणित करता है कि ये सब सज्जन इस मतके पक्षमें हैं कि वैज्ञानिक शिक्षाका माध्यम भारतीय भाषा (या भाषायें) बना दी जाय, अंग्रेज़ी द्वारा दी जानेवाली वैज्ञानिक शिक्षा भारतके हितमें नहीं है। दृष्टिकोणमें इस प्रकारका परिवर्त्तन हो जाना हमारे लिये गौरव और सन्तोषकी बात है।

अन्तर्जातीय शब्द क्या हैं ?

हैदरी कमिटीके परामर्शोंमें इस प्रकारके शब्द हैं—"टर्म्स व्हिच हैव औलरेडी सीक्योर्ड जनरल इन्टरनेशनल एक्सेप्टैन्स" "ऐन इन्टरनेशनल टर्मिनोलोजी"—इन स्थलोंपर प्रयुक्त "इन्टरनेशनल" या अन्तर्जातीय शब्दसे मैं सदा घबराया करता हूँ। मुझे तो ऐसे स्थलोंपर "अन्तर्जातीय" शब्दका प्रयोग अनेक देशोंके लिये अपमानका सूचक प्रतीत होता है। कोई शब्द केवल इतनेसे ही कैसे "अन्तर्जातीय" हो जायगा यदि उसका प्रयोग यूरोपके कुछ देशों और अमरीकामें ही होता हो। इनके शब्दोंको जब कोई अन्तर्जातीय घोषित करता है, तो उसे इस बातका ध्यान विस्मृत हो जाता है कि संसारके किसी कोनेमें वे जातियाँ भी जीवित हैं जिनकी भाषायें हेमेटिक, सेमेटिक, इंडोएरियन, द्रविडियन, मङ्गोलियन आदि वंशकी हैं उन जातियोंके मानव-प्राणियोंकी संख्या यूरोपीय और अमरीकन प्रदेशोंमें रहनेवाले व्यक्तियोंसे अधिक है, उनकी भी भाषायें हैं, संस्कृति है, और उनके पास भी साहित्य है, उनकी अपनी एक पृथक् परम्परा है, एवं उनको भी जीवित रहनेका अधिकार है।

अस्तु, मेरी धारणा यह है कि कोई भाषा या कोई शब्द अन्तर्जातीय नहीं है। हमारे इस मानव समाजमें इतना समुचित विस्तार है कि इसमें तीन-चार पद्धतियों पर प्रचलित शब्दावली सुगमतासे चल सके। सबके लिये मुक्त क्षेत्र विद्यमान है। (१) एक यथाशक्य समान पारिभाषिक शब्दावली अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन आदि भाषाओंकी हो (२) दूसरी समान शब्दावली मिश्र, अरब, तुर्क, पारस और अफ़गानिस्तान वालोंकी हो, और हमारे उर्दूके प्रेमी इसको अपनाना चाहें, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, और न हमें उनसे प्रतिस्पर्धा ही है। (३) तीसरी शब्दावली आर्य्यदेशस्थ भारतीय भाषाओंकी हो। (४) चीन-जापान वालोंकी मंगोलियन शब्दावली हो।

उर्दू वालोंकी प्रवृत्ति

मेरी धारणा यह है कि उसमानिया यूनिवर्सिटीका कार्य्य उर्दू-क्षेत्रकी दृष्टिसे ठीक ही मार्गपर हो रहा है, और हिन्दी-क्षेत्रको लगभग उसी नीतिपर अपने क्षेत्रमें काम करनेकी स्वतंत्रता होनी चाहिये। पर यह आशा रखना कि उर्दूकी यह शब्दावली हिन्दी क्षेत्रमें भी व्यवहृत हो सकेगी, प्रवंचना मात्र है।

क्रियाओंके समान होनेपर भी अपने शब्द-भंडारके कारण उर्दू हिन्दीसे बहुत पृथक हो चुकी है, और साहित्यिक हिन्दी और साहित्यिक उर्दूमें क्रियायें तो अपना महत्त्वपूर्ण स्थान खो चुकी हैं,—है, था, रहा, गया

आदि कुछ साधारण क्रियायें ही रह गयी हैं, सर्वनाम अवश्य अब भी समान हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि सर्वनाम और क्रियाओंके भिन्न होने पर भी वर्त्तमान हिन्दी से अवधी, बुन्देलखन्डी, ब्रजभाषा, राजपूतानी, और यही नहीं, बंगाली, गुजराती और मराठी भी, अधिक निकट प्रतीत होती हैं, पर फारसी, अरबी और तुरकीके भंडारसे लदी हुई उर्दू सर्वनाम और क्रियाओंके समान होनेपर भी हमसे दूर जा पड़ी है।

हिन्दी उर्दूसे दूर हो रही है अथवा उर्दू हिन्दीसे ?

यह स्पष्ट है कि आजकल हिन्दी और उर्दूके साहित्यिक रूपमें बहुत अन्तर आ गया है, साधारण भाषणों और वक्तृताओंकी भाषामें भी अन्तर है। बाज़ारू बोलीमें (अथवा बेसिक भाषामें) यह अन्तर अधिक नहीं है, पर बेसिक भाषाका भंडार केवल १००० शब्दोंका है। इसमें बहुतसे शब्द फारसी और संस्कृतके भी हैं, पर उन्हें बहुधा सभी समझ लेते हैं।

पर प्रश्न यह है कि इस पार्थक्यका उत्तरदायित्व हिन्दी वालोंपर है, अथवा उर्दू वालोंपर। पार्थक्य स्वभावतः एक भाषामें संस्कृत-प्राधान्य शब्दोंके कारण है, और दूसरीमें फारसी-प्राधान्य। उर्दू वाले कहते हैं, और बहुतसे राष्ट्रीयवादी भी, कि हिन्दीकी वर्त्तमान प्रवृत्ति अपनेमें संस्कृत शब्दोंको पूर्वापेक्षया अधिक ग्रहण करनेकी ओर अग्रसर हो रही है।

इस विषयकी विस्तृत मीमांसा करनेका यहाँ स्थल नहीं है। मेरे विचारमें यह धारणा नितान्त भ्रममूलक है कि हम पूर्वापेक्षया अब अपनी हिन्दी भाषाको अधिक संस्कृतगर्भित बना दे रहे हैं। हिन्दी भाषाके परम्परागत रूपका संक्षिप्त निदर्शन पं० अमरनाथजीने अपने अबोहरके भाषणमें कराया था। हमारी भाषा आज भी उतनी ही संस्कृतगर्भित है, जितनी चन्दबरदायी, कबीर, नानक, सूरदास, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, रसखान, जायसी या देवके समयमें थी। यह सम्भव है कि कभी हमने तद्भव शब्दोंका प्रयोग किया हो, और कभी तत्समों का। तुलसी, कबीर और सूरके पद आज भी सार्वजनिक जनताके लिये भाषा सम्बन्धी आदर्श हैं। "सरन सरोरुह जल बिहँग, कूजत गुंजत भृंग। बैर बिगत विहरत विपिन, मृग बिहंग बहुरंग"—यह हमारी जनताके सर्वप्रिय कवि तुलसीदासजीकी भाषा है। "ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास। गुरु सेवा ते पाइये सतगुरु चरन निवास" यह भाषा अशिक्षित कबीरकी है। रैदास, पलटू, दूलन आदि जनश्रेणीके संत कवियोंकी भाषा भी सदा ऐसी ही रही है। अतः यह लाञ्छन व्यर्थ है कि हिन्दीकी वर्त्तमान प्रवृत्ति पूर्वापेक्षया अधिक संस्कृत-गर्भित होनेकी ओर है।

वस्तुतः जब हम किसी ऐसे शब्दका प्रयोग करते हैं, जो दूसरोंको संस्कृत प्रतीत होता है (और सौभाग्यतः वह संस्कृत के कोषमें है भी) तो हमारा अभिप्राय किसी ऐसे शब्दके प्रयोग करनेका नहीं होता है, जो शब्द हमारा नहीं है। सोहनदास, पुरुषोत्तमदास, सम्पूर्णानन्द, गंगाप्रसाद, अशोक, ये सब नाम जब हम अपने व्यक्तियोंके रखते हैं, तो वे सब शब्द हमारी दृष्टिमें हिन्दीके ही शब्द हैं। ये सब जनताके शब्द हैं, जनताके साहित्यिकोंके शब्द हैं, इनकी परम्परा बहुत पुरानी है, इन शब्दोंका प्रयोग कोई आजकी हमारी नयी नीति नहीं है। अतः स्पष्ट है, कि हमारा परम्परागत शाब्दिक भण्डार लगभग एकसा ही रहा है। यह स्मरण रखना चाहिए कि संस्कृत शब्दोंका प्रयोग अङ्गरेज़ी अथवा फारसी शब्दोंके प्रयोगके समकक्षमें नहीं रक्खा जा सकता है। कुछ अङ्गरेज़ी और फारसी शब्दोंको हमने उदारतावश पचानेका प्रयत्न अवश्य किया है, पर संस्कृत शब्दोंके सम्बन्धमें "पचाने" शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता। वे तो हमारी पैतृक् सम्पत्ति हैं; यही नहीं, उनसे पृथक हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है, हम तो उन्हींके दूसरे रूप हैं, हमारा प्रवाह उन्हींकी परम्परामें है। संस्कृत कोषकी प्रत्येक संज्ञा हमारी संज्ञा है, यह परम्परागत देन सभी भारतीय आर्य्य भाषाओंको प्राप्त है। यह दूसरी बात है कि किसी प्रान्तमें अथवा किसी समयमें हम किसी एक शब्दका अधिक प्रयोग करें, और अन्य प्रान्तमें अथवा अन्य समयमें उसी शब्दके किसी अन्य पर्य्याय का।

फारसी और अँगरेज़ीके शब्द हम किसी विशेष समय पर विशेष आवश्यकता होने पर अवश्य ग्रहण करेंगे, और आवश्यकताके मिट जाने पर उस शब्दको फिर निकाल बाहर भी कर देंगे, पर संस्कृतके शब्द जो

अपने ही शब्द हैं, एक-रस प्रवाहमें यहाँ हमारे साथ रहेंगे। आवश्यकता पड़नेपर हमने "मकतब" शब्दको अपनाया, मकतबोंके दिन बीते, "स्कूल" शब्द भी हमने पचा लिया, पर पाठशाला और विद्यापीठ शब्द तो प्रवाहके साथ प्रत्येक युगमें रहेंगे। मुसलमानी शासनमें कचहरी शब्द मिला और आजकल कोर्ट। ये शब्द सामयिक हैं, पर न्यायालय शब्द साहित्यमें अमर रहेगा। उस्ताद और टीचर या मास्टर ये शब्द समय पर आये, और समय परिवर्त्तित होने पर ये साहित्यसे निकाल भी दिये जायँगे पर गुरु और अध्यापक शब्द प्रवाहके साथ निरंतर चलेंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि अङ्गरेजी, फारसी आदि शब्दोंका प्रयोग व्यावहारिक और कालापेक्षित है, पर इनके होते हुए भी हमारा एक स्थायी शब्द भण्डार है, वह हमें संस्कृत और प्राकृतके प्रवाहसे मिला है, वह अपना है, और उसके शब्द-भंडारको सामयिक-शब्द भण्डारके समकक्षमें नहीं रक्खा जा सकता है।

मेरे इस दृष्टिकोणके आधार पर विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी तो अपने पूर्व प्रवाहकी परम्परामें अब भी आगे बढ़ रही है, और हिन्दी-उर्दूके पार्थक्यका संपूर्ण उत्तरदायित्व उर्दू लेखकों पर है। स्वभावतः यह पार्थक्य अब इस सीमा तक पहुँच गया है,—उर्दू वालोंने अपनेको हमसे और अपने मूल परम्पराके रूपसे इतना अलग कर लिया है कि उनको अब पहचानना भी कठिन हो गया। यह सोचनेमें मस्तिष्कको बल देना पड़ता है कि कभी वे भी हममें ही थे, पर दुराग्रहताके कारण वे आज हमसे पृथक् हो गये हैं।

मैं इस चर्चाको यहाँ न छेड़ता, पर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलीका संस्कृतके कोष-भंडारपर क्या अधिकार है, यह निश्चय करनेके लिये इन विचारोंको उपस्थित करना मैंने आवश्यक समझा।

दाक्षिणात्य भाषाओंकी शब्दावली

लगभग सभी दक्षिणात्य भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्य थोड़ा बहुत अग्रसर अवश्य हुआ है। पुस्तकें अब तक स्कूली कक्षाओंके योग्य ही अधिक लिखी गयी हैं, और उनमें प्रयुक्त शब्दावली उनके साहित्यमें बहुत कुछ स्थायी रूप प्राप्त कर चुकी है। उनकी मासिक पत्रिकाओंमें लोक-प्रिय एवं तात्त्विक लेख भी यदाकदा प्रकाशित होते रहते हैं, और कुछ लोक-प्रिय ग्रन्थोंकी भी रचना हुई है। शब्दावलीके स्थिरीकरणके लिये भी उन्होंने लगभग २५ वर्षोंसे कुछ न कुछ प्रयत्न किया है। सरकारकी ओरसे पारिभाषिक शब्दोंके संबंधमें १९२३ से प्रयत्न किया जा रहा है।

जून १९४० में सरकारकी ओरसे सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्योंकी एक समिति पारिभाषिक शब्दावली सम्बन्धी नीति निर्धारण करनेके लिये बनी जिसके संयोजक माननीय श्रीनिवास शास्त्री नियुक्त हुए।

शास्त्री-समितिकी धारणायें बहुत उपयुक्त थीं, पर पता नहीं कि गत तीन वर्षोंमें इनके आधारपर कोई काम अग्रसर हुआ है या नहीं। जहाँ तक मेरा विचार है, सभी समितियाँ इस विषयमें अब एकमत हैं कि जहाँ तक आर्य्य-द्राविड भाषाओंका संबंध है, कुछ शब्द अपनी भाषाके लिये जायँ, कुछ अँग्रेज़ीके अपनाये जायँ, कुछ संस्कृतके आधारपर नये बनाये जायँ। अपनी भाषाके प्रचलित शब्दोंको लेनेमें किसीको आपत्ति नहीं होगी, इससे अपनी भाषाओंका व्यक्तित्व जीवित रहता है, पर पारिभाषिक शब्दकोषके अगाध भंडारमें ऐसे शब्दोंकी संख्या १-२ प्रतिशतसे अधिक न होगी। अँग्रेज़ीमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द ज्योंके त्यों कितने लिये जायँ, इसका निश्चय किसी नियमके आधारपर नहीं किया जा सकेगा। विज्ञानके प्रत्येक विभागकी कठिनाइयाँ अलग-अलग हैं, और प्रत्येक विभागमें एक पृथक् नीति ही निर्धारित करनी होगी। मेरे विचारमें ऐसे अँग्रेज़ी शब्द ले लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है, जिस शब्दके अन्य वैयाकरणरूप हमें बनाने न पड़ें। जिन शब्दोंके अनेक रूपान्तरोंका हमें अपनी वैज्ञानिक भाषामें प्रयोग करना पड़े, उनके लिये अँग्रेज़ी या विदेशी रूप ग्रहण करना भाषाकी क्षमतामें बाधा डालना है। शब्दोंके रूपान्तर तो प्रत्येक भाषामें अपनी-अपनी व्याकरणके आधारपर ही बनाये जायँगे। हम विदेशी भाषाके किसी एक रूपको तो ग्रहण कर सकते हैं, पर उसके ग्रहण करनेके अनन्तर शेष भावात्मक रूप अपनी व्याकरण अथवा अपनी भाषा-परिपाटीके अनुसार

बनानेकी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिये। विदेशी गृहीत शब्दोंमें रूपान्तरित होनेकी क्षमता कम हो जाती है। उदाहरणतः, क्योंकि हमें साहित्यमें electrical, electricity, electrified, dielectric, आदि एक शब्दके अनेक रूपोंकी आवश्यकता होगी, और स्पष्टतः ऐसे स्थलोंपर हम अँग्रेज़ीके सभी रूपोंका व्यवहार नहीं कर सकते हैं, अतः यह शब्द हमें संस्कृतसे ही लेने पड़ेंगे। यही अवस्था, action, reaction, activity, activated, activation, inaction आदि शब्दोंके लिये भी है। यदि हम "ऐक्शन" शब्दको अपना लेवें तो क्या साहित्यमें reaction के लिये प्रत्यैक्शन शब्द बनानेकी स्वतंत्रता होगी। यदि हम ऐक्टिविटी अपनाते हैं, तो क्या हम इससे ऐक्टिवेटित, ऐक्टिवीकरण, अनैक्टिव, आदि रूप बना सकेंगे?

विश्वविद्यालयोंमें वैज्ञानिक शिक्षण

इधर दो-तीन वर्षोंमें लखनऊ विश्वविद्यालयकी सायंस फैकल्टीने मातृभाषामें वैज्ञानिक शिक्षणकी ओर कुछ विशेष प्रवृत्ति दिखायी है, और उनका यह प्रयास स्तुत्य अवश्य है, पर उनके एकाध निश्चय ऐसे हैं जिनसे कुछ अकल्याण होनेकी आशंका है। हिन्दी और उर्दूकी व्यावहारिक कठिनाई दूर करनेके लिये उन्होंने रोमन लिपिका उपयोग करना निश्चय किया है। रोमन लिपिमें कुछ विशेषतायें होते हुए भी वह हमारे साहित्यके लिये नागरी लिपिकी स्थानापन्न नहीं हो सकती। पर हमारी आस्था अपनी लिपिके प्रति इतनी है कि यह आशा रखना व्यर्थ है, कि रोमन लिपिके पक्षमें हम अपनी लिपिका कभी बहिष्कार कर सकेंगे।

प्रयाग विश्वविद्यालय अथवा काशी विश्वविद्यालय हिन्दी भाषाको माध्यम बनानेमें अभी सफल नहीं हो सके हैं। मेरा अपना अनुभव यह है, कि बी० एस-सी० कक्षामें पढ़नेवाले अधिकांश विद्यार्थियोंका हिन्दी-उर्दू भाषा संबंधी ज्ञान बहुत कच्चा होता है। यदि उनके लिये हिन्दी पढ़नेकी कुछ सुविधायें विश्वविद्यालयोंमें दी जायँ, और उनसे वैज्ञानिक विषयोंपर लेख लिखवाये जायँ, तो आगे हिन्दीको माध्यम बनानेमें बहुत सुविधा होगी। प्रयाग विश्वविद्यालयमें जनरल-इंगलिशका जो स्थान है, लगभग वैसा ही स्थान हिन्दीका हो जाना चाहिये।

विश्वविद्यालयोंकी आवश्यकताकी दृष्टिसे "भारतीय-हिन्दी परिषद्" ने भी अच्छी आयोजना तैयार की है। इस परिषद्ने एम० एस-सी० के विद्यार्थियों और अध्यापकोंकी आवश्यकताकी पूर्ति कर सकनेवाले अँग्रेज़ी-हिन्दी वैज्ञानिक कोषके कार्यको प्रारंभ कर दिया है। नमूनेके कुछ पृष्ठ भी "हिन्दी अनुशीलन" में प्रकाशित हुए हैं। परिषद्के प्रधान और मंत्री दोनों डा० वर्मा (श्री धीरेन्द्र जी एवं रामकुमार जी) इस कार्यके लिये धनका संचय भी कर रहे हैं। ये सब आशाके चिन्ह हैं, जिनसे हिन्दीके गौरवकी वृद्धि हुई है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी भी इस प्रकारके कार्यके लिये उत्सुक प्रतीत होती है, और जिस प्रगतिसे वातावरण हमारे अनुकूल हो रहा है, वह हमारे सौभाग्यकी बात है।

अनेक लिपियोंका प्रयोग

अंग्रेज़ी साहित्यमें रोमन लिपिके साथ-साथ ग्रीक अक्षरोंका भी बहुत प्रयोग होता है,—हमारे स्कूलके विद्यार्थी रेखागणित और बीजगणितमें अंग्रेज़ीके ए, बी, सी, एक्स, वाई, ज़ेड आदि वर्णोंका प्रयोग करते हैं, रासायनिक समीकरणोंमें शब्दोंके संकेत भी रोमन लिपिमें लिखना एक प्रकारसे सर्वमान्य हो गया है। इसका फल यह है कि हिन्दीमें लिखे गये वैज्ञानिक साहित्यमें नागरी, रोमन और ग्रीक तीनकी वर्णमालाओंका प्रयोग करना पड़ेगा। मेरा विचार यह है कि छापेखानेकी सुविधाकी दृष्टिसे जहाँ तक सम्भव हो (१) अँग्रेज़ी वर्णमालाका कमसे कम उपयोग किया जाय,—बीजगणित और रेखागणितमें नागरी अक्षरोंसे काम आसानीसे निकाला जा सकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलनके पास गणितकी जो पुस्तकें प्रकाशनार्थ आयी हैं, वे इस बातके लिये आदर्श हैं। श्री सुधाकर द्विवेदीजीने अपने चलन-कलन, समीकरण-मीमांसा आदि ग्रन्थोंमें सर्वत्र नागरी-अक्षरोंका ही प्रयोग किया है। (२) जिन स्थलोंपर कोई अक्षर रूढ़ि हो गया हो (जैसे ग्रीकका "पाई" अक्षर व्यास और परिधिके सम्बन्धके लिये), उसको छोड़कर यथा-शक्य ग्रीक

अक्षरोंका प्रयोग किया ही न जाय। ऐलफा किरण, बीटा किरण, गामा किरण ये शब्द ले लिये जायँ, पर इन्हें उच्चारण सहित नागरी लिपिमें ही लिखा जाय, इसी प्रकार एक्स-किरण लिखना शुद्ध माना जाय न कि X-किरण। (३) समीकरण सूत्रोंमें जहाँ नागरी लिपिके अक्षरोंमें कुछ विभिन्नता करनी आवश्यक प्रतीत हो वहाँ बंगाली लिपिके अक्षरोंका प्रयोग किया जा सकता है। यदि उच्चारणके लिये ध्वनि-भेद भी आवश्यक हो तो वहाँ उच्चारण करते समय अकार, मकार, गकार इस प्रकारका उच्चारण किया जाय, अर्थात् बोलते समय नागरी 'अ' को 'अ' कहा जाय और बंगालीके 'अ' को 'अकार' बोला जाय इस प्रकार बोलनेमें वह अन्तर उत्पन्न किया जा सकता है जो ए और एलफा, बी और बीटा, जी और गामामें है। यदि और आवश्यक हो गुजरातीकी लिपिके अक्षर भी अपनाये जा सकते हैं। (४) श्री सुधाकर द्विवेदी ने जैसा अपनी समीकरण-मीमांसामें किया है, a, a′, a″, a‴ में ऊपर लगाये गये डैशोंको मात्राओं द्वारा व्यक्त किया जाय — क, का, कि, की। डैशोंकी अपेक्षा यह पद्धति हिन्दीमें बहुत सफल रही है और इसका अनुसरण किया जा सकता है।

सारांश यह है कि यथा-शक्य नागरी लिपिसे काम निकाला जाय, और अनिवार्य परिस्थितियोंमें ही इतर लिपियोंका उपयोग किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि रासायनिक समीकरणोंमें रोमन संकेतोंका ही प्रयोग करना पड़ेगा।

क्या रोमन गिनतियाँ अपना ली जायँ

यूरोपमें तो रोमन* गिनतियोंका प्रयोग होता ही है, चीन और जापान वालोंने भी इन गिनतियोंको अपनाया है, क्योंकि उनकी अपनी लिपिमें गिनतियोंके लिये ऐसे चिह्न न थे जिनका गणितमें सुविधा-पूर्वक उपयोग किया जा सके। यही परिस्थिति दक्षिणात्य लिपियोंकी रही है। उदाहरणतः तामिलमें जो मूल गिनती है वह वर्णमालाका कुछ रूपान्तर है, और उसके द्वारा बड़ी संख्याओंको प्रकट करनेकी पुरानी परिपाटी बड़ी जटिल है। इसीलिये इन भाषाओंने भी रोमन गिनतियोंको अपना लिया है। अब प्रश्न यह है कि क्या हम अपने नागरी अङ्कोंको छोड़ दें? जहाँ तक सिद्धांतका सम्बन्ध है हमारे इन अङ्कोंमें कोई मौलिक भेद नहीं है※। मैं इस समस्याको अपने साहित्यिक मित्रोंके समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ, और आशा करता हूँ कि वे इस संबंधमें उचित परामर्श देंगे। वे कृपया यह भी बतावें कि $H_3 PO_4$ सूत्रको $H_{३} PO_{४}$ लिखना शोभा देगा या नहीं।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओंका वर्णानुक्रम

अन्तमें एक विशेष विषयकी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह विषय साहित्यिकोंकी दृष्टिसे अब तक उपेक्षित रहा है। वैज्ञानिक क्षेत्रमें ही नहीं, समाचार-पत्रोंके क्षेत्रमें भी यह विषय अपना महत्व रखता है। हमें अपने लेखोंमें बहुत-सी विदेशी व्यक्तिवाचक संज्ञाओंका प्रयोग करना पड़ता है। ये शब्द अँग्रेजीमें वर्णानुक्रमित होकर हमारे सामने आते हैं। अँग्रेजी वर्णमालाकी ध्वन्यात्मक कला इतनी अनिश्चित है कि उस वर्णमालामें वर्णानुक्रमित किसी शब्दका उच्चारण क्या होना चाहिये यह कोई नहीं कह सकता। कहनेको तो यूरोपके सभी देशोंमें वर्णमाला एक ही प्रकारकी है और इसके आधार-पर भ्रमवश लोग रोमन लिपिको सर्वसम्मत लिपि घोषित कर भी देते हैं। पर यदि अक्षरोंका उच्चारण भी एक हो तब लिपि समान कहला सकती है; अथवा नहीं। P-A-R-I-S लिखा गया शब्द फ्रान्समें पेरि उच्चरित होता है, और अँग्रेज़ीमें पेरिस। M-I-N-E शब्द अँग्रेज़ीमें माइन है और जर्मनमें मिने। इतना अन्तर होने पर भी यह कहना कि रोमन लिपि सर्वमान्य है, इसका कोई अर्थ नहीं।

उच्चारणका यह अन्तर व्यक्तिवाचक संज्ञाओंमें बहुत

---

*वक्ताका अभिप्राय है वे गिनतियाँ जिन्हें अँग्रेज़ अरबी गिनती कहते हैं, अर्थात् १, २, ३, ..

—सम्पादक

※ स्मिथ और कारपिंस्कीने अपनी पुस्तकमें सिद्ध कर दिया है कि अरबवालोंको ये गिनतियाँ भारतसे मिलीं और यूरोपवालोंको अरबसे। —संपादक

खटकता है। Europe शब्दको कोई हिन्दीमें योरुप लिखता है, कोई यूरोप, कोई योरोप। Leipzig को भूगोलकी पुस्तकोंमें लीपज़िग लिखा जाता है, यद्यपि इसका शुद्ध उच्चारण लाइपत्सिग है। Lavoisier फ्रैञ्च वैज्ञानिकका नाम कोई लवासिये लिखता है, कोई लवाशिये, कोई लिवोइसिये; यद्यपि इसका उच्चारण लाव्वासीए है। चीनी-जापानी नगरोंके नाम भी हमारे सामने अँग्रेज़ी वर्णानुक्रमणमें आते हैं, और हम उनका मनमाना उच्चारण करने लगते हैं। अँग्रेज़ी वर्णानुक्रमणके आधारपर उच्चारण करना और तदनुकूल नागरीमें लिप्यन्तरित करना कोई गौरवपूर्ण पद्धति नहीं है। साहित्य सम्मेलनसे मेरा अनुरोध है कि वह एक ऐसा कोष प्रकाशित करे जिसमें भूगोलमें प्रयुक्त नगरों, प्रान्तों, सरिताओं, पर्वतों आदिके नामोंकी आदर्श सूची हो, और इनके उच्चारण यथा-शक्य शुद्ध दिये हों। शुद्धसे मेरा अभिप्राय उस उच्चारण से है, जो वहाँका देशवासी करता हो। एक सूची ऐतिहासिक और वैज्ञानिक साहित्यमें प्रयुक्त होनेवाले पुरुषवाचक नामोंकी भी होनी चाहिये। जबसे रेडियोका व्यवहार बढ़ा है तबसे हमें सभी देशोंके मौलिक उच्चारण सुननेका अवसर प्राप्त होने लगा है, पर अब हमें अपना अँग्रेज़ी लिपि द्वारा सीखा गया भ्रष्ट उच्चारण बहुत खटकने लगा है।

नागरीमें लिप्यन्तरित करनेकी क्षमता

मैंने कई बार अपने लेखोंमें यह अनुरोध किया है कि नागरी अक्षरोंमें ही हमें विदेशी भाषाओंके उद्धरणोंको प्रस्तुत करना चाहिये। यदि रोमनाक्षरोंमें आपके वेद-शास्त्रादि प्रकाशित मिलते हैं और अधिकांश पाश्चात्य देशोंमें अपनी लिपिमें ही दूसरोंकी भाषाओंके उद्धरणोंको लिप्यन्तरित करनेकी पद्धति है, तो हम भी ऐसा ही क्यों न करें। हमने अपनी लिपिको फारसी और अरबीके शब्दोंके उपयुक्त तो बना ही लिया है, और इन भाषाओंके उद्धरणोंको बहुधा हम अपनी लिपिमें ही प्रस्तुत करते आये हैं, तो कोई कारण नहीं कि हम अँग्रेज़ी, फ्रैञ्च, जर्मन अथवा चीन-जापानकी भाषाओंके उद्धरणोंको अपनी लिपिमें ही क्यों न लिखें। दूसरी भाषाओंकी नयी ध्वनियोंके लिये नये संकेत हमें अपने 'विशेष' कामोंके लिये बनाने पड़ेंगे, पर यह अनिवार्य्य नहीं है कि हम लिप्यन्तरित करनेमें सदा इन स्वरोंका व्यवहार करें। साधारण कार्योंके लिये हमारी लिपि और वर्णमाला पर्याप्त है।

हिन्दीमें अनुसन्धानोंकी पत्रिका

एक बातकी ओर ध्यान और आकर्षित करके मैं अपने इस भाषणको समाप्त करनेका प्रयास करूँगा। अब तक हमने "विज्ञान" पत्रिका द्वारा लोकप्रिय अथवा पाठ्य-पुस्तक सम्बन्धी साहित्य ही प्रकाशित किया है। इस प्रकारका कार्य करते हुए हमें ३० वर्ष हो गये। अब आवश्यकता है कि हम एक पग आगे पढ़ें। मेरा प्रस्ताव है कि हिन्दीमें एक वैज्ञानिक अनुसंधान पत्रिका आरम्भ करनी चाहिये। जापानमें तो जापानी भाषामें अनेक अनुसंधान-पत्रिकायें अनेक वर्षोंसे प्रकाशित हो रही हैं। हमें भी यह काम किसी दिन आरम्भ करना है। जापानवाले इन पत्रिकाओंमें प्रकाशित लेखोंका सारांश अंग्रेज़ी, जर्मन, और फ्रेंच भाषाओंमें भी प्रकाशित करते हैं, जिससे यूरोपवाले इनकी प्रगतियोंसे परिचित रहें। मैं हिन्दीमें इस प्रकारकी पत्रिकाके लिये उत्सुक हो रहा हूँ। मैं इसके संपादनका भार अपनेपर लेनेको तैयार हूँ; यदि साहित्य सम्मेलन१००) वार्षिकके लगभग इस पर व्यय करनेको तैयार हो तो नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके समान एक त्रैमासिक पत्रिकासे आरंभ किया जाय। भारतवर्षमें इस समय अँग्रेज़ीमें कई अनुसंधान-पत्रिकायें निकल रही हैं, और जो समस्त विदेशोंमें जाती हैं, पर उनपर कहीं भी किसी भारतीय भाषा या लिपिका चिह्न तक नहीं होता। ये पत्रिकायें विदेशमें यही भावनायें उत्पन्न करती होंगी कि हमारे देशकी न कोई भाषा है, और न कोई लिपि ही। इस दृष्टिसे चीनी और जापानी पत्रिकायें हमसे कहीं अधिक गौरव अपनी भाषाको देती हैं। मैंने उनकी अँग्रेज़ी पत्रिकाओंपर भी पत्रिकाका नाम एवं उनके परिषद्के पदाधिकारियोंके नाम उनकी ही वर्णमालामें प्रकाशित देखे हैं।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि हमारी भाषाका सर्वतोन्मुखी गौरव बढ़े। भाषामें हमारी मनोवृत्तिका प्रतिबिम्ब पड़ता है। राष्ट्रीय भाषाकी सेवा राष्ट्रकी एक परमोच्च सेवा है।

सुप्रसूति-विज्ञान क्या है ?

[लेखक—ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, सफीपुर (उन्नाव)]

'ऊँची अच्छी जाति जन्तुओंकी जनमायी,
आगामी आदर्श मनुज-रचना सिखलायी।'

आजकल सुशिक्षित समाजका ध्यान 'सुप्रसूति-विज्ञान' की ओर बहुत झुका हुआ है। अमेरिका, जर्मनी आदि उन्नतिशील देशोंमें सुप्रसूति-विज्ञान संबंधी खोजों और निरीक्षण-परीक्षण संबंधी बातोंमें अपरिमित धन और समय लगाया जा रहा है। किन्तु हमारे देशके अधिकांश लोग इस विज्ञानसे सर्वथा अपरिचित हैं; बहुतोंने तो इस विज्ञानका नाम भी न सुना होगा। फिर अनेकों ऐसे हैं जो इस विज्ञानके नामको जानते हुए भी यह नहीं जानते कि असलमें यह विज्ञान क्या है, इसका उद्देश्य क्या है, इसके नियम किन सिद्धान्तोंपर आश्रित हैं और यह मानव जातिको किस तरहसे लाभदायक है ?

अँग्रेज़ीके एक प्रसिद्ध कोषमें इस विज्ञानको, 'उत्कृष्ट संतान (विशेषतः मानव-संतान) उत्पन्न करनेकी विद्या' बताया गया है। इस विज्ञानका लक्ष्य आदर्श मानव-समाज उत्पन्न करना है—मनुष्यको शनैः शनैः ऐसे सद्-गुणोंसे अलंकृत कर देना है कि भविष्यमें, वे कर्मनिष्ठ गौरवपूर्ण, हृष्टपुष्ट, प्रतिभावान् और अच्छे बन जायँ।

जिन नियमोंसे इस विज्ञानका संचालन होता है वे साधारणतः उन नियमोंसे मिलते-जुलते हैं जिनका अव-लंबन, पशु-पालक गृह-पालित पशुओं और कृषक अपने पेड़-पौधोंकी नस्ल सुधारनेमें करते हैं। विशेषता यह है कि मानव-सुधारकी योजनामें हम पशु-पालकों एवं कृषकों-की तरह शिक्षा-दीक्षा एवं पारिपार्श्विक वातावरण आदि बाहरी साधनोंको अधिक महत्त्व नहीं देते हैं और न प्रसव की हुई अवांछित संतानका निर्दयता-पूर्वक दमन करते हैं। मानव-जातिके सुधारमें अभीष्ट-प्राप्तिके हेतु हमें जिन कल्याणकारी और महत्त्वपूर्ण लक्षणोंकी आव-श्यकता होती है उनका सम्बन्ध प्रायः मनुष्यके मस्तिष्क (mind) से होता है। मानव-सुधारकी योजनाएँ हमें मानव-शरीरके आभ्यंतरिक (मनो) व्यापार (Internal working)—उनकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों (Inborn tendencies) अर्थात् बीज-परम्परा (Heredity) को प्रभावित करना होता है। इस विज्ञानका प्रधान लक्ष्य मनुष्यके अर्जित लक्षणोंमें वृद्धि एवं सुधार करना नहीं है, वरन् उसके वंशगत नैसर्गिक दाय-भाग (Natural gifts) में सुधार और वृद्धि करना है। इसका उद्देश्य मनुष्यको श्रेष्ठ स्वभाव (Superior nature) से विभूषित करना है, उसे अच्छा बनाना है।

बहुत समय हुआ यूनानके एक प्रसिद्ध कवि—थियाग्निसने मानव-समाजपर यह आक्षेप किया था कि वह घोड़ों, गदहों, कुत्तों और पक्षियोंमें अच्छे वंशकी खोज इस समझसे करता है कि 'अच्छेसे अच्छेकी ही उत्पत्ति होना' स्वाभाविक है। किन्तु एक उच्च वंशका पिता धन एवं अन्य लौकिक प्रतिष्ठाके प्रलोभनमें पड़कर कैसे अना-यास ही अपने पुत्रका विवाह बुरे वंशकी एक बुरी कन्या-से कर लेता है। कविका यह आक्षेप मनुष्य जातिपर आज भी जैसा-का-तैसा घटित हो रहा है; कारण कि समाजके वैवाहिक संस्कारके बंधन अथवा नियमन दिन-दिन शिथिल पड़ते जा रहे हैं। नई रोशनीके लोगोंने तो विवाह-को एक व्यक्तिगत व्यापार समझ रक्खा है। मनुष्य आज भी भौतिक सुधारकी अपेक्षा अपने वंश-सुधारमें कहीं अधिक उदासीन पाया जाता है। वह भौतिक एवं लौकिक बातोंके ज्ञानार्जन करनेकी तो प्रबल चेष्टा करता है किन्तु न जाने क्यों, वह अपने विषयमें अधिक जानने और उस जानकारीसे अधिक लाभ उठानेकी उतनी परवा नहीं करता। उसे जितना आनंद भौतिक-विज्ञानके अनुसंधान एवं छान-बीनमें आता है उतना आनंद जीव-विज्ञान एवं वंशानुक्रम-विज्ञानके अध्ययन एवं अनुशीलनमें नहीं आता। यही कारण है कि आज हम लौकिक उन्नतिकी तो चरम सीमापर पहुँच गये हैं किन्तु पहलेकी अपेक्षा हमारा अंतःकरण अधिक दूषित, हमारी मानसिक शक्तियाँ अधिक क्षीण और हमारे शारीरिक पराक्रममें अधिक ह्रास हो गया है। समाज-पतनके ये प्रधान लक्षण हैं।

इसमें हमारे भाग्यका दोष नहीं है, इस दोषका सारा उत्तरदायित्व तो हमींपर है। हम मनुष्य होकर भी मानव-तत्व-जीव-विज्ञानके संबंधमें नितांत उदासीन रहते हैं।

हमारी सामाजिक प्रणालीकी विह्वलकारिणी संकीर्णता एवं क्षणिक भौतिक सुखके लोभके कारण हममेंसे अधिकांश व्यक्ति अपने बच्चोंके विवाह ठहराते समय वर-कन्या एवं उनके कुलोंके उन वंशगत गुणों—कुलके इतिहास—की पूछ-ताछ और विश्लेषण नहीं करते जिनके प्रस्तुत होनेसे हमारी भावी संतान बुद्धिमान्, स्वस्थ, कर्मशील और अच्छी पैदा हो ; हम उनके वंशानुगत गुणों—शारीरिक, मानसिक और आचरण संबंधी गुणोंका विचार नहीं करते जिन्हें उन्होंने अपने पूर्वजोंसे विरासतके रूपमें प्राप्त किये हैं और जिन्हें वे जैसे-के-तैसे अथवा कुछ हेर-फेरके साथ अपनी संतानको विरासत (उत्तराधिकार) के रूपमें सौंपेंगे। जाति-सुधारमें यही गुण कच्ची सामग्री हैं। इसी कच्ची सामग्रीमेंसे—अच्छे गुणवाले वर-कन्याओंमेंसे—विशेष अच्छे गुणवाले चुन-चुनकर उन्हें प्रजोत्पादनका अवसर दिया जाय और उनकी वृद्धि की जावे, इस विज्ञानका यही ध्येय है।

इस कथनमें अत्युक्ति न होगी कि एक अत्यंत मेधावी व्यक्तिकी संतान एक साधारण योग्यतावाले व्यक्तिकी संतानकी अपेक्षा अधिक धीमान् होगी। इसमें संदेह नहीं कि प्राणीकृत चुनावमें भूल भी हो सकती है। सावधानीसे चुनाव करनेका फल अच्छा होता है। समाजके कल्याणके लिये हमें अपनी वैवाहिक प्रणालीको सुप्रसूति-विज्ञानके नियमोंके अनुसार नियंत्रित करना चाहिये। विवाहके जो नियम हमारे स्मृतिकारोंने बनाये थे और जिनका पालन हमारे पूर्वज बड़ी तत्परतासे करते थे, उन्हींके अनुसार हमें फिर अपने वैवाहिक संस्कारोंमें हेर-फेर करना होगा, नहीं तो आजकल वंशानुक्रम-विज्ञानकी जितनी उन्नति हुई है उसकी सारी उपयोगिता पालतू जानवरों और पौधों ही तक सीमित रह जायगी। मनुष्यका उससे कुछ भी लाभ न हो सकेगा।

प्राणीकृत - कृत्रिम चुनाव द्वारा पौधों और पशु-पक्षियोंकी नस्ल सुधारनेके फल बड़े चमत्कारी और समाजके लिये बड़े उपयोगी हुए हैं। इस क्रियामें हम अपनी इच्छानुसार लक्षणोंवाले प्राणियोंको चुनकर उन्हींको प्रजोत्पादनका सुअवसर देते हैं और दोषयुक्त लक्षणोंवाले प्राणियोंको वंशवृद्धि करनेका अवसर नहीं देते। इसी प्रकारके चुनावके आधारपर हमने ग्रे-हाउंड या शिकारी कुत्ते उत्पन्न किये जो शिकार खोजने और उसका पीछा करनेमें बड़े निपुण होते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी आवश्यकतानुसार हमने विविध प्रकारकी आकृति और प्रकृतिके घोड़े, गायें, भेड़, बकरियाँ, कबूतर, मुर्गे आदि पशु-पक्षियोंको उपजाया। अपने मन-बहलाव एवं शौकके लिये हमने अनेक प्रकारके मनो-मोहक एवं सौरभवान् पुष्प उत्पन्न किये। प्राकृतिक चुनाव द्वारा जो सुधार साधारणतः सदियोंमें होते, कृत्रिम चुनाव द्वारा वही या उनसे कहीं अधिक उत्कृष्ट और उपयोगी सुधार हमने शीघ्रतापूर्वक प्राप्त कर लिये। तो फिर क्या यह संभव नहीं है कि उसी प्रकार कृत्रिम चुनाव द्वारा हम मानव जातिको अपेक्षाकृत शीघ्र अच्छे व्यक्तियोंसे भर दें।

प्राचीन कालसे लोगोंकी यह धारणा रही है कि हम शिक्षा-दीक्षा एवं पारिपार्श्विक वातावरणको सुधारकर किसी व्यक्तिको सुधार सकते हैं। किन्तु यह धारणा एक अंश तक ही सही है। उत्तम शिक्षा और उत्तम भोजनसे मनुष्य सुशिक्षित एवं बलवान् हो सकता है। सुशिक्षित और बलवान् होते हुए भी अनेकों व्यक्ति अन्यायी दुराचारी और समाजमें कलंकी होते हुए पाये जाते हैं। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि विरासतमें मिली सहज प्रवृत्तियोंके ठीक तौरसे पनपने एवं विकसित होनेके लिये उपयुक्त अवसर—उत्तम शिक्षा और अनुकूल वातावरणकी परम आवश्यकता होती है। समाजके अनेकों पुरुष, जिन्होंने अपने पूर्वजोंसे बड़े उत्तम गुण प्राप्त किये हैं, उपयुक्त शिक्षा प्राप्त न हो सकनेके कारण समाजका कुछ भी हित न कर सके। सुअवसर और अच्छे साधन न मिलनेके कारण उनके गुणोंका यथेष्ट रूपसे विकास न हो सका। किन्तु जाति-उत्थानके विचारसे वे आदर्श पुरुष हैं।

समाजकी उन्नतिके लिये उपयुक्त शिक्षा और अनुकूल वातावरणकी मनुष्यके लिये उतनी ही आवश्यकता है जितनी आवश्यकता बीजको जमने और ठीक तौरसे पनपनेके हेतु गर्मी, प्रकाश और खादकी आवश्यकता होती है। जिस भाँति प्रकाश और खाद खट्टे नीबूको मीठे संतरेमें परिणत नहीं कर सकते उसी भाँति उत्तम शिक्षा और पुष्ट भोजन मनुष्यके सहज लक्षणोंको नहीं बदल सकते। यदि हम

जन्मसे ही अच्छे गुण न प्राप्त करें तो अनुकूल वातावरण-का प्रभाव हमारे ऊपर अधिक नहीं पड़ता। प्रायः देखा गया है कि कुछ घरानोंके पुरुष नामी कलावान्, कुछ घरानोंमें प्रख्यात संगीतज्ञ और कुछमें बड़े-बड़े गणितज्ञ होते हैं, और यह सिलसिला पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक उस घरानेके सभी अथवा अधिकांश व्यक्तियोंमें जारी रहता है। अँग्रेजीमें एक कहावत है कि 'कुछ पुरुष महानता सहित उत्पन्न होते हैं, कुछ अपनेको महान् बना लेते हैं और कुछके सिर महानता मढ़ी जाती है।' इनमेंसे हमें प्रथम श्रेणीके समुदायके व्यक्तियोंसे जातिके कल्याणकी आशा करनी चाहिये।

जब तक इस बातका स्पष्ट रूपसे पता न चला था कि एक ही माता-पिताकी संतानोंमें समानता होते हुए भी उनकी पारस्परिक आकृति और प्रकृतिमें कुछ विविधता भी होती है तब तक वैज्ञानिक क्षेत्रमें सुप्रसूति-विज्ञान संबंधी विचारोंका बीजारोपण भी न हो सका था। किसी बच्चेमें एक गुण घटकर और दूसरेमें दूसरा गुण बढ़कर प्रदर्शित होता है; इस प्रकारकी विभिन्नता हर माँ-बापके बच्चेमें उत्पन्न हो जाती है। एक बलवान् हुआ तो दूसरा धीमान् हुआ। इस बातसे हम इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि वंशानुगत लक्षण (अच्छे और बुरे पैतृक गुण) मनुष्यमें इस भाँति बिखरे रहते हैं कि गर्भाधानके समय कुछ गुण एक व्यक्तिके भागमें दूसरेकी अपेक्षा न्यूनाधिक आ जाते हैं। संतान अपने माता-पितासे तो गुण प्राप्त करती ही है, इसके अतिरिक्त वह कुछ गुण और ऊँचे विरसों—नाना, नानी, दादा, दादी और कुछ भाग उनसे भी ऊँचे विरसोंसे प्राप्त करती है। माता-पिताने जो गुण अपने पूर्वजोंसे प्राप्त किये हैं, गर्भाधान कालमें उन दोनों—जननी-जनकके समस्त गुणोंका पुनः सम्मिश्रण (Reshuffling) होता है। सम्मिश्रणके अंतमें फिर नवीन संयोग (Combinations) बनते हैं। नवीन संयोगोंमें किसी गुण विशेषकी मात्रा घट जाती है, किसीमें बढ़ जाती है और किसीमें उसका सर्वथा लोप हो जाता है। इन्हीं या इसी तरहके और कारणोंसे संतानोंकी प्रकृतिमें विविधता आ जाती है; नयी नयी विशेषताएँ आ जाती हैं। कुछ विशेषताएँ वंशानुगत होती हैं, कुछ नहीं भी होती हैं।

सुप्रसूति-विज्ञानके अनुसार यदि श्रेष्ठ गुण सम्पन्न संयोगोंसे विभूषित बच्चोंको चुन-चुनकर वैवाहिक संबंध द्वारा उनकी वृद्धि की जाय और दोषयुक्त गुणवाले संयोग प्राप्त बच्चोंको प्रजोत्पादनका अवसर न दिया जाय तो विश्वास है कि भविष्यमें संसारका स्वरूप ही बदल जायगा, वह प्रतिभावान, सुन्दर, शक्तिशाली, गौरवपूर्ण और दीर्घजीवी पुरुषोंसे परिपूर्ण हो जायगा।

अब हम लोग इस बातपर पूरे तौरसे विश्वास करते हैं कि आजका मनुष्य आरंभके सीधे-सादे आदि-प्राणियों (Primitive animals) से करोड़ों वर्षोंमें विकसित हुआ है। उनसे हमारा विकास धीरे-धीरे अनुकूल वातावरण और प्राकृतिक चुनाव द्वारा हुआ है। फिर हम सोच सकते हैं कि जब अव्यवस्थित प्राकृतिक चुनाव द्वारा सीधे-सादे प्राणियोंसे आजके मनुष्यका उद्भव होना संभव हो गया है तो क्या हम यह आशा नहीं कर सकते हैं कि अनुकूल वातावरण और सतर्क कृत्रिम चुनाव (सुप्रसूति-विज्ञान) द्वारा हम भविष्यमें उनमें आदर्श गुण उत्पन्न न कर सकेंगे।

थोड़ी देरके लिये मान भी लिया जाय कि हम इन उपायोंसे मानव जातिके सहज गुणोंमें और अधिक उन्नति न कर सकेंगे तो क्या हमें इस बातका विश्वास है कि इस भाँति उदासीन बैठे रहनेसे हम पतन (degeneration) से अपनी जातिकी रक्षा कर सकेंगे। गत शताब्दी में संसारके प्रायः सभी सभ्य देशोंकी जन-संख्यामें अद्भुत वृद्धि हुई है। किन्तु इस वृद्धिका अनुपात सभी श्रेणीके पुरुषोंमें एकसाँ नहीं हुआ है। इन सब देशोंके आँकड़ोंकी परीक्षा करनेसे भी स्पष्ट है कि जिन श्रेणियोंको हम आज उच्च श्रेणी समझते हैं उन श्रेणियोंमें निम्न श्रेणियोंकी अपेक्षा कम संतानें उत्पन्न हुई हैं। गाँवोंमें देखा जाता है कि शिक्षित और धनी परिवारोंमें जन्म-संख्या कम हो रही है। अधिक शिक्षाके साथ-साथ जन्म अनुपात घट रहा है। क्या इस संसार-व्यापी महायुद्धमें मानव जातिके चुने हुए पुरुषोंकी आहुति नहीं हो रही है और युद्धोपरांत भावी संतान उत्पन्न करनेके हेतु साधारण या निकम्मे कोटिके पुरुष शेष रह जायँगे ? जाति-सुधारकी योजनामें हमें इन बातोंपर भी ध्यान रखना पड़ेगा।

इस प्रकार श्रेष्ठ गुण सम्पन्न संतान उत्पन्न करनेकी मानव-लालसा जिस विज्ञानके आधारपर फलीभूत होना संभव है उसे सुप्रसूति-विज्ञान कहते हैं। इसकी व्यावहारिक क्रियामें हमें मानव जातिके पैतृक लक्षणोंके संक्रमण एवं उनके प्रकटीकरण होनेपर उनपर प्राकृतिक प्रभावोंकी जानकारीकी ही आवश्यकता न होगी, वरन् जातिकी सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाओंपर भी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि रखनी होगी। तभी हम मनुष्य-समाजके अन्य क्षेत्रोंसे संबंध रखनेवाले व्याघातोंसे उसकी रक्षा कर सकेंगे और तभी वंशानुक्रम-विज्ञानके अनुसार समाजके पुनर्संङ्गठन एवं उद्धार करनेमें सफलीभूत हो सकेंगे।

ग्रहोंकी रचना

[लेखक—श्री व्रजबासीलाल, एम०एस-सी०, डी० फ़िल०, गणित विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

हमारे सौरमण्डलके जन्मके सम्बन्धमें अब तक कई मत प्रस्तुत किये जा चुके हैं। परन्तु उन सबमें एक कठिनाई रही है कि ग्रहोंको यथेष्ट शक्ति तथा कोणीय घूर्ण कहाँसे प्राप्त हो जाता है। ग्रहोंकी रचनाके बारेमें सबसे पहले लाप्लासने एक मत दिया था और इस शताब्दिका नवीनतम मत जुफ्रेमेड सिद्धान्तका है। इन दो सिद्धान्तोंके अलावा कई और सिद्धान्त हमारे सामने आये हैं। इधर दो-तीन वर्ष बीते प्रोफेसर अमियाचरण बन्द्योपाध्याय ने सौरमण्डलकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अपना सेफाइड सिद्धान्त दिया है। इसके अन्दर शक्ति अथवा momentum की बाधा नहीं खड़ी होती है। जहाँ तक लेखकको ज्ञात है प्रोफेसर बन्द्योपाध्यायका सिद्धान्त ही ऐसा है जो सौरमण्डलकी उत्पत्तिका वास्तविक मर्म बतला सकता है। उन्होंने सूर्यकी कल्पना एक सेफाइड-चल (cepheid variable) के रूपमें की है जो झोटेसे स्पन्दन कर रहा हो। जब कोई तारा उसके निकटसे होकर जाता है तो झोटा बढ़ जाता है, जिसके कारण गति अस्थिर हो जाती है। (यह गणित द्वारा सिद्ध किया जा चुका है)। फलतः कुछ पदार्थ उसमेंसे निकल जाता है जो ग्रहोंका रूप धर लेता है। गतिमें अस्थिरता हो जानेके कारण, इस हेतुसे कि पदार्थके निकलनेके लिये यथेष्ट शक्ति प्राप्त हो जाय, सूर्य अपने उपकेन्द्रीय स्रोत (Subnuclear sources) से शक्ति लेगा और फिर स्थिर अवस्थाको प्राप्त हो जायगा। इस प्रक्रियामें बहुत-सा भार निकल जायगा जिसके कारण सूर्य महाकायिक अवस्थासे सामान्य अवस्था पर आ जायगा और अन्ततः स्पन्दन ख़त्म हो जायँगे।

प्रोफेसर बन्द्योपाध्यायके उक्त सिद्धान्तमें यह आक्षेप किया जा सकता है कि जन्मदाता सेफाइड तारेका भार सूर्यके भारके बराबर नहीं पाया जाता। इसके प्रत्युत्तरमें उन्होंने नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जिसके अन्दर सेफाइड-चलका भार सूर्यके भारसे नौगुना रखा है। जब कोई तारा इस सेफाइडके पाससे होकर निकल गया तो स्पन्दनोंका झोटा बढ़ गया और गति अस्थिर हो गई।

हम इसी सिद्धान्तको आगे लेकर चलेंगे। आरम्भमें जब प्रतिबाधक (Intruding) तारा अपना ज्वार-भाटात्मक प्रभाव लगाने लगता है तो सूर्यसे निकलने वाले पिण्डकी गति और वेगान्तर दोनों बहुत कम होते हैं। परन्तु जब तारा काफी निकट आ जाता है तो वेगान्तर बढ़ जाता है और पदार्थ तारेकी दशामें सीधे चलने लगता है। जब पदार्थ बाहरकी ओर कुछ दूरी तै कर लेता है तो तारा तो अब उसकी गतिकी दिशामें रहता नहीं है, इसलिये अपने पार्श्वमें वह इसे आकर्षित करता है। इसलिये एक गति सूर्यकी चारों ओर और दूसरी सूर्यके परे नई बन जायगी। यह तो विचार करना गलत है कि सारा निकला हुआ पदार्थ एक ही परिधिसे निकल पड़ेगा। पदार्थ शनैः शनैः निकलता है इसलिये निकलनेका विन्दु (point of ejection) अवश्य करके तारेकी ओर रहता है और तारेकी गतिके साथ-साथ वह विन्दु भी बदलता रहता है। इस प्रकार विभिन्न पिंड विभिन्न स्थितियोंसे निकलते हैं और विभिन्न मार्गोंपर चलते हैं।

अगर पदार्थ कुछ देर तक निकलता रहे तो सारा निकला हुआ पदार्थ किसी समयके पश्चात् एक तन्तुका

रूप ले लेगा। हम यह अनुमान कर सकते हैं कि पदार्थके निकलनेकी गति, आरम्भमें कम होगी, फिर बढ़ते-बढ़ते उच्चतम मानको उस समय प्राप्त होगी जब तारा इससे निकटतम होगा और अंतमें फिर शून्य गतिको प्राप्त होगी। अगर यह ठीक है तो ऐसे तन्तुका रेखा-घनत्व हर सिरेपर तो शून्य होगा और बीचमें महत्तम। फिर क्योंकि तन्तुसे गर्मीका नाश विकिरणकी विधि द्वारा हुआ है इसलिये सिरोंपर तापक्रमका उतार सबसे ज़्यादा रहेगा और द्रवीभवन भी वहीं प्रारम्भ हो जायगा। इस प्रकार कुछ कालान्तरमें तन्तुके सिरे तो द्रवरूपमें होंगे और बीचका भाग वाष्प ही बना रहेगा। सघनीभवन जब इस प्रकारसे हो रहा होगा तो गुरुत्वात्मक अस्थिरता (gravitational instability) के फलस्वरूप पृथक पिंड बन जायँगे। एतदर्थ जो ग्रह तन्तुके सिरोंपर बनेंगे उनका भार सबसे कम होगा और जो बीचके भागसे बनेंगे उनका सबसे ज़्यादा। इस प्रकार हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि छोटे ग्रहोंके भारमें कमी-बेशी क्यों हैं और साथ ही साथ यह भी कि सबसे ज्यादा भारके ग्रह बीचमें क्यों हैं। इस चीज़की पुष्टि सर जेम्स जीन्स, इशपिनसर तथा जैफरीसकी भाँति गणना करने पर गणितसे हो जाती है।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी अर्थ' में जैफ़रीसने कहा है कि "पृथ्वीके अतिरिक्त कोई दूसरा ग्रह शायद ऐसा नहीं है जिसके परिभ्रमणमें उन ज्वारभाटों (Tides) से ज़्यादा असर पड़ा है जो उसके उपग्रहोंके कारण उठे हों। मगर शुक्रकी बाबत कोई निष्कर्ष निकालना कठिन है, सिवाय इसके कि इसका परिभ्रमण-काल उस हद तक नहीं बढ़ गया है जिस हद तक पृथ्वीका।" बात तो यह है कि शुक्रका परिभ्रमण इतना मंद है कि यथेष्ट ज्वारभाटात्मक प्रभाव तभी प्राप्त हो सकता है जब हम यह मान लें कि आरम्भमें शुक्रका एक उपग्रह इतना भारी था जितना बुध। गणित द्वारा भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि शुक्रकी गतिकी पूरी व्याख्या तभी की जा सकती है जब बुधको आरम्भमें उसका एक उपग्रह मान लें।

ऐसा लगता है कि बुधका इतिहास भी चन्द्रमाके जैसा रहा है। चंद्रमाकी तरह बुध अपनी क्षीण गुरुत्वात्मक शक्तिके कारण वायुमण्डल तो रख नहीं सका होगा और इसके अन्दर जो घर्षण रहा होगा वह समस्त पिंडमें व्याप्त रहा होगा। जब यह शुक्रका उपग्रह रहा होगा तो उसी आवर्त्तकालसे परिभ्रमण कर रहा होगा जो शुक्रके गिर्द इसका परिधि आवर्त्तकाल है। और जिस प्रकार चंद्रमा नित्य धरतीकी ओर मुख किये रहता है, बुध भी शुक्रकी ओर किये होगा। परन्तु जब यह बुधका उपग्रह स्थिर उपतारिक परिधिके क्षेत्रके बाहर ज्वार-घर्षणके कारण ढकेल दिया गया होगा तो यह स्वतंत्र ग्रह स्वयं बन बैठा। उस समय उसका परिभ्रमण आवर्त्तकाल भी बढ़ गया होगा। और सूर्य-जनित पिंडमें व्याप्त ज्वार-घर्षण ही अकेला इतना काफ़ी रहा होगा कि उसका मुख सूर्यकी ओर हो गया होगा। फिर उस समयसे यही अवस्था क़ायम रही है।

व्यावहारिक मनोविज्ञान

पढ़नेकी कला

[लेखक—श्री राजेन्द्र बिहारीलाल, एम० एस्-सी०, इंडियन स्टेट रेलवे]

पढ़नेका यंत्र-विज्ञान

दृष्टि संकेतोंको मानसिक अवस्थामें भाषान्तर करना ही पढ़ना है। इस क्रियामें ध्यान देने योग्य एक बात यह है कि आँख छपी हुई सतरपर लगातार बिना रुके हुए नहीं चलती है वरन् रुकते और विश्राम लेते हुए चलती है। वस्तुतः नेत्रीय चाल एक झटकेवाली चाल है, जिसमें दृष्टि हर बार गढ़नेके बाद रुककर विराम लेती रहती है। आप जब किसी सतरपर दृष्टि डालते हैं तो वह पंक्तिके कुछ भागको पकड़ लेती है, फिर ज़रा थम जाती है, फिर आगेके भागको देखती है और फिर रुक जाती है—ऐसा ही बराबर होता रहता है जैसा निम्नांकित चित्रसे स्पष्ट हो जायगा।

——— ——— ——— ——— ———

यह सीधी लाइन नेत्रों द्वारा देखना प्रगट करती है और बीचकी खाली जगहें दृष्टिका थमना बतलाती हैं।

हर बार जब आपके नेत्र काग़ज़पर केन्द्रित होते हैं तो आप केवल एक ही शब्दको नहीं देखते हैं वरन् एक शब्द-समूहको, जिसका अर्थ प्रायः उसी क्षण समझमें आ जाता है। शब्दोंकी उस संख्याको जिसे आप एक बारके दृष्टि गाड़नेमें पकड़ लेते हैं ग्रहण-विस्तार (Perceptual Span) कहते हैं। आपको यह विदित होना चाहिये कि तेज़ पाठक एक-एक शब्दको कम समयमें नहीं पढ़ लेता, वरन् एक ही समयमें अधिक शब्दोंको पढ़ लेता है—उसका ग्रहण-विस्तार अधिक बड़ा रहता है, अर्थात वह एक बारके दृष्टि गाड़नेमें अधिक शब्दोंको पकड़ लेता है। एक कम पढ़ा आदमी किसी छपे अनुच्छेदको कदाचित् एक-एक अक्षर करके धीरे-धीरे पढ़ेगा, लेकिन जो एक प्रवीण पाठक होगा वह एक बारके दृष्टि गाड़नेमें एक समूचे वाक्यको पढ़ लेगा और केवल पढ़ ही नहीं लेगा, वरन् उसके अर्थको भी साथ-साथ समझ जायगा।

यह बात अच्छी तरह समझनेके लिये कि आप सचमुच शब्द-समूहोंको एक साथ पढ़ते हैं, आप एक छोटा-सा प्रयोग कर सकते हैं। बराबर लम्बाईकी चार खड़ी पंक्तियाँ लीजिये जिसमें एकमें केवल अक्षर हों, दूसरीमें छोटे-छोटे तथा तीसरीमें बड़े-बड़े शब्द और चौथीमें वाक्य हों :—

(१)	(२)	(३)	(४)
क	कम	कमल-नयन	कमलका फूल हाथमें लो।
र	रघु	रघु-कुल-तिलक	रघु रामके परदादा थे।
प	पर	परम-पूज्य	परम पूज्य केसरिया प्यारा।
झ	झन	झनझनाहट	झंडा ऊँचा रहे हमारा।
म	महा	महाराजाधिराज	महात्मा गांधी जेल में हैं।
प	पुल	पुलकायमान	पलपलमें आकाशका रंग बदलता है।
त	तर	तरंगित	तरबूज चाकूसे काटो।
ई	ईश	ईश्वरीय	ईश्वर सबका रक्षक है।
क	कल	कलयुगी	कलयुगमें ऐसा ही होता है।
स	सच	सच्चिदानन्द	सच बराबर तप नहीं।
भ	भाग	भागीरथी	भागीरथी गंगाका ही नाम है।
रा	राम	रामेश्वरम्	राम राम कहु राम सनेही।

प्रत्येक खड़ी पंक्तिको चुपचाप पढ़ जाइये और उसे पढ़नेमें जितना समय लगे उसे सावधानीसे नोट कर लीजिये। आप देखेंगे कि पढ़नेकी सामग्री चौथी पंक्तिमें पहलीसे कोई ग्यारह गुनी, दूसरीसे पाँच गुनी और तीसरीसे दुगनीके करीब है, लेकिन इन पंक्तियोंके पढ़नेमें लगे हुए समयमें यह अनुपात कदापि नहीं है। इन खड़ी पंक्तियोंके पढ़नेमें क्रमशः लगभग ४, ६, ९ और २० सेकण्ड लगते हैं। चौथी पंक्ति, पढ़नेमें लगे समयके अनुसार, पहली पंक्तिकी पाँच गुनी और अक्षरोंके अनुसार ग्यारह गुनी है। अब आपको स्पष्ट हो गया होगा कि जितनी जल्दी शब्द-समूहको आँख देखती है और मस्तिष्क समझता है प्रायः उतनी ही जल्दी वह एक अक्षर या शब्दको देखती है। अतः इस प्रयोगसे यह शिक्षा मिली कि अत्यधिक शब्द-समूहोंको एक साथमें देख लेनेका प्रयत्न करते हुए आप अपने पढ़नेकी चालको दृढ़तासे बढ़ाते जाइये।

समझना या वेग ?

पढ़नेकी गति तेज़ बनानेके लिये आपको अपना ग्रहण-विस्तार विस्तृत करनेका प्रयत्न करना चाहिये जो नित्यप्रतिके अभ्याससे किया जा सकता है। किन्तु यह भी ध्यान रहे कि पठन-क्रिया हदसे अधिक सचेत भी न हो जाय नहीं तो आपके पढ़नेकी गति तेज़ होनेके बजाय और भी मन्द हो जायगी। इसका अर्थ यह है कि पढ़ते समय आपका ध्यान पढ़नेकी ही ओर होना चाहिये न कि इस ओर कि किस प्रकार उस पृष्ठ, पाठ या पुस्तकको जल्द-से-जल्द खतम कर डाला जाय। अगर आपका ध्यान केवल इस ओर रहा कि कैसे जल्दीसे अन्त तक पहुँचें तो आप देखेंगे कि आप समझ नहीं रहे हैं, आपको एक ही वाक्य बार-बार पढ़ना पड़ रहा है।

किसीको उपन्यास या अख़बार पढ़नेमें प्रति मिनट तीन सौ शब्दोंसे कममें तो सन्तुष्ट होना ही नहीं चाहिये और चार सौसे बढ़ जानेके लिये भी उसे भरसक चेष्टा करनी चाहिए।

आशा तो यह है कि तेज़ पढ़नेके लिये आपके दृढ़ निश्चयपूर्वक प्रयत्नसे ही कुछ समयमें आपका ग्रहण-विस्तार बढ़ जायगा। परन्तु इस बातका ध्यान रहे कि पढ़नेकी गति बढ़ानेके पीछे समझनेका बलिदान कदापि न हो जाय, क्योंकि आपका पढ़ना जानकारीके लिये ही हो रहा है। पर क्या सचमुच पढ़नेकी क्रियामें तेज़ गति और

समझना परस्पर विरोधी हैं? नहीं! पढ़नेकी गति तीव्र बनाते समय जो आश्चर्यजनक तथ्य आप अनुभव करेंगे वह यह है कि पढ़नेकी गति तेज़ होनेके साथ ही साथ आपकी जल्दीसे समझनेकी योग्यता भी तीव्र होती जायगी। प्रवीण पढ़नेवाले सदा तेज़ पढ़नेवाले होते हैं और उनकी दक्षताके दोनों अंग—तेज़ी और अच्छी तरह समझना—साथ-साथ चलते हैं।

शब्द-भंडार बढ़ाना

एक निपुण पाठक सर्वदा तेज़ पढ़नेवाला हुआ करता है। धीरे-धीरे पढ़नेमें एक बड़ा ख़तरा यह रहता है कि मनको भटकनेका अवसर मिल जाता है और उसमें इधर-उधरके विचार घुस आते हैं जो उसकी एकाग्रताको भंग कर देते हैं। अब प्रश्न उठता है कि सुस्त पढ़नेके क्या कारण हैं? थकावट और अभिरुचिकी कमीसे स्वभावतः पढ़नेकी गति मन्द हो जाती है। इसके अतिरिक्त सुस्त पढ़नेका एक और भी कारण है जो बड़ा महत्त्वपूर्ण है—परिचित शब्दोंकी संख्याकी कमी अथवा मुहावरों और उनके अर्थसे अनभिज्ञता। अगर आपमें यह दोष है तो निश्चय ही इससे आपके पढ़नेमें बाधा उपस्थित हो जायगी और आप जुमलों और पैराग्राफोंको कई बार पढ़नेकी उलझनमें पड़ जायँगे, जिससे आपकी पठन-क्रियाके प्रवाहमें बड़ी बाधा आ उपस्थित होगी। इससे बचनेके लिये निस्सन्देह यही एक उपाय है कि आप अपना शब्द-भण्डार और मुहावरोंकी जानकारी बढ़ायें—यह दोनों बातें शब्द-कोषको अधिक प्रयोगमें लानेसे प्राप्त हो सकती हैं।

अपनी साप्ताहिक परीक्षा

आपको हर हफ्ते अपनी जाँच करते रहना चाहिये। यह बड़ा मनोरंजन और उपयोगी काम है। पढ़ाईकी जाँचके लिये अँग्रेज़ीमें तो बहुतसे अच्छे परीक्षा-पत्र बाज़ारमें मिलते हैं जो थोड़े ही मूल्यमें खरीदे जा सकते हैं। आप उनमेंसे कुछ खरीद लें। वे प्रायः दो या अधिक कक्षाओंमें बने होंगे, जैसे—A. B. C. ताकि आप क्रमागत सप्ताहोंमें उनका प्रयोग करके अपनी उन्नतिका पता लगा सकें। आप उनके द्वारा स्वयं अथवा अपने किसी मित्रकी सहायतासे अपनी जाँच कर सकते हैं। और यदि जी चाहे तो घरके ही बने परीक्षा-पत्रोंको काममें ला सकते हैं। अपने मित्रसे कहिये कि वह एक चुने हुए प्रकरण (Passage) के बारेमें कुछ प्रश्न बनाये, जिसमें उस प्रकरणकी बारीकसे बारीक बात तक पूछ ली जाय। अपने दोस्तसे कहिये कि अपने प्रश्नोंमें हरएक विचार, हरएक घटना, हरएक तर्कको शामिल कर ले। आपकी परीक्षा निस्सन्देह आपके उद्देश्यके अनुसार होनी चाहिये—यदि आप यथार्थ बातों (Facts) के लिये पढ़ रहे हों तो परीक्षामें यथार्थ बातें ही होनी चाहिये—यदि विचारोंके लिये तो विचार, इत्यादि। मतलब यह है कि अपनी उन्नति जाननेका कुछ साधन ज़रूर होना चाहिये। अनेक व्यक्तियोंके अनुभवको देखते हुए तो यही आशा है कि आप भी अपनेको तेज़ और निश्चित उन्नति करते हुए पायँगे। अपनी छिपी हुई कमज़ोरियोंको देखकर कदाचित् आपको आश्चर्य हो, पर यह देखकर आपको और भी अचम्भा होगा कि कितनी शीघ्रतासे ये कमज़ोरियाँ सुयोग्य उपचार द्वारा दूर हो जाती हैं।

साथ ही साथ अपने अभ्यासका कुछ समय आप अपने पढ़नेकी गति बढ़ानेमें लगावें। केवल तेज़ पढ़नेके विचारको सामने रखकर पढ़नेसे ही पढ़नेकी गतिमें उन्नति हो जायगी। निस्सन्देह ज्यों-ज्यों पढ़नेमें आपकी दक्षता बढ़ती जायगी, आपके पढ़नेकी चाल भी तेज़ होती जायगी। मगर यह देखनेमें आया है कि केवल रफ़्तार बढ़ानेके उद्देश्यसे जान-बूझकर किये हुए प्रयत्नसे भी लाभ होता है। पैराग्राफोंके पढ़नेमें लगे हुए समयको नोट कर लीजिये और पढ़ना समाप्त करने पर शब्दोंको गिन लीजिये—इससे आपको पढ़नेकी गति मालूम हो जायगी। अपनी उन्नतिको लिखते जाइये और हर हफ़्ते अपनी रफ़्तारकी तुलना पिछले हफ़्तोंकी रफ़्तारसे कीजिये। अनुभवसे यही पता चलता है कि आप भी सुधारकी आशा कर सकते हैं और आपकी उन्नति भी अस्थायी नहीं प्रत्युत स्थायी होगी। क्योंकि बादमें जब आप गति बढ़ानेकी कोई चेष्टा न भी करते होंगे तब भी देखेंगे कि आपकी साधारण, आरामसे और बिना जल्दी की हुई, रफ़्तार भी पहलेसे अच्छी हो चुकी होगी। यह न समझिये कि इस कामसे फ़ायदा उठानेके

लिये आपको घंटों कड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। तेज़ रफ़्तारसे पढ़नेके थोड़ी देर तक किये गये प्रयास भी अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं।

अँग्रेज़ीमें कुछ मासिक-पत्र ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक लेखके पढ़नेका समय दिया रहता है। पाठक इससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि उनके पढ़नेकी गति तीव्र है अथवा मन्द। हिन्दीमें भी, विशेषकर नवयुवकोंके मासिक पत्रोंमें, साधारण पढ़नेका समय हर लेखके अन्तमें देना चाहिये।

पढ़नेका शौक़

प्रत्येक युवक और युवतीके लिये यह सलाह है कि वह कालेज या हाईस्कूल छोड़ते समय अपने पाठ्य-विषयोंमेंसे किसी एक प्रिय विषयकी पढ़ाईको बतौर अपने मानसिक मनोरंजन (Hobby) के जारी रक्खे, या किसी दूसरे ही विषयका अध्ययन जिसमें उसका विशेष अनुराग हो आरम्भ कर दे। इस प्रकारके अध्ययनमें सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि दिमाग़ अपनी ही इच्छा-वश काम करेगा न कि केवल प्रतिदिनकी आवश्यकताओं या घटनाओंकी उत्तेजनाके प्रत्युत्तरमें, या बाहरकी परिस्थितियोंके कारण, जैसा कि प्रायः जीवनके कारोबारमें हुआ करता है। अगर कोई मनुष्य केवल बाहरी उत्तेजनासे प्रेरित होकर ही सोचता या विचार करता रहा है तो यह क़रीब-क़रीब निश्चय है कि जब सुनने, देखने आदिकी शारीरिक शक्तियाँ क्षीण होने लगेंगी और बाहरी चीज़ोंका पूर्ववत् अधिकार ध्यानपर न रह जायगा और जिज्ञासा कम हो चलेगी तो उस मनुष्यकी मानसिक उद्योगिता भी घट जायगी। लेकिन यदि कोई आदमी आन्तरिक प्रेरणासे या अपनी ही इच्छा-वश होकर अपने मस्तिष्कको काममें लगाता रहा है और अपनी इच्छाशक्तिसे प्रभावित हो काम करनेका अभ्यस्त रहा है तो कोई कारण नहीं कि उसकी मानसिक शक्तियाँ उसके शरीरकी अति वृद्धावस्थामें भी बराबर उन्नति न करती रहें या कम-से-कम अपनी प्रखरताको बनाये न रखें। वास्तवमें प्राय: ऐसा ही होता भी है। केवल इतना ही नहीं एक मानसिक शौक़ (Hobby) रखनेसे और भी बहुतसे लाभ होते हैं। चाहे जल्दी या देरमें आपको यह महसूस करनेका सन्तोष मिल जायगा कि आपने मानसिक ज्ञानके किसी अंग या विषयपर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है और आप उसके बारेमें उतना जान गये हैं जितना कोई जानता है। इससे आपको दृढ़ता और आत्म-विश्वास प्राप्त हो जायगा, साथ ही साथ आप शक्ति और अवर्णनीय आनन्दका भी अनुभव करेंगे।

योजना बनाकर पढ़ना

स्वभावतः आप अपनी अधिक-से-अधिक पढ़ाई अवकाशके ही समयमें करना चाहते हैं। क्योंकि समय थोड़ा ही होगा इसलिये बुद्धिमानी इसीमें है कि आप पढ़नेके लिये एक योजना तैयार कर लें और उसीके अनुसार-अध्ययन करें। कभी इधर और कभी उधरकी पुस्तकें पढ़नेसे मनोरंजन अवश्य होता है किन्तु इससे समय अकारथ जाता है और मानसिक उन्नति भी नहीं होती।

उदाहरणके लिये कदाचित् आपकी यह योजना हो कि 'जार्ज बर्नार्ड शा' की रचनाओंकी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें। अविलम्ब आप पढ़ना आरम्भ कर दीजिये। जब आप उनकी सभी रचनाओंका आद्योपान्त अध्ययन कर चुकेंगे तो आप अवश्य अपनेको पहलेसे अधिक बुद्धिमान् पायँगे और अपने स्वयंके अनुभवसे उनकी कृतियोंके सम्बन्धमें बोल सकेंगे। अगर आपकी योजनामें नाटक, उपन्यास, कविताएँ या जीवनियाँ आदि सम्मिलित हैं तो उन्हींको रखिये। परन्तु पहलेसे समझ-बूझकर कोई योजना आप अवश्य तैयार करलें। यदि ऐसा कर लेंगे और उसके अनुसार काम करेंगे तो निस्सन्देह आपको अधिक लाभ होगा।

श्री शालिग्राम वर्मा

यह लिखते दुःख होता है कि परिषद्के सभ्य और 'विज्ञान' के पुराने सेवक श्री शालिग्राम वर्माका स्वर्गवास गत ४ सितम्बर सन् १६४४ की रातको हो गया। आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था, शरीरसे भी हृष्ट-पुष्ट थे, नियमित रूपसे प्रातःकाल भ्रमण भी करते थे; परन्तु तीन चार सप्ताहके मलेरिया ज्वरमें आपका शरीर जर्जर हो गया और अन्तमें न्यूमोनियाके प्रकोपसे आपका अचानक स्वर्गवास हो गया। हम आपके वृद्ध पिता तथा धर्म-पत्नी और पुत्र-पुत्रियोंसे हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं और ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्माको शान्ति दे।

—म० प्र० श्रीवास्तव

रेलवे सिगनल (Railway Signal)

[लेखक—श्री आनन्दमोहन बी० एस-सी०, कमर्शियल सुपरिंटेंडेंट ईस्ट इंडियन रेलवे, कलकत्ता]

१—१९४३ के विज्ञान (भाग ५८, संख्या २ पृष्ठ ७६) में रेलगाड़ी-संचालनके नियमोंका वर्णन करते समय सिगनलोंके विषयमें संक्षेपमें कुछ कहा जा चुका है। प्रस्तुत लेख उस विषयमें कुछ अधिक जानकारीके लिये लिखा गया है। स्टेशनसे सिगनल रेलगाड़ीके चालकों (ड्राइवरों) को संकेत देते हैं और इन संकेतोंके अनुसार उनको रुकना या चलना पड़ता है। ट्रेनोंके आने-जानेके प्रबंधमें काममें लाये जानेवाले सिगनल निम्नलिखत तीन प्रकारके होते हैं :—

(क) गड़े हुए सिगनल (Fixed Signals)

(ख) हाथ के सिगनल (Hand Signals)

(ग) पटाखे (Detonating Signals)

२—प्रस्तुत लेखमें केवल गड़े हुए सिगनलोंका ही वर्णन किया जायगा। सब सिगनलोंमें ये ही मुख्य हैं। इन सिगनलोंमें मुख्यतर एक स्तंभ और एक हत्था होता है। इस हत्थेकी स्थितिसे ही ड्राइवरोंको संकेत दिया जाता है। गड़े हुए सिगनल कई प्रकारके होते हैं, विशेषतर निम्नलिखत काममें लाये जाते हैं :—

(क) स्टाप सिगनल (Stop Signal)

(ख) वार्नर सिगनल (Warner Signal)

(ग) कालिंग आन सिगनल (Calling On Signal)

(घ) शंटिंग सिगनल (Shunting Signal)

इन सबोंमें स्टाप सिगनल और वार्नर सिगनल मुख्य हैं।

स्टाप सिगनलका वर्णन तथा संकेत

३—(क) स्टाप सिगनलमें हत्थेका किनारा चौखूँटा होता है और हत्थेकी दो स्थितियाँ होती हैं, जिनसे निम्नलिखित दो सूचनाएँ दी जाती हैं अर्थात

(१) ठहरो (Stop)

(२) आगे बढ़ो (Proceed)

(ख) 'ठहरो' की सूचना देनेके लिये स्टाप सिगनलका हत्था (Arm) स्तंभ (Post) पर एकदम लम्ब रहता है। जैसा पहले लेखके पृष्ठ ७९ के प्रथम चित्रमें दिखलाया गया है।

रातके समय जब हत्था दिखलाई नहीं पड़ता, यह सूचना हत्थेकी जड़में लगे हुए एक लैम्पके सामने लाल शीशेके आ जानेसे पैदा हुई लाल रोशनीसे दी जाती है। हत्थेकी इस स्थितिको आन-स्थिति (On Position) कहते हैं और इससे ड्राइवरको एकदम रुक जानेका संकेत दिया जाता है तथा यह आज्ञा की जाती है कि जब तक हत्था न गिरा दिया जाय या रातके समय रोशनी बदलकर हरी न कर दी जाय, तब तक आगे न बढ़ो।

(ग) दूसरी अर्थात् आगे बढ़ो 'Proceed' सूचना देनेके लिये स्टाप सिगनलका हत्था क्षितिज रेखा (पड़ी दिशा) से ४५° से ६०° के कोण तक झुका होता है। यह एक दूरस्थ जगहसे तार खींचकर संचालित किया जाता है। रातके समय यह सूचना लैम्पके सामने एक हरे शीशेके आ जानेसे पैदा हुई हरी रोशनी द्वारा दी जाती है। जब ड्राइवरको स्टाप सिगनल द्वारा यह सूचना मिलती है, तो वह इस सिगनलसे आगे ट्रेन (गाड़ी) को लेकर जा सकता है। हत्थेकी इस स्थितिको स्टाप सिगनलकी 'आफ़-स्थिति' (Off Position) कहते हैं, जो पहले लेखके पृष्ठ ७९ के दूसरे चित्रमें दिखलाई गई है।

वार्नर सिगनलका वर्णन तथा संकेत

४—वार्नर सिगनलः—(क) वार्नर सिगनलका हत्था मछलीकी पूँछके आकारका होता है और वह ड्राइवरको नीचे बताई हुई दो सूचनाएँ देनेके काममें आता है:—

(१) 'सावधानीके साथ आगे बढ़ो। आगे स्टाप सिगनल आ रहा है। उसपर रुकनेके लिये तैयार रहो।"

(२) आगे बढ़ो (Proceed)। स्टेशनके अगले सब स्टाप सिगनल 'आफ़ (Off)' स्थितिमें हैं तथा अगला रोक-खण्ड (Block Section) खाली है।"

(ख) "सावधानीके साथ आगे बढ़ो" सूचना देनेके लिये हत्था सीधा अर्थात् स्तंभपर लम्ब रहता है। रातके समय दो रोशनियाँ दिखलाई पड़ती हैं। एक तो हत्थेकी जड़के पास लाल रोशनी और एक हरी रोशनी उसके ५ या
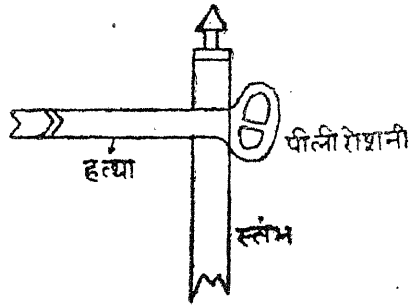
चित्र १—वार्नर सिगनलकी 'आन' स्थिति।
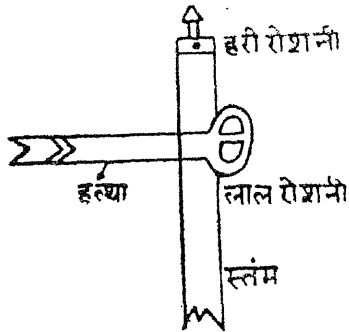
चित्र २—वार्नर सिगनलकी 'आन स्थिति।

७ फीट ऊपर। कहीं-कहीं गवर्नमेंट इन्सपेक्टरकी अनुमतिसे इन दो रोशनियोंकी जगह हत्थेकी जड़पर एक पीली रोशनी दिखाई देनेसे यही सूचना दी जाती है। यह स्थिति जो वार्नरकी 'आन (On)' स्थिति कहलाती है पहले और दूसरे चित्रोंमें दिखलाई गयी है।

(ग) "आगे बढ़ो" सूचना देनेके लिये वार्नरका हत्था क्षितिज रेखासे ४५° से ६०° अंशके कोण तक झुका होता है। रातके समय इस सूचनाको देनेके लिये एक हरी रोशनी हत्थेकी जड़पर और दूसरी हरी रोशनी उससे ५ या ७ फीट ऊपर दिखाई देती है। यह स्थिति वार्नर की 'आफ़ (Off)' स्थिति कहलाती है और निम्नाङ्कित चित्रमें दिखाई गई है।
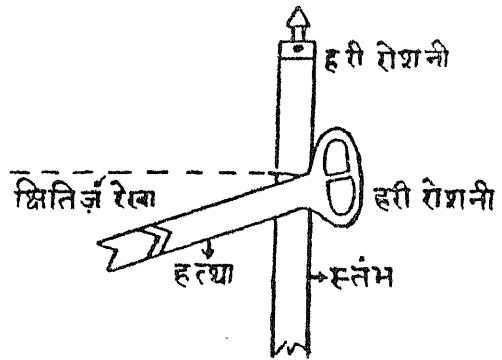
चित्र ३—वार्नर सिगनलकी 'आफ़ स्थिति।

(घ) कुछ अवस्थाओंमें वार्नर और स्टेशनके प्रथम स्टाप सिगनलको एक ही खम्भेपर कर देते हैं। ऐसी अवस्थामें वार्नरके ऊपरकी स्थाई रोशनी हटाकर उसके स्थानपर प्रथम स्टाप सिगनल लगा दिया जाता है। ऐसी अवस्थाओंमें हत्थेकी रोशनियोंके भिन्न भिन्न मिलावटोंसे जो संकेत होते हैं, वे नीचे दिखलाए गये हैं।
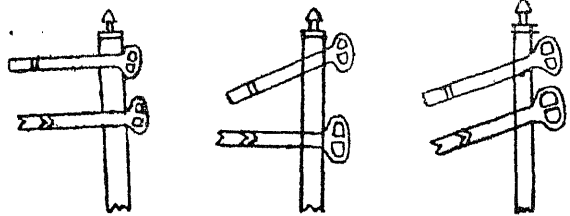
चित्र ४—'एक दम ठहर जाओ' "सावधानीसे आगे बढ़ो और अगले स्टाप-सिगनलपर रुकनेके लिये तैयार रहो।" आगे बढ़ो। अगला रोक-खंड (Block-Section) साफ़ है।

कालिंग-आन-सिगनल (Calling-On-Signal)

५ कालिंग-आन-सिगनल एक छोटा-सा हत्था है जो किसी स्टाप सिगनलके नीचे उसी खम्भेपर लगा हुआ हो सकता है। जब यह हत्था 'आन' की हालतमें होता है तो ड्राइवर ऊपरके स्टाप सिगनलके 'आन' की हालतमें होते हुए भी सावधानीसे धीरे-धीरे उस स्टाप सिगनलके आगे बढ़ सकता है।

शंटिंग सिगनल (Shunting Signal)

(क) स्टेशनके हातेके भीतर ट्रेनों, इंजिनोंको इधरसे

उधर जाने (Shunting) की आज्ञा देनेके लिये स्टाप सिगनल "आफ" की हालतमें नहीं किये जाते क्योंकि ये स्टाप सिगनल अधिकतर ट्रेनोंके पिछले स्टेशनसे आने तथा अगले स्टेशनको चले जाने देने की आज्ञा देनेके काममें आते हैं। यदि ये शंटिंगके भी काममें लाये जाएं, तो गड़बड़ हो जानेका अंदेशा है। इस कामके लिए शंटिंग सिगनल काममें लाये जाते हैं। ये दो प्रकारके होते हैं।

(१) छोटे सीमाफोर शंटिंग सिगनल और (२) घूमते हुए डिस्क सिगनल।

(ख) छोटे सीमाफोर शंटिंग सिगनलमें एक सफेद डिस्कके ऊपर एक लाल धारी खींची रहती है। जब यह
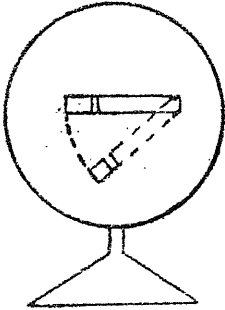
चित्र ५—"छोटा सीमाफोर शंटिङ्ग-सिगनल"

सिगनल चलता है, तो लाल धारी उसी तरहसे घूमती है जैसे स्टाप सिगनलका हत्था। इसलिये इस सिगनलके दिन और रातके संकेत बिलकुल स्टाप सिगनलकी तरहके होते हैं।

(ग) घूमते हुए डिस्क सिगनलोंमें 'आन' पोजीशनमें ड्राइवरको एक लाल डिस्क दिखलाई देती है और 'आफ' पोजीशनमें वह डिस्क घूमकर सामनेसे हट जाती है। रातके वक्त 'आन' पोजीशनमें लाल रोशनी दिखाई देती है और 'आफ' पोजीशनमें हरी।

सिगनलोंका प्रयोग

६—उपरोक्त सब सिगनलोंमें स्टाप और वार्नर सिगनल ही मुख्य हैं और उन्हींका प्रयोग कुछ विस्तारसे जानने योग्य है।

स्टाप सिगनलोंका प्रयोग

७—नवम्बर १९४३ के विज्ञानमें रेलगाड़ी संचालनकी सम्पूर्ण रोक-प्रणाली (Absolute Block System) का वर्णन किया गया है और दो ब्लाक स्टेशनोंके रोक खण्डको बतलाया गया है। तथा यह भी बतलाया गया है कि रोक खण्डकी सीमाएँ नियत करनेमें स्टाप सिगनल काममें लाये जाते हैं। संक्षेपमें उसे दोहरा देना आवश्यक है।

चित्र ६ में 'क' और 'ख' दो ब्लाक स्टेशन (Block Stations) है जिनपर प, $प_1$ और फ, $फ_1$ नियत स्थान हैं। फ से कुछ नियत दूरी आगे ब एक स्थान है। इसी तरहसे $फ_1$ से कुछ 'नियत-दूरी' आगे $ब_1$ एक स्थान है। "प-ब" को 'क' स्टेशनसे 'ख' स्टेशनकी दिशाका रोक-खण्ड (Block Section) कहते हैं। और "$प_1$ $ब_1$" को 'ख' स्टेशनसे 'क' स्टेशनकी दिशाका रोक-खण्ड कहते हैं। एब्सोल्यूट ब्लाक सिस्टम (Absolute Block System) के अनुसार कोई रेलगाड़ी 'क' स्टेशनके नियत प स्थानसे 'ख' स्टेशनकी तरफ बिना 'ख' स्टेशनकी आज्ञा मिले नहीं जा सकती तथा ख स्टेशन ऐसी आज्ञा जभी देता है जब

(१) न केवल 'प' से लेकर 'फ' तककी पटरी बिलकुल साफ़ हो बल्कि

(२) पटरी 'फ' से भी कुछ 'नियत-दूरी" आगे 'ब' तक भी खाली हो। इसी प्रकार 'ख' से कोई गाड़ी 'क' को नहीं जा सकती जब तक $प_1$ $ब_1$ रोक-खंड बिलकुल साफ न हो।

नियत स्थानों प, फ, ब, $प_1$ $फ_1$ $ब_1$ को इंगित करनेके लिये इन स्थानोंपर स्टाप सिगनल लगाये जाते हैं।

आती हुई ट्रेनोंके लिये स्टाप सिगनल

८—'फ' स्थानपर 'क-ख' दिशाका प्रथम स्टाप सिगनल और 'ब' स्थानपर दूसरा स्टाप सिगनल लगाया जाता है। प्रथम स्टाप सिगनल या तो होम (Home) या आउटर (Outer) सिगनल कहलाता है। जहाँ आउटर कहलाता है, वहाँ होम सिगनल दूसरे स्टाप सिगनलके स्थान 'ब' पर होता है।

९—होम (Home) सिगनल सदा उस लाइनके जिससे उसका सरोकार हो उस स्थानसे बाहर गाड़ा
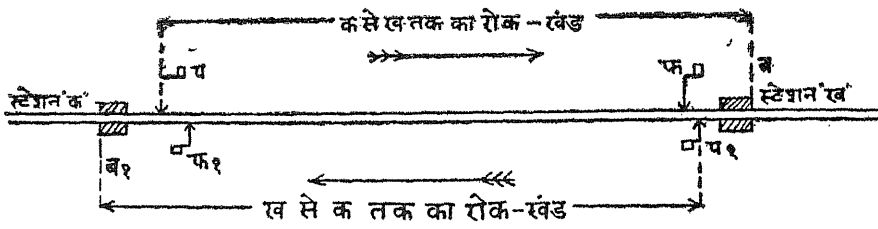
चित्र ६

जाता है जहाँसे उस लाइनमेंसे स्टेशनके भीतरवाली और दूसरी लाइनें निकलती हों। जब एक लाइनसे स्टेशन-के भीतरवाली कई लाइनें निकलती हैं तब हरएक लाइनके लिये अलग-अलग 'होम सिगनल' होता है और इन सब होम सिगनलोंके खम्भोंको एक मिश्र-सिगनल-ब्रिजपर रख देते हैं, पर ब्रिजपर उनके खम्भे अलग-अलग रहते हैं तथा इस तरह लगे रहते हैं कि हरएक लाइनका सिगनल अलग-अलग पहचानमें आवे। नीचेके चित्रसे यह साफ-साफ दिखलाई देगा।
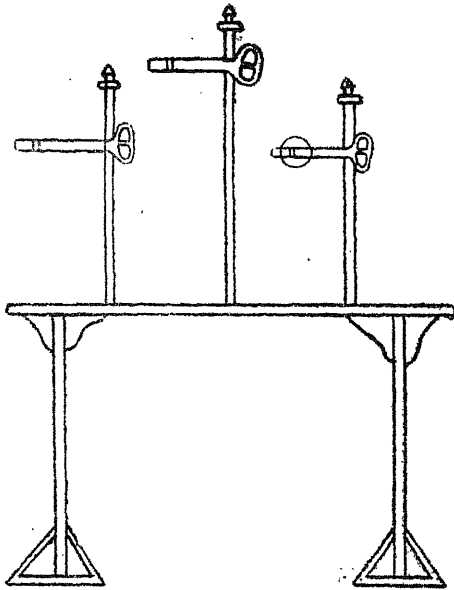
चित्र ७

जब इस प्रकार एक ब्रिजपर कई सिगनल लगे होते हैं तब सबसे बाईं ओरका सिगनल सबसे बाईं ओरकी लाइनके लिये होता है और उससे थोड़ा इधरका दूसरा सिगनल दूसरी लाइनके लिये होता है। तीसरा तीसरी लाइनके लिये, इत्यादि। तथा सीधी लाइनके सिगनलको और सिगनलोंसे ऊँचा रखा जाता है।

जिस स्टेशनपर मालगाड़ियोंके लिये पैसेंजर लाइनसे अलग लाइन हो, वहाँ मालगाड़ीवाली लाइनके सिगनल-को दूसरोंसे अलग दिखानेके लिये उसपर एक घेरा (Ring) लगा दिया जाता है, जैसा ऊपर चित्रमें दिखला दिया गया है।

१०—आती हुई ट्रेनोंको अन्दर लेनेके लिये कोई सिगनल चाहे होम चाहे आउटर 'आफ' नहीं किया जा सकता जब तक कि लाइन अगले स्टाप सिगनल तक ही नहीं बल्कि उससे भी 'नियत-दूरी (Approved Distance)' आगे तक बिलकुल साफ न हो। यह नियत-दूरी इसलिये आवश्यक है कि शायद ड्राइवर कुछ तेज़ीमें हो और अगले स्टाप सिगनलके 'आन' हालतमें होते हुए भी रुकते-रुकते, कुछ उससे आगे निकल जाय। यदि ऐसा हुआ, तो उस स्टाप सिगनलके बाद ही खड़ी हुई किसी ट्रेन या डिब्बेके साथ लड़ जानेकी सम्भावना है। परन्तु यदि उस स्टाप सिगनलके आगे 'नियत-दूरी' तक लाइन और साफ छुटी पड़ी है, तो ऐसी दुर्घटना न हो सकेगी। उस हालतमें जब लाइन अगले स्टाप सिगनल तक तो साफ हो, पर उसके आगे 'नियत-दूरी' तक साफ न हो, तो आती हुई ट्रेनको आउटर या होम सिगनलपर रुकना पड़ेगा और उसके बाद आउटर या होम सिगनल 'आफ' किया जायेगा। इस दशामें अगले स्टाप सिगनल पर न रुक सकनेका डर नहीं रहता क्योंकि ड्राईवर जब रुकनेके बाद फिर चलता है तो ट्रेनकी गति बहुत कम होती है और ड्राइवरको पहलेसे ही इस बातका ज्ञान रहता है कि अगले स्टाप सिगनलपर रुकना है।

जाने वाली ट्रेनोंके लिये स्टाप सिगनल

११—प स्थानपर 'क' से 'ख' की दिशाका रोक-खण्ड आरम्भ होता है और इस स्थानसे आगे 'क' स्टेशनपर खड़ी हुई ट्रेन बिना स्टेशन 'ख' की आज्ञाके आगे नहीं बढ़ सकती। इस स्थानको अंकित करनेके लिये 'प' स्थान पर 'क' स्टेशनका 'अंतिम स्टाप सिगनल' लगा होता है। जब यह 'आफ' होता है तभी गाड़ी आगेके रोक-खण्डमें प्रवेश कर सकती है। अन्तिम स्टाप सिगनल या तो 'स्टार्टर (Starter)' या 'एडवान्स्ड स्टार्टर (Advanced Starter)' कहलाता है।

(१) जहाँ केवल एक ही लाइन हो और ट्रेनको आगे चलनेकी आज्ञा देनेवाला एक ही सिगनल हो, तो वही अन्तिम स्टाप सिगनल है और 'स्टार्टर' कहलाता है।

(२ अधिकतर स्टेशनोंके अन्दर ट्रेनोंको खड़े होनेके लिये कई पटरियाँ होती हैं। ये सब स्टेशनके दोनों किनारों पर मिलकर एक ही लाइन बन जाती है और फिर यह एक ही लाइन आगे दूसरे स्टेशनको जाती है। स्टेशनके अन्दर प्रत्येक लाइनपर गाड़ी चालू करनेके लिये अलग-अलग स्टार्टर रहता है। जब तक स्टार्टर आफ' नहीं होता, गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। ये स्टार्टर ऐसी जगह लगे होते हैं कि किसी एक गाड़ीके चलने पर उसकी बाकी खड़ी हुई गाड़ियोंसे भिड़ जानेकी कोई सम्भावना नहीं होती। सब स्टार्टरोंसे आगे जहाँ स्टेशनके भीतरकी सब लाइनें फिर मिलकर एक हो जाती हैं, एक और स्टाप सिगनल जो अन्तिम है, रहता है उसको एडवान्स्ड स्टार्टर (Advanced Starter) कहते हैं।

वार्नरका प्रयोग

१२—वार्नर सिगनल भी आती हुई ट्रेनोंकी सूचना देनेवाला ही सिगनल होता है और इसका प्रयोग उन मुख्य लाइनोंपर होता है जहाँ ट्रेनें अधिक गतिसे चलती हैं और जहाँ आवश्यक है कि ड्राइवरोंको स्टेशनोंपर आनेके काफी दूर, पहले ही यह सूचना दी जाय कि उसे अगले स्टेशनपर रुकना पड़ेगा या बिना रुके धड़धड़ाते निकल जाना होगा। यदि ड्राईवरोंको यह खबर पहले न दी जा सके, तो उन्हें हमेशा इस बातका खटका लगा रहेगा कि कहीं स्टेशनपर कोई स्टाप सिगनल 'आन' न हो क्योंकि उस हालतमें उन्हें उस सिगनल पर रुकना पड़ेगा। इस-लिये वे अपनी ट्रेनकी गतिको अधिक बढ़ाना न चाहेंगे। पर अगर उन्हें वार्नर द्वारा पहले ही पता चल जाता है कि आगे उस स्टेशनके किसी स्टाप सिगनलपर उन्हें रुकना है या नहीं, तो उन्हें यह गुंजाइश रहती है कि खूब तेज चलें और वार्नरकी स्थिति देखकर अपनी ट्रेनको स्टेशनके किसी स्टाप सिगनलपर रुकनेके लिये तैयार रक्खें, या धड़धड़ाते बढ़ते चलें।

जहाँ आउटर सिगनल नहीं होता वहाँ वार्नर 'होम सिगनल'से प्रायः चौथाई मील पहले एक खम्भेपर लगाया जाता है और उसके संकेत पैरा ४ (ख,ग) के अनुसार होते हैं। जहाँ आउटर सिगनल होता है वहाँ वार्नर सिगनल 'आउटर सिगनल' वाले खम्भेपर ही आउ-टर सिगनलके नीचे लगा दिया जाता है और तब उसके संकेत पैरा ४ (घ) के अनुसार होते हैं।

उपरोक्त ८ से १२ पैरोंमें वर्णित कथनको अधिक स्पष्ट करनेके लिये अब हम नीचे अंकित चित्रकी सहायता लेंगे। उसमें एक साधारण स्टेशन दिखलाया गया है। और उसपर साधारणतया जो आने-जानेवाली ट्रेनोंके सिगनल होते हैं, उनको दिखलाया गया है। सिगनल एक ही तरफ जानेवाली ट्रेनोंके दिखलाये गये हैं। दूसरी तरफके उसी तरह दिखलाये जा सकते हैं।

'प' स्थानपर आउटर और वार्नर एक ही खम्भेपर लगे हुए हैं। 'फ' स्थान पर होम सिगनल है। इसमें ब्रिजपर ३ होम सिगनलोंके हत्थे दिखाये हैं जो स्टेशनके
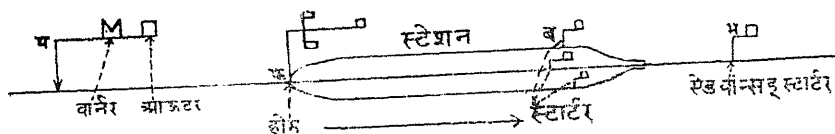
चित्र ८

अन्दरवाली ३ लाइनोंके अलग-अलग होम सिगनल हैं। इनमेंसे सबसे बाएँ हाथका सिगनल सबसे बाईं ओरवाली लाइनके लिये है, सबसे दाहिने हाथका सिगनल सबसे दाहिनी लाइनके लिये है और बीचका ऊँचा सिगनल सीधी लाइनके लिये है। 'प' स्थान 'फ' स्थानसे चौथाई मील पहले है। 'ब' स्थानपर जहाँ स्टेशनके भीतरकी तीनों लाइनें समाप्त होती हैं, प्रत्येक लाइनके लिये अलग-अलग स्टार्टर दिखलाया गया है। सब लाइनों-के समाप्त हो जानेके बाद 'भ' स्थानपर स्टेशनका अन्तिम स्टाप सिगनल एडवान्स्ड स्टार्टर (Advanced Starter) दिखलाया गया है।

उपरोक्त चित्रमें आनेवाली गाड़ीके ड्राइवरको प्रथम 'प' स्थानपर आउटर और वार्नर दिखलाई देंगे। यदि दोनों आउटर और वार्नर 'आफ' हैं तो वह समझ लेगा कि आगेके सब सिगनल 'आफ' हैं और उस स्टेशनपर रुकना नहीं है, निकले चले जाना है। यदि आउटर 'आफ' है और वार्नर 'आन' है तो इसका अर्थ यह है कि स्टेशनके किसी स्टाप सिगनलपर रुकनेके लिये तैयार रहो। ड्राइवर अपनी ट्रेनकी गतिको फौरन कम कर देगा और रुकनेके लिये तैयार हो जायेगा। यदि दोनों आउटर और वार्नर "आन" हैं तो उसे वहीं रुक जाना पड़ेगा।

'प' स्थानसे आगे "फ" स्थान पर होम है। यदि तीनों होम 'आन' हैं तो वहीं रुकना होगा। यदि उनमेंसे कोई भी हत्था 'आफ' है तो ड्राइवरको पता चल जायगा कि स्टेशनके अन्दरकी किस लाइन पर जाना है, सीधी कि बाईं या दाहिनी लाइनपर जाना होगा।

"ब" स्थानपर स्टार्टर है। स्टेशनके अन्दर जिस लाइन पर ड्राइवर है, जब उसका स्टार्टर 'आफ' होगा तभी ड्राइवर आगे बढ़ सकेगा। 'भ' पर ऐडवांसड स्टार्टर है जो 'आफ' न किया जायगा और जिसके आगे कोई गाड़ी न बढ़ सकेगी, जबतक अगले स्टेशनसे आज्ञा न आ गई हो कि अब 'भ' से आगेके रोक-खंडमें ट्रेन बढ़ सकती है।

१३ इसी प्रकारसे दूसरी तरफ जानेवाली गाड़ियोंके लिये सिगनल लगे होते हैं, नीचेके चित्रमें दोनों ओरके सिगनल लगाकर दिखाये गये हैं।

१४—उपरोक्त चित्रमें दोनों ओरके सिगनल स्टेशनोंके बीचमें एक ही रेलवे लाइनपर दोनों ओर चलनेवाली गाड़ियोंके लिए दिखलाये गये हैं। ऐसे सेक्शनको जहाँ स्टेशनोंके बीचमें दोनों ओरकी ट्रेनें एक ही रेलवे-लाइनपर चलती हों सिंगिल-लाइन-सेक्शन (Singl Line Saetion) कहते हैं। परन्तु उन सेक्शनोंपर जहाँ ट्रेनोंकी संख्या ज्यादा हो वहाँ स्टेशनोंके बीचमें दो रेलवे-लाइन बना देते हैं।

जहाँ ऐसा होता है, वहाँ एक ओरकी गाड़ियाँ एक लाइनपर और दूसरी ओरकी दूसरी लाइनपर चलती हैं। ऐसे सेक्शनको डबल-लाइन-सेक्शन (Double Line Section) कहते हैं। नीचे डबल लाइन सेक्शनपर स्टेशनके सिगनल दिखाये गये हैं।

सिगनलोंपर स्टेशन मास्टरका नियंत्रण

१५ (क) गड़े हुए सिगनल हमेशा 'आन' की स्थितिमें रखे जाते हैं। जब किसी ट्रेनको उनके द्वारा आने या जानेकी आज्ञा देनी होती है तभी वे स्टेशन मास्टरकी आज्ञासे ही 'आफ' किये जाते हैं और फिर ज्योंही ट्रेन पूर्णरूपसे उस सिगनलके बाहर निकल जाती है त्योंही वे सिगनल फिर 'आन' कर दिये जाते हैं।

(ख) स्टेशन मास्टरकी यह ड्यूटी (कर्त्तव्य) है कि
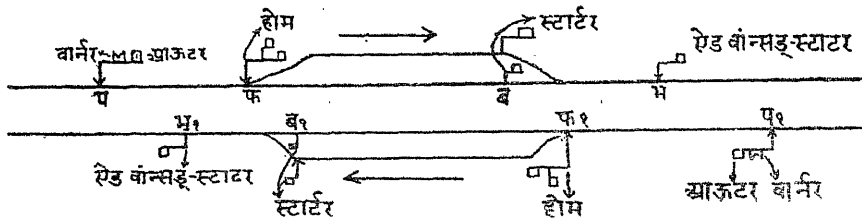
चित्र १
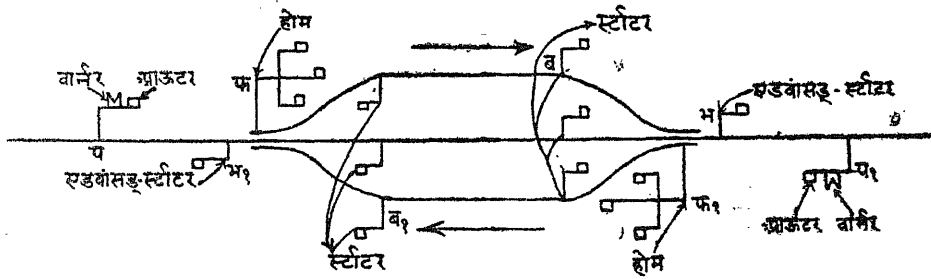
चित्र १०

जब एक तरफसे दो या अधिक ट्रेनें एक ही साथ आती हों तो एक वक्तमें सिर्फ एक ट्रेनके सिगनल 'आफ' की स्थितिमें किये जाएँ और बाकी सब सिगनल 'आन' की स्थितिमें रहें। जब वह ट्रेन जिसके लिये सिगनल 'आफ' किये गये हैं स्टेशनपर आकर रुक जावे, या अगर उस स्टेशन-पर न रुकनेवाली गाड़ी हो, तो उस स्टेशनसे आगे निकल जाय, तब ही दूसरी गाड़ी (ट्रेन) को स्टेशनके अन्दर लेनेके लिये सिगनल 'आफ' किये जायँ।

(ग) स्टेशन मास्टरकी यह ड्यूटी है कि सूरज छिपने पर या उससे पहले, सब सिगनलके लैम्पोंकी बत्तियोंको जलवा देवे, ये रातभर जलती रहें और उनकी रोशनी तेज रहे और लैम्पोंके सामने आनेवाले सिगनलोंके लाल और हरे शीशे साफ रहें।

(घ) रातके समय सिगनलको 'आफ' करनेसे पहले स्टेशन मास्टरको यह देख लेनेकी ड्यूटी है कि सिगनलके लैम्पकी बत्तियाँ जल रही हैं या नहीं। अधिकांश सिगनल स्टेशनसे कुछ दूरी पर ही होते हैं और उनकी सामनेकी रोशनी स्टेशन मास्टरको नहीं दिख सकती। इसलिये ऐसा प्रबन्ध रहे कि जब तक कोई सिगनल 'आन' रहेगा तब तक उसके पीछेसे एक सफेद रोशनी स्टेशन मास्टरको दिखाई देती रहेगी। यह रोशनी बैक-लाइट (Back-Light) कहलाती है। जब सिगनल 'आफ' हो जाता है, तब स्टेशन मास्टरको बैक-लाइट नहीं दिखाई पड़ती इस तरहसे सिगनलकी रोशनी जल रही है या नहीं इसका ज्ञान स्टेशन मास्टरको रहता है।

बिगड़े हुए सिगनल

१६—(क) जब कोई सिगनल बिगड़ जाता है तो स्टेशन-मास्टरका यह कर्त्तव्य है कि वह एकदम उस सिग-नलको तार खींचकर या किसी दूसरी तरहसे 'आन' स्थितिमें करवादे और वह सिगनल उसी स्थितिमें रहे जब तक कि वह ठीक न हो जाय।

(ख) जब आउटर या होम सिगनल बिगड़ जाता है तो स्टेशन मास्टरको पिछले स्टेशनोंपर ड्राइवरोंको सूचना दिलवा देनी होती है और बिगड़े सिगनलपर आदमी तैनात करने होते हैं। इन मनुष्योंका काम यह होता है कि हाथ-झण्डियों और पटाखों द्वारा आनेवाली ट्रेनोंको वही सूचना दें जो वह सिगनल ठीक होनेकी अवस्थामें देता। उदाहरणार्थ यदि 'आउटर' (outer) बिगड़ गया है, तो उसपर तैनात आदमी हाथ-झण्डी इत्यादिके द्वारा होम सिगनलपर दिये जानेवाले संकेतोंको देंगे। अगर पिछले स्टेशनपर कोई गाड़ी चल दी हो और उसके ड्राइवरको वहाँ खबर न की जा सकी हो, तो उसे बिगड़े हुए सिग-नलपर रुक जानेपर लिखी हुई आज्ञा देनी पड़ेगी, या किसी रेलवे कर्मचारीको इञ्जिनपर चढ़कर ड्राइवरको बिगड़े हुए सिगनलसे आगे पार कराके ले जाना पड़ेगा। अगर उपरोक्तमेंसे एक भी काम न किया गया, तो ड्राइवर अपनी ट्रेनको बिगड़े हुए सिगनलपर खड़ा रक्खेगा और आगे न बढ़ेगा।

जब एडवांस्ड-स्टार्टर (Advanced Starter) बिगड़ जाता है, तो वहाँ कोई रेलवे कर्मचारी तैनात नहीं किया जाता, बल्कि जानेवाली गाड़ीके ड्राइवरको एक लिखा हुआ आज्ञा-पत्र दिया जाता है जिसके होनेसे ड्राइवर बिगड़े हुए एडवांस्ड-स्टार्टरको 'आन' स्थितिमें पार कर सकता है।

ड्राइवरोंको सिगनलोंकी आज्ञा मानना अनिवार्य

१७—(क) ड्राइवरोंके लिए सिगनलोंके विषयमें 'सर्व प्रथम' नियम यह है कि वह जो सिगनल उसके लिये हो उसकी आज्ञा माने, चाहे वह उस सिगनलसे दिये गये संकेतका कारण जानता हो या न जानता हो।

(ख) इसके अतिरिक्त उसे सिगनलों पर ही सर्वथा निर्भर न हो जाना चाहिए, बल्कि उसे सदा चौकन्ना और सावधान रहना चाहिए।

(ग) यदि उस जगह जहाँ फिक्स्ड-सिगनल होना चाहिए कोई फिक्स्ड-सिगनल न हो, या हो तो, पर ठीक-ठीक न दिखाया गया हो, तो ड्राइवरको आज्ञा है कि उस सिगनलको 'आन' स्थितिमें समझकर काम करे।

(घ) अगर कुहासे, अँधेरे, या किसी अन्य कारणसे कोई सिगनल साफ दृष्टिगोचर न हो, तो ड्राइवरको आज्ञा है कि जहाँ तक हो, सावधानीसे चले और रेलगाड़ीको पूरे अख्तियारमें रक्खे।

(ङ) यदि ड्राइवर सिगनलोंके संकेतोंकी आज्ञा मानने तथा उनके विषयमें पूरे सावधान न हों, तो बड़ी से बड़ी दुर्घटनाओंका हो जाना मामूली बात हो जाय। इसलिए जब कभी किसी ड्राइवरके सिगनलके संकेतके उपेक्षा करनेकी रिपोर्ट मिलती है, तो उसे सख्त सज़ा दी जाती है चाहे उसकी उपेक्षाके फल-स्वरूप कोई दुर्घटना घटी हो या न घटी हो।

परतदार तख्ते बनानेका उपाय

वन्य अनुसन्धानशाला द्वारा खोज

युद्धजन्य परिस्थितिके कारण और विदेशोंसे परतदार तख्ते लानेके लिये जहाजों पर प्रतिबन्ध होनेके कारण भारतमें बने हुए परतदार तख्तोंकी माँग बहुत बढ़ गई है।

उत्तम श्रेणीके परतदार तख्ते बनानेके लिये बढ़िया जोड़ाई करने वाले गोंदकी आवश्यकता होती है। चूँकि दूधके कैसीनके आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया है इसलिये वन्य अनुसन्धानशाला द्वारा प्रकाशित भारतीय जंगल पुस्तिका नं० ६७ में मूँगफलीसे बनाये गये परतदार लकड़ीके तख्तोंको जोड़ने वाले गोंदके गुणोंका वर्णन किया गया है। यह पता चलता है कि दूधके कैसीनके स्थान पर इसका उपयोग किया जा सकता है। पानी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। और इसकी जुड़ाई बहुत समय तक खुलती नहीं। मूँगफलीके इस रसायनको किस प्रकार बनाया जाय इसकी विधि पुस्तिकामें बतलाई गई है। व्यापारके लिये बनाये जाने वाले लकड़ीके परतदार तख्तोंके लिये गोंद बनानेके कई और नुस्खे अनुसन्धानशाला द्वारा प्रकाशित दूसरी पुस्तिकाओंमें पहले ही दिये जा चुके हैं।

दूधके कैसीनके स्थान पर इस वनस्पति-कैसीनको प्रयोगमें लानेके कारण और कुछ परिणाममें दक्षिणी अमेरिकासे कैसीनका आयात होनेके कारण भारतीय दूध के कैसीनके बहुत बढ़े हुये मूल्योंमें कुछ कमी हो गई है।

विज्ञान—वार्षिक मूल्य ३)

प्रधान सम्पादक—डा० गोरखप्रसाद डी० एस्-सी०

पता

श्रीयुत.................................

....

....

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

***************;**********************

भाग ६० | वृश्चिक, सम्वत् २००१ नवम्बर १९४४ | संख्या २

***************;**********************

अलमूनियम

[लेखक—श्रीयुत रामचरण मेहरोत्रा, एम० एस० सी०]

आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व कोई भी विधि ऐसी न मालूम थी जिससे अलमूनियम धातु व्यापारिक परिमाण में तैयार की जा सकती। लगभग १८८० में फ्रांसके दरबारमें स्यामके राजाको एक अलमूनियमकी घड़ी भेंट की गई थी और वह इस आश्चर्यजनक हलकी धातुकी वस्तु पाकर अति प्रसन्न हो गया था। परन्तु आज स्थिति इसके बिलकुल विरुद्ध है, अलमूनियम संसारमें सबसे ज्यादा उपयोगी धातुओंमेंसे एक हो रहा है। सन् १९३१ में संसारमें लगभग ७½ लाख टन अलमूनियम निकाला गया था। सन् १९४१ में लगभग १० लाख टन और सन् १९४३ में संसारमें निकाले गये अलमूनियमकी मात्रा ३० लाख टनसे भी अधिक थी। अलमूनियमके बगैर स्पिट फ़ायर, ब्यू फ़ाइटर; लैंकेस्टर; स्टर्लिङ्ग ऐसे भयानक लड़ाकू जहाज़ कभी इतने उपयोगी न हो सकते थे। आधुनिक हवाई जहाज़ोंके भारका ७५% हिस्सा अलमूनियमका बना होता है। यद्यपि आजकल अलमूनियम हवाई यंत्रोंमें बहुत प्रयोग किया जा रहा है, परन्तु शांतिकालमें भी अलमूनियमका इस्तेमाल स्थल व जलमें चलनेवाले वाहनों में बहुत काफ़ी मात्रामें होने लगा था। इनके अतिरिक्त अलमूनियम विद्युत-वाहक तारों और आधुनिक इमारतोंके कुछ भागोंके बनानेमें भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा था।

इतनी उपयोगी धातु लगभग बीसवीं शताब्दीके आरम्भ तक तैयार न की जा सकी, इसका कारण पृथ्वी पर अलमूनियमके खनिजोंकी कमी न थी। बल्कि यदि बहुतायतकी दृष्टिसे देखा जाय तो अलमूनियम पृथ्वी पर सबसे अधिक मात्रामें (लगभग ७-८%) पायी जाने वाली धातु है। लोहा भी अलमूनियमसे बहुत कम मात्रा में मिलता है, परन्तु अलमूनियम लोहेके सदियों बाद भी प्रयोगमें न लाया जा सका। इसके मुख्य कारण अलमूनियम खनिजोंमें उपस्थित अशुद्धियाँ और उसके मुख्य खनिज बाक्साइटको अपचित करनेकी कठिनाइयाँ थीं। सन् १८८६ में एक २२ वर्षीय विद्यार्थी सी० डब्ल्यू० हालने मालूम किया कि बाक्साइट पिघलाये हुए क्रायोलाइटमें आसानीसे घुल जाता है और इस घोलके वैद्युत् विश्लेषण द्वारा अलमूनियम धातु आसानीसे तैयार की जा सकती है। इस विधिमें प्रति टन धात्वीय अलमूनियमके लिए लगभग २५,००० किलोवाट-आवर शक्तिकी आवश्यकता होती है। इतनी ज्यादा शक्ति की आवश्यकताके कारण यह स्पष्ट है कि औद्योगिक व व्यवसायिक परिमाणमें अलमूनियम बनानेके लिये सबसे मुख्य वस्तु सस्ती वैद्युत् शक्ति है।

अलमूनियमकी मुख्य खनिज, जो धातुको प्राप्त करनेके लिए इस्तेमाल की जाती है, बाक्साइट है। बाक्साइटका सूत्र Al_2O_3, $2H_2O$ है और यह प्रायः अनेक अशुद्धियोंसे मिश्रित होता है। बाक्साइट फ्रांसमें बहुतायतसे मिलता है। बाक्साइटका नाम भी फ्रांसमें आर्ल्स नगरके समीप बाक्स नामी ज़िले पर पड़ा है। फ्रांसके बाक्साइटमें अलमूनियमकी मात्रा काफ़ी ज्याद होती है। फ्रांसके अतिरिक्त अमेरिका, इटली, आयरलैण्ड, ब्रिटिश गिनी और दक्षिणी अमेरिकामें भी बाक्साइट पाया जाता है। हिन्दोस्तानमें बाक्साइट मुख्यतः बालाघाट ज़िलेमें बेहीर की वादीमें, जबलपुर ज़िलेमें बिजयराघोगढ़ और कटनीमें, सतारा ज़िलेमें और कालाहाण्डी, छोटा नागपुर, भूपाल और रीवाकी रियासतोंमें पाया

जाता है। ब्रिटिश द्वीपसमूहमें बाक्साइट कहीं नहीं मिलता; वहाँ बाहरसे आये हुए बाक्साइटसे ही अलमूनियम बनाया जाता है। भारतमें पाया जानेवाला बाक्साइट काफ़ी अच्छी जातिका होता है। साधारणतया भारतीय बाक्साइटमें Al_2O_3, ५०-७०% तक उपस्थित होता है।

हालाँकि जर्मनीमें १९३४-३८ तकके कालमें दुनियाका केवल ½% बाक्साइट खोदकर निकाला गया फिर भी इस कालमें जर्मनीमें और देशोंसे कहीं ज्यादा अलमूनियम तैयार किया गया। जर्मनीके बाद दूसरा नम्बर संयुक्त प्रदेश अमेरिकाका आता है और उसके बाद कैनेडा और फ्रांसका।

भारतवर्षमें बाक्साइट इतनी मात्रामें उपस्थित होते हुए भी अभी तक कोई ऐसा कारखाना नहीं है जो अच्छे परिमाणमें अलमूनियम बनानेमें सफल हुआ हो। जुग्गीलाल कमलापत समूहका एक अलमूनियमका कारखाना आसनसोलसे ८ मील दूरीपर अवश्य खुला है। यदि यह पूरी तेज़ीसे काम करे तो एशियामें जापानके एक कारखानेको छोड़कर सबसे बड़ा कारखाना होगा। परन्तु अभाग्यवश कुछ कारणोंसे जिनमें अच्छे हल्के पानीकी कमी सबसे मुख्य है, यह कारखाना अभी उस हद तक सफल नहीं हो सका है जैसा इसे होना चाहिये था। आसनसोल कारखानेके अतिरिक्त एक अलमूनियमका कारखाना ट्रावनकोरमें और है परन्तु यह कारखाना अपना बाक्साइट खुद शुद्ध करके नहीं निकालता, बल्कि अमेरिकासे आये हुए बाक्साइट पर आश्रित रहता है।

अलमूनियम धातुका प्राप्त करना—अलमूनियम धातुको प्राप्त करनेवाले कारखाने दो मुख्य भागोंमें विभाजित होते हैं। पहले भागको 'अल्यूमिना घर' और दूसरे भागको 'सेलघर' कहते हैं। अल्यूमिना घरमें कच्चे बाक्साइट खनिजको शुद्ध किया जाता है और वहाँसे प्राप्त शुद्ध अल्यूमिनाको सेलघरमें ले जाकर वैद्युत् विश्लेषण द्वारा विच्छेदित करके शुद्ध अलमूनियम तैयार किया जाता है।

'अल्यूमिनाघरमें कच्चे बाक्साइटकी अशुद्धियोंको दूर करनेके लिये कई विधियाँ प्रयोगमें लाई जाती हैं। इनमें मुख्य विधि 'बेयरकी विधि' है। बेयर-विधिमें अशुद्ध बाक्साइटको कास्टिक सोडामें घोलनेका प्रयत्न किया जाता है और जब कास्टिक सोडामें सोडा अल्यूमिनेटका घोल तैयार हो जाता है तो उसमें पानी मिलाकर और ज्यादा शुद्ध अल्यूमिनाको डालकर शुद्ध अलमूनियम हाइड्रोक्साइटको प्रक्षेपित कर लिया जाता है। आसनसोलके कारखानेमें भी इसी बेयर-विधिका प्रयोग किया जाता है। फ्रांसमें एक दूसरी विधि 'सरपेक विधि' बहुत ज्यादा प्रयोग होती है। इसमें मुख्य लाभ यह है कि अलमूनियमको पहले अलमूनियम नाइट्राइडमें परिवर्तन किया जाता है और इस अलमूनियम नाइट्राइडको पानीके साथ मिलाने पर शुद्ध अलमूनियम हाइड्रोक्साइड और अमोनिया प्राप्त होते हैं। इस तरह इस विधिमें एक बहुमूल्य सहजातीय (बाई-प्रोडक्ट) पदार्थ अमोनिया मिल जाता है।

'सेल घर' में बहुतसे वैद्युत् सेलें एक श्रेणीमें लगी रहती हैं। अल्यूमिनाको वैद्युत् विच्छेदित करनेके लिये भी कई विधियाँ इस्तेमाल होती हैं। इनमें 'हालकी विधि' और 'हेराउतकी विधि' मुख्य हैं। हालकी विधिमें शुद्ध अल्यूमिनाको क्रायोलाइट और फ्लोर-स्पार (कैलशियम फ़्लोराइड) के साथ सेलोंमें ले लिया जाता है और फिर वैद्युत् तापद्वारा इस मिश्रणको पिघला लिया जाता है। लगभग ९५०° सेण्टीग्रेड पर वैद्युत् धारा बहने पर शुद्ध अलमूनियम कैथोड पर प्राप्त होता है। हेराउत विधिमें क्रायोलाइट या फ़्लोर-स्पार कुछ भी डाला नहीं जाता बल्कि शुद्ध अल्यूमिना ही इस्तेमाल की जाती है। इस विधिकी विशेषता यह है कि इसमें साथ ही साथ ताँबे और अलमूनियमकी उपयोगी मिश्र धातुएँ भी तैयार की जा सकती है।

अलमूनियमके उपयोग :- अलमूनियम जब पहले-पहल बनकर बाजारमें आया उसकी कोई विशेष उपयोगिता न थी। अलमूनियमसे बने बरतन, धातुमें उपस्थित अशुद्धियोंके कारण बहुत जल्दी खराब हो जाते थे और उनकी चपड़ी बन-बनकर उखड़ने लगती थी। इसके अतिरिक्त धातु इतनी मुलायम होती थी कि इसे किसी भी विशेष काममें न लाया जा सकता था। परन्तु अब शान्ति व युद्ध दोनों कालोंमें अपने निम्न गुणोंके कारण अलमूनियम धातु बहुत उपयोगी हो गई है।

(१) अलमूनियम बहुत हल्की धातु है। इसका घनत्व लोहे या पीतलके घनत्वका लगभग ⅓ है, इसलिए वायुयानों आदिके बनानेके लिए यह बहुत ही उपयोगी है।

(२) अलमूनियमका मुख्य अवगुण उसकी नरमी है, परन्तु इसकी दूसरी धातुओंके साथ जो मिश्र धातुएँ तैयार की गई हैं वह इस दृष्टिकोणसे भी बहुत उपयोगी हैं। उदाहरण के लिए एक मिश्र धातु 'डूरालमूनियम' जिसमें लगभग ९५% अलमूनियम, ४% ताँबा और १% मैग्नीशियम और मैंगनीज़ मिश्रित होते हैं बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रही है। इसका मुख्य कारण इस मिश्र धातुका हल्कापन और साथ ही साथ कड़ापन है। कड़ेपनमें यह इस्पातसे भी ज्यादा है।

(३) अलमूनियम अच्छा ताप-वाहक है इसलिए घरेलू कामके लिये बरतन इत्यादिके लिए बहुत उपयोगी है।

(४) बरतनोंके कामके लिए इसका विशेष अवगुण यह है कि यह वायुमण्डलके प्रभावको सहन नहीं कर सकता। परन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि यह अवगुण शुद्ध अलमूनियममें काफ़ी हद तक दूर हो सकता है और विशेष तौरपर खुद अलमूनियमकी सतहपर एक बहुत ही पतली तह अलमूनियम आक्साइडकी बन जाती है, जिसके बाद धातुपर वायुमण्डलका और प्रभाव नहीं पड़ता। आजकल अलमूनियमके इस गुणको भी काममें लाया जाता है। एक वैद्युत विधि द्वारा इस अलमूनियम आक्साइडकी तहको ज्यादा मोटा कर दिया जाता है जिससे वह वायुमण्डलसे बिलकुल प्रभावित नहीं होती। इसके इस गुणको जर्मनोंने एक मिश्र धातु 'के० एस० सीवासर' के बनानेमें इस्तेमाल किया है जो समुद्रके पानीसे प्रभावित नहीं होती।

(५) अलमूनियम विद्युत्का भी अच्छा वाहक है। यदि आयतनके दृष्टिकोणसे देखा जाय तो अलमूनियमकी वैद्युत्-वाहकता उतने ही आयतनके ताँबेकी वैद्युत्-वाहकता से ⅔ होगी परन्तु भारके दृष्टिकोणसे अलमूनियम ताँबेसे बहुत ही अच्छा वैद्युत्-वाहक है। इस गुणके कारण विद्युत् वाहक तारोंके लिए अलमूनियमका उपयोग प्रतिदिन बढ़ रहा है।

शांतिकालमें अमिश्रित अलमूनियम धातुका उपयोग घरेलू बरतनों, विद्युत्वाहक तारों, मोटरोंके बहुतसे हिस्सों और रेलोंके बहुतसे भागोंको बनानेमें बहुत चल गया था। हल्केपनके कारण अलमूनियमका पत्तर खानेव गैरहकी चीजों को ढकनेके लिये बहुतायतसे इस्तेमाल होने लगा था। शुद्ध अलमूनियम प्रकाशके परिवर्तनके लिये बहुत ही उपयोगी है। इस गुणका मुख्य कारण यह है कि चाँदीकी तरह अलमूनियम जल्दी वायुमण्डलके प्रभावमें खराब नहीं होता और दूसरे यह अल्ट्रा वायलेट प्रकाशके परावर्तित करनेमें चाँदीसे अधिक अच्छा है। इन कारणोंसे सन् १९३४-३५ में माउण्ट विल्सनकी ६० और १०० इंची दूरबीनोंके तालों (लैन्ज़ों) पर अलमूनियमकी तह चढ़ाई गई थी, जो आजकल बहुत अच्छी तरह काम दे रही है।

अलमूनियमकी मिश्र धातुएँ भी बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। यह मिश्र-धातुएँ पिटाऊ और ढलाऊ दोनों प्रकारकी होती हैं। इन मिश्र-धातुओंका मुख्य अवगुण इनकी मुलायमियत थी, परन्तु १९०६ में जर्मन धात्वीय-वैज्ञानिक डाक्टर अल्फ्रेड वीनने मालूम किया कि यदि इन मिश्र-धातुओंको गरम करके बुझा दिया जाय और फिर कई दिनके लिए अलग रख दिया जाय तो इन तीन-चार दिनोंमें इनका कड़ापन बहुत अधिक बढ़ जाता है। वीनकी इस खोजने अलमूनियमकी मिश्र धातुओंकी उपयोगिता सैकड़ों गुनी कर दी है। अलमूनियमकी मिश्र धातुओंका दूसरा अवगुण यह है कि यह वायुमण्डलके प्रभावको उस हद तक सहन नहीं कर पाती जितना शुद्ध अलमूनियम। यह दुर्गुण भी अब इन मिश्र-धातुओं पर लगभग $\frac{1}{16}$ इंच मोटा शुद्ध अलमूनियमका पत्तर चढ़ाकर दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

इस प्रकारकी बहुतसी उन्नतियाँ कर देनेके बाद आजकल अलमूनियमकी मिश्र-धातुएँ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। इन मिश्र-धातुओंमें मुख्य 'डूरालमूनियम' है जिसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। इनके अतिरिक्त मिश्र-धातु और r. r. ५६ व r. r. ५७ उल्लेखनीय है। इनमें लगभग ९५% अलमूनियम, २-४% ताँबा, १% निकेल, मैग्नीशियम और सिलीकान होता है और इनका विशेष

गुण इनका कड़ापन है।

अलमूनियम यौगिकोंके दूसरे उपयोग—अलमूनियमके धात्वीय उपयोगोंके अतिरिक्त भी और उपयोग हैं। बाक्साइट बहुतसे एब्रेज़िव बनानेके काममें लाया जाता है। बाक्साइटके एब्रेज़िव उसे वैद्युत्-भट्टियोंमें पिघलाकर बनाये जाते हैं और बाजारमें एलण्डन, एलोक्साइट आदिके नामसे बिकते हैं। अलमूनियमके मुख्य यौगिक जो बाक्साइटसे तैयार किये जाते हैं, सल्फेट, हाइड्रोक्साइड, क्लोराइड और मिश्रित सल्फेट (फिटकरी) हैं। यह अलमूनियम यौगिक बहुतायतसे काग़ज़ बनाने, चमड़ा कमाने, पानीके शोधन, तेलोंका रंग और बदबू उड़ानेके लिए प्रयोग किये जाते हैं।

अलमूनियमकी उपयोगिता प्रतिदिन बड़ी तेजीके साथ बढ़ रही है। पिछड़े होनेके कारण आज हमको अनुमान भी नहीं है कि युद्धके इन चार-पाँच वर्षोंमें अलमूनियमके कितने नये उपयोग निकल चुके होंगे। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हमारे देशके कई भागोंमें काफ़ी अच्छी जातिका बाक्साइट प्राप्त होता है और यह स्थान अलमूनियमके कारखाने बनानेके उपयुक्त भी है क्योंकि बाक्साइटके पाये जानेवाले स्थानोंके प्रायः आस-पास ही कोयला भी बहुतायतसे मिलता है और शुद्ध पानीके भी प्राकृतिक प्रबन्ध हैं। अलमूनियमको सस्ते दामोंपर तैयार करनेके लिए सबसे मुख्य प्रश्न सस्ती बिजलीका है। आजकल इस ओर सरकारका कुछ ध्यान आकर्षित हुआ है और जल-प्रपातों या दूसरे ज़रियोंसे बिजली बनानेकी योजनाएँ बनाई जा रही है। अच्छा होता यदि इन बिजली उत्पादक यंत्रोंके स्थापनके समय इस बात का भी ध्यान रक्खा जाता कि विद्युत् शक्ति अलमूनियमके कारखानोंमें भी आवश्यक होगी और इसलिए कुछ उत्पादक-यंत्र बाक्साइट पाये जानेवाले स्थानोंके आस-पास भी उपयुक्त स्थानोंपर बनाये जायँ।

प्रगतिशील चिकित्साशास्त्र

[लेखक—श्रीयुत जगदीश]

ऐलोपेथिक सायन्सके विविध अंगोंमें जो असाधारण उन्नति पिछले कुछ वर्षोंमें हुई है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। नवीन अन्वेषकोंके अद्भुत आविष्कारोंने जनताको अचम्भेमें डाल दिया है। चिकित्सा केवल वानस्पतिक औषध तक ही सीमित नहीं रह गई; सूर्यकी रश्मियाँ, क्ष-किरण, रेडियम द्वारा चिकित्सा करना, इत्यादि बहुत से नये इलाज प्रचलित हो गये हैं। परन्तु इन सबके होते हुए भी मानव समाजका स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता चला जा रहा है। जब इन सब अन्वेषणोंसे हम अनभिज्ञ थे, तब मनुष्य कहीं अधिक स्वस्थ था, मृत्यु-संख्या कहीं कम थी। नवीन चिकित्साकी प्रगतिके साथ मानवके स्वास्थ्यका मापदण्ड ऊँचा नहीं उठ सका है। इसके कई कारण उपस्थित किये जा सकते हैं—यथा गरीबी, बड़े-बड़े नगरोंकी अस्वास्थ्यप्रद जलवायु एवं वातावरण; परन्तु इसके साथ वर्तमान प्रचलित ऐलोपेथिक सायन्स भी कम उत्तरदायी नहीं है। ऐलोपेथीके डाक्टर लोग जिस प्रगतिपर गर्व करते हैं, वास्तवमें वही 'प्रगति' ही इस चिकित्साकी असफलताका सबसे बड़ा और स्पष्ट नमूना है। यूरोपमें इस चिकित्सा-पद्धतिके विद्यमान होते हुए भी 'नेचरोपेथी' 'बायोकेमिक' तथा होम्योपेथीका उद्भव इसके प्रति उत्पन्न असन्तोषका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

जिन परिस्थितियोंमें ऐलोपेथीका उद्भव हुआ था, उनके जान लेनेपर इस चिकित्साकी असफलताके कारणोंका ज्ञान हो जाता है। यूरोपमें ऐलोपेथीसे पूर्व 'युनानी चिकित्सा' प्रचलित थी। इसके द्वारा रोगोंका शमन धीरे-धीरे होता था। अतः एक ऐसी चिकित्सा-प्रणालीकी आवश्यकता हुई जो शीघ्र ही रोगका निवारण कर दे। यह तभी संभव था यदि लाक्षणिक चिकित्सा की जाय। परिणामतः वनस्पतिके सत्व तथा कच्ची धातुओंको अधिकतम मात्रामें प्रयुक्त किया जाने लगा। इससे रोगके लक्षणोंको शान्त करनेमें तो सफलता मिली परन्तु रोग (दोष) की शान्ति न हो सकी। दोष किसी अन्य रूपमें प्रकट हो जाता था। फिर इन नये लक्षणोंको दबानेके लिये नये तरीके प्रयुक्त किये गये। इस प्रकार डाक्टरों तथा व्याधियोंके बीच जो संघर्ष हुआ, उसीका परिणाम है—ऐलोपेथी।

धीरे-धीरे डाक्टर लोग लाक्षणिक चिकित्सासे विमुख होने लगे। क्योंकि इसके द्वारा रोगका इलाज नहीं होता

[शेष पृष्ठ ४५ पर]

तारोंकी पहचानके लिए ध्रुव और सप्तर्षिको किसीसे पूछकर पहचान लेना चाहिए। फिर यहाँ दिये गये नकशोंमेंसे किसी एकको लेकर (ऋतु और समयके अनुसार जो उचित पड़े), और नकशेके किनारेके उस भागको नीचे रखकर जो आपके देखनेकी दिशाके लिए लागू हो, अन्य तारोंकी पहचान की जा सकती है। तारोंसे परिचय प्राप्त करनेका काम पहले उत्तर दिशासे आरम्भ किया जाय तो जाने हुए ध्रुव तारे या सप्तर्षिसे सहायता मिलेगी।

गणित-ज्योतिष

भारतवर्षमें तिथि-नक्षत्रोंका इतना प्रचार है कि सभी भारतीयोंको जानना चाहिए कि ये क्या हैं। पहले ही मोटे हिसाबसे बतलाया जा चुका है कि वर्ष क्या है, परन्तु सूक्ष्म रीतिसे देखा जाय तो दो तरहके वर्ष लिये जा सकते हैं। किसी एक तारेसे चलकर सूर्य फिर उसी तारे तक कितने समयमें लौट आयेगा इसको एक नाक्षत्र वर्ष (तारों वाला वर्ष) कहते हैं। परन्तु तारोंके हिसाबसे सूर्यका चक्कर लगाना हमारे लिये उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना ऋतुओंका लौट आना। इसलिए साधारणतः एक बरसातसे दूसरी बरसात तकके समयको ही वर्ष कहते हैं, या, यदि इसका कोई विशेष रूपसे बोध कराना चाहे तो इसे सायन वर्ष कहते हैं। अयनका अर्थ है जाना। उत्तरायनका अर्थ है उत्तर जाना; दक्षिणायनका अर्थ है दक्षिण जाना। प्रति वर्ष २३ दिसंबरके लगभग सूर्य उत्तर जाने लगता है। उत्तर यात्रा आरम्भ होनेके क्षणसे उत्तरायन आरम्भ होता है। छः महीने बाद, लगभग २३ जूनको सूर्य उत्तरकी ओर महत्तम दूरी तक पहुँच जाता है और तब दक्षिण जाने लगता है। जिस क्षणसे सूर्य दक्षिण जाने लगता है उस क्षणसे दक्षिणायन आरम्भ होता है। एक उत्तरायन-आरंभसे दूसरे उत्तरायन-आरम्भ तकका समय एक सायन वर्ष है।

एक तारा-पुञ्ज।

तारा-पुञ्जोंमें हज़ारों तारे एक साथ ही दिखलाई पड़ते हैं और दूरदर्शकमें वे बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि नाक्षत्र वर्ष और सायन वर्षमें लगभग २० मिनटका अन्तर है। यह बात प्राचीन ज्योतिषियोंको ज्ञात नहीं थी। उस समय सायन वर्षका मान भी इतनी सूक्ष्म रीतिसे ज्ञात नहीं था जितनी आज-कल। इन्हीं कारणोंसे प्राचीन ढंगसे गणना करने पर सब बातें आज ठीक नहीं उतरतीं। यह समझ कर कि प्राचीन पद्धतिका त्याग अधर्म होगा हमारे अधिकांश पंचांग आज भी कई अंशोंमें प्राचीन ढंगसे बनते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि जो त्योहार पहले उत्तरायन-आरम्भके अवसर पर मनाया जाता था आज २२ या २३ दिन बाद मनाया जाता है। कालिदासके समयमें जो ऋतु कुआरमें रहती थी, वह अब भादोंमें रहती है—या यों कहें कि ऋतुके अनुसार जिस महीनेको हमें कुआर कहना चाहिए उसे गणनाकी गड़बड़ीके कारण हम भादों कहते हैं। अभी तो

लगभग २३ दिनका ही अन्तर पड़ा है, परन्तु यदि कोई सुधार न हुआ तो अन्तर बढ़ता ही जायगा।

इसमें संदेह नहीं कि वर्षको लोगोंने वैदिक कालसे ही ऋतुओंसे संबंधित रक्खा था। वर्ष शब्द स्वयं वर्षा या बरसातसे संबंध रखता है। वर्षके लिए अन्य पर्यायवाची शब्द हैं अब्द, वत्सर, शरद और हेमंत। स्पष्ट है कि इन सबका ऋतुओंसे संबंध है। उचित जान पड़ता है कि हम अब वर्षका ऐसा मान चुनें कि ऋतुओं और महीनोंका संबंध बना रहे—हम भविष्यमें भी सावन-भादों उन्हीं महीनोंको कहें जिनमें पानी बरसता है।

पृथ्वीके एक बार अपने अक्ष पर नाच लेनेमें एक दिन-रातके बराबर समय लगता है, सूर्यकी एक प्रदक्षिणा करनेमें एक वर्ष। फिर, चंद्रमा हमारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा एक मासमें करता है। इस प्रकार हमें दिन, मास और वर्ष प्रकृतिसे मिले हैं। ये मनुष्यके गढ़े माप नहीं हैं। यह हमारे वशमें नहीं है कि हम चंद्रमा को आज्ञा दे दें कि वह इस वेगसे चले कि एक मासमें पूरे-पूरे तीस दिन पड़ें, या एक वर्षमें पूरे पूरे बारह चांद्र-मास रहें।

वस्तुतः एक मासमें—एक पूर्णिमासे दूसरी पूर्णिमा तकके समयमें—लगभग २९½ दिन होते हैं; सच पूछा जाय तो पूरे २९½ दिन भी नहीं, २९ दिन १२ घंटा ४४ मिनट २·७८ सेकंड। यदि हम ठीक उसी क्षण महीना बदला करें जिस क्षण पूर्णिमा होती है तो बही आदि रखने

प्राचीन मंदिरोंका अवशेष
बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे स्थानोंपर मंदिर बनाते थे और उनकी छतोंसे ज्योतिषका बेध किया करते थे।

में बड़ी कठिनाई होगी। उदाहरणतः, यदि इस क्षण सावन है तो संभव है आगामी क्षणमें भादों रहे, क्योंकि पूर्णिमा के होनेका समय दोपहरके हिसाबसे कुछ बँधा तो है नहीं। यह घटना दिन-रातके किसी भी क्षणमें हो सकती है।

इस अड़चनका क्या उपाय किया जाय? हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंने यह उपाय किया कि किसी महीने में ३० दिन रहें और किसीमें २९ दिन, परंतु उनका क्रम इस प्रकार रहे कि मासका आरंभ यदि एक बार पूर्णिमासे हो तो बराबर मासारंभ लगभग पूर्णिमासे ही हुआ करे। इसलिए उन्होंने सूक्ष्म नियम बना दिये जिनका आधार गणित ज्योतिष ही था। इन नियमोंका सार यह है कि महीने तीस दिनके हों, परंतु जब कभी एक दिनसे अधिक-का अंतर पड़ने वाला हो तो एक तिथि छोड़ दी जाय। यही कारण है कि कभी-कभी एक तिथिका 'क्षय' हो जाता है। उदाहरणतः, ऐसा हो सकता है कि तृतीयाके पश्चात् चतुर्थी न आकर पंचमी आ जाय। इस प्रकार लंबे काला-वधिमें महीनेकी लंबाईका परता वही पड़ता है जो प्रकृतिमें है। अब स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय महीनों और दिनोंका समन्वय कैसे होता रहता है।

कुछ कर्म ठीक पूर्णिमाके क्षण पर ही किये जाते हैं। उदाहरणतः, होलिका ठीक उस क्षण जलाई जाती है—या जलानी चाहिए—जब फाल्गुन की पूर्णिमा होती है। उसी क्षण पुराना वर्ष समाप्त समझा जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक वर्ष होलिका एक ही समय नहीं जलती। कभी रात्रिके आरंभमें ही जलती है, कभी बहुत रात बीते।

महीनों और वर्षका समन्वय करनेकी रीति भी बड़ी सुन्दर है। साधारणतः १२ महीनेका वर्ष रक्खा जाता है परंतु वर्ष वस्तुतः १२ महीनोंसे लंबा है। इसलिए लगातार एक वर्षमें १२ महीने रखनेसे धीरे-धीरे अंतर बढ़ जाता है। जब लगभग एक महीनेका अंतर पड़ने वाला रहता है तो भारतीय प्रथा यह है कि एक महीना बढ़ा दिया जाय। इस फालतू महीनेको अधिक मास, अधिमास, मलमास, या लौंदका महीना कहते हैं। जिस वर्षमें एक अधिक मास पड़ता है उसमें १३ महीने हो जाते हैं। उस वर्षमें दो सावन या दो

भादों या अन्य कोई महीना दो बार रहेगा। पूर्वोक्त नियमसे बारह और तेरह महीने वाले वर्षोंका क्रम इस प्रकार पड़ता है कि चाहे कितने भी वर्ष बीत जायँ, ऋतुओं और महीनोंका संबंध नहीं टूटने पायेगा। यदि कालिदासके समयमें पानी बरसने वाले दो महीने सावन-भादों कहलाते थे तो आज भी वे सावन-भादों कहलायेंगे— वर्षमानकी त्रुटिके कारण कोई गड़बड़ी पड़े तो बात दूसरी है। मुसलमानोंकी पद्धतिमें यह सुन्दरता नहीं है। उनका महीना ऋतुओंके हिसाबसे बदलता रहता है। यदि मुहर्रमका महीना—वस्तुतः मुहर्रम उनके एक महीने का नाम है—एक वर्ष बरसातमें पड़ता है तो कुछ वर्ष बाद वह गर्मीमें पड़ेगा, फिर जाड़ेमें और लगभग ३३ वर्ष बाद वह फिर बरसातमें पड़ेगा। कारण यह है कि वे प्रत्येक वर्षमें १२ ही चांद्रमास मानते हैं।

राशि और नक्षत्र

एक वर्षमें लगभग १२ महीने होते हैं। इसलिए प्राचीन ज्योतिषियों ने सूर्यके मार्गको ठीक बारह बराबर भागोंमें बाँट दिया और उनका नाम रख दिया। उनके नाम हैं मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ और मीन। यदि आँखसे यह देखा जा सकता कि सूर्य इनमेंसे किस भागमें है—दूसरे शब्दोंमें, सूर्य किस तारा-समूहमें है—तो तुरंत पता चल जाता कि कौन-सा महीना है। यद्यपि सूर्यके तेजके आगे तारे छिप जाते हैं और इसलिए सीधे यह नहीं देखा जा सकता कि सूर्य किस राशिमें है, तो भी सूर्योदयके पहले पूर्वीय क्षितिजके पासके तारोंको देखकर (या चंद्रमाकी स्थिति देखकर) अनुमान किया जा सकता था कि सूर्य किस राशिमें है। अत्यंत प्राचीन कालमें, जब कोई विशेष यंत्र नहीं थे, इन्हीं मोटे ही वेधोंसे पता लगाया गया था कि एक वर्षमें कितने महीने या कितने दिन होते हैं।

यद्यपि एक पूर्णिमासे दूसरी पूर्णिमा तक लगभग २९½ दिन होते हैं, तो भी तारोंके हिसाबसे चंद्रमा एक चक्कर २७⅓ दिनमें ही लगा लेता है। इस प्रकार मोटे हिसाबसे चंद्रमा किसी तारेसे चलकर उसी तारे तक २७ दिनमें लौटता है, इसीलिये प्राचीन भारतीय ज्योतिषियोंने चंद्रमाके मार्गको (और स्मरण रहे कि आकाशमें चंद्रमा और सूर्यके मार्गोंमें अधिक अंतर नहीं है) २७ बराबर भागोंमें बाँट दिया था और प्रत्येकका नाम रख दिया। ये ही हमारे 'नक्षत्र' हैं, जिनके नाम हैं अश्विनी, भरणी, कृत्तिका आदि*। प्रत्येक नक्षत्रके चम-

मंदिर या वेधशाला?
बाबुल लोग ऊँचे-ऊँचे मंदिर बनाया करते थे और उनकी छतों परसे आकाशीय पिंडोंका वेध किया करते थे।
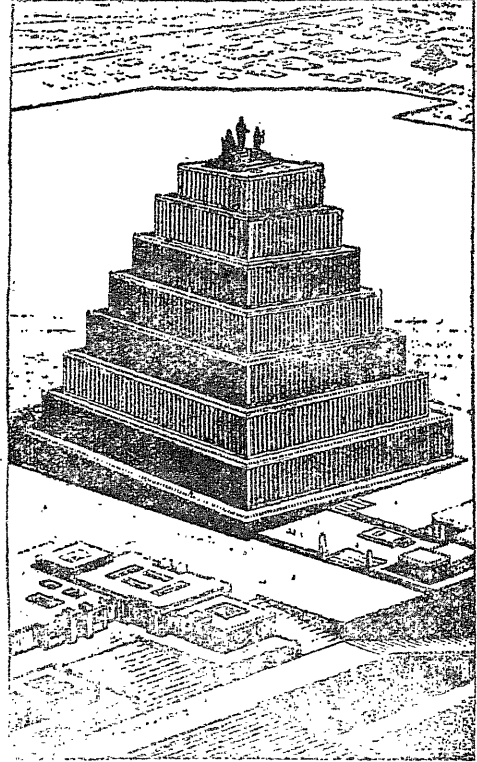
*नक्षत्र शब्दके अब तीन अर्थ हैं (१) कोई तारा, (२) चन्द्र-मार्ग का सत्ताइसवाँ भाग, और (३) चन्द्र-मार्ग के सत्ताइसवें भागोंमेंसे किसी एकका प्रमुख तारा या प्रमुख तारोंका समूह। प्रसंगसे पता चल जाता है कि कहाँ क्या अर्थ है, परंतु यदि उन तारोंका बोध कराना हो जो किसी सत्ताइसवें भागमें पड़ते हैं तो उनको तारा-समूह न कहकर

कीले तारेका नाम भी वही है जो नक्षत्रका है और यदि किसी नक्षत्रमें एक तारा नहीं है तो दो-चार तारों को मिलाकर उन्हें ही नक्षत्र वाला नाम दे दिया गया है। इन तारोंके ज्ञानसे आकाशको देखते ही पता चलता था कि आज चन्द्रमा किस नक्षत्रमें है। नक्षत्रोंको बराबर देखते रहनेसे हमारे प्राचीन आचार्य, बिना यंत्रोंके ही, चन्द्रमाकी गतिको अच्छी तरह जान गये थे। हमारे पंचांगोंमें आज भी चन्द्रमाका नक्षत्र छपा रहता है, परंतु खेदकी बात है कि हमारे अधिकांश फलित ज्योतिषी—यहाँ तक कि कुछ पत्रा बनाने वाले भी—इन बातोंका मौलिक अर्थ भूल-से गये हैं। वे प्राचीन आँकड़ोंको ही

अंबर नरेश महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय

लेकर गणना करते हैं, चाहे उनसे उत्तर कितना भी क्यों न अशुद्ध निकले। प्राचीन आँकड़ोंसे पहले उत्तर शुद्ध निकलता था। परंतु अब उत्तर अशुद्ध निकलता है—क्यों, यह नीचेके प्रक्रमसे समझमें आ जायगा: अब तो कई घंटोंका अंतर पड़ जाता है। यदि पत्रा कहता है कि चन्द्रमा अश्विनीसे भरणीमें आज ११ बजे रात को जायगा तो संभव है कि वस्तुतः वह इससे दस घंटे पहले या दस घंटे पीछे अश्विनीसे निकले!

प्राचीन प्रणाली अब क्यों नहीं शुद्ध उत्तर देती

भिन्नों और दशमलवोंके झंझटसे बचनेके लिए हमारे प्राचीन आचार्योंने बड़ा सुन्दर ढंग निकाला था। यह बतलानेके बदले कि चंद्रमाके एक चक्करमें इतना दिन, इतना घंटा, इतना मिनट इतना दशमलव इतना, इतना, इतना सेकंड समय लगता है उन्होंने एक लंबी अवधि ली (जिसे उन्होंने युग कहा) और बतला दिया कि एक युगमें चंद्रमा कितने चक्कर लगाता है। यह प्रथा बहुत-कुछ वैसी ही थी जैसी आज भी हमारे बाजारोंमें काममें आती है। यह कहनेके बदले कि एक अमरूदका दाम $\frac{२}{५}$ पैसा या ०·४ पैसा है खटिक यही कहेगा कि दो पैसेमें पाँच अमरूद मिलेंगे। रुपयेमें तेरह या चौदह आम भी बिक सकते हैं। इसी प्रकार हमारे आचार्योंने भी एक युग चुना। उदाहरणतः हमारी जगद्विख्यात पुस्तक सूर्य-सिद्धांतमें ४३२०,००० वर्षोंका युग है और यह लिखा है कि एक युगमें चंद्रमा ५,७७,५३,३३६ बार चक्कर (ताराके हिसाबसे) लगाता है। युग जितना ही बड़ा होगा चंद्रमाकी गति उतनी ही सूक्ष्म रीतिसे बतलाई जा सकेगी। इसीसे युग बहुत लंबा लिया जाता था।

चंद्रमाके चलनेका वेग तो पूर्वोक्त ढंगसे ज्ञात हो गया, परंतु यह भी तो जानना आवश्यक है कि आरंभमें चंद्रमा कहाँ था। 'आरंभ' का अर्थ क्या है? किसी भी क्षणको आरंभ काल माना जा सकता है, परंतु सुविधाके लिए हमारे आचार्योंने ऐसे क्षणको आरंभ काल माना था जब सभी ग्रह, सूर्य और चंद्रमा एक बिंदु पर या

तारिका-पुंज कहना चाहिए, क्योंकि तारा-समूह शब्द को उन बड़े-बड़े मन समूहोंके लिए पृथक कर रखना उचित होगा जिनमें सारा आकाश बाँट दिया गया है।

प्रायः एक विंदु पर थे। इसीको कलियुगका आरंभ कहते थे। यह दिन सन ३१०२ ईसासे पूर्वकी फरवरीकी तारीख १७, १८ की अर्धरात्रि थी।

अब चंद्रमाकी गति भी मालूम है, प्रारंभिक स्थिति भी ज्ञात है और यह भी कि आरंभसे आज तक कितना समय बीता। थोड़ी-सी गणना से पता चल जाता है कि आज चन्द्रमा आकाशके किस विंदुपर होगा।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी स्थितियोंकी भी गणना होती है।

परंतु इस रीतिमें विशेष सुगमता होते हुए भी एक अवगुण था। वह यह कि ज्यों-ज्यों मूलविंदुसे अधिक समय बीतता गया। त्यों-त्यों गणित-सिद्ध स्थानमें त्रुटि बढ़ती गयी। कारण यह था कि चन्द्रमाका वेग चाहे कितनी भी सूक्ष्मतासे क्यों न बताया जाय, कुछ-न-कुछ त्रुटि उसमें रह ही जाती है, या तो वेधोंमें असावधानीसे, या यंत्रोंकी स्थूलतासे, या युगके काफी बड़े न रहनेसे। परिणाम यह हुआ है कि उन्हीं पुराने अंकोंसे गणना करनेसे आज वही सचाई नहीं आती जो इन नियमोंके बननेके समय आती थी।

बात बहुत कुछ वैसी ही है जैसे किसीके पास घड़ी हो और वह बराबर चलती रहे। सब कुछ उपाय करने पर भी घड़ीकी रेट इतनी सच्ची नहीं की जा सकती कि वर्ष भर बराबर चलने पर भी मिनट, दो मिनटका अंतर न पड़े। किसी घड़ीमें हजार, डेढ़ हज़ार वर्षमें भी कुछ अंतर न पड़े यह बड़े आश्चर्यकी बात होगी। इसलिए यह आशा करना कि प्राचीन अंकोंसे ही हम बराबर काम चला सकेंगे बड़ी भूल होगी। हमारे प्राचीनतम आचार्योंके अंकोंमें कई प्राचीन आचार्योंने सुधार किया था। अंतिम सुधार सन् १५१६ में गणेश दैवज्ञ नामक ज्योतिषीने किया था। परंतु आज-कलके पंडितोंकी हठधर्मी कि अब सुधार नहीं होना चाहिए—कुछ तो गणेश दैवज्ञके सुधारोंको भी छोड़ देते हैं—आश्चर्यजनक है। यह तो वैसा ही होगा जैसे कोई कहे कि हमारी घड़ीको हमारे प्रपितामहजी चला गये थे और ठीक कर गये थे। अब जो यह घड़ी समय बतावे वही ठीक है। इसकी सुईको आगे बढ़ाना पाप है, हमारे प्रपितामहजीकी इससे नाक कट जायगी!

चक्कर लगानेके समयको भगणकाल कहते हैं। भगणकालमें त्रुटिके कारण ही अधिक अंतर पड़ता है। परंतु कुछ अंतर इसलिए भी पड़ता है कि हमारे प्राचीन आचार्यों-की गणना-विधि इतनी सूक्ष्म नहीं थी जितनी आज-कल-की और उनको आकर्षण-सिद्धांत ज्ञात नहीं था कि उसके सहारे वे आकाशीय पिंडोंकी स्थितियाँ निकालें।

सम्राट यंत्र

६ जयसिंहकी वेधशालाएँ

अंबर-नरेश महाराज सवाई जयसिंह द्वितीयने (सन १६८६-१७४३) प्राचीन ज्योतिषके सुधारके लिए सूक्ष्म वेध करनेका—तारों और चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह आदि की स्थितियोंको नापनेका—अवश्य प्रयत्न किया, परंतु कुछ सुधार हो नहीं पाया, क्योंकि दूसरोंने उनके वेधों और गणनाओं से लाभ नहीं उठाया। उनकी बनवाई वेधशालाएँ दिल्ली, जयपुर, उज्जैन और बनारसमें अब भी वर्तमान हैं और देखने योग्य हैं। कुछ यंत्र तो प्रचलित मुसलमानी

यंत्रोंकी नकल थे, परंतु तीन यंत्र पूर्णतया या अंशतः नवीन थे। ये थे सम्राट यंत्र, जयप्रकाश और रामयंत्र। सम्राट यंत्र बहुत ही सुन्दर यंत्र है। इसके बीचमें दो समानांतर भीतियाँ रहती हैं जिनका ऊपरी छोर ठीक ध्रुवकी ओर रहता है। अगल-बगल अर्ध-बेलनाकार सतहें होती है जिनपर धूपमें भीतके छोरकी परछाईं पड़ती है। बेलनाकार सतहोंपर चिह्न बने रहते हैं जिनसे दिनमें तुरंत ठीक समयका ज्ञान हो जाता है। दीवारकी कोर भी अंकित रहती है; बेलनाकार सतहकी छोरपर आँख लगाकर और यह देखकर कि दीवारकी कोरके किस बिंदुकी सीधमें कोई तारा दिखलाई पड़ता है तारे या ग्रह आदिकी स्थिति भी जानी जा सकती है।
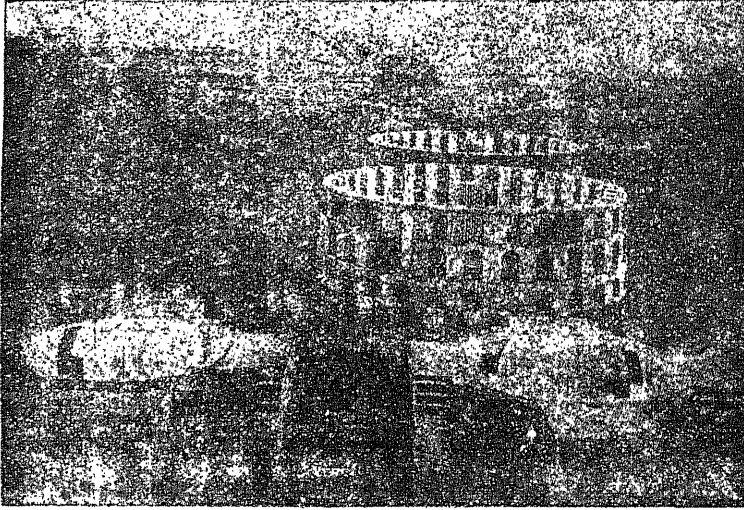
रामयंत्र
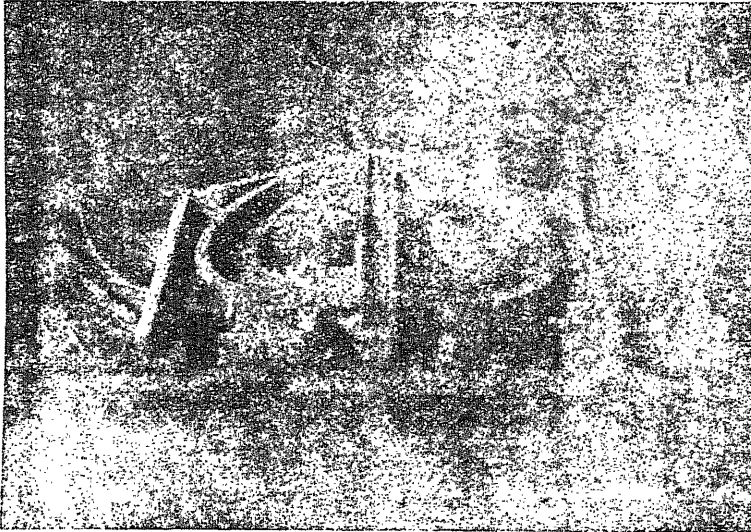
मिश्र यंत्र

ज्योतिषका संक्षिप्त इतिहास

भारतीय ज्योतिष—वेदोंमें ज्योतिष सम्बन्धी कुछ बातोंकी चर्चा है और ब्राह्मणोंमें यज्ञ आदिके संबंधमें कई ज्योतिषिक बातें हैं, परंतु सबसे प्राचीन ज्योतिष-पुस्तक ज्योतिष वेदांग है जो आज भी प्राप्य है। यह लगभग सन् १५०० ई० पू० की लिखी हुई है। इसमें तिथि आदिके संबंधमें नियम दिये गये हैं। कुछ स्थूलता अवश्य है, परंतु यह आश्चर्यकी बात है कि उतने प्राचीन समयमें भी तिथि आदिकी गणनाके लिए अच्छे नियम दिये हैं।

ज्योतिष वेदांगके बादकी कई पुस्तकोंको हम केवल नामसे जानते हैं क्योंकि उनकी चर्चा पीछेकी पुस्तकोंमें आ गयी है, परंतु वे अब लुप्त हो गयी हैं। प्राप्य पुस्तकोंमेंसे ज्योतिषवेदांगके बाद वराहमिहिरकी पंचसिद्धांतिका है। यह पुस्तक लगभग सन् ५०० ई० में लिखी गयी थी। इसमें पाँच सिद्धांतोंका सार दिया गया है जिनमेंसे एक सूर्य-सिद्धांत है।

सूर्य-सिद्धांतमें कुछ परिवर्तन पीछेसे अवश्य हुए, क्योंकि आजके प्रचलित सूर्य-सिद्धांत और वराह-मिहिरकी पंचसिद्धांतिकाके सूर्य-

सूर्य-ग्रहणके अवसरपर फोटो लेनेकी तैयारी
आधुनिक ज्योतिषकी आश्चर्यजनक उन्नति बहुत-कुछ दूरदर्शक और फ़ोटोग्राफ़ीसे हो पायी है।
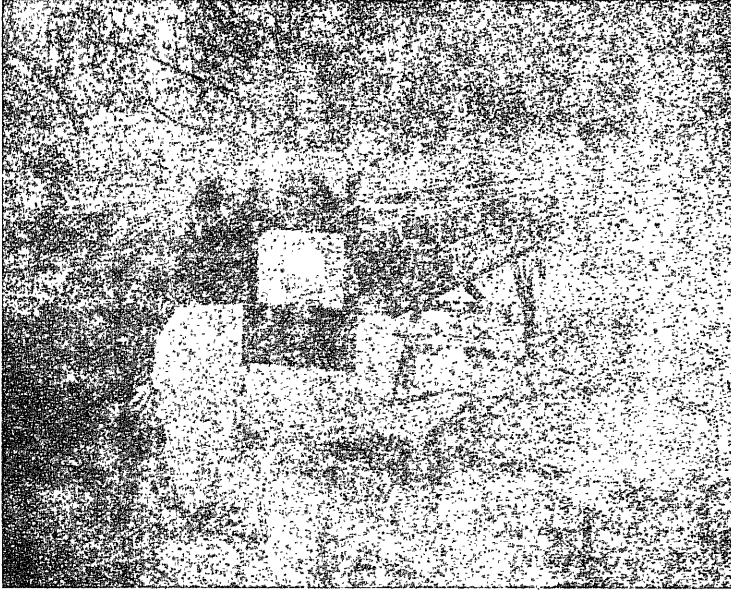
सिद्धांतमें अंतर है। सूर्य-सिद्धांतके आरम्भमें लिखा है कि सूर्य भगवानने स्वयं मय नामक असुरको ज्योतिषकी शिक्षा दी और मयसे यह विद्या दूसरों को मिली। सूर्य-सिद्धांतका ज्योतिष यूनानियों (ग्रीस वालों) के ज्योतिषसे कई बातोंमें मिलता है। इससे समझा जाता है कि यूनानियोंसे उनकी नवीन बातोंको सीखनेके बाद यह पुस्तक लिखी गयी है।

हमारे प्राचीन ग्रंथकारोंमें आर्यभट्ट (जन्म सन ४७६ ई०) और भास्कराचार्य (जन्म सन् ११६४ ई०) प्रसिद्ध हैं। भास्कराचार्यने सिद्धांत शिरोमणि नामक पुस्तक लिखी थी। भास्कराचार्यके बाद कोई ऐसा प्रभावशाली ज्योतिषी न हो सका कि नवीन बातोंका अनुसंधान करके प्रचलित प्रणालीमें उसका समावेश कर सके। लोगोंमें तब तक प्राचीन आचार्यों के प्रति इतनी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी कि उनकी त्रुटियोंको दूर करनेका या उनसे आगे बढ़नेकी प्रवृत्ति ही नहीं रह गयी थी। इसीसे भारतवर्षमें ज्योतिष फिर आगे न बढ़ सका।

प्राचीन पाश्चात्य ज्योतिष—काल्दी लोगोंने (जो आधुनिक बगदादके आस-पासके देशमें रहते थे) लगभग २००० ई० पू० में तारोंको तारा-समूहोंमें बाँटा था और उसका नकशा बनाया था। उनको यह भी पता लगा कि १८ वर्ष बाद ग्रहणोंका क्रम फिर पहले-जैसा हो जाया करता है।

यूनानियों (ग्रीस वालों) ने ज्योतिषमें विशेष उन्नति की। १३०ई०पू० के लगभग हिपार्कसने १०८० तारोंकी सूची प्रस्तुत की। उसको यह भी पता चला कि वह विंदु जहाँपर सूर्यके रहनेसे दिन और रात बराबर हो जाते हैं तारोंके बीच स्थिर नहीं है। सन् १४० ई० के लगभग टॉलमी ने अपनी पुस्तक अलमजेस्ती लिखी। यह पुस्तक इतनी अच्छी थी कि यूरोपमें लगभग डेढ़ हज़ार वर्षों तक यही एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती थी।

अरब लोग—८१३ ई० में अलमामूनने अलमजेस्ती-का उलथा अरबीमें किया। कई ज्योतिषियोंने (अलबटेनियस, अलसूफी, अबुलवफा, उलुगबेग आदिने) अच्छे बेध किये। उलुगबेग अपने देशका राजा था और उसने बड़े-बड़े यंत्र बनवाये थे।

मूर लोग—सन् १२३० में अलमजेस्तीके अरबी अनुवादसे लैटिन अनुवाद बना। कई ज्योतिषियोंने बेध किये और ज्योतिष-ज्ञानमें टॉलेमीसे आगे बढ़ गये। सन् १२७० में ऐलफ़ॉन्ज़ोने नवीन सारिणियाँ बनवाईं जिनमें वहाँके विश्वविद्यालयोंके अध्यापकोंने मिलकर परिश्रम किया था।

यूरोप—मूर लोगोंसे ज्योतिष विद्याका प्रचार यूरोपमें हुआ। कोपरनिकस (१४७३-१५४३) ने यह सिद्धांत घोषित किया कि सूर्य स्थिर है, पृथ्वी और ग्रह उसकी प्रदक्षिणा करते हैं; गैलीलियो (१५६४-१६४२) ने दूरदर्शकका

आविष्कार किया. केपलर (१५७१-१६३०) ने ग्रहोंके चलनेके नियमोंका पता लगाया, न्यूटन (१६४२-१७२७) ने आकर्षणसिद्धांत बतलाया और इसके बाद ज्योतिषमें शीघ्र और आश्चर्यजनक उन्नति हुई, जिसकी एक झलक पाठकोंको इस पुस्तकके पढ़नेसे मिल गयी होगी।

गोरखप्रसाद

भारतीय ज्योतिष

प्रारम्भिक ज्ञान—भारतवर्षमें ज्योतिष-शास्त्रपर प्राचीनकालमें कितना विचार हुआ था और भारतवर्षका पहला आचार्य कौन था इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि ज्योतिष सिद्धान्तपर भारतवासियोंके नवीन और मौलिक विचार बहुत कम हैं। इसके विरुद्ध कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र प्राचीन कालमें बहुत उच्च कोटिपर पहुँच गया था। इन दोनों मतोंके समर्थक अपने अपने पक्षमें वेदों, ब्राह्मणों, और पुराणोंसे प्रमाण उपस्थित करते हैं जिनको देखकर ज्योतिष शास्त्रका साधारण विद्यार्थी चकरा जाता है और किसी एक मतको मान लेनेको बाध्य होता है। परन्तु ज्योतिषशास्त्रका गंभीर विद्यार्थी इससे सन्तुष्ट नहीं होता, वह निष्पक्ष भावसे जानना चाहता है कि प्राचीन कालमें इस शास्त्रपर किन किन देशोंने कितने कितने रहस्योंका उद्घाटन किया है। इसका विचार करनेके लिए उसे देखना पड़ता है कि किन किन देशोंमें ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी क्या क्या धारणाएं थीं क्योंकि इस सम्बन्धकी सबसे प्राचीन जो पुस्तक प्राप्य है वह साढ़े तीन हजार वर्षसे अधिक पहलेकी नहीं सिद्ध होती। परन्तु ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान इतना ही पुराना नहीं हो सकता क्योंकि ज्योतिष केवल तात्त्विक विज्ञान ही नहीं है व्यावहारिक भी है जिसका काम मनुष्यके प्रतिदिनके व्यवहारमें पड़ता है। इसलिए जब सृष्टिका आरम्भ डेढ़ दो अरब वर्षोंसे माना जाता है तब यह कैसे मान लिया जाय कि ज्योतिष-शास्त्रका आरम्भ केवल तीन चार हजार वर्षों से ही हुआ है।

ज्योतिषका प्रवर्तक सूर्य—जबसे मनुष्य-सृष्टिका आरम्भ हुआ तभीसे देश और कालका ज्ञानभी आरम्भ हुआ होगा क्योंकि सबसे पहले मनुष्यने यह देखा ही होगा कि जब प्रकाश और गरमी पहुँचाने वाला एक गोला ऊपर उठता है तब सब जगह उजेला हो जाता है और सभी चीज़ें साफ़ साफ़ देख पड़ती हैं और जब वह गोला नीचे चला जाता है तब सभी जगह अंधेरा छा जाता है और कोई चीज़ देख नहीं पड़ती। उसने यह भी देखा होगा कि जब यह गोला निकलने लगता है तब पशुपक्षी आदि उठ पड़ते हैं और अपनी अपनी पेट-पूजामें लग जाते हैं और जब वह छिप जाता है तब सब विश्राम करने लगते हैं और सो जाते हैं। इस तरह दिन और रातका बोध उसको सबसे पहले हुआ होगा और यह ज्ञान उसको अपने आप सूर्यसे ही मिला होगा। इसलिये यदि यह मान लिया जाय कि ज्योतिष-शास्त्र-का प्रवर्तक सूर्य ही है तो अनुचित नहीं है। वास्तवमें तो हमारी इस पृथ्वीका प्रवर्तक भी सूर्य ही है जिसे आजकलके वैज्ञानिक भी मानते हैं। इसलिए जब यह कहा जाता है कि ज्योतिष शास्त्रका[1] ज्ञान पहले पहल सूर्य भगवानने ही दिया था तो इसमें कोई दोष नहीं जान पड़ता। ज्योतिषशास्त्र ही नहीं हमारे अध्यात्मशास्त्रका[2] प्रवर्तक भी सूर्य ही है।

चन्द्रमासे मासका ज्ञान—उस आदिकालमें मनुष्य ने यह भी देखा होगा कि दिनमें तो सूर्यसे गरमी और प्रकाश मिलते हैं और रातमें जब सब जगह अंधेरा छा जाता है तब ऊपर प्रकाशके अनगिनत विन्दु जगह जगह

१—शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम्।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत् पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलः ॥९॥
सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार।

२—इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
सकालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२॥
भगवद्गीता, चतुर्थ अध्याय

देख पड़ते हैं जिनमें कोई बड़े हैं और कोई बहुत छोटे, जिन्हें तारे कहते हैं। इनके सिवा एक बड़ी चमकीली वस्तु और है जो अपना आकार भी बदलती है और तारोंके बीच जगह भी। आज एक तारेके पास है तो कल दूसरे तारेके पास और परसों और आगे, तीसरे तारेके पास। इससे अंधेरेमें प्रकाश मिलता है और जब यह पूरी गोल हो जाती है तब रात भर दिखाई पड़ती है और हमको काफी प्रकाश देती है। उसने यह भी देखा होगा कि यह प्रति दिन अपना आकार भी बदलती है। पहले पहल जब यह सूर्यास्तके बाद पच्छिममें दिखाई पड़ती है तब पतले हंसुए की तरह होती है। दूसरे दिन कुछ मोटी हो जाती है। इस तरह बढ़ते बढ़ते सात आठ दिन,में आधा गोल हो जाती है और उसके बाद आधेसे भी बढ़ते बढ़ते वह पूरा गोल हो जाती है। यह क्रम प्रायः १४ दिन तक चलता है। फिर यह घटने लगती है और दूसरे चौदह दिन तक घटते घटते पतले हंसुएकी तरह हो जाती है। इसके बाद एक या दो दिन तक देख ही नहीं पड़ती, फिर वही हंसुएकी तरह सूर्यास्तके बाद दिखाई देती है। इस प्रकार इसके १५ दिन तक बढ़ने और फिर १५ दिन तक घटने और अदृश्य हो जानेका एक फेरा प्रायः ३० दिनमें पूरा हो जाता है। इसलिए सूर्यसे समयकी एक इकाई 'अहोरात्र' और चन्द्रमासे दूसरी इकाई 'मास' या महीने का बोध हुआ। इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमासे समयकी दो प्राकृतिक इकाइयों 'दिनरात' या केवल 'दिन' और 'मास'का बोध हुआ।

वर्ष—इस तरह धीरे-धीरे जब सहस्रों दिन और सैकड़ों मास बीते होंगे तब उसे एक बातका और भी अनुभव हुआ होगा। उसने देखा होगा कि वर्षा, जाड़ा और गरमीका भी बार बार फेरा होता है। अनेक वर्षोंके निरन्तर अध्ययन और विचारसे यह ज्ञान हुआ होगा कि महीनेसे भी बड़ी कालकी एक इकाई है जो सूर्यकी उत्तर दक्षिण गतियों पर अवलंबित है और जिसमें गरमी, वर्षा और जाड़ेका एक चक्र पूरा हो जाता है। इसे वर्ष कहते हैं। पहले पहल तो उसको ठीक ठीक न मालूम हुआ होगा कि वर्ष कितना बड़ा होता है। परन्तु उसने इतना अवश्य समझ लिया होगा कि जितने समयमें गरमी वर्षा और जाड़ेका एक चक्र पूरा होता है प्रायः उतनेही समयमें चन्द्रमाके १२ मास पूरे होते हैं। इसलिए उसने निश्चय किया होगा कि एक वर्षमें १२ महीने होते हैं। ज्योतिष शास्त्रका यह पहला पाठ था कि एक महीनेमें ३० दिन और एक वर्षमें १२ मास अथवा ३६० दिन होते हैं। इसे अपने आप सीखनेमें आदिम मनुष्यको सैकड़ों महीने लग गये होंगे। जो बात मनुष्यने सृष्टिके आरम्भमें निश्चयकी थी वही आजकल भी साधारण व्यवहारमें मानी जाती है। आज भी हम छोटे छोटे बच्चोंको पहले यही बतलाते हैं कि एक महीनेमें ३० दिन और एक वर्षमें बारह महीने होते हैं।

मलमास और युग—वर्ष, महीने, पक्ष और दिनके हिसाबसे अनेक वर्षों तक काम चला होगा। फिर देखा गया होगा कि ऋतुओं और महीनोंके हिसाबमें अन्तर पड़ रहा है। कुछ वर्षों तक तो बारह बारह महीनोंके बाद ही वर्षा, जाड़ा या गरमी आती है परन्तु फिर तेरह महीने और चौदह महीने बीत जाते हैं तब भी वर्षा नहीं आती। इस प्रकार मालूम हुआ होगा कि पहली गणना स्थूल है जिसमें कुछ संशोधनकी आवश्यकता है। सोचते सोचते यह युक्ति सूझी होगी कि यदि प्रति तीसरा वर्ष १३ महीनोंका मान लिया जाया करे तो काम चल सकता है। इसलिए हर तीसरा वर्ष १३ महीने का माना जाने लगा और १३वें महीनेको अधिमास कहने लगे। इस हिसाबसे भी कई वर्षोंमें देखा गया होगा कि ऋतुएं अब शीघ्र आरम्भ हो जाती हैं। इसलिए फिर यह निश्चय किया गया कि ५ वर्षोंमें दो अधिमास मान लिये जांय। महाभारतके विराटपर्वमें इसी गणनाकी चर्चा है। यही गणना वेदाङ्ग ज्योतिषमें अधिक स्पष्ट करके लिखी गयी है। इसमें बतलाया गया है कि ५ संवत्सरोंका एक युग होता है जिसका आरम्भ माघ माससे होता है और ३० महीनेके बाद श्रावणका महीना दुहरा दिया जाता है। फिर ३० मासके बाद माघका महीना दुहरा दिया जाता है। इस प्रकार ६२ चान्द्रमासोंका ५ वर्ष या एक युग माना जाने लगा।

वेदकालीन ज्योतिष और नक्षत्र— परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि महाभारतके पहले ऋषियोंको इससे अधिक ज्ञान नहीं था। संस्कृत साहित्यमें वेद सबसे प्राचीन समझे जाते हैं। इनमें अधिमासोंकी चर्चा प्रचुर मात्रामें है जहां इनके कई नाम रखे गये थे। यजुर्वेदमें इनके नाम संसर्प और मलिम्लुच थे। उस प्राचीन कालमें महीनोंके नाम चैत्र, वैशाख आदि नहीं थे वरन् मधु, माधव आदि थे जो ऋतुओंके सूचक थे। उस वैदिक कालमें भी आकाशके उन २८ नक्षत्रोंका पूरा ज्ञान हो चुका था जिसमें चलता हुआ चन्द्रमा २७ दिन और ८ घंटेमें एक फेरा कर लेता है। उन्होंने सूर्यकी गतिका भी ज्ञान सूक्ष्मतापूर्वक प्राप्त कर लिया था। वेदाङ्ग-ज्योतिष कालसे बहुत पहले उन्होंने सूर्यकी उत्तरायण और दक्षिणायन गतियोंका निश्चय कर लिया था। वेदाङ्ग ज्योतिषमें बतलाया गया है कि धनिष्ठा नक्षत्रके आदि पर जब सूर्य रहता है तब उत्तरायण आरम्भ होता है। परन्तु मैत्रायिणी उपनिषद[1]में बतलाया गया है कि जब सूर्य मघा नक्षत्रके आरम्भमें होता है तब दक्षिणायन आरम्भ होता है और जब धनिष्ठाके मध्यमें होता है तब उत्तरायण आरंभ होता है। इससे यह प्रकट होता है कि उस प्राचीनकालमें आकाशीय घटनाओंका अवलोकन ध्यानपूर्वक किया जाता था। जो इस विषयके पंडित होते थे उन्हें नक्षत्र दर्श[2] और उनके ज्ञानको नक्षत्र-विद्या[3] कहते थे। परन्तु यहां इसकी चर्चा विस्तारमें करनेकी आवश्यकता नहीं है। हिन्दू ज्योतिषको अच्छी तरह समझनेके लिए इन नक्षत्रोंका नाम याद रखना आवश्यक है जो नीचे दिये जाते हैं:—

१—अश्विनी, २—भरणी, ३—कृत्तिका, ४—रोहिणी, ५—मृगशिरा, ६—आर्द्रा, ७—पुनर्वसु, ८—पुष्य, ९—आश्लेषा या अश्लेषा, १०—मघा, ११—पूर्वाफाल्गुनी, १२—उत्तरा फाल्गुनी, १३—हस्त, १४—चित्रा, १५—स्वाती, १६—विशाखा, १७—अनुराधा, १८—ज्येष्ठा, १९—मूल, २०—पूर्वाषाढ़, २१—उत्तराषाढ़, २२—अभिजित, २३—श्रवण, २४—धनिष्ठा, २५—शतभिज या शतभिषा, २६—पूर्वाभाद्रपद, २७—उत्तराभाद्रपद, २८—रेवती।

यह नक्षत्र तारोंके वह समूह हैं जो चन्द्रमाके मार्गमें पड़ते हैं। इसी मार्गके निकट पृथ्वीका मार्ग भी है जिसे पहले सभी देशोंके लोग सूर्यका मार्ग समझते थे। आजकल भी सुविधाके विचारसे यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं है कि यह सूर्यका मार्ग है। चन्द्रमा इन नक्षत्रोंका एक फेरा २७ दिन ८ घंटेमें करता है। इसीलिए चन्द्रमार्गको पहले २८ असमान भागोंमें बांटा गया और प्रत्येक भागको नक्षत्र कहने लगे। फिर गणनाकी सुविधाके लिए केवल २७ ही समान भागके नक्षत्र माने जाने लगे और अभिजितका नाम निकाल दिया गया। यह प्रकट है कि चन्द्रमा एक नक्षत्रमें प्रायः एक दिनरात रहता है। इस प्रकार दक्ष प्रजापतिकी २७ कन्याओं और चन्द्रमाके विवाहकी कथाका आरंभ हुआ होगा।

जिस नक्षत्र-चक्रको चन्द्रमा २७ दिन ८ घंटेमें पूरा करता है उसे सूर्य १२ महीनों या ३६५ दिनमें पूरा करता हुआ जान पड़ता है। इसलिए सूर्य एक नक्षत्रमें १३ या १४ दिन तक रहता है। ऋतुओंका बोध इसी सूर्यके नक्षत्रोंसे ही किया जाता है जिसे किसान नखत कहते हैं। जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्रमें रहता है तब बरसात आरंभ होती है और किसान खेत जोतने बोने लगते हैं। इलाहाबाद जिले के एक किसानने बोनेका एक सूत्र यह बतलाया है— 'अद्रा धान, पुनर्वसु जोंधरी, चढ़त चिरैया बोय बजरी'; हथियामें चना, चित्रामें गेहूँ, मटर और स्वातीमें जव बोनेकी परिपाटी है। पुष्य नक्षत्रको चिरैया कहते हैं। 'मघा बरसे, माता परसे' कहावतका अर्थ यह है कि मघा नक्षत्रमें सूर्यके रहते समय जो वर्षा होती है उससे पृथ्वी वैसी ही तृप्त होती है जैसे माताके प्रेम पूर्वक भोजन परसनेसे बच्चोंका पेट भर जाता है। इस संबंधमें घाघ और भड्डरीकी कहावतोंकी तो पुस्तकें भी छप गयी हैं।

नक्षत्र-चक्र—२७ नक्षत्रोंके चक्रको सूर्य एक वर्षमें अथवा मोटे हिसाबसे ३६० दिनमें पूरा करता हुआ जान

१—मघाद्यं अविष्ठार्द्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण
सार्पार्द्धं अविष्ठाद्यान्तं सौम्यं प्र० ६, १४

२—प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्, यजुर्वेद, ३०,१०।

३—छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ७, १,२४।

पड़ता है इसलिए इस चक्रके ३६० बराबर भाग कर दिये गये जिसे अंश कहते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सूर्य एक दिनमें एक अंश चलता है। अंशके ६०वें भाग को कला कहते हैं यही सूर्यकी एक घड़ीकी चाल है। कला के ६०वें भागको विकला कहते हैं जो सूर्यकी एक पलकी चाल है। इस तरह कोण और समय नापनेकी इकाइयों में सीधा सम्बन्ध है।

जब २७ नक्षत्र ३६० अंशके समान माना गया तो एक नक्षत्र ३६०°/२७ या ४०°/३ अंश या १३ अंश २० कलाके समान हुआ।

तिथि—जिस समय सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें एक साथ रहते हैं उस समय अमावस्या या अमावस होती है। जब चन्द्रमा सूर्यसे आगे १२ अंश बढ़ जाता है तब प्रतिपदा या परिवा तिथि पूरी हो जाती है और द्वितीया या दूइज लगती है। इसी दिन सूर्यास्तके बाद ही चन्द्रमा पच्छिम क्षितिजमें पतलासा दिखाई पड़ता है। सूर्यसे २४ अंश आगे बढ़नेपर तृतीया या तीज आरंभ होती है। इसी तरह सूर्यसे बारह-बारह अंश चन्द्रमाके आगे बढ़नेपर तिथि बदलती है। जब सूर्यसे चन्द्रमा १८० अंश आगे बढ़ जाता है तब पूर्णमासी होती है। इस दिन चन्द्रमा पूरा गोल हो जाता है और सूर्यास्त कालमें पूर्व क्षितिजपर उदय होता हुआ देख पड़ता है। इसी दिन शुक्ल पक्ष का अंत होता है। जब चन्द्रमा इससे आगे बढ़ता है तब १६वीं तिथि लगती है जिसे कृष्ण पक्षकी प्रतिपदा कहते हैं। इसी दिनसे चन्द्रमा धीरे-धीरे घटने लगता है और इसके पूर्वमें उदय होनेका समय प्रतिदिन लगभग एक मुहूर्त या दो-दो घड़ी पीछे होता जाता है। इन्हीं तिथियों-के विचारसे हमारे पर्व और त्योहार जन्माष्टमी, होली, दिवाली, दशहरा आदि निश्चित किये जाते हैं।

तिथियोंके नाम क्रमानुसार यह हैं:—

क्रम संख्या	शुक्ल पक्ष	क्रम संख्या	कृष्ण पक्ष
१	प्रतिपदा या परिवा	१६	प्रतिपदा
२	द्वितीया या दूइज	१७	दूइज
३	तृतीया या तीज	१८	तीज
४	चतुर्थी या चौथ	१९	चौथ
५	पंचमी	२०	पंचमी
६	षष्ठी या छठ	२१	छठ
७	सप्तमी	२२	सप्तमी
८	अष्टमी	२३	अष्टमी
९	नवमी	२४	नवमी
१०	दशमी	२५	दशमी
११	एकादशी	२६	एकादशी
१२	द्वादशी	२७	द्वादशी
१३	त्रयोदशी या तेरस	२८	तेरस
१४	चतुर्दशी	२९	चतुर्दशी
१५	पूर्णमासी या पूर्णिमा	३०	अमावस्या या अमावस

पंचांगोंमें १६वीं, १७वीं तिथिके स्थानमें १, २, ३, आदि लिखा रहता है, केवल अमावसके लिए ३०की संख्या लिखी जाती है। तिथियोंके हिसाबसे मासका आरंभ जब शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे होता है तो उसका अन्त कृष्ण पक्षकी अमावसको होता है। यह रीति बहुत प्राचीन है और गुजरात, महाराष्ट्र तथा मद्रासमें अब भी प्रचलित है। ऐसे मासको अमान्त चान्द्र मास कहते हैं। परन्तु अन्य प्रान्तोंमें महीनेका आरंभ कृष्ण पक्षकी प्रतिपदासे होता है और अंत शुक्ल पक्षकी पूर्णिमाको होता है। इसलिए ऐसे मासको पूर्णिमान्त चान्द्रमास कहते हैं। देखनेमें यह रीति सुगम जान पड़ती है क्योंकि पूर्णमासीको मासका पूर्ण होना स्वाभाविक जान पड़ता है। इन दोनों प्रकारके महीनोंके शुक्ल पक्ष तो एक ही होते हैं परन्तु कृष्ण पक्षके मासोंमें भेद हो जाता है। इसी कारण इस प्रान्तमें भाद्र कृष्णा अष्टमीको कृष्ण जन्माष्टमी मनायी जाती है, जो महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तोंमें श्रावण कृष्णाष्टमी समझी जाती है।

सिद्धान्तोंमें अमान्त गणनाके अनुसार ही मलमासों का हिसाब रखा जाता है इसीलिए हमारे प्रान्तके पञ्चांगोंमें मलमासके हिसाबमें कुछ गड़बड़ी रहती है। मलमास वाले महीनेके पहले महीनेका कृष्णपक्ष शुद्ध माना जाता है फिर दो पक्ष मलमासके होते हैं, उसके बाद उसी नामके शुद्ध महीनेका शुक्ल पक्ष आता है।

तिथियोंकी वृद्धि और क्षय—यदि सूर्य और चन्द्रमाकी गतियाँ समान होतीं तो प्रत्येक तिथिकी अवधि भी समान होती। परन्तु सूर्य और चन्द्रमाकी गतियाँ समान नहीं है। इसलिए तिथियोंका मान भी बदलता रहता है और कभी तिथि प्रातः काल समाप्त हो जाती है, कभी दोपहर, कभी संध्याके समय और कभी रातको। इसलिए लौकिक व्यवहारमें तो हम वही तिथि सारा दिन और सारी रात मानते हैं जो सूर्योदय कालमें होती है परन्तु व्रत उपवास आदिके लिए दूसरे नियम हैं। तिथिका छोटेसे छोटा मान ५१ घड़ीके लगभग और बड़ेसे बड़ा मान ६६ घड़ीके लगभग होता है। इसलिए ऐसा होता है कि कोई तिथि सूर्योदयसे आधी घड़ी उपरान्त लगी और दूसरे सूर्योदयसे पहले ही समाप्त हो गयी। ऐसी दशामें यह तिथि न तो उस दिन मानी जायगी जिसके सूर्योदयके उपरान्त लगी और न दूसरे ही दिन मानी जायगी जिसके सूर्योदयके पहले ही समाप्त हो गयी। ऐसी तिथि को क्षय तिथि कहते हैं। परन्तु यदि कोई तिथि ६० घड़ीसे बड़ी हुई और सूर्योदयसे कुछ पहले आरंभ हुई और दूसरे दिन सूर्योदयसे कुछ पीछे समाप्त हुई वह दोनों दिन मानी जायगी। इसीको तिथिकी वृद्धि कहते हैं। इसीलिए कोई पक्ष १५ दिन का होता है कोई १४ दिन का और कोई १६ दिन का। बहुत दिनोंके बाद कभी-कभी कोई पक्ष १३ दिनका भी हो जाता है।

तिथियोंकी गणनामें एक कठिनाई और भी है। यह नियम है कि सूर्योदय कालमें जो तिथि वर्तमान रहती है वही दिन भर मानी जाती है। परन्तु सूर्योदयकाल सब स्थानोंमें एक ही समय नहीं होता। पूर्वमें सूर्योदय जल्दी होता है पच्छिममें देरमें। इसलिए पूर्व देशोंमें सूर्योदयकाल में जो तिथि वर्तमान है वह पच्छिम के स्थानोंमें सूर्योदयसे पहले समाप्त हो सकती है। ऐसी दशामें दोनों स्थानोंकी तिथियोंमें भेद पड़ जाता है। कलकत्ता और बम्बई एक दूसरेसे बहुत दूर हैं, दोनोंके सूर्योदयकालमें एक घंटेसे अधिकका अन्तर है इसलिए इनकी बात जाने दीजिए। दो ऐसे स्थान लीजिए जो एक दूसरेसे निकट हों जैसे काशी और प्रयाग। इन दोनोंके सूर्योदय कालोंमें ४ मिनट ४० सेकेंड अथवा लगभग १२ पलका अन्तर होता है। यदि कोई तिथि काशीके सूर्योदयसे २ मिनट पहले आरंभ हुई तो वह काशीमें दिन-रात लिखी जायगी। परन्तु प्रयागमें उस तिथिका अन्त सूर्योदयसे पहले ही हो जायगा। इसलिए प्रयागमें उसके आगेकी तिथि मनायी जायगी। इससे लौकिक व्यवहारमें बड़ी अड़चन पड़ सकती है। मान लीजिए कि दोनों स्थानोंमें तिथियोंके सिवा और किसी प्रकारकी तारीखका प्रयोग नहीं किया जाता और काशीसे एक आदमी प्रयागको तार भेजना चाहता है। तार भेजनेकी तारीख काशीकी तिथि होगी। उसके पहुँचने की तारीख प्रयागकी। इस प्रकार एक दिनका भेद पड़ जायगा यद्यपि तार जिस दिन भेजा गया उसी दिन पहुँच गया। इसलिए जब हमारा संबंध भारतवर्षके दूर-दूरके प्रान्तोंसे ही नहीं वरन् संसारके प्रत्येक देशसे बढ़ रहा है तो व्यवहारमें तो हमारी तिथि काम नहीं दे सकती। इसी-लिए लौकिक कामोंमें दूसरी पद्धतिका सहारा लेना पड़ता है। बङ्गाल और पञ्जाबमें तो सौर तिथियोंका चलन बहुत दिनसे है। हमारे प्रान्तमें भी अब सौर तिथियोंका व्यवहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा ज्ञान मण्डल कार्यालयमें होने लगा है।

संक्रान्ति और सौर तिथि—इस स्थानपर सौर तिथि के सम्बन्धमें भी कुछ लिखना आवश्यक है क्योंकि जैसे-जैसे हमारा व्यवहार भारतीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय हो जायगा उस समय हमें इसीका सहारा लेना पड़ेगा। जिस प्रकार नक्षत्र चक्र २७ समान भागोंमें बाँटा गया है उसी प्रकार वह १२ समान भागोंमें भी बाँटा गया है जिसे राशि कहते हैं। इनके नाम यह हैं :—

१—मेष, २—वृष, ३—मिथुन, ४ कर्क, ५—सिंह, ६ कन्या, ७-तुला, ८—वृश्चिक, ९—धनु, १०—मकर, ११—कुम्भ, १२—मीन।

यह प्रकट है कि एक राशि सवा दो नक्षत्र या ३० अंशके समान होती है। विद्वानोंमें बहुत दिनोंसे यह विवाद चल रहा है कि राशियों या नक्षत्रोंका आरंभ स्थान क्या माना जाय। इस प्रान्तमें आरम्भ स्थान वही माना जाता है जो सूर्य सिद्धान्तकी गणनाके अनुसार सिद्ध होता है। इसीसे मिलता जुलता एक और नियम है जिसके

अनुसार चित्रा तारा राशि चक्रके ठीक मध्यमें माना जाता है अर्थात् चित्रा तारा वहाँ है जहाँ ६ठी राशि समाप्त होती है और सातवीं आरंभ होती है।

जब सूर्य मेष राशिमें प्रवेश करता है तब मेष संक्रान्ति होती है। आजकल यह १३ या १४ अप्रैल को होती है।

संक्रान्तिके बाद जो सूर्योदय होता है उसीसे पहली सौर तिथिका आरम्भ होता है। दूसरे सूर्योदयसे दूसरी सौर तिथि चलती है। जब तक सूर्य मेष राशिमें होता है तब तक बङ्गाल और पञ्जाबमें वैशाखका महीना माना जाता है। यही प्रथा यहाँ भी प्रचलित हो रही है। चान्द्र मास वाला वैशाख इससे कुछ भिन्न होता है इसलिए इसे सौर वैशाख कहा जाता है। यह ३१ दिनका होता है। जब सूर्य वृष राशिमें प्रवेश करता है तब सौर ज्येष्ठका महीना लगता है। यह भी ३१ दिन का होता है। सौर आषाढ़ ३२ दिनका होता है क्योंकि इस महीनेमें सूर्यकी चाल बहुत मंद होती है इसलिए ३० अंश चलनेमें ३१ दिनसे भी अधिक समय लगता है। इसी प्रकार जब मकर संक्रान्ति लगती है तब सौर माघका आरंभ होता है। यह १३ या १४ जनवरी को होती है जब प्रयागमें मकरका मेला लगता है। यह संक्रान्तियाँ अंग्रेजी महीनेके बीच में १३, १४, १५ या १६ तारीख तक पड़ती हैं। मद्रासमें भी संक्रान्तियोंके हिसाबसे ही महीनेकी गणना की जाती है। विज्ञान परिषद्से प्रकाशित 'विज्ञान' मासिक पत्रमें आरंभसे ही संक्रान्तियोंके अनुसार मासकी गणना मानी जाती है।

तिथि मास और नक्षत्र का सम्बन्ध—अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट है कि सूर्य और चन्द्रमा की सापेक्ष गतियोंसे तिथिकी गणनाकी जाती है और सूर्य तथा चन्द्रमाकी अलग-अलग गतियोंसे यह गणना की जाती है कि वे किस नक्षत्रमें हैं। नक्षत्रोंकी गणनासे आकाशमें उनकी स्वतन्त्र स्थितियोंका बोध होता है। जब हम कहते हैं कि आर्द्रा नक्षत्र या 'अद्रा नखत' लगनेपर वर्षाका आरंभ होता है तब हमारा अर्थ यह होता है कि सूर्य आर्द्रा नक्षत्रमें स्थित है। परन्तु जब हम कहते हैं कि भादों कृष्ण अष्टमीको रोहिणी नक्षत्रमें भगवान् कृष्णका जन्म हुआ था तब हमारा अर्थ यह होता है कि उस समय चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें था। यह बतलाया गया है कि चन्द्रमाकी चाल बहुत तेज है इसलिए वह एक नक्षत्र लगभग एक दिनमें पूराकर लेता है परन्तु सूर्यकी चाल उससे बहुत मन्द है इसलिए वह एक नक्षत्र तेरह या चौदह दिनमें पूरा करता है।

महीनोंके नामोंकी सार्थकता—तीन हज़ार वर्षसे ऊपर हुए जब तिथि, मास और नक्षत्रोंका संबंध भारतीय नक्षत्रदर्शोंने स्थिर किया था। यह नियम इतने उत्तम थे कि विचारकोंको अब भी आश्चर्यमें डाल देते हैं। किसी भी प्राचीन देशकी ज्योतिषमें ऐसे नियम नहीं पाये जाते। इसलिए इसका भी दिग्दर्शन यहाँ करा दिया जाता है। यह बतलाया जा चुका है कि बहुत प्राचीन कालमें महीनोंके नाम चैत, बैसाख आदि नहीं थे वरन् मधु, माधव आदि थे, जो ऋतु सूचक हैं। ३००० वर्ष पहलेसे ही चैत बैसाख आदिका चलन हुआ। इनका सिद्धान्त यह है कि जिस मासकी पूर्णिमाको चन्द्रमा चित्रा या स्वाती नक्षत्रमें होता है उस मासको चैत्र मास कहते हैं और जिस मासकी पूर्णिमाको चन्द्रमा विशाखा या अनुराधामें होता है उसे वैशाख मास कहते हैं। नक्षत्रोंकी सूचीमें देखिए, बारह नक्षत्र ऐसे मिलेंगे जिनके नामपर महीनोंके नाम रखे गये हैं। उपर्युक्त सूचीमें इनकी क्रम संख्या है १, ३, ५, ८, १०, ११ या १२, १४, १६, १८ २० या २१, २२ और २५ या २६। अश्विन मासकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्रमें या इससे एक नक्षत्र आगे पीछे होती है। कार्तिक मासकी पूर्णिमा कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्रमें होती है। मार्गशीर्ष या अगहनकी पूर्णिमा मृगशिरा या आर्द्रा नक्षत्रमें होती है। इसी तरह अन्य मासोंके बारेमें समझना चाहिए। कहीं-कहीं अश्विनको आसौज या कुंआर कहते हैं, मार्गशीर्षको मगसिर या अगहन और माघको 'माह' कहते हैं। इसका कारण यह है कि अश्विनीका दूसरा नाम अश्वयुज और इसका देवता अश्विनी कुमार है इसलिए कहीं अश्वयुजके नाम पर आसौज और कहीं कुमारके नाम पर 'कुंआर' का चलन हो गया। सिद्धान्तमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

मृगशिरा नक्षत्रको अग्रहायण (Orion) भी कहते हैं इसलिए महीनेका नाम मार्गशीर्ष, मगसिर या अगहन पड़ा।

नक्षत्रोंके नामपर महीनोंका नाम रखनेसे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि रातमें आकाशको देखकर बतला सकते हैं कि कौन महीना है और क्या समय है। यदि आप नक्षत्रोंको पहचानते हों तो सूर्यास्तके बाद जब तारे दिखाई पड़ने लगें, पूर्व क्षितिजकी ओर देखिए और पहचानिए कि कौन नक्षत्र पूर्व क्षितिजमें उदय हो रहा है या उदय हो चुका है। बस, इसीके या इसके आगे पीछे वाले नक्षत्रके नामका महीना चल रहा है। दूसरे शब्दोंमें इसे यों कह सकते हैं कि कार्तिक मासमें कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्र सूर्यास्तके बाद पूर्वक्षितिजमें उदय होता और सारी रात आकाशमें घूमता हुआ प्रातः काल पश्चिम क्षितिजमें अस्त हो जाता है। अगहनके महीनोंमें मृगशिरा या आर्द्रा नक्षत्र सूर्यास्तके बाद ही पूर्वमें उदय होता है और सारी रात आकाशमें घूमता हुआ प्रातःकाल पश्चिममें अस्त हो जाता है। पूसके महीनेमें पुनर्वसु या पुष्य नक्षत्र इसी तरह शामको उदय होकर सारी रात आकाशमें चक्कर लगाता हुआ प्रातः काल पश्चिममें अस्त हो जाता है। पुष्यको छोड़कर ये सभी नक्षत्र अपनी चमकके कारण बड़ी आसानी से पहचाने जा सकते हैं और शरद ऋतुमें रात भर लोगोंको समयकी सूचना देते रहते हैं। इन महीनोंमें किसान रातका समय इन्हीं नक्षत्रोंसे जान लेते हैं। कृत्तिकाको कचपचिया, रोहिणीको हरणी और मृगशिराको हन्ना कहते हैं। यह प्रकट है कि जब कोई नक्षत्र शामको पूरबमें उदय होगा तब एक पहर रात बीते वह या तो शिरोबिन्दु और क्षितिजके बीचमें रहेगा या पूरब दक्षिणके कोने पर; आधी रातको मध्य आकाशमें, तीन पहर रात बीते शिरोबिन्दु और पश्चिम क्षितिजके बीचमें या पश्चिम दक्खिनके कोने पर रहेगा। इस प्रकार हिन्दू महीने और नक्षत्रोंकी जानकारीसे कोई भी मनुष्य रातमें समयका स्थूल ज्ञान आसानीसे प्राप्त कर सकता है। संसारके किसी भी देशके महीनोंके नामोंमें ऐसी विशेषता नहीं है। ये नाम किसी देश या पुरुषके नामसे नहीं रखे गये हैं। इसलिए सार्वदेशिक भी हैं।

तिथियों और नक्षत्रोंका संबंध—ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट होता है कि पूर्णमासी तिथिका सम्बन्ध तो उस नामके नक्षत्र या उसके आगे पीछे वाले नक्षत्रसे होता है और तिथियोंका सम्बन्ध भी किसी न किसी नक्षत्रसे बराबर बना रहता है। कृष्ण जन्माष्टमी प्रति वर्ष रोहिणीमें नहीं पड़ती। मलमासके बाद वह रोहिणीमें अवश्य पड़ती है। परन्तु वैसे साधारणतः कृत्तिकामें पड़ती है। विजयदशमी भी मलमासके बाद श्रवण नक्षत्रमें पड़ती है, वैसे एक नक्षत्र पहले ही हो जाती है। वह पर्व बहुत महत्वपूर्ण समझे जाते हैं जो तिथि और मास के सिवा किसी विशेष वार और नक्षत्रसे भी सम्बद्ध रहते हैं। ऐसा योग कई वर्षों के बाद आता है।

सिद्धान्त—तिथि, नक्षत्र और मासका विचार सूर्य और चन्द्रमा की अलग-अलग तथा सापेक्ष गतियोंपर आश्रित है। चन्द्रमा एक दिनमें एक नक्षत्रके लगभग चलता है जो सवा १३ अंशका होता है। सूर्य एक दिनमें एक अंशके लगभग चलता है। इसलिए सूर्यसे चन्द्रमाका अन्तर प्रतिदिन लगभग बारह-बारह अंश बढ़ता जाता है। मान लीजिए कि दिवालीकी रातको सूर्य और चन्द्रमा एक साथ स्वाती नक्षत्रमें हैं। दूसरे दिन चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में चला जायगा और कार्तिककी प्रतिपदा तिथि होगी। इसी तरह १५ दिन तक चन्द्रमा बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमाकालमें कृत्तिका नक्षत्रमें पहुँच जायगा परन्तु सूर्य स्वातीसे विशाखामें ही पहुँच सकेगा। पूर्णिमासे १२ दिन उपरान्त अथवा दिवालीसे २७ दिन बाद चन्द्रमा तो फिर स्वातीमें पहुँच जायगा क्योंकि उसका एक चक्कर २७ दिन ८ घंटेमें पूरा हो जाता है परन्तु तब तक सूर्य विशाखासे अनुराधामें पहुँचा रहेगा। इसलिए चन्द्रमाको सूर्य तक पहुँचनेके लिए ढाई दिन और चलना पड़ेगा, तब चन्द्रमा और सूर्य दोनों अनुराधा नक्षत्रमें होंगे अर्थात् इस मास (अगहन) की अमावस स्वाती नक्षत्रमें न होकर अनुराधामें होगी और इसी प्रकार पूर्णिमा कृत्तिकामें न होकर मृगशिरामें होगी। यह क्रम १२ महीने तक ठीक चलेगा अर्थात् पूर्णमासी प्रायः उसी नक्षत्र पर होगी जिसके नामका महीना होगा। परन्तु बारह महीने बाद चन्द्रमाका नक्षत्र पिछड़ने लगेगा

क्योंकि बारह चन्द्रमासोंमें १२ × २९·५३०६ दिन अर्थात् ३५४·३६७ दिन अथवा लगभग ३५४ दिन ८ घंटे और ४८ मिनट होते हैं और चन्द्रमाके १३ चक्कर १३ × २७·३२१७ दिन अर्थात् ३५५·१८२१ दिन या ३५५ दिन ४ घंटे २२ मिनटमें होते हैं। इसलिए जब दूसरी दिवाली आवेगी तब अमावसके दिन सूर्य और चन्द्रमा दोनों स्वाती में न रहकर चित्रामें, एक नक्षत्र पीछे, रहेंगे। इसी प्रकार पूर्णिमा कृत्तिकामें न होकर भरणीमें होगी। दो वर्षमें यह अन्तर और बढ़ जायगा। यह तो हुई तिथि और नक्षत्रों की बात। ऋतुओंके क्रममें भी अंतर पड़ता रहेगा, क्योंकि ऋतुओंका क्रम सूर्य की गति पर आश्रित है और सूर्यका एक चक्कर लगभग ३६५ दिन ६ घंटेमें होता है परन्तु १२ चान्द्रमासोंका वर्ष ३५४ दिन ९ घंटेमें ही पूरा हो जाता है। इसलिए ऋतुओंका क्रम प्रति वर्ष ११ दिनके लगभग पिछड़ जाता है, जिस प्रकार मुसलमानी व्यवहार प्रतिवर्ष ११ दिन पिछड़ते रहते हैं और जाड़ा-गरमी-बरसात सभीमें फेरे लगाया करते हैं।

इसलिए तीसरे वर्ष जब यह अंतर पूरे एक महीनेका हो जाता है तब एक महीना दुहरा दिया जाता है जिसे मलमास या लौंदका महीना कहते हैं। इससे ऋतुओंका हिसाब तथा चन्द्रमाका नक्षत्रभी ठीक हो जाता है, क्योंकि एक चन्द्र वर्षमें चन्द्रमा अपने नक्षत्रपर २० घंटे बाद पहुँचता है और दो वर्ष बाद वह ४० घंटेके लगभग पिछड़ जाता है। परन्तु जब तीसरे वर्ष मलमास पड़ जाता है तो इस महीनेमें चन्द्रमा भी अपनी कमी पूरी कर लेता है क्योंकि उसको २७ दिन ८ घंटे तो अपना चक्कर पूरा करने के लिए मिल जाते हैं और २ दिन ४ घंटे अपनी कमी पूरी करनेको मिल जाते हैं। इस प्रकार मलमाससे ऋतुओं का ही क्रम ठीक नहीं किया जाता वरन् नक्षत्रोंका क्रम भी ठीक हो जाता है। इसीलिए हमारे पर्वों और व्यवहारोंकी तिथि, नक्षत्र और ऋतु का सम्बन्ध बराबर बना रहा है। यह नियम ३००० वर्ष तक काम देता रहा है परन्तु अब एक और कारणसे इसमें शिथिलता आ रही है जिसका निराकरण हमको आज न सही तो सौ पचास वर्ष बाद अवश्य करना पड़ेगा, नहीं तो व्यवहारों और ऋतुओं का सम्बन्ध टूट जायगा और हजार डेढ़ हजार वर्षमें होली गरमीमें होने लगेगी और दिवाली जाड़ेमें, परन्तु यह परिवर्तन करनेके लिए धर्मशास्त्रके पुराने नियमों को हटाकर बिलकुल नये नियम बनाने पड़ेंगे जो प्राचीन प्रथापर चलने वाले लोगोंके लिए कुछ समय तक बहुत भयानक प्रतीत होंगे। इसलिए आरंभमें कुछ कठिनाईका सामना करना पड़ेगा।

ऋतुओं और महीनोंका संबंध कैसे टूट रहा है ?

अब हम संक्षेपमें उन कारणों पर भी विचार करना चाहते हैं जिनसे हमारे महीनों और ऋतुओंका संबंध धीरे-धीरे टूट रहा है। आकाशके जिस मार्गसे सूर्य वर्ष भरमें एक चक्कर पूरा करता हुआ देख पड़ता है उस पर चार स्थान बड़े महत्वके हैं जहाँ सूर्य प्रायः तीन-तीन महीने पर पहुँचता। पहला स्थान वह है जहाँ पहुँचने पर सूर्य सबसे दक्खिन देख पड़ता है। जिस दिन ऐसा होता है उस दिन भारतवर्षमें ही नहीं सारे उत्तरी गोलार्धमें दिनमान (सूर्यके उदय कालसे अस्तकाल तकका समय) सबसे छोटा और रात्रि सबसे बड़ी होती है। इस स्थानको उत्तरायण विन्दु कहते हैं क्योंकि यहाँ पहुँचकर सूर्य उत्तरकी ओर बढ़ने लगता है। यह कोई भी देख सकता है—प्रातः काल देखकर निश्चयकर लीजिए कि उदय होता हुआ सूर्य-क्षितिजके किस स्थानपर उठता हुआ दिखाई पड़ता है। ऐसी जगह खड़े होकर देखिए जहांसे निकलता हुआ सूर्य किसी पेड़की सीधमें दिखाई पड़े। इसी तरह प्रतिदिन ठीक उसी जगह खड़े होकर उदय होते हुए सूर्यको देखिए। दो ही चार दिनमें प्रकट हो जायगा कि सूर्य उत्तरकी ओर बढ़ रहा है। आजकल उत्तरायण विन्दु मूल नक्षत्रके सातवें अंशपर अथवा इसके बीचोबीच है। यहाँ सूर्य २३ दिसम्बर को आता है। इसलिए २३ दिसम्बरको उत्तरी गोलार्धमें जिसमें भारतवर्ष भी है सबसे छोटा दिन और सबसे बड़ी रात होती है। इस स्थानसे ६ महीने तक सूर्य बराबर उत्तरकी ओर बढ़ता जाता है जिससे दिनमान बढ़ता जाता है और रात्रि छोटी होती जाती हैं। इसी ६ महीनेके समयको उत्तरायण कहते हैं। तीन महीनेके बाद अर्थात् २१ मार्चको सूर्य अपने मार्गके एक और विशेष स्थानपर पहुँच जाता है जिसे त्रिषुवत् विन्दु या विषुव सम्पात

कहते हैं। जब सूर्य यहाँ पहुँचता है तब यह ठीक पूर्वमें उदय होता है और सारे संसारमें दिन रात बराबर हो जाते हैं अर्थात् १२ घंटेका दिन और १२ घंटेकी रात हो जाती है, उत्तरी गोलार्धमें सर्दी घट जाती है और गर्मी बढ़ने लगती है। आजकल विषुव संपात उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रके चौथे अंशपर है। इसके बाद तीन महीने तक वह और उत्तर बढ़ता रहता है। २२ जूनको वह उस जगह पहुँच जाता है जहाँ उत्तरकी ओरका बढ़ना रुक जाता है और दक्खिनकी ओर मुड़ जाता है। इसीको दक्षिणायन विन्दु कहते हैं। इस दिन उत्तर गोलार्धमें सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रात होती है। इसी दिनसे ६ महीनेका दक्षिणायन आरम्भ होता है। आजकल यह स्थान आर्द्रा नक्षत्रके ठीक आरंभमें है। इससे तीन महीने बाद २३ सितम्बरको सूर्य फिर ठीक पूर्वमें उदय होता है और सारे संसारमें दिन रात बराबर कर देता है। यह स्थान आजकल उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके दस अंशपर है। इस विन्दुको शरद सम्पात् कहते हैं। यहांसे दक्खिन बढ़नेपर दिन छोटा और रात बड़ी होने लगती है। तीन महीनेमें वह फिर उत्तरायण विन्दुपर पहुँच जाता है और अपना क्रम पूरा कर देता है। ऋतुओंका क्रम इसी कालके अनुसार बदलता है जो ३६५ दिन ५ घंटा और ४८ मिनटके समान है। इस वर्षको सायन वर्ष कहते हैं।

परन्तु नक्षत्रचक्रमें यह उत्तरायण या दक्षिणायन विन्दु अथवा विषुव सम्पात् स्थिर नहीं है, बहुत मंद गतिसे पीछे की ओर खसक रहे हैं। यह गति इतनी मंद है कि ७२ वर्ष में केवल एक अंशका अन्तर पड़ता है। परन्तु इतनी मंद गति भी लगभग ९५० वर्षमें अयन-विन्दु या वसंत सम्पातको एक नक्षत्र पीछे हटा देती है। सौभाग्यकी बात है कि इस बातका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों, ब्राह्मणों, उपनिषदों, वेदाङ्ग ज्योतिष, विष्णु पुराण तथा वराह मिहिरकी पंचसिद्धान्तिकमें स्पष्ट रूपसे किया गया है कि उत्तरायण या दक्षिणायनका आरंभ किस-किस नक्षत्रपर होता था। इसी कारण हम निस्सन्देह बतला सकते हैं कि उन ग्रन्थोंमें लिखी हुई बातें कितनी प्राचीन हैं। मैत्रायिणी उपनिषद्का उद्धरण पहले दिया जा चुका है कि उत्तरायणका आरंभ धनिष्ठा नक्षत्रके मध्यमें और दक्षिणायनका आरंभ मघा नक्षत्रके आदिमें होता था। आजकल दक्षिणायनका आरंभ आर्द्राके आदिमें होता है। इन दोनोंके बीच में चार नक्षत्रोंका अंतर है इसलिए वह काल ४ × ९५० = ३८०० वर्ष पुराना हुआ। वेदाङ्ग ज्योतिष[1]में धनिष्ठाके आदिमें उत्तरायणका आरंभ होता था, आजकल मूल नक्षत्रके मध्यमें होता है। यह अन्तर साढ़े तीन नक्षत्रोंके बराबर हुआ। इसलिए वेदाङ्ग ज्योतिषकाल ९५० × ३½ वर्ष अर्थात् लगभग ३३२५ वर्ष पुराना है।

बाराह मिहिर[2] अपने समयकी उत्तरायणकी स्थिति इस प्रकार बतलाते हैं आश्लेषाके आधे भागपर सूर्य दक्षिणायन और धनिष्ठाके आदिमें उत्तरायण होता है, यह पूर्व शास्त्रोंमें बतलाया गया है, परन्तु आजकल यह क्रमशः कर्क राशिके आरंभमें और मकर राशिके आरंभमें होता है। यहाँ वराहमिहिर पहले पूर्वके शास्त्रों वेदाङ्ग ज्योतिष आदिके दक्षिणायन और उत्तरायण नक्षत्रोंकी चर्चा करते हैं। अब देखना चाहिये कि कर्क और मकर राशियोंका आरंभ किस नक्षत्रमें होता है। राशियोंके क्रममें कर्क चौथी और मकर १०वीं राशि है। इनके आरंभ स्थान वही हैं जो तीसरी और नवीं राशियोंके अन्तिम स्थान हैं। एक राशिमें २। सवा दो नक्षत्र होते हैं इसलिए ३ राशियोंमें पौने सात ६।।। नक्षत्र हुए और ९ राशियोंमें २०। नक्षत्र हुए। पौने सात नक्षत्र पुनर्वसुका तीसरा चरण और २०। नक्षत्र उत्तराषाढ़का प्रथम चरण हुआ इसलिए वराहमिहिरके समयमें दक्षिणायन पुनर्वसुके तीसरे चरणके अंतमें और उत्तरायण उत्तराषाढ़के प्रथम चरणके अंतमें होता था। आजकल यह आर्द्राके आरंभमें और मूलके मध्य भागपर होता है। इसलिए यह सहज ही जाना जा सकता है कि

---

१ प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा ॥
याजुषज्योतिष ७; आर्च ज्योतिष, ६

२ —आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्व शास्त्रेषु ॥१॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटाद्यं मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्ष परीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥
बृहत् संहिता, आदित्यचार

प्रगति-शील चिकित्साशास्त्र

[पृष्ठ २८ का शेषांश]

था, परन्तु लक्षणोंका इलाज होता था। रोगोंके कारणका पता लगानेके लिये नये नये परीक्षण किये गये। इसीका परिणाम था—जीवाणु-विज्ञान। पता यह लगाया गया कि रोगोंका कारण कई प्रकारके सूक्ष्म जीवाणु हैं जो विभिन्न रोगोंको उत्पन्न करते हैं। यदि उनको नष्ट कर दिया जाय तो कारणके नष्ट हो जानेसे रोग भी नष्ट हो जायँगे। मलेरियामें कुनीन तथा न्यूमोनियामें एम० बी० ६९३ का व्यवहार इसी आधारपर किया जाता है। जो चिकित्सा रोगके ज्ञात कारणको हटाकर रोगनिवारण करती थी, उस चिकित्सा-प्रणालीका नाम हुआ—Specific treatment। ऐलोपेथीकी यह चरम उन्नति थी। परन्तु वह भी कुछ समय तक ही सफल बन सकी, आगे चलकर वह भी असफल हो गई। स्पष्टीकरणके लिये एक-दो उदाहरण लीजिए—

शरीरमें पूय इत्यादिको उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओंके नाशके लिये Sulphanilamide group का व्यवहार आँख मूँदकर किया जाता है। Sulphapyndine जो बाज़ारमें एम०बी० ६९३ के नामसे प्रसिद्ध है, इसी वर्गकी एक औषध है। पूर्वके सब औषधोंकी अपेक्षा न्यूमोनियामें यह आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाती है। ३६–७२ घण्टेमें ज्वर उतर जाता है। इसका अभीष्ट असर देखनेके लिये आवश्यक है कि इसकी अधिकतम मात्रा ६–१२ गोली दी जाय। अधिक मात्रा इसलिये दी जाती है कि शरीरके प्रत्येक अणु-अणुमें प्रविष्ट होकर न्यूमोनियाके जीवाणुओंको मार दे। परन्तु ज़रा सोचें, जो मात्रा जीवाणुओंके लिये घातक है, क्या वह शरीरके cells पर बुरा प्रभाव न डालेगी? कदाचित् इसका इतना दुष्प्रभाव होता है कि रोगीको श्वास-काठिन्य, वमन आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं; उसका जीवन खतरेमें पड़ जाता है। Sulphapyndine ज्वरको शान्त कर देती है, परन्तु अपने विषैले प्रभावसे शरीरको भी निर्बल बना देती है। क्योंकि इसके द्वारा ज्वरका निराकरण रोगके जीवाणुओंके नाशसे होता है, न कि शरीरमें रोगके प्रति प्रतिशक्ति (immunity) को बढ़ाकर। अतः दुबारा न्यूमोनियाकी आशंका पहलेसे अधिक हो जाती है। अतः शरीरकी जीवनीय शक्ति पूर्वापेक्षा बहुत निर्बल हो गई है।

अगली बात कहनेसे पूर्व एक उदाहरण आवश्यक है। प्रतिदिनके देखनेकी बात है। अफीमची लोग अफीमकी वह मात्रा भी आसानीसे हज़म कर लेते हैं जिसका चतुर्थांश खानेसे ही एक साधारण पुरुषकी मृत्यु हो जाय। संखिया अफीमसे भी अधिक तेज़ ज़हर है। परन्तु अभ्यस्त लोग इसे भी प्रतिदिन खाते हैं। क्योंकि सतत थोड़ी-थोड़ी मात्रा बढ़ानेसे उन्हें यह विष भी सात्म्य हो गया है और बड़ी-से-बड़ी मात्रा सहनेकी शक्ति उत्पन्न हो गई है। जो मनुष्यके बारेमें सच है, वही जीवाणुओंके बारेमें भी सत्य है। लगातार एम० बी० ६९३ के प्रयोगसे एक दिन न्यूमोनियाके जीवाणुओंमें भी इस विषको सहनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है और घातक मात्राको भी वे सहन कर लेते हैं। इस स्टेजपर आकर ऐलोपेथी फेल हो जाती है। जो एम० बी० ६९३ एक समय ३६–७२ घण्टेमें ज्वर उतार देती थी अब उसकी अधिकतम मात्रा भी कोई प्रभाव नहीं दिखाती है। परिणामतः एक नये समासकी खोज की जाती है जो पूर्वसे अधिक तेज़ हो और इसी प्रगति या अन्वेषणका परिणाम होता है एक नया समास जो अब बाज़ारमें 'पेनिसिलीन' के नामसे प्रख्यात है।

यह विगत फरवरी मासमें माता कस्तूरबा पर भी आजमाई गई थी। यह प्रगति यहीं न रुकेगी। इसके असफल होने पर एक नये समासकी ज़रूरत पड़ेगी। यह सिलसिला इसी रूपमें चलता रहेगा।

एक दूसरा उदाहरण है—कुनीनके बारेमें। पिछले तीन-चार वर्षोंमें मलेरियाके कारण भारतमें बहुत मौतें हुई हैं। कुनीनका अभाव भी इसमें कारण है, परन्तु बहुत-से वे भी व्यक्ति जिनको कुनीन प्राप्त हो सकी मलेरियासे न बच सके। मैंने स्वयं कई ऐसे मरीज़ोंका आयुर्वेदके द्वारा उपचार किया है, जिनको मलेरिया था, रक्त-परीक्षामें मलेरिया-पराश्रयी उपस्थित थे। कुनीन दी जाती थी, एक-दो दिनके लिये ज्वर उतर जाता था और फिर कुनीन बन्द करते ही ज्वर प्रारंभ हो जाता था। इस प्रकार लगातार ४, ५ मास डाक्टरोंका इलाज करवानेके बाद भी वे ठीक न हुए। डाक्टर लोग भी इससे सहमत हैं कि कुनीन

मलेरियाकी पुनरावृत्तियों (relapses) को तोड़नेमें प्रायः असफल सिद्ध होती है। कारण कि धीरे-धीरे मलेरियाके पराश्रयी कुनीनके प्रति सात्म्य हो गये हैं। अब वे कुनीन-की अधिकतम मात्राको भी सह सकते हैं—कुनीनके रक्तमें विद्यमान होने पर भी जिन्दा रह सकते हैं। atebrin तथा plasmochin के आविष्कारकी ज़रूरत भी ऊपर कथित कारणोंसे पड़ी। परन्तु एक दिन ये भी निरर्थक हो जायँगे।

ऐलोपेथीका आधार प्रारम्भसे ही गलत होनेसे उसे इन सब असफलताओंका सामना करना पड़ता है। संभव है यह कथन अत्युक्तिपूर्ण तथा अयुक्तिपूर्ण समझा जाय। जिस विज्ञानका शरीर संबंधी ज्ञान—शरीर रचना-विज्ञान, शरीर-क्रिया-विज्ञान-युक्ति तथा तर्कपर ही नहीं परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाणके आधारपर स्थित है, क्या उस सायन्सकी चिकित्साका आधार गलत हो सकता है? विश्वास करना कठिन है। परन्तु इसके उत्तरमें यही कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार रेखागणित तथा बीजगणितमें एक मानित-सिद्धान्त (hypothesis) स्वीकार कर लिया जाता है, और प्राप्त उत्तर उस मानित-सिद्धान्तकी परिधिमें ही सत्य होता है, उसी प्रकार ऐलोपेथीने प्रारंभमें शरीरकी खोज करनेके लिये जिन सिद्धान्तोंका निश्चय कर आगे अन्वेषण प्रारंभ किया उन्हीं सिद्धान्तोंकी सीमाके अन्दर वे ज्ञात परिणाम- शरीरकी रचना तथा क्रिया सम्बंधी—सत्य है। वस्तुतः सत्यकी कसौटी तो चिकित्सा है। यदि चिकित्सामें विफलता मिले तो वे वास्तवमें ठीक नहीं कहे जा सकते।

इसके अतिरिक्त कुछ और उदाहरण लीजिए। आयुर्वेदमें 'अर्जुनत्वक चूर्ण' हृदयकी निर्बलतामें सफलताके साथ व्यवहृत होता है। परन्तु ऐलोपेथिक विश्लेषण विधि-के अनुसार ज्ञात परिणामोंसे पता चलता है कि इसमें ऐसा कोई तत्व नहीं जो हृदयपर प्रभाव करता हो। आयुर्वेदमें विडंगका चूर्ण आन्त्रकृमिमें आशातीत प्रभाव दिखाता है, परन्तु ऐलोपेथीके अन्वेषण इसका विरोध करते हैं। इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जो इस बातको स्पष्ट करते हैं कि ऐलोपेथीकी विश्लेषण विधि कहीं त्रुटि-पूर्ण है।

इन्जेक्शन-चिकित्सा—निःसन्देह इन्जेक्शन चिकित्सा एक सीमा तक उपयोगी है। मरणासन्न व्यक्तिके रक्तमें सीधा औषध पहुँचाकर शीघ्र प्रभाव देख सकते हैं। परन्तु इसका प्रयोग अन्धाधुन्ध किया जाने लगा है। चिकित्सामें इसके कई दोष हैं। मुख द्वारा जो औषध ली जाती है उसे रक्तमें पहुँचनेसे पूर्व कई प्रक्रियाओंमेंसे गुज़रना पड़ता है। अन्तमें रक्तमें उसका वही भाग प्रवेश पाता है जो शरीरके लिये सात्म्य होता है, शेष किट्टके रूपमें बाहर निकल जाता है। परन्तु जो औषध रक्तमें सीधा पहुँचा दी जाती है, उसमें इस बातका ध्यान नहीं रखा जाता। औषधका प्रभाव तीव्रतासे तो होता है, परन्तु क्षणिक। इस औषधमें वे सब तत्व भी उपस्थित रहते हैं जिनको शरीर औषधके रूपमें मुख द्वारा लिये जाने पर मलके रूप-में बाहर निकाल देता। तथा यह रक्तमें एक असात्म्य समासके रूपमें प्रविष्ट होती है, एतदर्थ रक्त इसे एक विजातीय द्रव्यके रूपमें शीघ्र ही स्वेद, मूत्र या श्वास द्वारा निकाल देता है।

भोजन—अन्तिम बात भोजनके बारेमें कहकर समाप्त करता हूँ। भोजनके बारेमें ऐलोपेथीका दृष्टिकोण भी त्रुटि-पूर्ण है। समय था जब 'विटामिन'का नारा ज़ोर पकड़ गया था। डाक्टर लोग प्रायः प्रत्येक रोगका कारण विटा-मिनकी कमी बतलाया करते थे, परन्तु यह भी उतनी सफल न साबित हुई। जिन रोगोंमें ऐलोपेथी विटामिनकी कमी बतलाती है, आयुर्वेद उनकी चिकित्सा उन द्रव्योंके द्वारा करता है जिनके बारेमें ऐलोपेथीका यह अन्वेषण है कि इनकी विटामिन नष्ट हो चुकी है। यथा optic neuritis में त्रिफलाघृतका प्रयोग। यह भी आयुर्वेद-का ऐलोपेथीके मूल-आधारोंपर कुठाराघात है। इस विषय पर बहुत कहा जा सकता है, परन्तु लेख लम्बा हो जानेके भयसे एक बात कहकर समाप्त किया चाहता हूँ।

आयुर्वेदमें भोजन सम्बंधी सिद्धान्त प्राचीन होते हुए भी ऐलोपेथीके सिद्धान्तोंसे कहीं उत्तम है। ऋतु-कालको देखकर भोजन करना, द्रव्यके रस, वीर्य, विपाकको जानकर उनका ग्रहण करना कितना वैज्ञानिक तरीका है निचले उदाहरणसे स्पष्ट हो सकेगा—मैं गुरुकुल कांगड़ीके आयु-र्वेद महाविद्यालयमें पढ़ा करता था। मेरा एक सहपाठी

था जिसे ऐलोपेथीका पर्य्याप्त शौक था और ज्ञान भी था। प्रत्येक बातको वह ऐलोपेथीके विचारसे ग्रहण किया करता था। उसने दिसम्बरकी सर्दियोंमें गन्नेका रस प्रातः १० बजे पीना प्रारंभ कर दिया। हमने बहुतेरा समझाया कि तुम्हें पहले ही आमवातकी शिकायत रहती है, गन्ना शीतवीर्य होता है, कहीं फिर आमवात न जाग उठे। परन्तु उसका कहना था कि गन्नामें ग्लूकोज़ होती है, जो हृदयको बलवान बनाती है। अतएव इसका कोई दोष नहीं। वह पीता ही रहा। दो सप्ताह बाद वास्तवमें उसे 'आमवात' का कोप हो गया जिस कारण कई रोज तक चारपाईपर लेटे रहना पड़ा।

समालोचनाएँ

आंगल-भारतीय महाकोष—संपादक, डाक्टर रघुवीर, एम० ए०, पी-एच० डी०, इत्यादि। भाग १, रसायनशास्त्र पृष्ट १०+२०+६+१००। प्रकाशक, सरस्वती विहार, लाहौर।

इस खंडमें डाक्टर रघुवीरने ६००० रासायनिक शब्दोंका संस्कृत रूपांतर दिया है और उसे देवनागरी, बँगला, तामिल और कन्नड अक्षरोंमें छापा है। कार्य सराहनीय है, परंतु पता नहीं हमारे विद्वानोंको रघुवीरजीके गढ़े शब्द कहाँ तक पसंद आयेंगे। डाक्टर रघुवीरका पुराने हिंदी शब्दोंकी पूर्ण उपेक्षा करना समालोचकको पसंद नहीं आया। Tin के लिये त्रपु, arsenic के लिए नेपाली sulphur के लिए शुल्बारि, zinc के लिए कुप्यातु, sodium के लिए क्षारातु, calcium के लिए चूर्णातु शायद ही चल सकें, और यदि ये शब्द नहीं प्रचलित हो सकेंगे तो अन्य शब्द तो और भी न चल पायेंगे, क्योंकि वे अधिक टेढ़े हैं, जैसे दियासलाई के लिए दीपेषीका और रांगेकी पन्नी (tin-foil) के लिए त्रपु-पर्णाश्मन उदाहरणके लिए नीचे एक स्तंभके सब शब्द दिये जा रहे हैं:—

Sulphured matches शुल्बारीषित इसीका (दीपेषीका)
sulphurate—sulphurize
sulphuration—शुल्बारीयण
sulphurator—शुल्बारीयक, (an apparatus used in sulphurizing) शुल्बारीयण—यंत्र।
sulphuret v. t शुल्बारीयण, (to combine with sulphur) शुल्बारियोजन, (to impregnate with sulphur) शुल्बारि-व्यापन
sulphuretted hydrogen शुल्बारीयित उद्जन।
sulphurize शुल्बा, (to combine or impregnate with sulphur or any of its compounds, specif., to fumigate or bleach with sulphur fumes) शुल्बारि-योजन,—व्यापन - धूमन
sulphurization शुल्बारीयण
tellurize वंगकायन, (to combine with tellurium) वंगक-व्यापन, (to treat with tellurium) वंगक-साधन
tellurised ores वंगकायित अयस्क।

ट्वेंटियथ् सेंचुरी इंगलिश-हिंदी डिक्शनरी, भाग ३। लेखक अथवा संपादक, सुखसंपत्तिराय भंडारी। प्रकाशक, डिक्शनरी पब्लिशिंग हाउस, अजमेर। पृष्ठ-संख्या ३२+१४+२२+१६+६०+६०+७२, जिनमें कई पृष्ठ रिक्त हैं परंतु पृष्ठ-संख्यामें जोड़ लिये गये हैं। बड़ा आकार (७″×९½″)। कपड़ेकी जिल्द। मूल्य १७)।

सुखसंपत्तिरायजीके कोषके दो भाग पहले छप चुके हैं। यह तीसरा भाग है। इसमें (१) शासन (२) लगान, (३) कारखाने, (४) भाषा-विज्ञान, (५) गणित, (६) जीव-विज्ञान और (७) 'प्राकृतिक' (?) विज्ञानपर शब्द हैं। शब्द-संख्या लगभग २०,००० है।

भंडारीजी हिंदीकी विशेष सेवा कर रहे हैं, ऐसी मेरी धारणा थी, परंतु प्रस्तुत खंडको देखकर तो संदेह होता है कि अब भंडारीजी केवल पैसा कमाना चाहते हैं, चाहे हिन्दीकी सेवा हो या नहीं। प्रमाणमें मैं निम्न बातोंको पाठकोंके सम्मुख रखना चाहता हूँ।

(१) काशी नागरी-प्रचारिणी सभाकी हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावलीके गणित-विज्ञानमेंसे ही शब्दोंको चुनकर भंडारी-जीने अपने कोषमें दिया है और संभवतः इस विचारसे कि उनका कोष नागरी-प्रचारिणी सभाके कोषकी प्रति-लिपि मात्र न जान पड़े, सभाके कोषको उन्होंने छिन्न-भिन्न करके चार खंडोंमें छापा है—अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और चलन-कलन।

परंतु इस तोड़-मरोड़से पाठकको कितनी असुविधा होगी इसको भंडारीजीने संभवतः ध्यानमें नहीं रक्खा। गणितके शब्द मुहरबंद विभागोंमें बँटे नहीं रहते—एक ही शब्द अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और चलन-कलन सभी विभागोंमें प्रयुक्त हो सकता है। ऐसी अवस्थामें पाठक बेचारा किसी शब्दको कहाँ खोजेगा? अवश्य ही उसका बहुत-सा समय बेकार नष्ट जायगा। मेरे विचारमें तो वैज्ञानिक कोषोंमें गणितके विविध खंडोंके ही नहीं, विज्ञान-के सभी विभागोंके शब्दोंको एक ही क्रममें देना चाहिए, क्योंकि एक ही शब्द गणितके अनेक खंडोंमें, भौतिक विज्ञान, रसायन, जंतुशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, चिकित्साशास्त्र आदि सभीमें प्रयुक्त हो सकता है। परंतु गणितके शब्दोंको प्रचलित कोषसे लेकर अलग-अलग खंडों-में छापना पाठकोंके प्रति निरा अन्याय है।

इस विभाजनमें कुछ शब्द अशुद्ध स्थानोंमें पहुँच गये हैं, कुछ शब्द कई स्थानोंमें आ गये हैं और बहुत-से शब्द छूट भी गये हैं। केवल छोटा-सा उदाहरण पर्याप्त होगा। सभाके कोषमें A से Add तकमें ५८ शब्द हैं। इनमेंसे भंडारीजीके कोषमें कुल २३ शब्द आये हैं। एक शब्द दो बार आया है, एक बार ज्यामितिमें, एक बार चलन-कलन में। इससे स्पष्ट है कि भंडारीजीके कोषका गणित-संबंधी भाग सभाके कोषसे कहीं अधिक निम्न श्रेणीका है। इस बातको देखते हुए भंडारीजीके कार्यकी सराहना अब हम नहीं कर सकते।

(२) कोषका मूल्य बहुत अधिक रक्खा गया है। हम जानते हैं कि काग़ज़का दाम इन दिनों पहलेकी अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। छपाई भी बहुत महँगी हो गयी है। आटे-दालका भी दाम बढ़ गया है, जिसके कारण लेखक तथा प्रकाशकको पहलेकी अपेक्षा अधिक लाभ होना अनिवार्य है। तो भी २८० पृष्ठकी पुस्तकका दाम १७) होना मेरी रायमें अक्षम्य है। और आश्चर्य तो यह है कि भंडारीजीको दूसरोंसे आर्थिक सहायता भी मिली है।

विज्ञान—वार्षिक मूल्य ३)

प्रधान सम्पादक—डा० सन्तप्रसाद टंडन

पता—

श्रीयुत ....

....

....

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

************************:************************

भाग ६०	धनु, सम्वत् २००१ दिसम्बर १९४४	संख्या ३

************************:************************

वनस्पति तेल

डाक्टर रामदास तिवारी, एम्० एस्-सी०, डी० फिल्०,
रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

गत चालीस या पचास वर्षों के अन्दर रसायन विज्ञान की बहुत तीव्र उन्नति हुई है। रसायनकी इस उन्नतिसे हर एक उद्योग को कुछ न कुछ लाभ अवश्य हुआ है। रसायन शास्त्रके प्रत्येक विभाग में अनुसन्धानों द्वारा अनेक नई नई बातें मालूम की गई हैं जिनका अन्य वैज्ञानिक विषयों तथा उद्योगों पर बहुत ही महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। तेलोंकी रासायनिक तथा औद्योगिक उन्नति भी इसी प्रभावका फल है।

मनुष्यके दैनिक जीवनमें तेलोंका महत्व कुछ कम नहीं है। अनेक उद्योगोंमें भी इनके बिना काम नहीं चल सकता। साबुन, मोमबत्ती, ग्लिसरीन, रंगसाजी, वार्निश, बनस्पति घी तथा अनेक दवाइयोंके बननेमें इनका बहुत प्रयोग होता है। आजकल नकली रबड़ बनाने तथा कुछ विशेष प्रकारके इंजन चलानेमें भी इनका महत्व बढ़ता जा रहा है। मनुष्यों तथा पशुओंके आहारका भी यह आवश्यक अंग हैं। अतः किसी भी देश अथवा राष्ट्रकी उन्नति वहाँके पैदा होने वाले तेलोंकी मात्रा पर भी निर्भर है। देशकी जनसंख्या तथा तेलोंके नये नये उपयोगोंके मालूम होनेके साथ साथ तेलोंकी आवश्यकता भी बढ़ती जाती है।

पृथ्वी तथा पशुओंसे प्राप्त होने वाले तेल तथा चरबी (fat) की मात्रा तो सीमित है परन्तु वनस्पतियों द्वारा मिलने वाले तेलोंकी मात्रा आवश्यकतानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है। भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ आवश्यकता पड़ने पर उन वस्तुओंकी खेती बढ़ाई जा सकती है जिनसे तेल प्राप्त हो सकते हैं। यहाँका जल-वायु ऐसा है कि इस देशमें न होने वाले पेड़ भी यहाँके किसी न किसी हिस्से में आसानी से लगाये जा सकते हैं। संसारमें सबसे अधिक तिलहन पैदा करने वाला देश चीन है; भारतवर्ष का स्थान दूसरा है।

युद्धकालीन परिस्थितियोंके कारण तेलोंकी आवश्यकतायें बढ़ती ही गई हैं। अतः गत कुछ वर्षोंमें तिलहनकी खेती की वृद्धि हुई है। इसके साथ ही साथ तेल सम्बन्धी अनुसन्धान भी अब बड़े पैमाने पर किये जा रहे हैं जिससे इन्हें अधिकसे अधिक लाभदायक बनाया जा सके। इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि इस उद्योगका भविष्य बहुत ही उज्वल है।

तेलों के सम्बन्ध में और बातें लिखने के पहले यह बतला देना आवश्यक है कि यह तीन प्रकारके होते हैं—

(१) खनिज तेल (mineral oils) वह तेल हैं जो पृथ्वीके गर्भसे निकलते हैं, उदाहरणार्थ पेट्रोल या मिट्टीका तेल।

(२) उड़नशील तेल (essential or volatile oils) वह तेल हैं जो रखने पर उड़ जाते हैं। अधिकांश सुगन्धित फूलों, पत्तियों अथवा जड़ोंसे भपके द्वारा यह निकाले जाते हैं। जैसे लौंग का तेल, नीबू, खस या केवड़ेके तेल इत्यादि।

(३) स्थिर तेल (fixed or fatty oils) वह हैं जो रखने पर नहीं उड़ते और दो प्रकारके पदार्थोंसे प्राप्त हो सकते हैं (अ) जानवरोंसे (ब) वनस्पतियों से।

उपर्युक्त वर्णित तीनों प्रकारके तेल एक दूसरेसे बिलकुल भिन्न होते हैं। यहाँ पर हमारा सम्बन्ध उन्हीं तेलोंसे है जिनको स्थिर तेल कहते हैं और जो वनस्पतियों से प्राप्त किये जाते हैं। इन्हें हम वनस्पति तेल कहते हैं।

तेल तथा चर्बी (fat) में कोई रासायनिक अंतर नहीं है। अंतर केवल भौतिक गुणोंका ही है और वह यह है कि साधारण तापक्रम पर चर्बी ठोस रूपमें तथा तेल द्रव रूपमें होते हैं। तापक्रमका अन्तर होनेसे एक ही पदार्थको हम एक देशमें चर्बी तथा दूसरे देशमें तेल कह सकते हैं। एक ही देशमें कोई पदार्थ भिन्न भिन्न ऋतुओंमें तापक्रमके अनुसार चर्बी या तेल हो सकता है। उदाहरणार्थ नारियलका तेल भारतवर्ष में जाड़ेमें चर्बी (fat) तथा गर्मीमें तेल कहा जा सकता है।

चर्बी अथवा तेल एक प्रकारके कार्बोनिक (organic) पदार्थों के समूहको कहते हैं जो चर्बीले तेजाब (fatty acids) तथा ग्लिसरीनके आपसमें ऐस्टर (ester) रूपमें मिलनेसे बने हैं। ग्लिसरीनमें तीन हाइड्रोक्सी समूह (hydroxy groups) होते हैं जो चर्बीले तेजाबोंके तीन अणुओं (molecules) के साथ मिल कर पानीके ३ अणु निकाल कर एक नया पदार्थ बनाते हैं जिसको ग्लिसराइड (glyceride) कहते हैं। उदाहरणार्थ, ग्लिसरीन और स्टीयरिक तेजाब मिलकर ट्राई स्टीयरीन नामक नया पदार्थ बनता है।

$$\begin{array}{ll} CH_2.OH & HOOCC_{17}H_{35} \\ | & \\ CHO.H + & HOOCC_{17}H_{35} \\ | & \\ CH_2.OH & HOOCC_{17}H_{35} \end{array}$$

ग्लिसरीन ३ अणु स्टीयरिक तेजाब

$$\begin{array}{ll} & CH_2O.OCC_{17}H_{35} \\ & | \\ = & CHO.OCC_{17}H_{35} \quad +3H_2O \\ & | \\ & CH_2O.OCC_{17}H_{35} \end{array}$$

ट्राईस्टीयरीन पानी
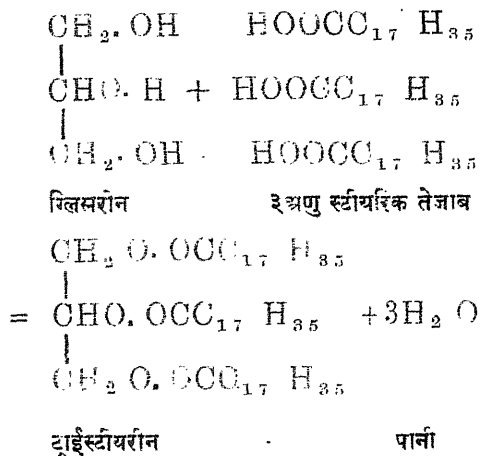
बनस्पति तेलोंके ग्लिसराइडोंमें पाये जाने वाले चर्बीले तेजाबोंमें लारिक (Lauric $C_{11}H_{23}COOH$), मिरिस्टिक (myristic $C_{13}H_{27}COOH$), पामिटिक (palmitic $C_{15}H_{31}COOH$), स्टीयरिक (stearic $C_{17}H_{35}COOH$), बेहिनिक (behenic $C_{21}H_{43}COOH$), लिगनोसेरिक (lignoceric $C_{23}H_{47}COOH$), ओलीक (oleic $C_{17}H_{33}COOH$), लिनोलिक (linoleic $C_{17}H_{31}COOH$), तथा लिनोलेनिक (linolenic $C_{17}H_{29}COOH$) प्रधान हैं।

बनस्पति तेल पेड़ोंके लगभग प्रत्येक भागमें पाये जाते हैं परन्तु बीजों, फलों तथा फूलों में यह मुख्यतः होते हैं। पेड़के प्रारंभिक जीवन तथा वृद्धिके समय यह उनके खाद्यका काम देते हैं। अधिकांश वैज्ञानिकोंका मत है कि यह शर्करीय-पदार्थों (carbohydrates) से बनते हैं। यह देखा गया है कि जैसे जैसे शर्करीय पदार्थों की मात्रा कम होती जाती है, तेलकी मात्रा बढ़ती जाती है। उदाहरणार्थ बादामके बीजोंमें पकनेके पहले शर्करीय पदार्थों की मात्रा तेलकी मात्रासे कहीं अधिक होती है परन्तु जब वह पूर्ण रूपसे पक जाते हैं तो ठीक इसका उल्टा होता है अर्थात तेलकी मात्रा शर्करीय पदार्थों की मात्रासे अधिक हो जाती है। कच्चे तथा पक्के बीजोंके बीचकी अनेक अवस्थाओंमें उनका तेल निकालकर अध्ययन करनेसे यह मालूम हुआ है कि पहले तृप्त तथा अधिक भारके चर्बीले तेजाब बनते हैं, अतृप्त तथा कम भारके बाद में। चर्बीले तेजाब तथा ग्लिसरीनका संगठन लाइपेज़ (lipase) नामक एन्ज़ाइम (enzyme) के द्वारा होता है। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि यही लाइपेज तेलके ग्लिसराइडों को चर्बीले तेजाब तथा ग्लिसरीनमें विभाजित भी कर सकता है। इस क्रियाको जल-विभाजन (hydrolysis) कहते हैं। एक या दो चर्बीले तेज़ाबों को छोड़कर जिनके अस्तित्वमें कुछ संदेह भी है, तेल में पाये जाने वाले अधिकांश चर्बीले तेज़ाबोंमें कारबन (carbon) के परमाणुओं (atoms) की संख्या सम होती है।

तेलोंका रासायनिक संगठन उनके पैदा होने वाले स्थान की जलवायु तथा अन्य परिस्थितियों पर भी निर्भर है। गर्म स्थानोंमें पैदा होने वाले तेलोंमें तृप्त चर्बीले तेज़ाब अधिक होते हैं और सर्द स्थानोंमें होने वाले तेलोंमें अतृप्त। अतः सूखने वाले तथा कम सूखने वाले तेल अधिकांश

ठंडे देशोंमें उत्पन्न होने वाले बीजोंमें पाये जाते हैं और न सूखने वाले तेल गर्म देशोंमें पैदा होने वाले बीजोंमें।

वनस्पति विज्ञानके अनुसार सभी पेड़ कुछ जातियों (families) में बाँट दिये गये हैं। यह देखा गया है कि एक ही जातिमें होने वाले पेड़ोंके बीजोंके तेलोंमें अधिकांश एक ही प्रकारके चर्बीले तेज़ाब पाये जाते हैं। यह समता यहाँ तक पाई जाती है कि कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि चर्बीले तेज़ाबोंके आधार पर भी वृक्षों का वर्गीकरण किया जा सकता है। यह भी देखा गया है कि एक विशेष समूहमें कोई चर्बीला तेज़ाब बहुतायतसे पाया जाता है अन्यमें नहीं। उदाहरणार्थ पामी (palmae) जातिके बीजोंके तेलोंमें लारिक नामक तेज़ाब अवश्य होता है। इसी प्रकार मिरिस्टिीसी (myristiceae) जातिके बीजोंके तेलोंमें मिरिस्टिक तेज़ाब होता है।

वनस्पति तेलोंका वर्गीकरण कई प्रकारसे किया जा सकता है। अधिकांश लोग इन्हें तीन समूहोंमें बाँटते हैं

(१) सूखने वाले drying

(२) कम सूखने वाले semidrying

(३) न सूखने वाले nondrying

आयोडीन संख्यासे इस बात का पता लग जाता है कि तेल किस समूहका है। जिन तेलोंकी आयोडीन संख्या १३० के ऊपर होती है वह सूखने वाले जिनकी १०० वा १३० के बीचमें होती है वह कम सूखने वाले और जिनकी १०० से कम होती है वह न सूखने वाले तेल होते हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है तेल चर्बीले तेज़ाबोंके ग्लिसराइड होते हैं। ग्लिसरीनमें ३ हाड्रोक्सी समूह होते है अतः एक ही चर्बीले तेजाबसे हमें तीन प्रकारके ग्लिसराइड मिल सकते हैं।

$$(१)\quad \begin{array}{l} CH_2\,OH \\ | \\ CHOH \\ | \\ CH_2\,O\,\boxed{H + HO}\,OCR \end{array} \quad = \quad \begin{array}{l} CH_2\,OH \\ | \\ CHOH + H_2\,O \\ | \\ CH_2 \cdot OOCR \end{array}$$
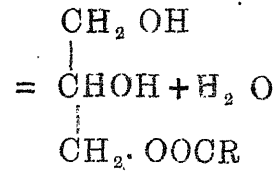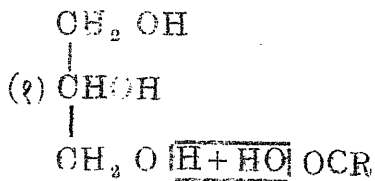
इसमें चर्बीले तेजाब का एक अणु ग्लिसरीनके १ अणु के साथ इस प्रकार मिलता है कि एक ही हाइड्रोक्सी समूह ऐस्टर बनाता है बाकी दो खाली रहते हैं। इस प्रकारके ग्लिसराइडको मानो ग्लिसराइड (monoglyceride) कहते हैं।

$$(२)\quad \begin{array}{l} CH_2\,OH \\ | \\ CHO\,\boxed{H + HO}\,OCR \\ | \\ CH_2\,O\,\boxed{H + HO}\,OCR \end{array} \quad = \quad \begin{array}{l} CH_2\,OH \\ | \\ CHO.\,OCR + 2\,H_2\,O \\ | \\ CH_2\,O.\,OCR \end{array}$$
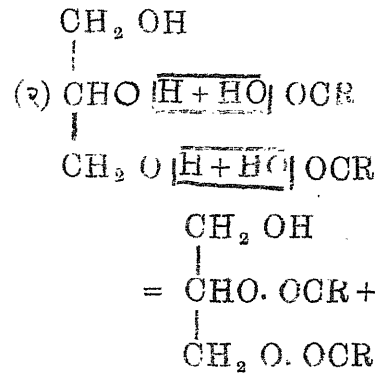
इसमें चर्बीले तेजाबके २ अणु ग्लिसरीनके एक अणुके साथ इस प्रकार मिलते हैं कि दो हाइड्रोक्सी समूहोंके साथ ऐस्टर बनता है, तीसरा खाली रहता है। इनको डाइग्लिसराइड (diglyceride) कहते हैं।

$$(३)\quad \begin{array}{l} CH_2\,O\,\boxed{H + HO}\,O\,C.\,R \\ | \\ CHO\,\boxed{H + HO}\,OC.\,R \\ | \\ CH_2\,O\,\boxed{H + HO}\,OC.\,R \end{array} \quad = \quad \begin{array}{l} CH_2\,O.\,OC.\,R \\ | \\ CHO.\,OC.\,R + 3\,H_2\,O \\ | \\ CH_2\,O.\,OC.\,R \end{array}$$
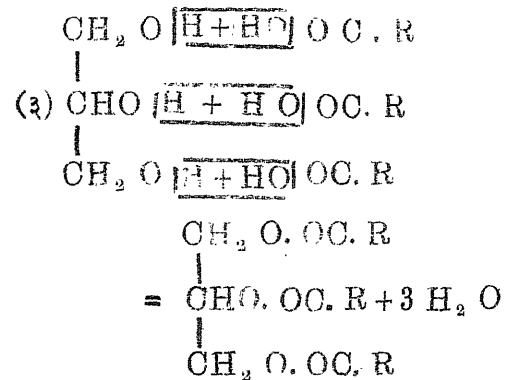
इसमें चर्बीले तेज़ाबके ३ अणु ग्लिसरीनके एक अणु

[शेषांश पृष्ठ ५२ के पहले स्तम्भके नीचे]

के तीनों हाइड्रोक्सी समूहोंके साथ मिलकर ऐस्टर बनाते हैं और कोई भी हाइड्रोक्सी समूह खाली नहीं रहता। इनको ट्राईग्लिसराइड कहते हैं।

प्रकृतिमें केवल ट्राई ग्लिसराइड ही बनते हैं, मानो या डाई ग्लिसराइड ताज़े तेलोंमें नहीं पाये जाते। संभव है कि पुराने तेलोंमें बहुत दिन रक्खे रहनेके कारण जल-विभाजन क्रियासे यह कुछ अंशमें बन जाते हों।

ट्राई ग्लिसराइड २ प्रकारके हो सकते हैं। एक तो वह जिनमें एक ही चर्बीले तेजाबके ३ अणु ग्लिसरीनके साथ ऐस्टर रूपमें मिले हों जैसे ट्राई पामिटीन (tripalmitin) इत्यादि। इनको साधारण ट्राईग्लिसराइड (simple Triglycerides) कहते हैं। दूसरे वह जिनमें दो या तीन चर्बीले तेजाबोंके ३ अणु ग्लिसरीनके एक अणु के साथ मिलकर ऐस्टर बनाते हैं जैसे पामिटो डाई स्टीयरीन या पामिटो स्टीयरो ओलीन। इनको मिश्रित ट्राई ग्लिसराइड (mixed triglycerides) कहते हैं।

कुछ वर्ष पहले तक लोगों का विश्वास था कि तेलोंमें साधारण ट्राई ग्लिसराइड ही होते हैं परन्तु गत दस पन्द्रह वर्षोंके अन्दर किये गये नवीन अनुसन्धानोंसे यह धारणा गलत सिद्ध की जा चुकी है। प्रकृतिमें साधारण ट्राई ग्लिसराइड बहुत ही कम होते है, यथा संभव मिश्रित ग्लिसराइड ही पाये जाते हैं। साधारण ट्राई ग्लिसराइड तभी बनते हैं जब मिश्रित ग्लिसराइड बनना किसी प्रकार भी संभव नहीं रह जाता। इस विषयमें आगे चलकर विशेष विवरणके साथ विचार किया जायगा।

भारतकी खेतीमें बेकार वस्तुओं की उपयोगिता

[लेखक—डा० हीरालाल दुबे, एम० एस-सी; डी० फिल]

प्रोफेसर बाबा करतार सिंह, एस-सी० डी० के सभापतित्वमें डाक्टर साम हिगिनबाटमने 'भारतकी खेतीमें बेकार वस्तुओंकी उपयोगिता' पर एक बड़ा मनोरंजक और लाभदायक भाषण इलाहाबाद यूनीवर्सिटीकी रासायनिक परिषदमें दिया था जिसका सारांश विज्ञानके पाठकोंके लाभके लिए यहाँ दिया जाता है।

डा० हिगिनबाटमने कहा कि भारतका प्रधान व्यवसाय खेती है और इस ओर ध्यान देना प्रत्येक हिन्दुस्तानीका कर्तव्य है। ज़मीनसे जितनी अधिक उपज हो सके उतना ही अच्छा है। उन्होंने बतलाया कि इस देशकी उपजाऊ ज़मीनमेंसे तीन चौथाई ऐसी है जिसमें कोई सुधार नहीं किया गया है। सुधारसे केवल उपज शक्ति ही बढ़ानेसे मतलब नहीं है वरन् यह भी कि फसल होने पर उसे आसानीसे बाज़ारमें बेचा भी जा सके। मध्यप्रांत और मध्यभारतमें हज़ारों एकड़ ज़मीन पड़ी हुई है जिसमें खेती नहीं की जाती। इसका कारण केवल यही है कि इस ज़मीनको खेतीके लायक नहीं बनाया गया, क्योंकि सिंचाई आदिके लिए कोई सुभीता नहीं है और रेल या सड़कका भी अभाव है जिससे चीज़ें बाज़ारमें आसानीसे बेची नहीं जा सकतीं। यदि ऐसी लाखों एकड़ ज़मीनका जो भारतमें बेकार पड़ी है, सुधार किया जाय और वैज्ञानिक ढंगसे खेती की जाय तो फिर हमें किसी तरहका डर न होना चाहिए कि हम देशकी बढ़ती हुई जनसंख्याके खानेका प्रश्न कैसे हल करेंगे।

डाक्टर साहबने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतकी खेतीके दो मुख्य अङ्ग सिंचाई और खाद हैं। इन दोनोंके बिना खेती असम्भव है। सिंचाईके लिए पानी द्वारा बिजली पैदा करनेका उपाय अच्छा है। बड़े-बड़े पानीके कुण्ड ख़ास-ख़ास जगहों पर बनाए जा सकते हैं जिनसे केवल बिजली ही नहीं मिलेगी वरन् साथ ही साथ वह पानी भी सिंचाईके काममें आ सकेगा। खादके विषयमें उन्होंने कहा कि बड़ी खुशीकी बात है कि बड़ी मात्रामें रासायनिक खाद बनानेका उपाय भारतमें ही होने जा रहा है। उनकी रायमें रासायनिक खादमें घास पत्ती और गोबर आदिकी भी खाद मिलाकर काममें लानेसे फसलमें अधिक बढ़ती होती है। केवल रासायनिक खादमें उतनी अच्छी फसल नहीं होती। गोबर तो खादके काम आता ही है परंतु गाय भैंसोंके मूत्रका भी उपयोग खादके रूपमें हो सकता है यदि उसे ठीक प्रकारसे काममें लिया जावे। अभी तक जो मूत्र बेकार ही जाता है, ख़ासकर गोशालोंमें,

वह बहुत अच्छा खादका काम दे सकता है। जहाँ पर गाएँ, भैंसे बांधी जाती हैं वहाँ यदि पत्तियाँ बिछा दी जायँ और उनका मूत्र इनमें सोख जाय तो मूत्रमें भींगी हुई इन पत्तियोंसे अच्छी खाद बन सकती है।

दूसरी बहुत ही उपयोगी खाद मनुष्योंका मल है। परन्तु बड़ी मात्रामें यह पदार्थ बेकार ही जाता है और इसका उपयोग ठीक प्रकारसे नहीं किया जाता। गाँवोंमें स्त्री पुरुष दिशा फ़रागतके लिए खेतोंमें जाते हैं। परन्तु इस मलका बहुत-सा हिस्सा पशु और पक्षी ही ख़तम कर देते हैं और दुर्गंध भी फैलती है। कुछ वर्षाके पानीमें बह जाता है और कुछ सूखते-सूखते हवामें मिलकर उड़ जाता है। सबसे अच्छी रीति यह है कि खेतोंमें छोटी छोटी खाइयाँ बनाकर उसमें मल डालकर ऊपरसे मिट्टीसे ढंक दिया जाय। परन्तु यदि यह अच्छा न समझा जाय तो खेतोंमें फुट डेढ़ फुट गहरी खाई खोदकर उसकी मिट्टी अगल बगल चढ़ा दी जाय और एक किनारेसे उसी नाली-में पाखानेके लिए बैठा जाय। फिर मलको अगल बगलकी मिट्टीसे ढक दिया जाय। ऐसा करनेसे मलका सभी अंश खेतमें मिल जायगा और किसी प्रकार बेकार नहीं जायगा और गन्दगी नहीं फैलेगी। यह बहुत ही स्वाभाविक रीति है जिसे कुत्ते बिल्ली आदि पशु अपनी सहजबुद्धिसे सदैव करते हैं।

फिर उन्होंने पशुओंकी ओर ध्यान दिलाया और बत-लाया कि हमारे पशुओंको पेट भर भोजन नहीं मिलता और इस कारण उनकी दूधकी मात्रा भी बहुत कम होती है। दूसरे देशोंको देखते हुए भारतवासियोंको तो दूध पीने को मिलता ही नहीं और यह एक कारण है जिससे आज हम लोग निर्बल और स्वास्थ्यहीन हो रहे हैं। यदि भारत-वासी बलवान और स्वस्थ होना चाहते हैं तो उन्हें सेर सवा सेर दूध हर रोज़ पीना चाहिए। परन्तु यह तभी संभव है जब दूधकी मात्रा जितनी आजकल उत्पन्न होती है उसकी कमसे कम चौगुनी या पंचगुनी बढ़ायी जाय। इसके केवल दो ही उपाय हो सकते हैं, या तो गायों भैंसोंके दूधकी मात्रा बढ़ाई जावे या पशुओंकी बढ़ती की जावे।

दूधकी मात्रा बढ़ानेके लिए गउओंको पेट भर भोजन मिलना चाहिए। डा० हिगिनबाटमने कहा कि इसके लिए चरागाहका रखना अधिक उपयोगी नहीं है क्योंकि इसमें बहुत-सी ज़मीन जिसमें अच्छी खेती हो सकती है केवल चाराके ही लिए छोड़ दी जाती हैं। यदि इसमें खेतीकी जाय तो नाजके साथ ही साथ चारा भी हो सकता है। चरागाहोंमें मक्का, जुवार आदि बोनेसे करीब तीन गुना अधिक चारा मिल सकता है और साथ ही अनाज भी पैदा हो जाता है। यदि भारतवर्षके चरागाहोंका उपयोग इस प्रकार किया जाय तो भारतके मनुष्यों व जानवरोंके भोजनका प्रश्न भी बहुत कुछ हल हो सकता है।

पशुओंकी संख्या बढ़ानेका प्रश्न ध्यान देने योग्य है। इसके लिए अच्छी नसलके विदेशी साँड लाने चाहिए जिससे दूधकी मात्रा भी बढ़ेगी और गउओंकी नसल भी अच्छी होगी। इसपर कुछ प्रयोग नैनी एग्रीकलचरल इनस्टीट्यूटमें किए गए हैं और उनमें सफलता प्राप्त हुई है। ख़ासकर कृत्रिम गर्भाधान क्रिया (Artificial insemination) से संख्या और अच्छी नसलमें बहुत ही जल्दी बढ़ती हो सकती है। इस क्रिया द्वारा एक ही बारमें पाँच गउओंको गर्भ रह जाता है परन्तु स्वाभाविक क्रियासे तो एक ही गाय गाभिन हो सकती है।

दूसरी वस्तु जो बेकार जाती है वह है पशुओंका खून। क़साईखानोंका ख़ून नालियोंमें बहा दिया जाता है परंतु इसका बहुत ही अच्छा उपयोग हो सकता है जो एग्री-कलचरल इनस्टीट्यूट नैनीमें किया गया है। ख़ूनको गरम करके उसका पानीका हिस्सा जिसे 'सीरम' कहते हैं अलग कर लिया जाता है और वह खादके काम आता है। बचा हुआ हिस्सा जो कि ख़ूनका छोथड़ा होता है पेर लेते हैं जिससे बचा हुआ पानी भी निकल आता है। इस प्रकार ख़ूनकी खली निकल आती है जो रूपमें सरसों या बिनौलेकी खलीके समान होती है। इस ख़ूनकी खलीमें प्राणी सम्बन्धी 'प्रोटीन' खूब होता है और इस खलीको चारामें मिलाकर देनेसे बछड़ा बहुत ही हृष्ट-पुष्ट होता है। चार पाँच दिन बछड़ेको माताका दूध मिलता है फिर दस दिन तक ऊपरी दूध पिलाया जाता है। पंद्रह दिनके बाद चारामें यह खली दी जाती है। इससे न केवल बछड़े ही बलवान और पुष्ट होते हैं वरन् काफ़ी मात्रामें दूध

मनुष्योंको मिल जाता है जो अभी बछड़े ही पी जाया करते हैं। एक और लाभ है कि इस खलीके खाने वाले बछड़े उन बछड़ोंसे अधिक अच्छे होते हैं जो दूध या चारा पर ही पाले जाते हैं।

अन्तमें डा० हिगिनबाटमने भारतके नौजवानोंसे आशा की कि वे खेतीमें वैज्ञानिक ढंगसे सुधार करके भारतकी आर्थिक दशा सुधारनेमें सफल होंगे।

अन्तमें प्रोफेसर बाबा करतार सिंहने डा० हिगिनबाटमको धन्यवाद देते हुए बतलाया कि हमारे देशमें ऐसी कई चीज़ें बेकार जाती हैं जिनका उपयोग हो सकता है। तारकोल सी बेकार चीज़ें आज बहुत ही उपयोगी हैं जिससे सैकड़ों प्रकारके रासायनिक पदार्थ बनाए जा रहे हैं। शीरा भी बड़े काममें आ सकता है। ऐसी ही कई चीज़ोंका सदुपयोग करनेसे भारतकी कलाकौशल और आर्थिक दशामें बहुत वृद्धि हो सकती है।

वृहस्पति

[लेखक · पं० चन्द्रशेखर शुक्ल सिद्धान्त विनोद]

[सभी वैज्ञानिक फलित ज्योतिषको अवैज्ञानिक मानते हैं और बहुतोंका इसमें विश्वास नहीं है। परन्तु जो विश्वास रखते हैं उनके विचारके लिए यह लेख प्रकाशित किया जा रहा है। —सम्पादक]

शनैश्चरके बाद ही वृहस्पतिका स्थान अथवा कक्षा है। यह ग्रह सब ग्रहोंसे बड़ा है। हमारी पृथ्वीसे प्रायः ११ गुना व्यासमें और १३०० गुना आयतनमें बड़ा है।

पृथ्वीसे लेकर नेपचून तक सातों ग्रहोंको और उनके सब उपग्रहों (चन्द्रों) को यदि फोड़कर एक गोला बनाया जाय तो वह भी आयतनमें वृहस्पतिसे छोटा होगा।

पुराणों तथा प्राचीन आर्ष ग्रन्थोंमें इसे विश्वका बड़ा ही कल्याणकारी ग्रह माना गया है। यूनान तथा रोमके प्राचीन ग्रन्थों (Greek & Roman Mythology) में इसके अनेक महत्वपूर्ण वर्णन पाये जाते हैं।

अँग्रेजीमें इसका नाम 'जुपिटर' है। हिन्दू शास्त्रोंमें जैसे इन्द्रको देवताओंका राजा, ऐरावत हाथीको उनका वाहन और वज्र आयुध कहा गया है, इसी प्रकार वहाँके ग्रन्थोंमें जुपिटरको देवताओंका राजा, ईगल चिड़िया वाहन, और आयुध वज्र (Thunder) कहा गया है। जुपिटरकी स्त्रीका नाम 'जूनो' है।

ग्रीसके निवासी इसकी मूर्त्तिकी पूजा करते थे और रोम निवासी भी इसको बड़े उच्च कोटिका ग्रह मानते थे। इसे स्वर्गीय विमल ज्योतिकी खान, वज्रपात, प्रबल बात शिलावृष्टि एवं अतिवृष्टिका निरोधक, ऋतुओंकी श्रृङ्खला, समयोचित सुवृष्टि, प्रकाश एवं गरमीका साम्यकारक सात्विक भाव, दिव्यज्ञान तथा अध्यात्म ज्योतिकी खान कहा गया है।

इसकी कक्षा शनैश्चर तथा मंगलकी कक्षाके मध्यमें है, अतः शनैश्चरकी शीतलता तथा रूक्षताको और मंगलकी तीव्रता तथा उष्णताको निरोध करता है। यहां तक देखा गया है कि कोई पुच्छलतारा (Comet) यदि इसके समीपसे निकलता है तो, अपनी प्रबल आकर्षण शक्तिके द्वारा या तो उसे अपनी तरफ खींच लेता है, या हमेशाके लिये उसका मार्ग ही बदल देता है। दूसरे ज्योतिष्कोंके साथ संघर्ष होनेका मौका ही नहीं रहता! इन सब बातोंसे जगतका बड़ा कल्याणकारी ग्रह समझा जाता है।

उत्पत्ति—हिन्दू पुराणोंमें, तथा सिद्धान्तोंमें इसकी जो जन्म कथाएं पाई जाती हैं, ये सब विसंवादी हैं एक दूसरेसे मेल नहीं खातीं। उत्पलोद्धृत पराशर तथा महाभारतके वनपर्व एवं अनुशासन पर्वमें इसे अंगिराका पुत्र और शुभा नाम्नी माताके गर्भसे उत्पत्ति लिखी है। परन्तु यह बात किसी एक प्रकाण्ड ज्योतिष्क पिण्ड पर लागू नहीं हो सकती!

ऋग्वेद तथा अथर्व संहिता में जो बात पाई जाती है, वह युक्ति युक्त है। उनमें लिखा है कि वृहस्पति अति उच्च स्थान महान् आकाशमें उत्पन्न हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा है कि वृहस्पति तिष्या (पुष्या) के पुत्र हैं, पुष्या उनकी माता है।

सुन्दर पुष्या नक्षत्रमें जन्म, और वहाँसे विक्षिप्त हो अनंत कोटि मील दूर स्थित इस सौर जगतके चंगुलमें आना भी सम्पूर्ण असम्भव बात है। क्योंकि, नक्षत्रोंकी

दूरी इतनी अधिक है कि, वह बहुत बड़ी संख्यामें लिखी जा सकती है। उसकी गणना प्रकाश-वर्षोंमें होती है। हाँ! यह बात सम्भव है कि, किसी समय गुरु और पुष्य नक्षत्रकी भेदयुति (Transit) हुई होगी। युतिके बाद बृहस्पतिको क्रमशः खिसकते देख दर्शकोंने पुष्याका पुत्र मान लिया होगा। मुख्यतः सब ग्रह उपग्रहोंकी सृष्टि जैसे हुई है, बृहस्पतिकी भी वैसे ही हुई होगी। इस विषय पर अधिक सोचनेसे बुद्धि चक्करमें पड़ जाती है। सीमित ज्ञान विशिष्ट मनुष्यका ज्ञान अनन्तज्ञान भण्डार तथा असीम विश्व साम्राज्यका पता कैसे पा सकता है!

आकार प्रकार—इसका आकार सब ग्रहोंकी तरह गोल है। केन्द्रप्रसारिणी शक्तिके प्रभावसे मध्य भाग कुछ मोटा हो गया है और दोनों मेरु प्रान्त कुछ चिपटे हैं। मेरु प्रान्तका व्यास करीब ८२८०० मील और विषुव प्रदेशका व्यास ८८७०० मील है। इसलिए यह हमारी पृथ्वीके व्याससे ११ गुना अधिक बड़ा है।

दूरी और प्रदक्षिणा काल :—सूर्य केन्द्रसे इसकी मध्यम दूरी ४८ करोड़ ३३ लाख मील है। जब यह पृथ्वी के अति निकट आ जाता है तब पृथ्वीसे इसकी दूरी प्रायः ३६ करोड़ मील रह जाती है। यह ४३३२'५८८ दिनमें सूर्यकी एक प्रदक्षिणा कर लेता है। इससे अधिक जानकारी फलित ज्योतिषके लिये अनावश्यक है।

पारिभाषिक संज्ञायें और नाम—बृहस्पति, देव गुरु, इज्य, जीव, वाचस्पति, वचसाम्पति, चित्रशिखण्डिज, आंगिरस, पुष्यः, सुरज्येष्ठ, देवमंत्री, देवकवि, वागीश और देवतेन्द्र है।

ईषत् पिंगल लोचनः श्रुति धरः सिंहाकनादः स्थिरः।
सत्वाढ्यः सुविशुद्ध कांचनतनुः पीनोन्नतोरुस्थलः॥
ह्रस्वो धर्ममतिः विनीत निपुणो वृद्धोर्द्धभागः क्षमी।
आपीताम्बर भृत् कफाधिक तनुःमेद प्रधानो गुरुः॥१॥

रणवीर ज्यो० म० निबन्धे।

बृहदुदर शरीरः पीत वर्णः कफात्मा, सकल गुण समेतः सर्व शास्त्राधिकारी। कपिल रुचिकटाक्षः सात्विको तीव धीमान्, अलघु नृपति चिन्ह श्रीधरो देवमंत्री॥२॥

जातक पारिजाते।

रूप रंग और प्रकृति—ज्योतिष ग्रन्थोंमें बतलाया गया है कि इसके अधिष्ठाता देवताके नेत्रका रंग किंचित पिंगल वर्ण शरीर, काञ्चन वर्ण केश, सूक्ष्म एवं कुंचित श्रुतिधर (असाधारण मेधावी) सर्व शास्त्रज्ञ, सकल गुणकी खान, अत्यंत क्षमा शील, दिव्य लक्षण युक्त, परम-धार्मिक, विनयी सतोगुणी, गंभीर, स्थिरधी, श्लेषमाधिक प्रकृति, मेदसार (Corpulent) पीत वस्त्रधारी, स्थविर मेघगर्जनवत् गम्भीर स्वर, विशाल लोचन, उन्नत ललाट, प्रशस्तवक्षस्थल, ह्रस्वग्रीव और शरीर, बड़ा उदर ऐसा बृहस्पतिका रूप है।

स्वस्थान तथा उच्चादि—धनु और मीन राशि बृहस्पतिका क्षेत्र (गृह) है, एक से लेकर १० अंश तक धनुराशि मूल त्रिकोण, बाकी २० अंश गृह हैं कर्क राशि तुंग (Exaltation) और मकर राशि नीच (fall) कर्कका पाँचवाँ अंश परमोच्च (राकेल साहबके मतसे १४वाँ अंश) और मकरका पाँचवाँ अथवा १५वाँ परम नीच है।

सूर्य, चन्द्र और मंगल इसका मित्र, शनि सम, एवं शुक्र और बुध शत्रु हैं। बलाबल तथा शुभाशुभत्वके विषयमें जो बातें शनैश्चरमें लिखी गई हैं, वे सब यहाँ भी लागू होंगी। विशेषता यह है कि अपनी राशिमें स्थित होने पर भी ऐहिक शुभ फल नहीं देते। जिस ग्रहके साथ रहते हैं, अथवा सम्बन्ध करते हैं, उनकी अनिष्टकारिका शक्ति को घटा देते हैं। शुभ ग्रहके साथ होनेपर अथवा सम्बन्ध करने पर उस ग्रहके शुभ फलको अधिक बढ़ा देते हैं। गुरुकी नवम एवं पाँचवीं दृष्टि (Trine aspect) अत्यंत शुभकारी एवं अमृतमयी कही गई है।

मकर तथा कुम्भ राशिमें रहने पर भी शुभ फल नहीं देते। कर्क, मीन, धनु और कुम्भ राशिके होने पर यदि पंचम स्थानमें स्थित होते हैं तो, सन्तानोंके लिये अशुभ होते हैं और बातोंके लिये नहीं।

विश्वके प्रतिभाशाली न्याय एवं दर्शन शास्त्रके विद्वानोंकी जन्म पत्री देखने पर स्पष्ट पता चलता है कि उनकी जन्मपत्रियोंमें शुभ फल दाता बलवान् बृहस्पति श्रेष्ठ स्थानोंमें (भावोंमें) देखे जाते हैं। इस परिदर्शनमें कोई सन्देह नहीं है। फलित ज्योतिषसे यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि बलवान् बृहस्पतिके अनुकूल होनेके बिना

विशुद्ध सात्विक भाव विमल तत्वज्ञान, परोपकार स्पृहा, पूर्णविज्ञता (wisdom) स्वर्गीय विमल आनन्द, अथवा ज्ञान ज्योतिका विकाश नहीं होता। सुप्रसिद्ध जर्म्मन योगी स्वीडेन वर्ग महोदय इस विषय मे बहुत कुछ कह गये हैं, उनकी दार्शनिक बातों का स्थान यहां नहीं है।

इन्ही सब बातोंके कारण फलित शास्त्रमें बृहस्पतिका स्थान सर्वोच्च माना गया है, और वेद में देवतेन्द्र संज्ञा है। यहां तक कहा गया है कि बृहस्पति बलवान्, अनुकूल तथा केन्द्रमें रहते किसी भी दुष्ट ग्रह का प्रभाव जातक पर बुरा असर नहीं डाल सकता, और न कुछ बिगाड़ ही सकता है। वास्तवमें बृहस्पतिका अस्तित्व तथा किरणों की शुभकारिता विश्वमें अतुलनीय है।

गुरु की कारकता—वाक्य, धोरिणी (जनश्रुति) राजतंत्र (administration) नैष्टिक, स्वकर्म्म (यजन, याजन अध्ययन, अध्यापन) निगम (वेद तथा तन्त्र ज्ञान) कर्म्म (दशम भाव विषयक) पुत्र, सम्पद, जीवनोपाय, आन्दोलन, मित्र, देव, ब्राह्मण, सिंहासन, योग साधन, ज्ञान, विज्ञान, यान (Vehicles) प्रभृति।

शुभ कारकता—विनय, प्रज्ञा, धैर्य्य, क्षमा, स्थैर्य्य, धर्म्म और न्यायपरायणता, मृदु भाव, विश्वास, उच्चाभिलाषा, सरलता, मैत्री, समदर्शिता और कलहसे दूर रहना।

अशुभकारिता—अधिक अभिमान, अतिव्यय, झक्खी, लकीरका फकीर, देशाचार तथा अनुष्ठानिक आडम्बरों में अधिक रत, कपटाचार (Hypocrisy) प्रगल्भता, पराये ऊपर वृथा दोषारोपण, प्रभृति।

शुभ क्रिया—पदोन्नति, देह और मनको पुष्टि, धन और सन्तान लाभ, सामाजिक घटना (events) गौरववृद्धि, आधिपत्य, श्री वृद्धि, सौख्य, यान-वाहन-वस्त्र-गृह-धान्यादि प्राप्ति, धर्म्म में मति, तत्व ज्ञान, सन्तानादि-वंशवृद्धि, और तीर्थदर्शन।

द्रव्य कारकता—सुवर्ण, जस्ता (Zinc, जीवन्ती हर्रं, बदाम, मोम, आम्र, कटहल, नारियल, कुसम्भ, पीत धान्य, पीतवस्त्र, शैलज तथा लताजात द्रव्य, मूंग, पीतरत्न (पुष्पराग) तगर, हरिद्रा, प्रभृति।

व्यक्ति कारकता—ब्राह्मण (भारतवर्ष में) अन्य देशो में धर्म्म याजक (Priest) अध्यापक, उपदेष्टा, शास्त्रज्ञ, विचारक, दण्डविधान प्रणेता (Legislator) मंत्री, नीतिज्ञ, पुरोहित, और वेदान्त विद।

अंग प्रत्यंग कारकता—वसा, मेद (चर्बी) दक्षिण कर्ण, धमनी, यकृत घ्राणेन्द्रिय, धामनिक प्रवाह, गलेसे लेकर वक्षस्थल तक स्थान।

व्याधि—स्वास यंत्रका रोग, गल तथा तालू रोग, वमन, उदरामय, यकृत्‌रोग, मेद वृद्धि, कामला रोग प्रभृति।

रसप्रियता—स्वादुरस Sweet and fragrant

देवता—इन्द्र, तारा (महाविद्या), वामन। जैमिनिके मत से हरपार्वती की युगुल मूर्ति।

वर्ण कारकता—कांचन वर्ण, हल्का नीला, बैजनी।

पशु पक्षी कारकता—गाभी, मृग, हस्ती, अश्व, सारस पक्षी, शंक, चील्ह, चातक, पीतवर्ण शुक पक्षी।

शुभ पत्थर तथा धातु—(Lucky stones) पोखराज (Topaz) पीताभ मुक्ता, स्वक्षेत्र गत बृहस्पतिमें स्वर्ण भी शुभ होता है। ब्रह्मदण्डी की जड़ भी धारण करना शुभ कहा गया है।

शुभ संख्या—(Lucky Numbers) तीन की संख्या, अथवा जिन जिन संख्याओं का जोड़ तीन होता हो, जैसे—१२, २१, १११ प्रभृति।

भावादि कारकता—२, ५, ६, १०; ११ इन सब भावों के स्थिर कारक। विशेषतः बृहस्पतिसे पुत्र, विद्या, श्री, सुख, पितामह, स्त्री जातकमें पति, एवं जावतीय धार्मिक बातों का विचार करना।

दिक्, तत्व, गुण, और वयः—ईशान कोण, आकाश तत्व, सत्वगुण, स्थविर (५७-६८ आयु) और पुरुष।

जिसकी जन्मपत्रीमें बृहस्पति बलवान् एवं शुभ स्थान गत होते हैं, उसका स्वभाव, रूप-रंग, क्रियादि, वृत्ति; रसप्रियता एवं द्रव्यप्रियता उपरोक्त प्रकारकी होते देखी जाती है।

ईसाके जन्मके पहले ग्रीसके ओलिम्पिया नगरमें हाँथी-दांत तथा स्वर्णसे निर्मित ६० फिट की ऊंची जुपिटरकी एक प्रकाण्ड मूर्ति थी। तत्कालीन पृथ्वीके सप्ताश्चर्य्योंमें इस मूर्त्तिका नम्बर तीसरा था। दूर दूरसे यूहूदी लोग इसके दर्शनार्थ आते थे। प्रति ५७वें वर्ष एक महा मेला भी होता था। अब भी मंदिरका चिन्ह है।

रबर ❋

[लेखक श्री ओंकारनाथ परती]

रबर एक रोजन पदार्थ है जो पेड़से निकलते समय दूध की भाँति होता है। रबरका पेड़ उष्ण और तर जलवायुमें होता है। यह पेड़ सबसे पहले दक्षिणी अमेरिकामें अमेज़न नदीके तट पर स्थित घने जङ्गलोंमें पाया गया था। यहाँ दो प्रकारके पेड़ थे, पहला हैविया (Hevea) और दूसरा कास्टीलोआ (Castilloa)। सन् १९१० ई० तक रबर मुख्यतः इन्हीं प्रदेशोंसे संसारके सब भागोंमें जाती थी। कुछ समय तक बेलजियन कांगोसे भी रबर बाहर जाती थी किन्तु श्रेष्ठ पारा (Para) रबर, (पारा उस बन्दरगाह का नाम है जहाँसे रबर बाहर जाती थी।) ब्रेजिलसे ही आती थी और बहुत समय तक रबरके व्यवसायमें ब्रेजिल सर्वप्रधान था।

पूर्वमें रबरके व्यवसायका श्रेय हैनरी वाइखम [Henry Wickham] को है। इन्होंने सन् १८७६ ई० में रबरके कुछ बीज ब्रेजिलसे चुराये। उस समयके भारत सचिव (सेक्रेटरी आफ् स्टेट फ़ार इन्डिया) और सर् जोसफ़ हूकर (Sir Joseph Hooker) ने, जो क्यू (Kew) के बागोंके डाइरेक्टर थे, हैनरी वाइखम को ब्रेज़िल भेजा। वाइखम पहली बार असफल रहा। उसने बीजोंके पानेके लिये दुबारा प्रयत्न किया। इस समय भाग्य ने उसका साथ दिया। वह वहाँके योरपीय व्यवसाइयोंसे बीजोंके भेजनेके विषयमें परामर्श कर रहा था कि उसे समाचार मिला कि अमेज़न नामक एक जहाज़ वहाँ आया है और अब खाली ही वापिस जायेगा। उसने भारतीय सरकारके लिये यह जहाज़ किराये पर ले लिया और जहाज़ के कप्तानसे कहा कि वह उसे उस स्थान पर मिले जहाँ टापाजोस (Tapajos) और अमेज़न नदियाँ मिलती हैं। उसने टापाजोस और मडीरिया (Maderia) के बीचके जङ्गलसे, जहाँ सबसे अच्छी पारा रबर होती थी। बहुतसे बीज इकट्ठा किये और इन बीजों को कुलियों पर लदवाकर शीघ्र ही जहाज़ तक पहुँचा दिया। उसने लगभग सत्तर हज़ार बीज एकत्रित कर लिये। जहाज़ जब पारा बन्दरगाह पहुँचा तो वाइखम को डर लगा कि कहीं ब्रेज़िल की सरकार उनके जहाज़को रोक न ले, किन्तु वहाँके ब्रिटिश राजदूतके प्रभावसे उन्हें किसीने नहीं रोका। बीज बड़ी सावधानीसे रखे गये थे और कुशलपूर्वक लिवरपूल तक पहुँच गये। लिवरपूलसे रेल द्वारा यह बीज क्यूके बागों तक पहुँचा दिये गये। क्यूके बागोंमें यह बीज बोये गये और लगभग चार प्रतिशतमें अंकुर आ गया। इनमेंसे एक भाग सीलोन और मलाया भेजा गया। यहाँ लगभग नब्बे प्रतिशतमें अंकुर आ गया और इन प्रदेशोंमें रबरका व्यवसाय प्रारम्भ हो गया। ब्रिटिशराजने हैनरी वाइखम को सर का खिताब देकर सम्मानित किया। रबरके व्यवसाइयोंकी संस्था (Rubber Growers Association) ने सर हैनरी वाइखमको एक सुवर्ण पदक प्रदान करके उनका बहुत सम्मान किया।

मनुष्यके लिये रबरकी महत्ताका पता लगाने वाला कोई वैज्ञानिक न था, वरन् दक्षिणी अमेरिकाके जङ्गली निवासी थे। कदाचित् एक दिन किसी ने देखा कि रबरके पेड़की छाल काट देनेसे उसमेंसे एक दूध सा पदार्थ निकलता है और यह दूध कुछ समय बाद अपने आप ही जमकर एक ठोस पदार्थ बन जाता है। फिर किसीने यह देखा होगा कि इस पदार्थ पर पानीका बहुत कम प्रभाव पड़ता है। कोलम्बसने अपनी दूसरी यात्रामें यह देखा कि हायती निवासी (Haitians) इस प्रकारकी ठोस पदार्थकी गेंदोंसे खेलते थे। स्पेनके निवासी टारक्यूमाडा (Tarquemada) ने लगभग सवा चार सौ वर्ष पूर्व यह देखा कि मैक्सिको (Mexico) के निवासी इस दूध से अपने कपड़ोंको ऐसा बना लेते हैं कि उनपर पानीका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें किसीने यह ज्ञात किया कि रबरसे कागज़पर लिखे पेन्सिल के निशान मिटाये जा सकते हैं। इङ्गलैण्डमें सन् १८२० ई० के लगभग रबरका प्रयोग आरम्भ हुआ। इस समय इसका प्रयोग मुख्यतर चित्रकार करते थे और आधे इञ्च के एक टुकड़े रबर का मूल्य लगभग दो रुपया था। इसके

कुछ समय पश्चात स्काटलैंडके निवासी चार्ल्स मैकिन्टोशने सर्व प्रथम बरसातीका कपड़ा बनाया। किन्तु इस समय तक वह खोज जिससे रबरका प्रयोग हज़ारों प्रकार की वस्तुओंमें होने लगा है दूर थी। इसके पहले कि हम उसका वर्णन करें यह अच्छा होगा कि रबरकी खेतीके विष में कुछ कहा जाय।

रबर की खेती

पहिले कहा जा चुका है कि रबरके पेड़ दो प्रकारके होते हैं। इनमेंसे हेविया ब्रासीलियन्सिस (Hevea Braziliensis) से सबसे बढ़िया "पारा" रबर निकलता है। भारतवर्षमें रबरकी खेती सबसे पहिले पेरीयार रियासत, ट्रावन्कोर और पूनूर रियासत, दक्षिणी मालाबार में हुई थी। रबर की खेती इन प्रदेशोंमें सफलतापूर्वक हुई। सन् १९२४ ई० में ७१५०० एकड़में रबर बोई गई और ३१ दिसम्बर सन् १९४२ ई० में इन खेतों की नाप १३७३४१ एकड़ तक हो गयी।

भारतवर्ष में हेविया पेड़ ही अधिक तर लगाया जाता है। हेविया पेड़ इयूफोरबिआसी (Euphorbiacea) वर्ग का है। यह समुद्र तलसे १५०० फीट की ऊँचाई तक खूब पनपता है। इससे अधिक ऊँचाई पर पेड़ छोटे होने लगते हैं और उनसे रबर भी कम निकलती है। इस पेड़के लिये वर्ष में ८० से २०० इँच तक की वर्षा सबसे अच्छी है। यह समुद्रके पानीमें अच्छी तरह नहीं पनपता, अतः जहाँ समुद्रके पानीकी बाढ़ आती हो वहाँ इसकी खेती नहीं की जा सकती।

रबर की खेती करनेके लिये पहले भूमि साफ़ कर ली जाती है। यदि जंगल हो तो पेड़ काट कर जला दिये जाते हैं। पहले पेड़ काट कर छोड़ दिये जाते थे और सूख जाने पर उनमें आग लगा दी जाती थी। आजकल केवल छोटे छोटे पेड़ ही जलाये जाते हैं और बड़े बड़े पेड़ छोड़ दिये जाते हैं। यह अनुभव किया गया है कि ऐसा करने से जंगलकी भूमि अधिक उपजाऊ रहती है।

जब भूमि साफ़ कर ली जाती है और ठीक तरह से खेत बना लिये जाते हैं तब रबर के पेड़ लगाने के लिये प्रति एकड़ १८० से २५० तक गड्ढे खोद लिये जाते हैं। इन गड्ढोंमें मिट्टी और खाद भर दी जाती है। प्रत्येक गड्ढे में तीन चार बीज छोड़ दिये जाते हैं और बीज हलकी मिट्टीसे ढक दिये जाते हैं।

कभी कभी बीज अलग बोये जाते हैं और जब पौधे एक सालके हो जाते हैं तो उन्हें उठाकर खेतों में लगा दिया जाता है। पेड़ोंकी बाल्यावस्थामें भूमिकी उपजाऊ शक्ति स्थिर रखनेके लिये सारे खेत में बेलें लगा दी जाती हैं। इनमें मुख्य सेन्ट्रोसीमा (Centrosema) प्यूरेरिया (Pueraria), इन्डिगो फीरा (Indigofera) और डेसमोडियम (Desmodium) हैं। आजकलके अनुसन्धानोंसे ज्ञात हुआ है कि इन बेलोंके साथ यदि क्रोटालारिया (Crotalaria) और टिफरोसिया (Tephrosia) या अलबीज़ि ा मौलूकाना (Albizzia moluccana) और ग्लिरीसीडिया मैक्यूलाटा (Gliricidia maculata) भी लगाये जाँय तो भूमि की उपजाऊ शक्ति और भी स्थिर रहती है।

हमारे देशमें रबर की खेती ट्रावनकोर में सबसे अधिक होती है। मदरास, कोचीन कुर्ग और मैसूरमें भी रबर की खेती होती है। निम्नलिखित आँकड़ों से इसका अनुमान हो सकता है कि भारत में रबर की खेती कहाँ, कितनी और कैसी होती है।

स्थान	भारत में रबरकी खेती प्रतिशत	प्रति एकड़ रबरकी वार्षिक उपज
ट्रावनकोर	७८	१३३ सेर
मदरास	११	१२६ "
कोचीन	८	१७५ "
कुर्ग	२	१३३ "
मैसूर	१	४२ "

मोटे हिसाबसे यह कहा जा सकता है कि अच्छे खेतों में प्रतिवर्ष प्रति एकड़ रबरकी पैदावार लगभग १४६ सेर (३०० पौंड) होती है। रबरकी पैदावार तीन रीतियोंसे बढ़ाई जा सकती है; अच्छे प्रकार के पेड़ लगाकर; अच्छी खाद पर्याप्त मात्रा में देकर और पेड़ों की बीमारियाँ दूर करके। अच्छे प्रकारके बीज प्रयोग करनेसे पेड़ स्वस्थ और अच्छे होते हैं। उपयुक्त खादके प्रयोगसे पेड़ शीघ्र बढ़ते हैं और अधिक रबर देते हैं।

पेड़ों की बीमारियाँ तीन प्रकार की हैं :—

(१) जड़ों की बीमारियाँ—

यह कई प्रकार की होती हैं और छोटे पौधों तथा पेड़ दोनों में ही पाई जाती हैं। इसका इलाज तो कठिन है किन्तु इसका प्रकोप कम करनेके लिये रोगग्रस्त पेड़ोंकी चारों ओर एक खाई खोद कर उन्हें अन्य पेड़ोंसे अलग कर दिया जाता है। इससे यह बीमारी फैलने नहीं पाती है।

(२) तने की बीमारियाँ :—

अभी तक ऐसी आठ बीमारियाँ ज्ञात हो सकी हैं। जिनसे बचनेके लिये रासायनिक द्रव्योंका प्रयोग करना पड़ता है। बीमारीके उपयुक्त दवा तनों पर छिड़क दी जाती है और इस बीमारीका अन्त हो जाता है।

(३) पत्तों की बीमारियाँ :—

अभी तक ऐसी एक दर्जन बीमारियाँ ज्ञात हो सकी हैं। इनमें मुख्य फाइटोफथोरा (Phytophthora) है जो हैबिया पेड़ोंमें बरसातके दिनोंमें हो जाती है। प्रति वर्ष बोर्डोमिक्स्चर (Bordeaux mixture) पत्तियों पर छिड़कने से इस बीमारीका अन्त हो जाता है। भारत के सूखे प्रदेशोंमें औयडियम हैबिया (Oidium Hevea) नामक बीमारी भी होती है। यह बीमारी ऊँचे स्थलोंमें अधिक होती हैं। पत्तियों पर प्रतिवर्ष गन्धक छिड़कनेसे इस बीमारीकी रोक थाम की जा सकती है।

रबर का पेड़ पाँचसे सात साल तक में पूर्ण रूपसे तैयार हो जाता है। जब इन पेड़ोंका तना लगभग बीस इञ्च मोटा हो जाता है तब एक टेढ़ी लकीरके रूपमें एक खुरपीसे इनकी छाल काट दी जाती है। कटे हुए स्थान से दूधसा निकलता है और नीचे रखे हुए एक बर्तनमें जमा होता जाता है। एक पेड़ अपने जीवन भरमें लगभग पचीस गैलन ऐसा दूध देता है, और इससे लगभग २५ सेर रबर निकल आती है।

पेड़ोंकी छाल अधिकतर एक दिन छोड़कर काटी जाती है। कभी रबर अधिक निकालनेके लिये एककी जगह दो जगह छाल काटी जाती है और ऐसा तीन दिनमें एक बार किया जाता है। इस दूसरी रीतिसे १ फरवरीसे १५ मार्च तक और १५ जुनसे १५ अगस्त तक दक्षिणी भारतके खेतोंमें लगभग २५ प्रतिशत अधिक रबर प्राप्त हुई।

रबर दुग्ध

हैबिया पेड़से प्राप्त रबर-दुग्ध गायके दूधकी तरह होता है। यह वास्तव में अन्य कार्बनिक पदार्थोंके साथ पानीमें रबरका एक घोल सा है। इस दुग्धका घनत्व जितनी रबर उसमें हो इस पर निर्भर है। उदाहरण के लिये नीचे हम एक हैबिया रबर-दुग्ध का विश्लेषण देते हैं :—

पदार्थ	अमेज़नके डेल्टा से प्राप्त रबर-दुग्ध	सीलोनके खेतोंसे प्राप्त रबर-दुग्ध
पानी	४७.० प्रतिशत	५५.२ प्रतिशत
रबर	३२.० ,,	४१.३ ,,
खनिज	६.७ ,,	०.४ ,,
प्रोटीन	२.३ ,,	२.२ ,,
रोजन	६.० ,,	२.० ,,
शर्करा	—	०.४ ,,

लगभग सभी प्रकारके रबर-दुग्धमें थोड़ी मात्रामें शर्करा और ग्लूकोसाइड (Glucoside) रहते हैं। आधुनिक रासायनिक अनुसन्धानोंसे ज्ञात होता है कि यह शर्करा अधिकतर आयोनी सिटोल (Ionisotol) वर्ग के हैं।

रबर-दुग्ध लाल लिटमसको नीला कर देता है। कुछ समय तक रखे रहने पर इसमें मुख्यतर लैक्टिक अम्ल बनने लगता है और रबर अपने आप जमने लगती है। फाइकस (Ficus) वर्गीय पेड़ों के दुग्ध अम्ल होते हैं। सब प्रकारके रबर-दुग्धोंमें औक्सीडेजज (Oxidases) होते हैं, इस कारण जब रबर-दुग्ध हवामें रख दिया जाता है तो उसका रंग सफेदसे भूरा पड़ने लगता है। इससे बचनेके लिये यदि रबर-दुग्धमें थोड़ा सोडियम बाइसल्फाइट (Sodium bisulphite) मिला दिया जाय तो न तो रबर-दुग्धमें भूरापन आता है और न उससे प्राप्त रबरमें कोई अन्तर पड़ता है। रबर-दुग्धमें थोड़ी मात्रामें स्टीराल (Sterols) भी रहते हैं।

रबरके पेड़के लिए यह दुग्ध तीन प्रकारसे उपयोगी है; (१) इसमें रबरके पेड़के खाद्य पदार्थ रहते हैं; (२) इसके द्वारा पेड़में शक्ति देने वाले पदार्थ पहुँचते हैं, और (३) इसके रहने से कीड़े पेड़को कम नुकसान पहुँचाते हैं।

अब दिन प्रति दिन रबरके दुग्धको ही खेतसे बाहर भेजने का रिवाज बढ़ता जाता है। भारतमें अधिकतर अमोनिया (Ammonia) गैस देकर इस दुग्धको ऐसा बना दिया जाता है कि यह शीघ्र जमता नहीं। ऐसा दुग्ध बाजारमें तुरन्त बेचा जा सकता है। इस देशमें मुख्यतर रबर चादरोंके रूपमें बेची जाती है या बाहर भेजी जाती है। रबरकी चादर बनानेके लिये पहले इस दुग्धमें से रबर अलग की जाती है।

रबर-दुग्धका जमाना

रबर-दुग्धके जमानेके लिये तीन रीतियाँ काममें लाई जाती हैं।

(१) धुँएसे—

यह पुरानी रीति है। इसमें रबर-दुग्ध चौड़े-चौड़े छिछले बरतनोंमें भरकर धुँएमें रख दिया जाता है। थोड़े समयमें इसमेंसे पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है और जमी हुई रबर रह जाती है। यह रीत अमेज़नके प्रदेशोंमें काममें लाई जाती थी किन्तु आजकल इसका पयोग बहुत कम होता है।

(२) अम्लसे—

आधुनिक समयमें यहीं रीति काममें लाई जाती है। रबर-दुग्धसे मिट्टी आदि छानकर अलग कर दी जाती है। यह दुग्ध एक बड़े बरतनमें भर दिया जाता है और इसमें थोड़ा पानी मिलाया जाता है। अब इसका घनत्व घनत्व-मापक (हाइड्रोमीटर) से निकाला जाता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि इसमें कितनी रबर है। फिर इसमें आधी छटाँक सिरकाम्ल (एसिटिक एसिड) प्रति ९½ सेर रबरमें अथवा आधी छटाँक फार्मिक (Formic) अम्ल प्रति ६ सेर रबरके अनुपातसे मिला दी जाती है। लगभग चौबीस घन्टेमें रबर पूर्ण रूपसे जम जाती है। यदि रबर और शीघ्र जमानी हो तो अम्ल अधिक छोड़कर जमाई जा सकती है। अम्ल मिलानेके बाद यह दुग्ध अलूमीनियम के बरतनों या अलूमीनियमकी चादर चढ़े हुए लकड़ीके बरतनोंमें भर दिया जाता है। इन बरतनोंमें खाने बने होते हैं और यह खाने उतनी ही लम्बाई चौड़ाईके होते हैं जिस नापकी रबरकी चादरें बनानी होती हैं।

(३) अपने आप—

यदि रबर दुग्धमें ०·२ प्रतिशत ग्लूकोज़ मिलाकर रख दिया जाय तो लगभग १८ घन्टेमें यह जम जाता है। ऐसे जमाई हुई रबरमें हलकी मीठी खुशबू होती है। अम्लसे जमानेमें एक दुर्गन्ध सी आ जाती है। ग्लूकोज़ द्वारा जमानेकी रीत मलायामें काममें लाई जाती थी। भारत वर्षमें अधिकतर अम्लसे जमानेकी विधि ही काममें लाई जाती है। ग्लूकोज़से जमानेकी विधि अधिक अच्छी है और आशा है कि भविष्यमें यह विधि ही अधिक प्रयुक्त होगी।

कच्ची रबर

पहले कहा जा चुका है कि रबर-दुग्ध बरतनोंमें जमाया जाता है। जम जाने पर यह चादरोंके रूपमें हो जाता है। ये चादरें बरतनोंमेंसे निकाल ली जाती हैं और बड़े बड़े लोहेके बेलनों (रोलरों) में दबाई जाती हैं। फिर इनपर छोटी-छोटी बिन्दियाँ सी छाप दी जाती हैं जिससे इकट्ठा रखने पर एक दूसरेसे चिपक न जायँ। अब यह चादरें धोकर सुखाई जाती हैं। सूखनेपर यह एक धुँआ-धार कमरेमें लटका दी जाती हैं। धुँआ अधिकतर नारियलकी जटाको जलाकर उत्पन्न किया जाता है और कमरेका तापमान लगभग ११०° फा० रखा जाता है। इस कमरेमें लगभग पन्द्रह दिन तक यह चादरें रखी जाती हैं। आधुनिक समयके धुँआ-घरमें लगभग चार ही दिनमें यह चादरें सूख जाती हैं। सूखने पर इनका रङ्ग भूरा या काला पड़ जाता है। यह अल्पपारदर्शी होती हैं।

इन चादरोंको अब अच्छी तरह देखा जाता है और जिन स्थानोंमें कुछ मिट्टी इत्यादि रह जाती हैं उन्हें काट कर अलग कर दिया जाता है। फिर यह रूप गुणके अनुसार छाँट ली जाती हैं और इनकी गाँठें बाँध दी जाती हैं। प्रत्येक गाँठमें २ मन २६ सेर (२२४ पौंड) रबर होती है। रबर इन्हीं चादरोंके रूपमें थोकके व्यापारियोंके हाथ बेच दी जाती हैं।

मक्केसे अरारोट बनाना

लेखक— शिवशरण वर्मा वैद्य

पंजाब प्रान्तके फगवाड़ा स्थानमें सुखजीत स्टार्च कम्पनी मक्कासे स्टार्च कैसे बनाती है, इसका संक्षिप्त वर्णन विज्ञानके पाठकोंकी जानकारीके लिए दिया जाता है।

'स्टार्च' अन्नमय पदार्थ है। यह मक्का से बनाया जाता है। मक्काको पंजाबमें ज्वार भी कहते हैं। मध्यदेशमें इसे 'भुट्टा' के नामसे पुकारते हैं। पीले ज्वारकी अपेक्षा श्वेत ज्वारका स्टार्च अधिक श्वेत निकला करता है। सूखी ज्वार लेकर उसे साफ कर लेते हैं, मशीनमें डालकर दल लेते हैं और गंधक मिश्रित जलवाले बड़े बड़े लकड़ीके ढोलोंमें भिगो देते हैं। वैसे तो छोटे छोटे ढोलोंसे काम चल जाता है परन्तु लाखोंका व्यवसाय करनेवाले लकड़ीके ऐसे ढोल बनवाते हैं जिनमें कमसे कम ६०-८० बोरियां ज्वारकी आ सकें। गंधक मिश्रित जलको स्टीम द्वारा गरम किया जाता है। मक्काके दाने भीगकर नरम हो जाते हैं। पानी बीचमें कल द्वारा घूमता रहता है। जब ज्वार २०-३० घंटोंके बाद पूर्णतया नरम हो जाती है तो उसे एक बड़े पाइप द्वारा नीचे चलती चक्कीमें पीसनेके लिये पानी सहित डाला जाता है। वहां वह पिसकर एक हौज़में गिरती रहती है और वहांसे दूसरे पम्प द्वारा दूसरी चक्कीमें गिरती रहती है। यहां यह अधिक बारीक हो जाती है और पानीमें घुल कर बड़े बड़े तांबेके छिद्रदार हौज़ोंमें गिरती रहती है। यहां फूस पृथक हो जाता है और मैदा मिश्रित पानी पृथक। यह मैदा मिश्रित पानी पुनः रेशमी वस्त्र द्वारा मढ़ी हुई बड़ी बड़ी छलनियोंमेंसे छनता है और एक हौज़में जो भूमि पर छलनियोंके नीचे बने रहते हैं इकट्ठा होता रहता है। यहीं यह यत्न किया जाता है कि वह घोल पानीमें घुला ही रहे। अन्यथा फर्श पर जम जाता है। और पानी पृथक ऊपर ऊपर हो जाता है। इस जमे हुए पदार्थको पुनः उतराना बड़ा कठिन होता है। इसलिये किनारों पर खड़े व्यक्ति या मजदूर लम्बे लम्बे फावड़ोंसे जलमें नीचे तलछटको पानीमें घोलते रहते हैं। पानी दूध-सा दिखाई देता है और गाढ़ा होता है। एक पम्प द्वारा उसे ऊपर खींचकर पाईप द्वारा धारा बांधकर सीमेंटकी बनी हुई लम्बी लम्बी बड़ी नालियोंमें छोड़ा जाता है। यह नालियाँ एक फुट चौड़ी लगभग ६ इंच गहरी और ८०-९०-१०० फुट लम्बी होती हैं। एक साथ १०-१२ नालियाँ इकट्ठी बनी होती हैं। जब एक नालीमें काफी श्वेत जल छोड़ा जाता है तो वह भर जाता है और दूसरी नालीको काममें लाते हैं फिर तीसरीको इत्यादि। श्वेत भाग नीचे नालीमें जमता जाता है और पानी पृथक ऊपरसे बह जाता है। सब नालियोंमें ऐसाही होता है। पानीके अन्दर दो प्रकारका पदार्थ मिला रहता है, श्वेत और पीला। श्वेतका स्टार्च या निशास्त और पीलेको ग्लूटिन या पीला भाग कहते हैं। सबसे नीचे श्वेतभाग जमता है जो गाढ़ा, लसदार और अधिक टिकने वाला होता है अतः नीचे जमता है। पीलाभाग हलका और अल्प होता है अतः ऊपर जमता है। अब बारी बारी उस नालीके ऊपर दूर खड़े होकर नलसे

पानी धारसे डाला जाता है तो पीला भाग जलमें घुलकर लस्सी सी बनकर बह जाता है और एक नालीके द्वारा इकट्ठा होकर एक अन्य पम्प द्वारा एक पृथक हौजमें डाला जाता है जहाँ उसमेंसे ग्लूटिनको प्राप्त किया जाता है। उस श्वेत स्टार्चको पुनः पानीमें घोला जाता है और पानीके बहावके साथ एक टैंकमें भर दिया जाता है। इस पानीको उस टैंकमें बलोनी द्वारा चलता रखना पड़ता है। जब टैंक भर जाता है। तो Centrifugal (शुष्क) मशीन में एक साथ २ मन, ३ मन श्वेत पानी ले लिया जाता है। इसकी चक्की तेजीके साथ घूमती है और पानी को पृथक कर देती है। उसकी दीवारोंके साथ चिपकी हुई मोटी-मोटी तहको उतारकर मजदूर लोग पानी सुखाने के ढोलोंमें डालकर भापके द्वारा सुखा लेते हैं और रेशमी वस्त्रसे सूखा स्टार्च छान-छानकर बोरियोंमें भरा जाता है। बोरियां नवीन होती हैं और उनके भीतर लट्ठा लगा रहता है ताकि स्टार्च खराब न हो और न बाहर निकले। जब मक्का पिसनेके बाद छनती है तो उसमेंसे भूसा निकलता है जो गीला होता है। इसके भीतर ज्वारकी प्रोटीन और तेलका अंश शेष होता है। इसको सुखाकर गाय भैंसोंको चाराकी तरह दिया जाता है और ३) या ४) मन बिक जाता है। इस स्टार्चको कार्न फ़्लावर, अरारूट और साया भी कहते हैं। यह खाया जाता है। लोग दूधमें फीरीनी बनाते हैं। अरारूट और सागूदानेको मिठाई और बिस्कुट बनानेके काममें लाते हैं। इसका प्रयोग सभी स्थानोंपर होता है। वस्त्रोंपर माड़ी लगानेके काममें भी इसे इस्तेमाल करते हैं। हमारे नगरका यह व्यवसाय सभीको पसन्द होगा।

समालोचना

शासन-शब्द-संग्रह। संपादक राजराजेन्द्र कर्नल मालोजीराव नृसिंहराव शितोले। संग्रहकर्त्ता, हरिहर निवास द्विवेदी, एम० ए० एल-एल० बी०। प्रकाशक विद्या मन्दिर-प्रकाशन, मुरार (ग्वालियर राज्य)। पृष्ठ-संख्या ११ + २२३। मूल्य ३)

इस कोषके प्रथम भागमें शासन-संबंधी हिन्दी शब्दोंके लिए पर्यायवाची अंग्रेज़ी शब्द दिये गये हैं, दूसरे भागमें हिन्दी शब्दोंके लिए अंग्रेज़ी शब्द और अंतिम भागमें उर्दू शब्दोंके लिए हिन्दी शब्द हैं। प्रत्येक भागमें लगभग २००० शब्द हैं। हिन्दी शब्दोंका चुनाव साधारणतः बहुत अच्छा हुआ है। ऐसी पुस्तककी उपयोगिता स्पष्ट है, परंतु यह पुस्तक उन रियासतों और सरकारोंके दफ्तरों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी जो अपना कारबार हिन्दीमें करना चाहते हैं।

उदाहरणके लिए आधे पृष्ठकी सामग्री नीचे छापी जा रही है :—

Hurt चोट, Husband पति, Hypothecation गिरा-ग्रहण, Hypothesis कल्पना, Idea विचार, Identity पहचानना, Idiot मूढ़, Idol मूर्ति, Ignorance अनभिज्ञता, Ignorant अनभिज्ञ, Ignore उपेक्षा करना, Illegal अवैध, Illegality अवैधता।

पुस्तककी छपाई यदि और घन की जाती तो अच्छा रहता। तब पृष्ठ-संख्या संभवतः चौथाई हो जाती और मूल्य भी बहुत-कुछ कम किया जा सकता।

कृषि-शब्दावली। संपादक, प्यारेलाल गर्ग। प्रकाशक नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी। पृष्ठ-संख्या ३३ मूल्य ।)

इस पुस्तकमें लगभग १००० शब्द हैं। पर्यायवाची शब्दोंका संकलन अच्छा हुआ है। नये गढ़े शब्द भी हैं। पुस्तक उपयोगी होगी, परंतु यदि शब्दोंकी संख्या अधिक होती तो और भी अच्छा होता।

छापेकी अशुद्धियाँ आवश्यकतासे अधिक हैं। परंतु विषयका ज्ञाता काम चला सकता है। कहीं-कहीं अरबी-फ़ारसीके शब्द भी निष्प्रयोजन ही घुसा दिये गये हैं। उदाहरणतः, permanent wind का अर्थ दिया गया है 'स्थायी हवायें'। यदि इसे स्थायी पवन (या वायु या समीर) लिखा जाता तो क्या हानि होती?

गो० प्र०

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=)

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ॥=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।)

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।)

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=)

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।)

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०; १।)

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=)

११—केदार-बद्री यात्रा—केदरानाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।)

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।)

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=)

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।)

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।)

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १।।)

१८—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २)

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।)

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।)

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिश करनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख

प्रसाद और श्रीरामचन्द्र भटनागर, एम० ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥)

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २॥)

२४—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥)

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं—ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पेज, ६२ चित्र; सजिल्द १।)

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥)

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन) सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगडान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही; जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥)

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि २६० पृष्ठ, १५० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३)

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक घरमें एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। हिन्दुस्तान रिविउ लिखता है—should be widely welcomed by the Hindi knowing public in this country.

अमृत बाजार पत्रिका लिखती है—It will find an important place in every home like the Hindi almanac.

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १)

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा महलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

निम्न पुस्तकें छप रही हैं

रेडियो—ले० प्रो० आर० जी० सक्सेना

सरल विज्ञान सागर (द्वितीय खंड)—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद, विश्व विद्यालय, वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६० | मकर, सम्वत् २००१ जनवरी १९४५ | संख्या ४

पारिभाषिक शब्दावली

(डा० ब्रजमोहन पी-एच. डी., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

आजकल देशकी कई संस्थायें पारिभाषिक शब्दावली की समस्याको सुलझानेके प्रयत्नमें संलग्न है। परन्तु इन संस्थाओंमें आपसमें कोई सहयोग नहीं है। इतने बड़े देशमें किसी भी प्रश्नपर मत मतान्तर होना स्वाभाविक ही है। कुछ व्यक्तियोंका तो यह विचार है कि हमें किसी भी विदेशी शब्दको कदापि अपनाना नहीं चाहिये। जो शब्द हमारी भाषामें चालू हो गये हैं, उन्हें भी निकाल बाहर करना चाहिये। यह लोग तो 'लालटैन' को 'हस्त-काच-दीपिका' या 'प्रकाश मन्दिर' और 'रेलवे स्टेशन' को 'पटरी-गाड़ी विरामस्थल' या 'भाप गाड़ी-विरामस्थल' कहना पसन्द करेंगे। इसको तो मैं केवल दृष्टिकी संकीर्णता समझता हूँ। जिस प्रकार स्वस्थ मनुष्य उसे कहते हैं जो अधिकसे अधिक भोजन हज़म कर सके, उसी प्रकार जीवित भाषा उसी भाषाको कहेंगे जो अधिकसे अधिक शब्द पचा सके। यदि अँग्रेज़ीमेंसे समस्त जर्मन, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओंके शब्द निकाल दिये जायं तो पता नहीं अँग्रेजीमें कितने शब्द बचेंगे। आज भारतवर्षका बच्चा २ समझता है कि अन्जन, स्टेशन और रेडियो किसे कहते हैं। यदि इन शब्दोंके लिये भी नये शब्द गढ़े जायँ तो देश भरमें उन शब्दोंका नये सिरेसे प्रचार करना होगा और देशके भावी युवकोंके मस्तिष्क पर एक भारी बोझ आ पड़ेगा। ऐसी योजना न आवश्यक है, न वाञ्छनीय, न सम्भव।

दूसरा मत उन व्यक्तियोंका है जिनके विचारमें हमें समस्त पारिभाषिक शब्द अँग्रेज़ीसे ज्योंके त्यों ले लेने चाहिये जैसा कि जापानने किया है। ऐसा करनेसे एक लाभ तो अवश्य होगा। आजकल देशके बहुतसे कार्यकर्ताओंकी जितनी शक्ति पारिभाषिक शब्दावली बनानेमें खर्च हो रही है, सब बच रहेगी और रचनात्मक कार्यमें लग जायगी। परन्तु सब दृष्टिकोणोंसे विचार करनेसे क्या ऐसी योजना स्तुत्य होगी? भारतकी—यदि अशिक्षित जनता को छोड़ भी दें तो—अर्धशिक्षित जनता या केवल भारतीय-भाषा-भाषी जनताके लिये अँग्रेजी शब्दोंका सीखना सरल है या भारतीय भाषाओंके शब्दोंका? परीक्षा के लिये एक बच्चे, एक धोबी और एक कहार को एकत्रित कर लीजिये और उन्हें दो शब्द अँग्रेजी के, ऑक्सीजन (Oxygen) और क्वाड्रीलैटरल (Quadrilateral) और दोनोंके हिन्दी पर्याय: जारक और चतुर्भुज याद करा दीजिये। फिर अगले दिन उनसे पूछ कर देखिये कि उन्हें अँग्रेज़ी शब्द याद है या हिन्दी शब्द। उपरिलिखित मतके समर्थक यह कहते हैं कि आजकल सब विद्यार्थी अँग्रेज़ी शब्द याद करते हैं। यदि हम हिन्दीमें एक नई शब्दावली बनायेंगे तो उन्हें नये सिरेसे हिन्दी शब्द याद करने पड़ेंगे। इससे उन्हें दुहरा परिश्रम करना पड़ेगा। परन्तु यह कठिनाई केवल वर्तमान पीढ़ीके विद्यार्थियोंको ही पड़ेगी। अगली पीढ़ीके विद्यार्थी स्कूलसे ही हिन्दी शब्द सीखेंगे, उन्हें अँग्रेज़ी शब्दोंके सीखनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

इन दोनों मार्गोंके बीचमें एक मध्य पथ भी है। जो शब्द हमारी भाषामें चालू हो गये हैं, उन्हें ज्योंका त्यों रहने दिया जाय चाहे वह शब्द किसी भी स्वदेशी या विदेशी भाषाकी उपज हो। फ़ाउन्टेन-पेनको 'निर्झरिणी' या 'रेडियो' को 'नभोवाणी' बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं। 'टिन' (Tin) को हम लोग परम्परासे 'टिन' कहते आये हैं। डा० रघुबीरके आँगल-भारतीय कोषमें 'टिन' का नाम रक्खा है 'त्रपु'। इसी प्रकार 'सल्फ़र' (Sulphur) का नाम 'गंधक' के बदले 'शुल्वारि' दिया है। इस तरह ज्ञात नामोंके स्थानपर कठिन अज्ञात नाम रखना कहां तक युक्तिसंगत होगा? आजसे लगभग १५ वर्ष पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभाने एक वैज्ञानिक शब्दावली तैयार की थी। उस शब्दावलीके बहुतसे शब्द ऐसे हैं जो

वैज्ञानिक पुस्तकोंमें प्रचलित हो गये हैं। 'इन-सर्किल' (In-circle) को सब लेखक अन्तर्वृत्त और डाइनैमिक्स (Dynamics) को गति-विज्ञान लिखते हैं। इस प्रकारके जितने शब्द चालू हो गये हैं, उनमें कोई संशोधन करना उचित न होगा जब तक कि पर्याय बिल्कुल ही अनुपयुक्त या कठिन न हों। उस शब्दावलीमें कुछ शब्द अवश्य ऐसे हैं जो या तो बहुत बड़े हैं या अन्य कारणोंसे अनुपयुक्त हैं। ऐसे शब्दोंको बदलना होगा। 'वर्टिकल' (Vertical) का पर्याय 'ऊर्ध्वाधर' बहुत बड़ा और कठिन है। हम 'वर्टिकल' को 'खड़ा', हौरीज़ौन्टल' (Horizontal) को 'पड़ा' और 'स्लैण्ट' (Slant) को 'तिरछा' कह सकते हैं। एक और उदाहरण लीजिये, उस शब्दावलीमें Ellipse का नाम दिया है 'दीर्घ-वृत्त'। मेरा अपने मित्रोंसे कई वर्षसे इस बात पर मतभेद चला आता है कि वह 'दीर्घ-वृत्त' शब्द-ही अपनाना चाहते हैं और मैं Ellipse के लिये एक नये शब्द 'अवलय' की सृष्टि करना चाहता हूँ। मुझे 'दीर्घ-वृत्त' नाम पर भारी आपत्ति है। मान लीजिये कि हम निम्नलिखित वाक्योंका हिन्दी अनुवाद करना चाहते हैं :—

(१) The path of one planet is a big ellipse; that of the other is a small ellipse.

(२) The path of one planet is an ellipse; that of the other is a circle.

(३) The path of one planet is a big circle; that of the other is a small circle.

(४) A central plane section of a sphere is a Great circle; any other plane section is a small circle.

यदि हम 'दीर्घ-वृत्त' नाम को स्वीकार करलें तो इन वाक्योंका अनुवाद इस प्रकार करना होगा:—

(१) एक ग्रहका पथ एक बड़ा दीर्घ वृत्त है, दूसरेका एक छोटा दीर्घ-वृत्त।

(२) एक ग्रहका पथ एक दीर्घ-वृत्त है, दूसरेका एक वृत्त।

(३) एक ग्रहका पथ एक बड़ा (या बृहत्) वृत्त है, दूसरेका एक छोटा वृत्त।

(४) किसी गोल का कोई केन्द्रीय समतल काट एक बड़ा वृत्त होता है; कोई भी अन्य समतल काट एक छोटा वृत्त होता है।

पहले वाक्यमें 'बड़ा दीर्घ-वृत्त' और 'छोटा दीर्घ-वृत्त कितने भद्दे वाक्यांश प्रतीत होते हैं। विद्यार्थियोंके मस्तिष्क में सदैव 'बड़े वृत्त' और 'दीर्घ वृत्त' में भ्रम हुआ करेगा। दूसरी बात यह है कि वाक्य (४) में Great circle और small circle पारिभाषिक अर्थमें व्यवहृत हुये हैं। इनका अर्थ केवल big circle और small circle नहीं है। इसलिये इनके नामोंमें कुछ विभिन्नता लानी पड़ेगी। यदि Ellipse के लिये 'अवलय' नाम स्वीकृत हो जाय तो उपरिलिखित वाक्यों का अनुवाद इस प्रकार होगा:—

(१) एक ग्रहका पथ एक बड़ा अवलय है, दूसरेका एक छोटा अवलय।

(२) एक ग्रह का पथ एक अवलय है, दूसरे का एक वृत्त।

(३) का अनुवाद वही रहेगा।

(४) किसी गोलका कोई केन्द्रीय समतल काट एक दीर्घ वृत्त होता है; कोई भी अन्य समतल काट एक लघु वृत्त होता है।

पाठक विचार करलें कि इनमेंसे कौन सी नामावली अधिक उपयुक्त होगी। इन्हीं बातों पर विचार करके मैंने शांकवोंके नामोंमें थोड़ासा अन्तर करनेका प्रस्ताव किया है :—

Conic	ना० प्र० स० का नाम	मेरा प्रस्तावित नाम
Parabola	परवलय	परवलय
Ellipse	दीर्घ-वृत्त	अवलय
Hyperbola	अतिपरवलय	अतिवलय

इस बातका उद्योग भी होना चाहिये कि समस्त भारतीय भाषाओंमें एक ही पारिभाषिक शब्दावली बन

जाय। ऐसा तभी हो सकेगा जब नये शब्द संस्कृत मूलसे लिये जायं। इस दिशामें डा० रघुवीर का कार्य स्तुत्य है। उन्होंने हाइड्रोजन (Hydrogen) और आक्सिजन (Oxygen) के लिये नये शब्द 'उदजन' और 'जारक' बनाये हैं। यह असम्भव नहीं है कि इन्हीं शब्दोंको भारतकी समस्त भाषायें (उर्दू को छोड़कर) स्वीकार करलें। कितना अच्छा होता यदि उर्दू भाषी भी इस नामावलीको अपना लेते। परन्तु उन लोगोंको तो संस्कृत के नामसे चिढ़ है। वह तो अपना स्फुरण अरबी और फारसीसे लेते हैं। उस्मानिया विश्वविद्यालयने जो नामावली तैयार की है, उसमें इन दोनों गैसोंके नाम हैं क्रमश: 'हमज़ीन' और 'मायीन'। यह सोलह आने विदेशी शब्द किसी भी अन्य भारतीय भाषाको स्वीकृत नहीं हो सकते। समस्त देशकी एक शब्दावली बनानेके लिये उसी मार्गका अवलम्बन करना होगा जिसका डा० रघुवीर कर रहे हैं। केवल उनसे इतनी प्रार्थना है कि वह उन्हीं शब्दोंके लिये नये नाम गढ़ें जिनके लिये परिचित नाम पहलेसे मौजूद नहीं हैं। परिचित शब्दोंके लिये नये अपरिचित शब्दोंकी सृष्टि करना वाञ्छनीय नहीं है।

कुछ लोगोंका मत है कि प्रत्येक अँग्रेज़ी शब्दके लिये एक ही हिन्दी पर्याय होना चाहिये, परन्तु यह सम्भव नहीं है। यह अँग्रेज़ीकी विशेषता (या दोष ?) है कि अधिकांश शब्दोंके कई २ अर्थ होते हैं। इन सब अर्थोंके लिये हिन्दी का एक ही पर्याय होना युक्ति-संगत नहीं है। यह बात मैं तीन शब्दोंके उदाहरण देकर दिखाता हूँ: एक ऐसे शब्द का जिसका अर्थ परिभाषिक विषयमें साधारण अर्थ से भिन्न हो जाता है, दूसरा एक अर्ध-पारिभाषिक शब्द का और तीसरा एक पारिभाषिक शब्द का।

(१) Sense

Sense	समझ
In what *sense* have you used the expression ?	तुमने व्यञ्जक का प्रयोग किस अर्थ में किया है ?
What is the *sense* of the statement ?	वक्तव्य का आशय क्या है ?
In the same *sense* = Taken the same way round (Mathematical)	एक ही चेतना में

(२) Standard

Standard of measurement	मापदण्ड
Standard of living	जीवन का धरातल
Standard dictionary	प्रामाणिक शब्द-कोष
Standard formula	नियत सूत्र

(३) Compound

Compound Addition	मिश्र योग
Compound Interest	चक्र-वृद्धि ब्याज
To *Compound* (forces)	(बल) संयोजन करना

इन उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि भिन्न २ अर्थोंके भिन्न २ पर्याय बनाने पड़ेंगे। साथ ही, यह उद्योग करना चाहिये कि यथा-साध्य हिन्दीका प्रत्येक शब्द केवल एक ही अर्थ के लिये नियुक्त किया जाय। इन पंक्तियोंके लेखकने शब्दावली बनानेमें इस उद्देश्यकी पूर्तिका गंभीर प्रयत्न किया है। हिन्दीमें 'घन' का शब्द अभी तक तीन अर्थोंका द्योतक है: Third power, cube और solid इन तीन शब्दोंके लिये मेरे प्रस्तावित पर्याय यह हैं:

Third power	घन
cube	घनज
solid	ठोस

हिन्दी शब्द 'श्रेणी' के भी कई अर्थ हैं--पंक्ति, सेना, जुलूस, कक्षा, array, series। इनमेंसे पहिले तीन अर्थ तो साधारण बोल चालके हैं, शेष तीनों गणितके पारिभाषिक शब्द हैं। इस सम्बन्धमें हमें गणितमें पाँच शब्दोंके पर्याय बनाने होंगे—class, series, array, matrix, determinant। इनमेंसे अन्तिम शब्दके लिये तो 'सारणिक' शब्द बन चुका है। शेष चारोंके लिये हम इस प्रकार शब्द नियुक्त कर सकते हैं:—

Class	कक्षा
Series	श्रेणी (जो प्रचलित है)
Array	श्रेणिक

Matrix व्यूह

इस प्रकार 'श्रेणी' शब्द केवल एक ही अर्थमें लिया जायगा और भ्रान्तिकी सम्भावना बिलकुल नहीं रहेगी। इसी तरह बहुतसे शब्दोंको हम केवल एक ही अर्थमें प्रयोग कर सकते हैं परन्तु यह सब दशाओंमें सम्भव नहीं है। कुछ शब्द जो रूढ़ हो गये हैं, उन्हें हटाना वाञ्छनीय नहीं है। 'सम' का शब्द कई अर्थोंमें प्रचलित हो चुका है:-

(१) सम = बराबर
समभुजीय = Equilateral
समकौणिक = Equi-angular
समता = Equality
(२) सम = Regular (समभुजीय और समकौणिक)
सम बहुभुज = Regular polygon
(३) सम = चौरस
समतल = plane, plane surface
समतल भूमि = चौरस भूमि
(विषम तल = Rough surface, रूक्ष भूमि)
(४) सम = uniform (constant)
सम गति-वृद्धि = uniform acceleration
(५) सम = uniform (of uniform material)
सम छड़ = uniform rod
(६) सम = एक
समरैखिक = collinear
समचक्रीय = con-cyclic
(७) सम (संख्या) = Even (number)

(८) 'समकोण' = (a right angle) में 'सम' का विशेष अर्थ है। इसका नाम 'समकोण' इसलिये रक्खा गया होगा कि इस दशामें दोनों संलग्न कोण बराबर हो जाते हैं। परन्तु यह अर्थ विशेष है, इसमें केवल 'बराबर' की ही धारणा नहीं है। आज हम Right Angle को ही 'समकोण' कहते हैं, Equal Angles को 'सम कोण' नहीं कहते बल्कि 'समान कोण' कहते हैं। 'समान' का वास्तविक अर्थ है like परन्तु समस्त गणित पुस्तकोंमें 'समान' 'बराबर' के अर्थमें प्रयुक्त हो चुका है। गणितीय शब्दावलीमें इस अर्थ का बदलना सम्भव नहीं है। न्यायतः हमें equality के लिये 'समानता' कहना चाहिये। परन्तु यह असम्भव है क्योंकि आज तक 'समानता' कभी इस अर्थमें प्रयुक्त नहीं हुआ इसलिये साधारण जनता 'समानता' से likeness का अर्थ लगायेगी। अतः हमें अपनी शब्दावली इस प्रकार बनानी पड़ेगी :

Equal Angles समान कोण
Equality समता
like terms सजातीय पद
likeness सजातीयता

ऊपर लिखे उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि शब्द 'सम' कई भिन्न २ अर्थोंमें रूढ़ हो चुका है। इस शब्दावलीमें हेर फेर करना उचित नहीं है। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि छुटे अर्थको तो हम हटा सकते हैं। collinear को हम 'एकरैखिक' और con-cyclic को 'एकचक्रीय' कह सकते हैं। परन्तु ऐसी दशामें Non-collinear को अनेकरैखिक या अ-एकरैखिक या वि-एकरैखिक कहना होगा। यह शब्द बहुत ही भद्दे और अनुपयुक्त होंगे। अत: मेरे विचारमें शब्दावली इस प्रकार होनी चाहिये:

Collinear = समरैखिक
Non-collinear = विषमरैखिक
Coplanar = समतलस्थ
Non coplanar = विषमतलस्थ
Concyclic = समचक्रीय
Non-concyclic = विषमचक्रीय।

(क्रमशः)

टिप्पणी—पारिभाषिक शब्द बनाने वाले सज्जनोंको ध्यान रखना चाहिये कि जो शब्द संस्कृत साहित्यमें प्राचीन कालसे प्रयुक्त होते आरहे हैं उनका वहिष्कार न किया जाय। 'ऊर्ध्वाधर' शब्द कमसे कम १४०० वर्षोंसे भारतीय ज्योतिषमें प्रयुक्त हो रहा है इसलिए इसकी जगह 'खड़ा' शब्दका व्यवहार करना उचित नहीं है। इस विषय पर डाक्टर गोरखप्रसाद जी का लेख पृष्ठ ८१ पर पढ़ने की कृपा करें।

—म० प्र० श्री०

सरल विज्ञान सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम सरल विज्ञान सागरका एक और अंश यहाँ देते हैं।

इकाई, सैकड़ा, दसहजार, दसलाख आदि विषम स्थानोंको वर्ग स्थान और दहाई, हजार, लाख आदि सम-स्थानोंको अवर्ग स्थान कहते हैं क्योंकि १, १००, १०००० आदिके वर्गमूल पूर्णाङ्कोंमें जाने जा सकते हैं परन्तु १०, १०००, १००००० आदिके वर्गमूल पूर्णाङ्कोंमें नहीं निकल सकते। संस्कृत या हिन्दी व्याकरणमें वर्णमालाके अक्षर दो भागोंमें बाँटे गये हैं, १६ स्वर और ३३ व्यंजन। फिर व्यंजन दो भागोंमें बाँटे गये हैं वर्ग और अवर्ग। क से म तकके अक्षर पाँच वर्गों, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्गमें बाँटे गये हैं। शेष ८ अक्षरोंको अवर्ग कहा गया है। १६ स्वरोंमें केवल नव स्वर अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ नव वर्ग और अवर्ग स्थानोंको प्रकट करते हैं, जिनको लिखनेके लिए नवदूने १८ शून्य काममें लाये जाते हैं। इसलिए अक्षरोंसे संख्या लिखनेकी रीति यह हुई :—

क = १	च = ६	ट = ११	त = १६	प = २१	य = ३०	ष = ८०
ख = २	छ = ७	ठ = १२	थ = १७	फ = २२	र = ४०	स = ९०
ग = ३	ज = ८	ड = १३	द = १८	ब = २३	ल = ५०	ह = १००
घ = ४	झ = ९	ढ = १४	ध = १९	भ = २४	व = ६०	
ङ = ५	ञ = १०	ण = १५	न = २०	म = २५	श = ७०	

अ = १, इ = १००, उ = १०००० या $१००^२$,

ऋ = १०००००० या $१००^३$, ऌ = १००००००००

या $१००^४$, ए = १०००००००००० या $१००^५$,

ऐ = १००००००००००००० या $१००^६$,

ओ = १००००००००००००००० या $१००^७$

औ = १००००००००००००००००० या $१००^८$

इसका और विस्तार न करके केवल तीन उदाहरण देकर बतलाया जायगा कि आर्यभटने अपनी रीतिका व्यवहार कैसे किया है। एक महायुगमें सूर्य पृथ्वी का ४३,२०,००० चक्कर (भगण)[1] लगाता हुआ माना गया है, चन्द्रमा ५७७५३३३६ और पृथ्वी १५८२२३७५०० बार घूमती हुई मानी गयी है। इन तीन संख्याओंको आर्यभटने इस प्रकार प्रकट किया है

ख्युघृ, चयगियिङुशुछ्लृ और ङिशिबुणॢष्खृ

ख २ के लिए लिखा गया है और य ३० के लिए। दोनों अक्षर मिलाकर लिखे गये हैं और इनमें उ की मात्रा लगी है जो $१००^२$ या १००००के समान है इसलिए ख्यु का अर्थ हुआ ३२ × $१००^२$ या ३२००००। घृ के घ का अर्थ है ४ और ऋ का $१००^३$ या १००००००, ∴ घृ का अर्थ हुआ ४००००००, इसलिए ख्युघृ = खु + यु + घृ।

अब	खु =	२००००
	यु =	३०००००
	घृ =	४००००००
	∴ ख्युघृ =	४३२००००

इसी प्रकार,	च =	६
	य =	३०
	गि =	३००
	यि =	३०००
	ङु =	५००००
	शु =	७०००००
	छ्लृ =	५७००००००
		५७७५३३३६

यहाँ छ में ऌ की मात्रा नहीं लगी है वरन् छ और ल में ऋ की मात्रा लगी है इसलिए छ्ल का अर्थ हुआ ५७।

ऐसे ही,	ङि =	५००
	शि =	७०००
	बु =	२३००००
	णॢ =	१५०००००००
	ष्खृ =	८२००००००
		१५८२२३७५००

संख्या लिखनेकी इस रीतिमें सबसे बड़ा दोष यह है कि यदि अक्षरोंमें थोड़ा सा भी हेर-फेर हो जाय तो बड़ी भारी भूल हो सकती है। ऊपरके तीसरे उदाहरणमें कर्नकी पुस्तकमें बु के स्थानमें पु छप गया है जिसका अर्थ हुआ ८००००० जब बु का अर्थ होता है २३००००।

१—भगण के 'भ' का अर्थ है नक्षत्र, इसलिए भगण का अर्थ हुआ नक्षत्रगण या क्रान्तिवृत्तके २७ नक्षत्र जिन पर एक बार चलनेसे ग्रहोंका एक चक्कर पूरा होता है। इसलिए भगणका अर्थ हुआ चक्कर और भगण काल का अर्थ हुआ एक चक्कर या परिक्रमा करने का समय (period of revolution)

दूसरा दोष यह है कि ल में ऋ की मात्रा लगायी जाय तो इसका रूप वही होता है जो ऌ स्वरका, परन्तु दोनोंके अर्थोंमें बड़ा अन्तर पड़ता है। दूसरे उदाहरणमें छ्ऌ में छ और ल अलग अलग अक्षर हैं जिन दोनोंमें ऋ की मात्रा लगायी गयी है। परन्तु तीसरे उदाहरणमें ण में ऌ की मात्रा लगी है, ल स्वतन्त्र अक्षर नहीं है। दूसरे उदाहरणका छ अक्षर एक अंककी संख्या सूचित करता है इस लिये यह ल के साथ जो ८० की संख्या सूचित करता है जोड़ा जा सकता है और दोनोंमें ऋ की मात्रा लगायी जा सकती है परन्तु तीसरेमें पहला अक्षर ण १५ की संख्या सूचित करता है इसलिये इसमें ल अक्षर नहीं जोड़ा जा सकता वरन् ऌ की मात्रा लगायी जा सकती है।

इन दोषोंके होते हुए भी इस प्रणालीके लिये आर्यभट की प्रतिभाकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। इसमें उन्होंने थोड़े ही श्लोकोंमें बहुत सी बातें लिख डाली हैं, गागरमें सागर भर दिया है।

ऊपरके उद्धृत श्लोक तथा इससे पहले के प्रथम श्लोक की जिसमें ब्रह्मा और परमब्रह्मकी बंदनाकी गयी है कोई क्रम संख्या नहीं दी है क्योंकि यह प्रस्तावके रूपमें हैं और गीतिकापादमें सम्मिलित नहीं किये गये हैं जैसा कि गीतिकापादके ११ वें श्लोक[1] में आर्यभटने स्वयं लिखा है। इसके बादके श्लोककी क्रम संख्या १ है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, शनि, गुरु, मंगल, शुक्र, बुधके महायुगीय भगणोंकी संख्या बतलायी गयी है। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है कि आर्यभटने एक महायुगमें पृथ्वी के भ्रमण (rotation) की संख्या भी दी है क्योंकि उन्होंने पृथ्वीका दैनिक भ्रमण माना है और इसके लिये आगे गोलपादके ९वें श्लोकमें नौकाके चलनेका उदाहरण भी दिया है। इस बातके लिए पीछेके आचार्यों, बराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि ने इनकी निन्दाकी है। इससे भी आर्यभट की स्वतंत्रताका पता चलता है।

अगले श्लोकमें ग्रहोंके उच्च और पातके महायुगीय भगणोंकी संख्या बतलायी गयी है। तीसरे श्लोकमें बतलाया गया है कि ब्रह्माके एक दिनमें कितने मन्वन्तर और युग होते हैं और युधिष्ठिरके महाप्रस्थानके दिन गुरुवारसे पहले तक कितने युग और युगपाद बीत चुके थे। इस श्लोकमें भी एक नवीनता है। एक एक महायुग में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग भिन्न भिन्न परिमाणके माने जाते हैं परन्तु आर्यभटने सबको समान माना है, इसी लिये लिखा है कि वर्तमान महायुगके तीन युगपाद बीत गये थे जब कलियुग लगा। आगेके सात श्लोकोंमें राशि, अंश, कला आदिका सम्बन्ध, आकाश कक्षाका विस्तार, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदिकी गति, अंगुल, हाथ, पुरुष और योजनका सम्बन्ध, पृथ्वीके व्यास तथा सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके बिम्बोंके व्यासके परिमाण, ग्रहोंकी क्रान्ति और विक्षेप, उनके पातों और मन्दोच्चोंके स्थान, उनकी मंदपरिधियों और शीघ्रपरिधियोंके परिमाण, तथा तीन अंश ४५ कलाओंके अन्तर पर ज्या खंडों के मानोंकी सारणी है। इस प्रकार प्रकट है कि आर्यभटने अपनी नवीन संख्या-गणनाकी पद्धतिसे ज्योतिष और त्रिकोणमितिकी कितनी बातें दस श्लोकोंमें भर दी हैं।

गणितपाद—आर्यभट पहले आचार्य हुये हैं जिन्होंने अपने ज्योतिषसिद्धान्त ग्रंथमें अंकगणित, बीजगणित और रेखागणितके बहुतसे कठिन प्रश्नोंको ३० श्लोकोंमें भर दिया है। एक श्लोकमें तो श्रेढी गणितके ५ नियम आ गये हैं। पहले श्लोकमें अपना नाम और स्थान भी बतला दिया है। स्थान कुसुमपुर है जिसे आजकल पटना कहते हैं। दूसरे श्लोकमें संख्या लिखनेकी दशमलव पद्धति की इकाइयोंके नाम है। इसके आगेके श्लोकोंमें वर्ग, वर्ग क्षेत्र, घन, घनफल, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुजका क्षेत्रफल, त्रिभुजाकार शंकुका घनफल, वृत्तका क्षेत्रफल, गोलका घनफल, विषम चतुर्भुज क्षेत्रके कर्णोंके सम्पातसे भुजकी दूरी और क्षेत्रफल तथा सब प्रकारके क्षेत्रोंकी मध्यम लम्बाई और चौड़ाई जानकर क्षेत्रफल जाननेके साधारण नियम दिये गये हैं। एक जगह बतलाया गया है कि परिधिके छठें भागकी ज्या उसकी त्रिज्याके समान होती है। एक श्लोकमें बतलाया गया है कि वृत्तका व्यास २०००० हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होती है। इससे परिधि और व्यासका सम्बन्ध चौथे दशमलव स्थान तक

[1] दशगीतिका सूत्रमिदं भूग्रहचरितं भपञ्जरे ज्ञात्वा।
ग्रहभगण परिभ्रमणं स यातिभित्त्वा परंब्रह्म॥

शुद्ध शुद्ध आ जाता है। दो श्लोकोंमें ज्या खंडोंके जानने की व्युत्पत्ति बतलायी गयी है जिससे सिद्ध होता है कि ज्याओंकी सारणी (table of sines) आर्यभटने कैसे बनायी थी। आगे वृत्त, त्रिभुज, चतुर्भुज खींचनेकी रीति, समतल धरातलके परखनेकी रीति, लम्बक (साहुल) प्रयोग करनेकी रीति, शंकु और छायासे छायाकर्ण जानने की रीति, किसी दीपक और उससे बनी हुई शंकुकी छायासे दीपककी ऊँचाई और दूरी जाननेकी रीति, एक ही रेखा पर स्थित दीपक और दो शंकुओंके सम्बन्धके प्रश्नकी गणना करनेकी रीति, समकोण त्रिभुजके भुजों और कर्णके वर्गोंका सम्बन्ध, जिसे पाइथेगोरसका नियम कहते हैं परन्तु जो सुल्व सूत्रमें हज़ारों वर्ष पहले लिखा गया था, वृत्तकी जीवा और शरोंका सम्बन्ध, दो काटते हुये वृत्तोंके सामान्य खण्ड और शरोंका सम्बन्ध, दो श्लोकोंमें श्रेढी गणितके कई नियम, एक श्लोकमें एक एक बढ़ती हुई संख्याओंके वर्गों और घनोंका योगफल जानने का नियम, (क+ख)²–(क²+ख²) = २ क ख, दो राशियोंका गुणनफल और अन्तर जानकर राशियोंको अलग अलग करनेकी रीति, ब्याजकी दर जाननेका एक कठिन प्रश्न जो वर्ग समीकरणका उदाहरण है, त्रैराशिक का नियम, भिन्नके हरोंको सामान्य हरमें बदलनेकी रीति, भिन्नोंको गुणा करने और भाग देनेकी रीति, बीज गणित के कुछ कठिन समीकरणोंको सिद्ध करनेके नियम, दो ग्रहोंका युतिकाल जाननेका नियम और कुट्टक नियम (solution of indeterminate equation) बतलाये गये हैं।

जितनी बातें ३० श्लोकोंमें बतलायी गयी हैं उनको यदि आजकलकी परिपाटीके अनुसार विस्तार करके लिखा जाय तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन सकती है और इसको समझनेके लिए हाई स्कूल तककी शिक्षा पाये हुये विद्यार्थी कठिनाईका अनुभव करेंगे।

कालक्रियापाद—इस अध्यायमें ज्योतिष संबंधी बातें हैं। पहले दो श्लोकोंमें काल और कोणकी इकाइयों का संबंध बतलाया गया है। आगेके ६ श्लोकोंमें अनेक प्रकारके मासों, वर्षों और युगोंका संबंध बतलाया गया है। यहाँ एक विशेषता है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। ब्रह्माका दिन या कल्प १००८ महायुगोंका बतलाया गया है जो गीता, मनुस्मृति तथा अन्य सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्रतिकूल है क्योंकि वे एक हजार महायुगका कल्प मानते हैं। नवें श्लोकमें बतलाया गया है कि युगका प्रथमार्ध उत्सर्पिणी और उत्तरार्ध अवसर्पिणी काल है और इनका विचार चन्द्रोच्चसे किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ समझमें नहीं आता। किसी टीकाकारने इसकी सन्तोष जनक व्याख्या नहीं की है। दसवें श्लोककी चर्चा पहले ही आ चुकी है जिसमें आर्यभटने अपने जन्मका समय बतलाया है। इसके आगे बतलाया है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे युग, वर्ष, मास और दिवसकी गणना आरंभ होती है। आगेके २० श्लोकोंमें ग्रहोंकी मध्यम और स्पष्ट गति संबंधी नियम हैं।

गोलपाद—यह आर्यभटीयका अन्तिम अध्याय है। जिसमें ५० श्लोक हैं। पहले श्लोकसे प्रकट होता है कि क्रान्तिवृत्तके जिस विन्दुको आर्यभटने मेषादि माना है वह वसंत-सम्पात-विन्दु था क्योंकि वह कहते हैं कि मेषके आदिसे कन्याके अंत तक अपमण्डल (क्रान्तिवृत्त) उत्तर की ओर हटा रहता है और तुलाके आदिसे मीनके अंत तक दक्षिणकी ओर। आगेके दो श्लोकोंमें बतलाया गया है कि ग्रहोंके पात और पृथ्वीकी छाया क्रान्तिवृत्त पर भ्रमण करते हैं। चौथे श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्यसे कितने अंतर पर चंद्रमा, मङ्गल, बुध, आदि उदय होते हैं। ५ वाँ श्लोक बतलाता है कि पृथ्वी, ग्रहों और नक्षत्रोंका आधा गोल अपनी ही छायासे अप्रकाशित है और आधा सूर्यके सन्मुख होनेसे प्रकाशित है। नक्षत्रोंके संबंधमें यह बात ठीक नहीं है। श्लोक ६, ७ में बतलाया गया है कि भूगोलकी चारों ओर जल वायु आदि फैले हुए हैं। ८ वें श्लोकमें यह विचित्र बात बतलायी गयी है कि ब्रह्माके दिनमें पृथ्वीकी गोलाई एक योजन बढ़ जाती है और ब्रह्मा की रात्रिमें एक योजन घट जाती है। श्लोक ९में बतलाया गया है कि जैसे चलती हुई नाव पर बैठा हुआ मनुष्य किनारेके स्थिर पेड़ों को उलटी दिशामें चलता हुआ देखता है वैसे ही लंका (पृथ्वी की वधुवत् रेखा) से स्थिर तारे पच्छिमकी ओर घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं। परन्तु १०वें श्लोकमें यह भी बतलाया गया है कि प्रवहवायुके कारण

नक्षत्र-चक्र और ग्रह पच्छिमकी ओर चलते हुए उदय अस्त होते हैं। श्लोक ११ में सुमेरु पर्वत (उत्तरी ध्रुव) का आकार और श्लोक १२मे सुमेरु और बड़वामुख (दक्षिणी ध्रुव) की स्थिति बतलायी गयी है। श्लोक १३ में विषवत् रेखा पर नब्बे नब्बे अंशकी दूरी पर स्थित चार नगरियोंका वर्णन है। श्लोक १४में लंकासे उज्जैनका अंतर बतलाया गया है। श्लोक १५में बतलाया गया है कि भूगोल की मोटाईके कारण खगोल आधे भागसे कम क्यों दिखलाई पड़ता है। १६वें श्लोकमें बतलाया गया है कि देवताओं और असुरोंको खगोल कैसे घूमता हुआ दिखाई पड़ता है। श्लोग १७में देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंके दिन रातका परिमाण है। श्लोक १८से २१ तक खगोल गणितकी कुछ परिभाषाएँ हैं। श्लोक २२, २३में भूभगोल यंत्रका वर्णन है। श्लोक २४–३३में त्रिप्रश्नाधिकारके प्रधान सूत्रोंका वर्णन है जिनसे लग्न, काल आदि जाने जाते हैं। श्लोक ३४में लम्बन, ३५में दृक्कर्म और ३६ में आयन दृक्कर्म का वर्णन है। श्लोक ३७ से ४७ तक सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणोंकी गणना करनेकी रीति है। श्लोक ४८में बतलाया गया है कि क्षितिज और सूर्यके योगसे सूर्यके, सूर्य और चन्द्रमाके योगसे चन्द्रमाके और चन्द्रमा, ग्रह तथा तारोंके योगसे सब ग्रहोंके मूलाङ्क जाने गये हैं। श्लोक ४९में बतलाया गया है कि सत् और असत् ज्ञानके समुद्रसे बुद्धि रूपी नावमें बैठकर सद्ज्ञान रूपी ग्रन्थ रत्न किस प्रकार निकाला गया है। श्लोक ५०में बतलाया गया है कि आर्यभटीय ग्रन्थ वैसा ही है जैसा आदि कालमें स्वयम्भूका था इसलिए जो कोई इसकी निन्दा करेगा उसके यश और आयुका नाश होगा।

आर्यभटीयके इतने वर्णनसे स्पष्ट हो जाता है कि इसमें ज्योतिषसिद्धान्तकी प्रायः सभी बातें और उच्चगणितकी कुछ बातें सूत्र रूपमें लिखी गयी हैं। इसमें तिथि, नक्षत्र आदिकी गणना तथा नक्षत्रोंकी सूची और उनकी स्थितियों के संबंधमें कुछ नहीं कहा गया है। जान पड़ता है कि इन सब बातोंका विशद विवेचन आर्यभटने अपने दूसरे ग्रन्थमें किया था जिसका पता अब नहीं है।

महत्व—दक्षिण भारतमें इसीके आधार पर बने हुए पंचांग वैष्णव धर्मवालोंको मान्य होते हैं। ब्रह्मगुप्त जो आर्यभटके बड़े तीव्र समालोचक थे, अंतमें इसीके आधारपर खण्डखाद्यक नामक करण ग्रन्थ लिखा था। परन्तु ऐसी उत्तम पुस्तककी हिन्दीमें कोई अच्छी टीका नहीं है। संस्कृतमें इसकी चार टीकाएँ हैं। प्रथम भास्कर, सूर्यदेव यज्व, परमेश्वर और नीलकंठकी टीकाओं की चर्चा हिस्ट्री आव् हिन्दू मेथिमैटिक्समें है। जिनमेंसे परमेश्वर या परमादीश्वरकी भटदीपिकाकी टीकाके साथ श्री उदयनारायण सिंहजीने अपनी हिन्दीकी टीका सं० १९६३ में प्रकाशित की थी। सूर्यदेव यज्वकी संस्कृत टीकाका नाम आर्यभट प्रकाश है जिसकी हस्तलिखित प्रति डा० अवधेश नारायण सिंह जीकी कृपासे इस लेखकको देखनेके लिए मिली। यह टीका दीपिकासे बहुत अच्छी है परन्तु अभी तक शायद छपाई नहीं गयी है। अंग्रेजीमें इसकी एक टीका डा० कर्नने भटदीपिकाके साथ सन् १८७४ ई० में लेडेन (हालैंड) में छपायी थी।

वराहमिहिर

आर्यभटके समयके आस-पास कई ज्योतिषी हुए जिनकी चर्चा ब्रह्मगुप्त और वराहमिहिरने की है परन्तु जिनके कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रचलित नहीं हुए। आर्यभटके शिष्य प्रथम भास्करकी महाभास्करीय और लघुभास्करीय का पता अब चला है जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ मद्रास सरकारके अधिकारमें हैं और जिनकी चर्चा पहले की गयी है। वराहमिहिर इन सबमें प्रसिद्ध हैं क्योंकि इन्होंने ज्योतिषकी प्रायः सभी शाखाओं पर ग्रन्थ लिखे हैं जो अब तक प्रामाणिक समझे जाते हैं। भारतीय ज्योतिषी ज्योतिषकी तीन प्रधान शाखाएँ मानते हैं—(१) सिद्धान्त, (२) संहिता और (३) होरा या जातक। सिद्धान्त, ज्योतिषकी वह शाखा है जिससे ग्रहों और नक्षत्रोंकी स्थिति आकाशमें निश्चय की जाती है और ग्रहणों और ग्रहयुतियों का समय जाना जाता है। आर्यभटीय, सूर्य सिद्धान्त, ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त-शिरोमणि, आदि ऐसे ही ग्रन्थ हैं। सिद्धान्तके भी दो भेद हैं। जिन ग्रन्थोंमें ग्रहोंकी गणना कल्पसे अथवा सृष्टिके आदिसे की जाती है उन्हें सिद्धान्त और जिनमें ग्रहोंकी गणना किसी काल विशेषसे की जाती है उन्हें करण ग्रन्थ कहते हैं। इस विचारसे सूर्यसिद्धान्त भी करण ग्रन्थ है क्योंकि इसमें

ग्रहोंकी गणना वर्तमान महायुगके सतयुगके अन्तसे की जाती है। संहिता ज्योतिषकी वह शाखा है जिसमें आकाश या अंतरिक्ष (वायुमण्डल) में होने वाली घटनाओंसे शुभ अशुभ बातोंका विचार किया जाता है और होरा या जातक ज्योतिषकी वह शाखा है जिससे किसीकी जन्मकालीन ग्रहों और नक्षत्रोंकी स्थितियोंसे उसके जीवनकी शुभ अशुभ घटनाओंका विचार किया जाता है। प्राचीन कालमें प्रायः सभी देशोंमें ज्योतिष सिद्धान्तकी उन्नति इसी विचारसे की गयी थी कि इससे संहिता और जातक संबंधी शुभाशुभ फल शुद्ध शुद्ध निकल सकते हैं।

वराहमिहिरने इन तीनों शाखाओं पर जो ग्रन्थ लिखे थे उन्हें क्रमश: पंचसिद्धान्तिका, बृहत्संहिता या वाराही संहिता और बृहज्जातक कहते हैं। विवाहादि मुहूर्तोंका विचार करनेके लिए भी इनके ग्रन्थ हैं परन्तु इनकी चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं है।

पंचसिद्धान्तिका—जैसा नामसे प्रकट है इसमें पांच सिद्धान्तों पौलिश, रोमक, वसिष्ठ, सौर और पैतामह सिद्धान्तोंका संग्रह[1] है। इसमें ग्रहणकी गणना करनेके लिये विशेष रूपसे विचार किया गया है। ४२७ शक (५०५ ई०) का चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सोमवारका समय ध्रुव[2] माना गया है। यह आर्यभटीयके ध्रुवकाल (epoch) से केवल ६ वर्ष पीछेका है क्योंकि आर्यभटीय का ध्रुव ३६०० कलि सम्वत् या ४२१ शक काल है। कुछ विद्वान[3], यह सिद्ध करनेके लिये कि वराहमिहिर विक्रम संवत्के प्रवर्तक विक्रमादित्य राजाके नव रत्नोंमें थे, कहते हैं कि ४२७ शक काल शाक्य काल है जो गौतम बुद्धके समयसे चला। इसका समर्थन जयाजी प्रतापके गत ४ थी जनवरीके अंकमें विक्रम विशेषांकके समालोचक महोदय भी करते हैं। परन्तु बराहमिहिरके लेखोंसे सिद्ध है कि ४२७ शक शालिवाहन शक है और यह उस विक्रमादित्य के दरबारके नवरत्नोंमें नहीं हो सकते जो विक्रम सम्वत्का प्रवर्तक समझे जाते हैं।

वराहमिहिरके समयके सम्बन्धमें सबसे बड़ा प्रमाण आर्यभटका है जो निश्चय ही ३५७७ कलि सम्वत् या ३९८ शककालमें हुए थे और जिन्होंने ३६०० कलि (४२१ शक या ४९९ ई०) का ध्रुवकाल माना हैं। बराहमिहिर आर्यभटके पीछे नहीं तो समकालीन अवश्य थे क्योंकि इन्होंने आर्यभटके भू-भ्रमणकी बातका खण्डन किया है और यह भी बतलाया है कि आर्यभटने दो पुस्तकें लिखी थीं। बराहमिहिरने यह भी लिखा है कि उनके समयमें दक्षिणायन पुनर्वसुके तीसरे चरणपर होता था और उत्तरायण मकरके आदिमें जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। इसके सिवा पंचसिद्धान्तिकाके अनुसार ग्रहगणना करनेके लिये और बृहत्संहिताके अनुसार संवत्सर गणनाके लिये जो नियम दिये गये हैं वे तभी ठीक होते हैं जब ४२७ शकको शालिवाहन शक समझा जाय। इस विषय पर इन पंक्तियोंके लेखक ने माधुरी[4] में कई और प्रमाण दिये हैं जिनसे सिद्ध है कि वराहमिहिरका समय ४२७ शक काल या ५०५ ईस्वी है।

पञ्चसिद्धान्तिकाकी दो हस्तलिखित प्रतियां डाक्टर थीबो ने बम्बई सरकारसे प्राप्त की थीं परन्तु उनमेंसे कोई भी शुद्ध नहीं थी। दोनोंमें जो अधिक शुद्ध थी उसको बायीं ओर देकर उसका संशोधित रूप दाहनी ओर छपाया गया था। इसका अंग्रेजी अनुवाद और टीका डाक्टर थीबोने स्वयम् किया और संस्कृत संशोधन और टीका म० म० पं० सुधाकर द्विवेदीने किया। इसके सिवा डाक्टर थीबोने एक लम्बी भूमिका लिखी है जिसमें यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि भारतीय ज्योतिषका बहुत सा अंश (युनानी) यवन ज्योतिषसे लिया गया है। डाक्टर थीबो और म० म० सुधाकर द्विवेदीके सहयोगसे पञ्चसिद्धान्तिका का यह संस्करण आजसे ५६ वर्ष पूर्व छपा था। इसके बाद इस ग्रन्थका कोई दूसरा संस्करण कदाचित् नहीं हुआ।

बृहत्संहिता—यह बृहत् ग्रन्थ बतलाता है कि आकाश और अन्तरिक्षमें होनेवाली घटनाओं, ग्रहोंके चलने, युति करने (युद्ध करने), धूमकेतु, उल्कापात, और

१ पंचसिद्धान्तिका १, ३

२ पंचसिद्धान्तिका १, ८

३ श्री सत्यकेतु विद्यालंकार (माधुरी)

४ माधुरी वर्ष ८ खण्ड २ संख्या १ पृष्ठ १०६ ११५ संवत् १९८६ वि०

शकुनोंसे संसारके शुभाशुभ फल कैसे जाने जाते हैं। इस पुस्तक पर भटोत्पल ने एक अच्छी टीका लिखी है जिसके आधार पर डाक्टर कर्न ने अंग्रेजीमें अच्छी टीका लिखी है। इस प्रांतके नवलकिशोर प्रेसने पं० दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी की हिन्दी टीकाके साथ इसे प्रकाशित किया था।

बृहज्जातक—यह जातकका प्रामाणिक ग्रन्थ समझा जाता है। इसकी हिन्दी टीकाएँ बम्बईके कई छापेखानोंसे निकली हैं। पाणिनि आफिससे इसकी अंग्रेजी टीका भी निकली है। इसमें बहुतसे शब्द ऐसे आये हैं जो प्रकट करते हैं कि वे यूनानी ज्योतिषसे लिये गये हैं। वराहमिहिर ने यवन ज्योतिषकी प्रशंसा भी की है। पञ्चसिद्धान्तिका का रोमक सिद्धान्त यवन ज्योतिषका ही सार मालूम होता है।

सूर्यसिद्धान्त

सूर्यसिद्धान्त ज्योतिषका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है और इसका बहुत आदर है। वराहमिहिरने पंचसिद्धान्तिकामें इसको विशेष स्थान दिया है और इसके कर्ता सूर्य (दिनकर) की सबसे पहले बन्दना की है। परन्तु आर्यभटने इसकी कोई चर्चा नहीं की है। सूर्य सिद्धान्तका जो रूप इस समय मिलता है वह वराहमिहिरके समयमें नहीं था। अंतरंग परीक्षासे सिद्ध है कि समय-समय पर इसमें सुधार भी किया गया है। इसका लेखक मयासुर कहा जाता है जिसने सूर्यकी तपस्या करके सूर्यांश पुरुषसे सतयुगके अंतमें आजसे लगभग २१६५०४५ वर्ष पहले इस ग्रन्थको प्राप्त किया था जिससे पाश्चात्य लेखकोंने यह परिणाम निकाला है कि यह ग्रन्थ पहले पहल यवन ज्योतिषके आधार पर लिखा गया था परन्तु पीछेसे इसमें वराहमिहिर आदिने सुधार करके इसको वर्तमान रूप दिया है। यह बात म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी[1] तथा प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त भी मानते हैं। इसका विस्तृत विवेचन इन पंक्तियोंके लेखकने सूर्यसिद्धान्तके विज्ञान भाष्यकी भूमिकामें किया है। इसपर संस्कृतमें कई टीकाएँ लिखी गयी हैं और इसके आधार पर भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें सारिणियां बनायी गयी हैं जिनके आधार पर पंचांग बनाये जाते हैं। इस प्रान्तमें मकरन्द सारिणी ४०० वर्षसे व्यवहारमें आ रही है। अँग्रेज़ी, फरांसीसी, जर्मन भाषाओंमें भी इसके अच्छे अनुवाद किये गये हैं जिनके लेखकोंने इसकी रचनाका ठीक-ठीक समय जाननेका प्रयत्न किया है। इनसे सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ विक्रमकी ५वीं शताब्दीसे आरंभ होकर दसवीं शताब्दी तक अपने वर्तमान रूपमें आया है। इसमें कुल १४ अध्याय हैं जिनमें पहले ८ अध्यायोंको अधिकार कहा गया है और चार अध्यायों को अध्याय इनके नाम क्रमानुसार यह हैं—१—मध्यमाधिकार, २—स्पष्टाधिकार, ३—त्रिप्रश्नाधिकार, ४—चन्द्रग्रहणाधिकार, ५—सूर्यग्रहणाधिकार, ६—परिलेखाधिकार, ७—ग्रहयुत्यधिकार, ८—नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार, ९—उदयास्ताधिकार, १०—शृङ्गोन्नत्यधिकार, ११—पाताधिकार, १२—भूगोलाध्याय, १३—ज्योतिषोपनिषदाध्याय और १४—मानाध्याय। इनके नामोंसे ही यह पता चल जाता है कि किस अध्यायमें क्या विषय बतलाया गया है।

भारतवर्षमें अब भी बहुतसे पण्डित हैं जो समझते हैं कि यह अपौरुषेय है अर्थात् इसे किसी पुरुषने नहीं बनाया वरन भगवान् सूर्यने स्वयम् इसका उपदेश दिया है। परन्तु इतना तो सिद्ध है कि प्राचीन आचार्यों ने भी इसमें संशोधन करनेकी आवश्यकता समझी थी और इसमें सुधार किये थे। स्वयम् इसके श्लोकोंसे भी सिद्ध होता है कि कालान्तरमें भेद पड़ सकता है और दृक्तुल्यताके लिये ही ग्रहोंको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम इस बातका हठ न करें कि सूर्यसिद्धान्तकी गणनामें बिना कुछ संशोधन किये ही पंचांग आदि बनायें।

लाटदेव, पाण्डुरंग स्वामी, निःशङ्कु, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र, प्रद्युम्न, विजयनन्दि

वराहमिहिरने पंचसिद्धान्तिकामें जिन ग्रन्थोंका संग्रह किया है उनके नाम ये हैं—पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर

१—सुधावर्षिणी टीकाकी भूमिका देखिए।

२—खण्ड खाद्यककी अंग्रेजी टीका परिशिष्ट ३ देखिए।

और पैतामह सिद्धान्त। इनमेंसे पहले दो ग्रन्थोंके व्याख्याता[1] लाटदेव बतलाये गये हैं जिससे सिद्ध होता है कि लाटदेव सूर्यसिद्धान्तके बनाने वाले नहीं थे जैसा अलबेरूनीने कई सौ वर्ष पीछे विक्रमकी ११वीं शताब्दीमें लिखा है। यदि ऐसा होता तो वराहमिहिर अवश्य स्वीकार करते। भास्कर प्रथमके रचे महाभास्करीयसे तो प्रकट होता है कि लाटदेव, पाण्डुरङ्ग स्वामी, निःशङ्कु आदि आर्यभटके शिष्य थे[2]। रोमक सिद्धान्त निस्सन्देह यवन (यूनानी) ज्योतिषके आधार पर बनाया गया था क्योंकि इसमें यवनपुरके सूर्यास्तकाल[3] से अहर्गण बनानेकी रीति बतलायी गयी है। यह यवनपुर वर्तमान युक्तप्रान्तका जवनपुर नहीं है वरन् शायद एलेकज़ंडरिया है जो यूनानी ज्योतिषियोंका केन्द्र था। अस्त होते हुए सूर्यसे अहर्गण निकालनेकी बात भी यही बात प्रकट करती है, क्योंकि मुसलमानी महीने अब भी दूइजके चन्द्रदर्शनके समयसे, जब सूर्यास्त होता है, आरंभ होते हैं। ब्रह्मगुप्तने भी रोमक सिद्धान्तको स्मृतिवाह्य[4] माना है। इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। पाण्डुरंगस्वामी और निःशङ्क के बनाये कोई ग्रन्थ नहीं मिले हैं। ब्रह्मगुप्तने श्रीषेण, विष्णुचन्द्र और विजयनन्दिकी चर्चा कई स्थानोंपर विशेषकर तन्त्र परीक्षाध्यायमें की है जिससे प्रकट होता है कि इन्होंने कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिखा था वरन् पुराने ग्रन्थोंका संग्रह मात्र अथवा संशोधन मात्र किया था। ऊपरके पिछले चार ज्योतिषियोंका समय वराहमिहिरके उपरान्त और ब्रह्मगुप्तके पहले अर्थात् संवत् ५६२ से ६६५ के बीचमें है। ब्रह्मगुप्त कहते हैं कि श्रीषेणने लाट, वशिष्ट, विजयनन्दि और आर्यभटके मूलाङ्कोंको लेकर रोमक नामक गुदड़ी[5] तैयार की है और इन सबके आधार पर विष्णुचन्द्रने वाशिष्ट नामक ग्रन्थ रचा है।

१ पंचसिद्धान्तिका १, ३

२ प्रबोधचन्द्र सेन गुप्तके खण्डखाद्यककी भूमिका पृष्ठ XiX

३ पं० सि० १, ८

४ ब्रा० सि० १, १३

५ ब्रा० स्फु० सि० ११, ४८-५१

भास्कर प्रथम

महाभास्करीय और लघुभास्करीय नामक दो ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ मद्रास सरकारके अधिकारमें है जिनकी प्रतिलिपि डाक्टर विभूति भूषणदत्तने प्राप्त की है। इन दोनों ग्रन्थोंमें आर्यभटके ज्योतिषका समावेश है और इनका रचयिता भास्कर नामका कोई ज्योतिषी रहा होगा जो लीलावतीके लेखक प्रसिद्ध भास्कराचार्यसे भिन्न है। इस लिये इनका नाम प्रथम भास्कर लिखना उपयुक्त होगा। यह आर्यभटके शिष्य रहे होंगे जैसा पृथूदक स्वामी[6] के कथनसे प्रकट होता है। इनकी चर्चा पहले आ गयी है इस लिए यहां अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

कल्याण वर्मा

पं० सुधाकर द्विवेदीके अनुसार[7] इनका समय शक ५०० के लगभग है। इन्होंने 'सारावली' नामक जातक शास्त्रकी रचना वराहमिहिरके वृहज्जातकसे बड़े आकारमें की है और स्पष्ट लिखा है कि वराहमिहिर यवन, नरेन्द्र रचित होराशास्त्रके सारको लेकर सारावली नामक ग्रन्थ की रचनाकी है। इसमें ४२ अध्याय हैं। इस पुस्तककी चर्चा भटोत्पलने की है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित[8] के मत से इनका समय ८२१ शकके लगभग है।

ब्रह्मगुप्त

ब्रह्मगुप्त गणित ज्योतिषके बहुत बड़े आचार्य हो गये हैं। प्रसिद्ध भास्कराचार्यने इनको गणकचक्रचूड़ामणि कहा है और इनके मूलाङ्कोंको[9] अपने सिद्धान्त शिरोमणिका आधार माना है। इनके ग्रंथोंका अनुवाद अरबी भाषामें भी कराया गया था जिन्हें अरबीमें अस् सिन्ध हिन्द और अल् अर्कन्द कहते हैं। पहली पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तका अनुवाद है और दूसरी खण्डखाद्यक का। इनका जन्म शक ५१८ (६५३ वि०) में हुआ था और इन्होंने शक ५५० (६८५ वि०) में ब्राह्मस्फुट

६ ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त ११, २६ की टीका

७ गणक तरंगिणी पृष्ठ १६

८ भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृ० ४८६;

९ सिद्धान्त शिरोमणि भगणाध्याय

सिद्धान्तकी रचना[१०] की थी। इन्होंने स्थान-स्थान पर लिखा है कि आर्यभट, श्रीषेण, विष्णुचन्द्र आदिकी गणना से ग्रहोंका स्पष्ट स्थान शुद्ध-शुद्ध नहीं आता इस लिये वे त्याज्य हैं और ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तमें दृग्गणितैक्य[११] होता है इस लिए यही मानना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तकी रचना ग्रहोंका प्रत्यक्ष वेध करके की थी और यह इस बातकी आवश्यकता समझते थे कि जब कभी गणना और वेधमें अन्तर पड़ने लगे तो वेधके द्वारा गणना शुद्ध कर लेनी चाहिये। यह पहले आचार्य थे जिन्होंने गणित ज्योतिषकी रचना एक क्रमसे की, ज्योतिष और गणितके विषयोंको क्रमानुसार अलग अलग अध्यायोंमें बाँटा। इसके अध्यायोंका ब्यौरा नीचे दिया जाता है—

ब्राह्मस्फुट सिद्धांत—१—मध्यमाधिकारमें ग्रहोंकी मध्यम गतिकी गणना है। २—स्पष्टधिकारमें स्पष्ट गति जाननेकी रीति बतलायी गयी है। इसी अध्यायमें ज्या निकालने की रीति बतलायी गयी है जिसमें त्रिज्याका मान ३२७० कला माना गया है जब आर्यभटने ३४३८ कला माना था जिसे सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि आदि ग्रन्थोंमें भी स्वीकार किया गया है। आजकल भी रेडियनका मान ३४३८ के निकट समझा जाता है।

३—त्रिप्रश्नाधिकारमें ज्योतिषके तीन मुख्य विषयों दिशा, देश और काल जाननेकी रीति है।

४—चन्द्रग्रहणाधिकारमें चन्द्रग्रहणकी गणना करने की रीति है।

५—सूर्यग्रहणाधिकारमें सूर्यग्रहणकी गणना करने की रीति है।

६—उदयास्ताधिकारमें बतलाया गया है कि चंद्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ग्रह सूर्यके कितने पास आने पर अस्त हो जाते हैं अर्थात् अदृश्य हो जाते हैं और कितनी दूर होने से उदय होते हैं अर्थात् दिखाई पड़ने लगते हैं।

७—चन्द्रश्रृङ्गोन्नत्याधिकारमें बतलाया गया है कि शुक्लपक्षकी दूइजके दिन जब चन्द्रमा सन्ध्यामें पहले-पहल दिखाई पड़ता है तब उसकी कौन-सी नोक उठी रहती है।

८—चन्द्रच्छायाधिकारमें उदय और अस्त होते हुए चन्द्रमाके वेधसे छाया, शङ्कु आदिका ज्ञान करनेकी रीति है। अन्य ग्रन्थोंमें इसके लिए कोई अलग अध्याय नहीं है।

९—ग्रहयुत्याधिकारमें बतलाया गया है कि ग्रह एक दूसरे के पास कब आ जाते हैं और इनकी युतिकी गणना कैसे की जाती है।

१०—भग्रहयुत्याधिकारमें बतलाया गया है कि नक्षत्रों या तारोंके साथ ग्रहोंकी युति कब होती है और इसकी गणना कैसे की जाती। इसी अध्यायमें नक्षत्रोंके ध्रुवांश और शर भी दिये गये हैं और नक्षत्रोंकी पूरी सूची है। ज्योतिष गणित सम्बन्धी यह दस अध्याय मुख्य हैं।

११—तन्त्रपरीक्षाध्यायमें ब्रह्मगुप्तने पहलेके आर्यभट श्रीषेण, विष्णुचन्द्र आदिकी पुस्तकोंका खण्डन बड़े कड़े शब्दोंमें किया है जो एक प्रकारसे ज्योतिषियोंकी परिपाटी सी है परन्तु इससे यह बात सिद्ध होती है उस प्राचीन-कालमें भी ज्योतिषी वेधसिद्ध शुद्ध गणनाके पक्षमें थे पुरानी लकीरके फकीर नहीं रहना चाहते थे।

१२—गणिताध्याय शुद्ध गणितके संबंधमें है। इसमें जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्नके जोड़ बाकी आदि, त्रैराशिक, व्यस्तत्रैराशिक, भाण्ड प्रतिभाण्ड (बदलेके प्रश्न) मिश्रक व्यवहार आदि अंक गणित या पाटी गणितके विषय है। श्रेढी व्यवहार (Arithmetical progression), क्षेत्र व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदिके क्षेत्र फल जाननेकी रीति), वृत्त क्षेत्र गणित, खातव्यवहार (खाँई आदिका घनफल जानने की रीति), चिति व्यवहार (ढालू खाईंका घनफल जाननेकी रीति), क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वालेके कामका गणित), राशि व्यवहार (नाजके ढेरका

---

१० संज्ञाध्याय ७, ८

११ तन्त्रभ्रंशे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः। कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ॥६०॥ तन्त्र परीक्षाध्याय।

परिमाण जाननेकी रीति), छाया व्यवहार (दीप स्तंभ और उसकी छायाके सम्बन्धके अनेक प्रश्न करनेकी रीति) आदि, २८ प्रकारके कर्म इसी अध्यायके अंतर्गत हैं। इसके आगे प्रश्नोत्तरके रूपमें पीछेके अध्यायोंमें बतलायी हुई बातोंका अभ्यास करनेके लिए कई अध्याय हैं।

१३—मध्यगति उत्तराध्यायमें ग्रहोंकी मध्यगति संबंधी प्रश्न और उत्तर हैं।

१४—स्फुटगति उत्तराध्यायमें ग्रहोंकी स्पष्टगति संबंधी प्रश्न और उत्तर हैं।

१५—त्रिप्रश्नोत्तराध्यायमें त्रिप्रश्नाध्याय संबंधी प्रश्नोत्तर हैं।

१६—ग्रहणोत्तराध्यायमें सूर्य-चन्द्रमाके ग्रहण संबंधी प्रश्नोत्तर हैं।

१७—शृङ्गोन्नत्युत्तराध्यायमें चन्द्रमाकी शृङ्गोन्नति सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं।

१८—कुट्टकाध्यायमें कुट्टककी विधिसे प्रश्नोंका उत्तर जाननेकी रीति है। इस अध्यायमें ब्रह्मगुप्तने प्रत्येक प्रकारके कुट्टककी रीति बतलायी है और दिखलाया है कि इससे ग्रहोंके भगण आदिके काल कैसे जाने जा सकते हैं। इस अध्यायका अँग्रेज़ी अनुवाद कोलब्रुकने किया है। इस अध्यायके अंतर्गत कई खंड हैं। एक खंडमें धन, ऋण और शून्योंका जोड़, बाकी, गुणा, भाग, करणी (surds) का जोड़, बाकी, गुणाभाग, आदि करनेकी रीति है। दूसरे खंडमें एकवर्ण समीकरण, वर्ग समीकरण, अनेक वर्ण समीकरण, आदि बीजगणितके प्रश्न हैं। तीसरा खंड बीजगणित सम्बन्धी भावित बीज नामक है। चौथा खंड वर्गप्रकृति नामक है। पांचवें खंडमें अनेक उदाहरण दिये गये हैं। इस प्रकार यह अध्याय १०३ श्लोकोंमें पूर्ण होता है।

१९—शङ्कुच्छायादि ज्ञानाध्यायमें छायासे समय या किसी चीज़की ऊँचाई आदि जानने की रीति बतलायी गयी है। यह त्रिकोणमितिसे सम्बन्ध रखता है।

२०—छन्दश्चित्युत्तराध्यायमें ११ श्लोक हैं जिनका अर्थ इतना दुरूह है कि समझमें नहीं आता।

२१—गोलाध्यायमें भूगोल और खगोल सम्बन्धी कुछ गणना है। इसमें भी कई खंड हैं—ज्या प्रकरण, स्फुटगति वासना, ग्रहणवासना, गोलबन्धाधिकार। इनमें भूगोल खगोल सम्बन्धी परिभाषाएँ और ग्रहोंके बिम्बोंके व्यास आदि जाननेकी रीति है।

२२—यंत्राध्यायमें ५७ श्लोक हैं जिनमें अनेक प्रकारके यंत्रोंका वर्णन किया गया है जिनसे समयका ज्ञान होता है और ग्रहोंके उन्नतांश, नतांश आदि जाने जाते हैं। स्वयंवह यंत्रकी भी चर्चा है जो पारेकी सहायतासे अपने आप चलता कहा गया है।

२३—मानाध्याय नामक छोटेसे अध्यायमें सौर, चान्द्र सावन आदि नव मानोंकी चर्चा है।

२४—संज्ञाध्यायमें कई महत्वकी बातें बतलायी गयी हैं। पहले बतलाया गया है कि सूर्य, सोम, पुलिश, रोमक, वसिष्ठ और यवन सिद्धान्तोंमें एक ही सिद्धान्त (तत्व) का प्रतिपादन किया गया है। यदि कुछ भेद है तो वैसे ही जैसे सूर्यकी संक्रान्ति स्थान भेदके कारण भिन्न-भिन्न कालोंमें कही जाती है। इससे पता चलता है कि ब्रह्मगुप्त के समय उपर्युक्त सिद्धान्त प्रचलित हो गये थे और सबमें प्रायः एक ही सी बातें थीं। फिर ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तके २४ अध्यायोंकी सूची दी गयी है। इसके बाद बतलाया गया है कि चापवंश तिलक व्याघ्रमुख राजाके समयमें ५५० शकमें जिष्णुसुत ब्रह्मगुप्तने ३२ वर्षकी अवस्थामें गणितज्ञों और गोलज्ञोंकी प्रसन्नताके लिए यह ग्रन्थ रचा। एक श्लोकमें बतलाया है कि ७२ आर्या छन्दोंका ध्यानग्रहोपदेशाध्याय ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तमें जिसके २४ अध्यायोंमें कुल १००८ आर्या छन्द हैं नहीं जोड़ा गया। यह भी याद रखना चाहिए कि प्रत्येक अध्यायके अंतमें यह बतलाया गया है कि उसमें कितने छन्द हैं।

ध्यानग्रहोपदेशाध्यायमें तिथि नक्षत्र आदिकी गणना करनेकी सरल रीति बतलायी गयी है।

इस लम्बे विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मगुप्तने ज्योतिष संबंधी बातोंके सिवा बीजगणित, अंकगणित और क्षेत्रमिति आदि पर भी कितनी ऊँची बातें आजसे १३०० वर्ष पहले लिखी थीं और यह उसी गणनाको ठीक मानते थे जो वेधसे भी ठीक उतरती थीं।

खण्डखाद्यक—शक ५८७ में जब ब्रह्मगुप्त ६७ वर्षके हो गये थे तब खण्डखाद्यक नामक करण ग्रन्थ भी

रचा था जिससे तिथि, नक्षत्र और ग्रहोंकी गणना सुगम रीतिसे की जा सके। आश्चर्यकी बात तो यह है कि ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्तमें जिस आर्यभटकी निन्दा अनेक स्थानोंमें की गयी थी उसीके अनुसार इस खण्डखाद्यक[1] की रचना की गयी है। इससे प्रकट होता है कि वृद्धावस्थामें इनको भी आर्यभटका महत्त्व समझ पड़ा। परन्तु इस ग्रन्थमें भी ब्रह्मगुप्तने नवीन बातें बतलायी हैं और कुछ संशोधन भी किये हैं। इस ग्रन्थमें कुल १० अध्याय हैं जिनमें तिथि नक्षत्रादिकों की गणना, पंच ताराग्रहोंकी मध्य और स्पष्ट गणना, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, उदयास्ताधिकार, चन्द्रशृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार नामक आठ अध्याय पूर्व खण्डखाद्यकमें हैं। उत्तर खण्डखाद्यकमें दो अध्याय हैं जिसके पहले अध्यायमें ब्रह्मगुप्तने अपने संशोधनोंकी चर्चा की है और नयी बातें बतलायी हैं और दूसरे अध्यायमें तारा ग्रहों और नक्षत्रों की युतिके सम्बन्धमें विचार किया है। यहां नक्षत्रोंके योग तारोंका ध्रुवांश और विक्षेप बतलाया है।

इन सब बातोंका विचार करनेसे सिद्ध होता है कि ब्रह्मगुप्त एक महान् आचार्य थे। इन्होंने जो पद्धति चलायी उसीका पीछेके प्रायः सभी आचार्योंने अनुसरण किया। इनके दोनों ग्रन्थोंकी कई टीकाएँ संस्कृतमें ही नहीं निकलीं वरन् अरबीमें भी की गयीं जिससे इनका नाम अरब और तुर्किस्तानमें भी फैल गया था।

लल्ल

इनके समयके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। म० म० सुधाकर द्विवेदी गणकतरंगिणीमें इनका समय ४२१ शक लिखते हैं क्योंकि आर्यभटीयके अनुसार आये हुए ग्रहोंमें बीजसंस्कार देनेके लिए ४२० शक घटाकर[2] ग्रह स्पष्ट करनेके लिए इन्होंने कहा है। परन्तु इसी श्लोकमें बतलाये गये नियमके अनुसार प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त अपनी खण्डखाद्यककी टीकाकी भूमिका[2] में बतलाते हैं कि लल्ल का समय इससे २५० वर्ष पश्चात् शक ६७० है क्योंकि २५० से भाग देनेकी बातसे प्रकट होता है कि यह बीज संस्कार लल्लने ४२० शकसे २५० वर्ष पीछे निश्चित किये थे। यह बात सेनगुप्तजीने दूसरी तरहसे भी सिद्ध किया है। यह कहते हैं कि लल्लने नक्षत्रोंके योगतारों के जो ध्रुवांश दिये हैं वे ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त के ६ तारोंके ध्रुवांशोंसे लगभग २ अंश अधिक हैं और दो तारोंके ध्रुवांशोंसे लगभग १°१०′ अधिक हैं इसलिए इनका समय ब्रह्मगुप्तके समयसे कमसे कम ८५ वर्ष और अधिकसे अधिक १४० वर्ष पश्चात होता है। ब्रह्मगुप्तके पश्चात् लल्लके होनेकी बात श्री बबुआ मिश्रकी संपादित खण्ड-खाद्यककी टीका पृ० २७ से भी सिद्ध होती है क्योंकि इन्होंने लल्लकी बनायी खण्डखाद्यपद्धति नामक ग्रन्थ-की चर्चा की है जिसकी चर्चा न तो पं० सुधाकर द्विवेदीने की है और न शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने। सुधाकर द्विवेदीजीका मत तो इस बातसे भी ठीक नहीं समझ पड़ता कि यदि लल्ल इतने पुराने होते तो ब्रह्मगुप्तजी जिन्होंने आर्यभट, श्रीसेन, आदि अपने पहलेके ग्रन्थकारों की चर्चा कई जगह की है इनकी चर्चा भी अवश्य करते। शंकर बालकृष्ण दीक्षित इनका समय ५६० शक के लगभग बतलाते हैं जिससे यह ब्रह्मगुप्तके समकालीन सिद्ध होते हैं। परन्तु यह बात भी ठीक नहीं समझ पड़ती क्योंकि तब बीजसंस्कारके लिए २५० से भाग देनेकी बात समझमें नहीं आती। इसके सिवा जब बबुआ मिश्र खण्डखाद्यपद्धतिकी चर्चा करते हैं जो ब्रह्मगुप्तके खण्ड-खाद्यककी टीका ही हो सकती है तब तो प्रबोधचन्द्र सेन गुप्तका ही अनुमान ठीक समझ पड़ता है।

शिष्यधीवृद्धिद तंत्र—यह लल्लका बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसे आर्यभटीयके आधार पर लिखा गया है और बीज संस्कार देकर उसे शुद्ध करनेकी बात भी लिखी

१—वक्ष्यामि खण्डखाद्यकमाचार्यार्यभट तुल्य फलम् ॥१॥
प्रायेणार्यभटेन व्यवहारः प्रतिदिनं यतोऽशक्यः।
उद्वाहजातकादिषु तत्समफलं लघुतरोक्ति रतः ॥२॥
प्रथम अध्याय

२—शाके नखाब्धि रहिते...ऽब्धशरविभक्ते ॥ शिष्यधी-वृद्धिद अध्याय १, ५१-६०, अध्याय १३, १८-१९

२—Introduction पृष्ठ XXVII

गयी है। इस ग्रन्थके रचनेका कारण[3] यह बतलाया जाता है कि आर्यभट या इनके शिष्योंके लिखे ग्रन्थोंसे विद्यार्थियोंके समझनेमें सुविधा नहीं होती थी इसलिए बिस्तारके साथ उदाहरण देकर (कर्मक्रमसे) यह ग्रन्थ लिखा गया है। इसमें अंकगणित या बीजगणित संबंधी अध्याय नहीं है, केवल ज्योतिष संबंधी अध्याय विस्तारके साथ दिये गये हैं और कुल श्लोकोंकी संख्या १००० है। इस ग्रन्थके गणिताध्यायमें मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, ग्रहोदयास्ताधिकार, चन्द्रच्छायाधिकार, चन्द्रश्रृङ्गोन्नत्यधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक १३ अध्याय हैं। गोलाध्यायमें छेद्यकाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्य-गतिवासना, भूगोलाध्याय, ग्रहभ्रमसंस्थाध्याय, भुवन-कोश, मिथ्याज्ञानाध्याय, यन्त्राध्याय और प्रश्नाध्याय हैं। इन अध्यायोंके नामसे भी प्रकट होता है कि यह पुस्तक ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तके पश्चात् लिखी गयी है और ज्योतिष संबंधी जिन बातोंकी कमी ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तमें थी वह यहाँ पूरी की गयी है। शुद्ध गणित, अंक गणित या बीज गणित संबंधी कोई अध्याय इसमें नहीं हैं जिससे प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्तके बाद जब ज्योतिष और गणित संबंधी विकास बहुत बढ़ गया तब इन दोनों शाखाओंको अलग-अलग विस्तारके साथ लिखनेकी परिपाटी चली, किसीने शुद्ध गणित पर विस्तारके साथ लिखना आरंभ किया जैसे श्रीधर और महाबीर और किसीने केवल ज्योतिष पर जैसे लल्ल, पृथूदक स्वामी, भटोत्पल आदि। यह आश्चर्यजनक है कि आर्यभटके सिवा किसी अन्य प्राचीन आचार्यका नाम इसमें नहीं आया है।

रत्नकोश—शंकर बालकृष्ण दीक्षित[4] लिखते हैं कि इस नामका एक मुहूर्त ग्रन्थ लल्लका रचा हुआ है। इसका अनुमान पं० सुधाकर द्विवेदी अपनी गणक तरंगिणी में भी करते हैं क्योंकि मुहूर्त चिंतामणिकी पीयूष धारा टीकामें लल्लके मतकी चर्चा है परन्तु यह पुस्तक द्विवेदी जीके देखनेमें नहीं आयी थी।

पाटी गणित (अंकगणित) और बीजगणित की कोई पुस्तक भी लल्लकी बनायी हुई थी ऐसा द्विवेदी जी अनुमान करते हैं, परन्तु यह पुस्तक भी उनके देखनेमें नहीं आयी थी। सब बातोंका विचार करनेसे प्रकट होता है कि लल्ल एक विद्वान् ज्योतिषी थे और आकाशके निरीक्षणके द्वारा ग्रहोंको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता समझते थे।

पद्मनाभ

यह बीजगणितके आचार्य थे जिनके ग्रन्थका उल्लेख भास्कराचार्यने अपने बीजगणितमें किया है परन्तु इनके समयका पता किसीने नहीं दिया है। डा० सिंह और दत्[1] लिखते हैं कि इनका बीजगणित कहीं नहीं मिलता। शंकर बालकृष्ण दीक्षित[2] लिखते हैं कि कोलब्रुकके मतानुसार इनका काल श्रीधरसे पहलेका है इस लिए ७०० शकके लगभग ठहरता है।

म० म० सुधाकर द्विवेदी गणक तरंगिणीमें व्यवहार प्रदीप नामक ज्योतिष ग्रन्थके कर्त्ता जिस पद्मनाभ मिश्र का वर्णन करते हैं वह इनसे भिन्न हैं। द्विवेदीजीने भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा है कि दोनों एक ही हैं या भिन्न।

श्रीधर

यह भी बीजगणितके आचार्य थे जिनका उल्लेख भास्कराचार्यने बीजगणितमें कई जगह किया है। डाक्टर सिंह और दत्तके मतसे इनका समय ७५० ई० के लगभग है जो ६७२ शकके लगभग ठहरता है। इनकी पुस्तकका

३—विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीतं।
तंत्राणि यद्यपि कृतानि तदीय शिष्यैः॥
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तैः।
कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तु सूक्तं ॥२॥
मध्याधिकार

४—भारतीय ज्योतिष शास्त्र, पृष्ट २१७

१—हिस्ट्री आव् हिन्दू मैथिमैटिक्स भाग २ पृ० १२ की पाद टिप्पणी

२—भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २२९

नाम त्रिशतिका है जिसकी एक प्रति गणक तरंगिणीके[1] अनुसार काशिक राजकीय पुस्तकालयमें और एक प्रति पं० सुधाकर द्विवेदीके मित्र राजाजी ज्योतिर्विदके पास थी। इसमें ३०० श्लोक हैं जिसके एक श्लोकसे विदित होता है कि यह श्रीधरके किसी बड़े ग्रन्थका सार है। यह प्रधानतः पाटीगणितकी पुस्तक है जिसमें श्रेढी व्यवहार क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, चितिव्यवहार, राशिव्यवहार छायाव्यवहार आदि पर विचार किया गया है। द्विवेदी जीका मत है कि न्याय कन्दली नामक ग्रन्थके रचयिता भी यही श्रीधर है जिसकी रचना ६१३ शकमें की गयी थी, इसलिए श्रीधरका समय भी यही है। परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि इस मतका समर्थन न तो दीक्षित करते हैं और न डा० सिंह या दत्त। दीक्षित[2] कहते हैं कि महावीरके गणितसारसंग्रह नामक ग्रन्थमें श्रीधरके मिश्रकव्यवहारके कुछ वाक्य आये हैं जिनसे प्रकट होता है कि श्रीधर महावीरके पहले हुए हैं और महावीरका समय दीक्षितके मत[3] से ७७५ शक तथा डा० सिंहके मत[4] से ८५० ई० वा ७७२ शक होता है।

महावीर

यह बीजगणित और पाटीगणितके प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं जिनके ग्रंथ गणितसार संग्रहके अनेक अवतरण डा० सिंह और दत्त ने अपने हिन्दूगणितके इतिहास में दिये हैं। इनका समय ८५० ई० अथवा ७७२ शक कहा जाता है। यह जैनधर्मी थे और जैनधर्मी राजा अमोघवर्षके आश्रयमें रहते थे। राष्ट्रकूट वंशके राजा अमोघवर्ष ७७५ शकके लगभग थे इसलिये यही इनका समय समझना चाहिये। दीक्षितके अनुसार गणित सार-संग्रह भास्कराचार्यकी लीलावतीके सदृश है परन्तु विस्तारमें इससे बड़ा है। गणकतरंगिणीमें इनकी कहीं चर्चा नहीं है।

१—गणक तरंगिणी पृष्ठ २२

२—भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २३०

३— ,, ,, ,,

४—हिस्ट्री आव् हिन्दू मैथिमैटिक्स भाग २ पृष्ठ २०

आर्यभट द्वितीय

यह गणित और ज्योतिष दोनों विषयोंके अच्छे आचार्य थे जिनका बनाया हुआ महासिद्धान्त ग्रंथ ज्योतिष सिद्धान्तका अच्छा ग्रंथ है। इन्होंने भी अपना समय कहीं नहीं लिखा है। डा० सिंह और दत्तका मत[1] है कि यह ६५० ई० के लगभग थे जो शककाल ८७२ होता है। दीक्षित लगभग ८७५ शक कहते हैं इस लिये यही समय ठीक समझना चाहिये। गणकतरंगिणी में इनकी चर्चा तक नहीं है जब कि सुधाकर द्विवेदीजी ने इनके महासिद्धान्तका स्वयम् सम्पादन किया है। द्विवेदी जी इसकी भूमिकामें केवल इतना लिखते हैं कि भास्कराचार्यने दृक्काणोदयके लिए जिस आर्यभटकी चर्चा की है वह आर्यभट प्रथम नहीं हो सकते क्योंकि उनके ग्रंथ आर्यभटीयमें दृक्काणोदयकी गणना नहीं है परन्तु महासिद्धान्तमें है इस लिये महासिद्धान्तके रच-यिता आर्यभट दूसरे हैं जो भास्कराचार्यसे पहलेके हैं। यही बात दीक्षित जी भी लिखते हैं। परन्तु यह ब्रह्मगुप्त के पीछे हुए हैं क्योंकि ब्रह्मगुप्तने आर्यभटकी जिन बातों का खण्डन किया है वह आर्यभटीयसे मिलती हैं महा-सिद्धान्तसे नहीं। महासिद्धान्तसे तो प्रकट होता है कि ब्रह्मगुप्तने आर्यभटकी जिन जिन बातोंका खंडन किया है वे इसमें सुधार दी गयी हैं। कुट्टककी विधिमें भी आर्यभट प्रथम, भास्कर प्रथम तथा ब्रह्मगुप्तकी विधियोंसे कुछ उन्नति दिखाई पड़ती है इसलिये इसमें सन्देह नहीं है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्तके बाद हुए हैं।

ब्रह्मगुप्त और लल्लने अयन चलनके सम्बन्धमें कोई चर्चा नहींकी है परन्तु आर्यभट द्वितीयने इस पर बहुत विचार किया है। मध्यमाध्यायके श्लोक ११-१२ में इन्होंने अयनबिन्दुको एक ग्रह मानकर इसके कल्पभगण की संख्या ५७८१५६ लिखी है जिससे अयनविन्दुकी वार्षिक गति १७३ विकला होती है जो बहुत ही अशुद्ध है। स्पष्टाधिकारमें स्पष्ट अयनांश जाननेके लिए जो रीति बतलायी गयी है उससे प्रकट होता है कि इनके अनुसार अयनांश २४ अंशसे अधिक नहीं हो सकता और अयन

१—हिस्ट्री आव् हिन्दू मैथिमैटिक्स भाग २ पृष्ठ ८६

की वार्षिक गति भी सदा एक सी नहीं रहती कभी घटते-घटते शून्य हो जाती है और कभी बढ़ते-बढ़ते १७३ विकला हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट का समय वह था जब अयनगतिके सम्बन्धमें हमारे सिद्धान्तोंमें कोई निश्चय नहीं हुआ था। मुंजलके लघुमानसमें अयन-चलनके संबंधमें स्पष्ट उल्लेख है जिसके अनुसार एक कल्पमें अयनभगण १९९६६९ होता है जो वर्षमें ५९·९ विकला होता है। मुंजालका समय ८५४ शक या ९३२ ईस्वी है इस लिये आर्यभटका समय इससे भी कुछ पहले होना चाहिये। इस लिये मेरे मतसे इनका समय ८०० शकके लगभग होना चाहिये।

इन्होंने लिखा है[1] कि इनका सिद्धान्त और पराशर का सिद्धान्त दोनों एक साथ कलियुगके आरम्भसे कुछ वर्षों बाद लिखे गये थे और इनकी ग्रह गणना ऐसी है कि वेधसे भी शुद्ध उतरती है। परन्तु यह कोरी कल्पना है, क्योंकि वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि किसी आचार्य ने इनकी पुस्तकको कोई चर्चा नहीं की है। इन्होंने सप्तर्षिकी चालके सम्बन्धमें भी लिखा है जैसा वराहमिहिर लिखते हैं, जिससे जान पड़ता है कि सप्तर्षि १०० वर्षमें एक नक्षत्र चलते हैं। परन्तु यह भी कोरी कल्पना है। सप्तर्षिमें ऐसी कोई गति नहीं है।

इनकी पुस्तकमें संख्या लिखनेके लिये एक नवीन पद्धति बतलायी गयी है जो आर्यभट प्रथमकी पद्धतिसे भिन्न है। इसे 'कटपयादि' पद्धति कहते हैं क्योंकि १ के लिये क, ट, प, य अक्षर प्रयुक्त होते हैं, २ के लिये ख, ठ, फ, र, आदि। शून्यके लिये केवल ञ और न प्रयुक्त होते हैं।[2] संख्या लिखनेके लिये अक्षरोंको बायेंसे क्रमानुसार लिखते हैं जैसे अंकोंसे संख्यायें लिखी जाती हैं। स्वर या उसकी मात्राओंका इस पद्धतिमें कोई मूल्य नहीं है। मात्राओंके जोड़नेसे भी अक्षरोंका वही अर्थ होता है जो बिना मात्राके। इस प्रकार क, का, कि, कू आदि से १ अंकका ही बोध होता है। यह रीति आर्यभट प्रथमकी रीतिसे सुगम है क्योंकि याद रखनेका काम बहुत कम है। संक्षेपमें यह रीति नीचे दी जाती है।

क, ट, प, य	=	१
ख, ठ, फ, र	=	२
ग, ड, ब, ल	=	३
घ, ढ, भ, व	=	४
ङ, ण, म, श	=	५
च, त, ष	=	६
छ, थ, स	=	७
ज, द, ह	=	८
झ, ध	=	९
ञ, न	=	०

इस पद्धतिके अनुसार आर्यभट प्रथमके उदाहरणमें दिये गये एक कल्पमें सूर्य और चन्द्रमाके भगण इस प्रकार लिखे जायेंगे—

१ कल्पमें सूर्यके भगण = घडफेननेननुनीना
= ४३२००००००

और १ कल्पमें चंद्रमाके भगण = मथथमगश्लभननुना
= ५७७५३३४०००

इस प्रकार यह प्रकट होता है कि यह पद्धति लिखने और याद रखनेके लिये सुगम है।

महासिद्धान्त—इस ग्रन्थमें १८ अधिकार हैं और लगभग ६२५ आर्या छन्द हैं। पहले १३ अध्यायोंके नाम वही हैं जो सूर्यसिद्धान्त या ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तके ज्योतिष संबंधी अध्यायोंके हैं, केवल २ रे अध्यायका नाम है पराशरमताध्याय। १४वें अध्यायका नाम गोलाध्याय है जिसमें ११ श्लोक तक पाटीगणित या अंकगणितके प्रश्न हैं। इसके आगेके तीन श्लोक भूगोलके प्रश्न हैं और शेष ४३ श्लोकोंमें अहर्गण और ग्रहोंकी मध्यम गतिके संबन्धमें प्रश्न हैं। १५वें अध्यायमें १२० आर्या हैं जिनमें पाटीगणित, क्षेत्रफल, घनफल आदि विषय हैं। १६वें अध्यायका नाम भुवनकोश प्रश्नोत्तर है जिसमें खगोल, स्वर्गादि लोक, भूगोल आदिका वर्णन है। १७वाँ प्रश्नोत्तराध्याय

[1]—एतत्सिद्धान्तद्वयमीषद्याते कलौयुगे जातम्।
स्वस्थानेदृक्तुल्या अनेन खेटाः स्फुटाः कार्याः ॥२॥
पराशरमताध्याय

[2]—रूपात् कटपयपूर्वा वर्णा वर्णक्रमाद्भवन्त्यङ्काः।
ञ् नौ शून्यं प्रथमार्थे आ छेदे ऐ तृतीयार्थे ॥२॥
मध्यमाध्याय

है जिसमें ग्रहोंकी मध्यमगति संबंधी प्रश्न हैं। १८वें अध्याय का नाम कुट्टकाध्याय है जिसमें कुट्टक संबंधी प्रश्नों पर ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की अपेक्षा कहीं अधिक विचार किया गया है। इससे भी प्रकट होता है कि आर्यभट द्वितीय ब्रह्मगुप्तके पश्चात् हुए हैं।

मुंजाल या मंजुल

इस आचार्यका समय पं० सुधाकर द्विवेदीने गणक तरंगिणी पृष्ठ १९, २०में कोलब्रुकके मतानुसार भ्रमवश ५८४ शक लिख दिया है जो होना चाहिये ८५४, क्योंकि इन्होंने अपने लघुमानस नामक ग्रन्थमें ग्रहोंका ध्रुवकाल ८५४शक बतलाया है जिसको द्विवेदीजी भी उद्धृत करते हैं, 'कृतेष्विभमिते, शाके ८५४ मध्याह्ने रविवासरे चैत्रादौ ध्रुवकान् वक्ष्ये रविचन्द्रेन्दुतुङ्गजान्।' इस समयकी सचाई इनके अयन चलन सम्बन्धी बातोंसे भी सिद्ध होती है। भास्कराचार्य द्वितीयने[1] मुंजालकी बतलायी अयनगति लिखी है। मुनीश्वरने अपनी मरीचि नामक टीकामें मुंजाल के वचन[2] उद्धृत किये हैं जिनसे सिद्ध होता है कि मुंजाल के अनुसार एक कल्पमें अयनके १९९६६९ भगण होते हैं जिससे अयनकी वार्षिक गति १ कलाके लगभग आती है जो प्रायः ठीक है। अल्बेरूनीके अनुसार इस पुस्तकमें यह भी तो लिखा है कि इस समय अयनांश ६°५०' था। इसलिए यह निश्चित है कि मुंजालका समय ८५४ शक या ९३२ ई० हैं।

मुंजाल एक अच्छे ज्योतिषी थे इसमें कोई सन्देह नहीं। तारोंका निरीक्षण करके नयी बातें निकालनेका श्रेय इनको मिलना चाहिए। इनके पहले अयनगतिके संबंधमें किसी पौरुष सिद्धान्त ग्रन्थमें कोई चर्चा नहीं है। दूसरी महत्वकी बात इनकी चन्द्र सम्बन्धी है। इनके पहले किसी भारतीय ज्योतिषीने यह नहीं लिखा था कि चन्द्रमामें मन्दफल संस्कारके सिवा और कोई संस्कार भी करना चाहिए।

१—गोलबन्धाधिकार, १८

२—तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोंकचन्द्र १९९६६९ मिताः ॥ भारतीय ज्योतिष शास्त्र, पृ० ३१३

परन्तु इन्होंने यह स्पष्ट लिखा है जिसको द्विवेदी जी[1] मानते हैं।

लघुमानस—यह मुंजालका ग्रन्थ है जिसमें ज्योतिष सम्बन्धी आठ अधिकार हैं। यह वृहन्मानस नामक ग्रन्थका संक्षिप्त रूप है, जैसा अल्बेरूनी लिखते हैं। वृहन्मानसका कर्त्ता कोई मनु हैं, जिसकी टीका उत्पलने लिखी है इस लिए इसका समय ८०० शकके लगभग है।

उत्पल या भटोत्पल

यह ज्योतिष ग्रन्थोंके बड़े भारी टीकाकार थे। बृहज्जातककी टीकामें इन्होंने लिखा है कि ८८८ शक (९६६ई०) के चैत्र शुक्ल ५ गुरुवार को इसकी टीका लिखी गयी, और वृहत्संहिताकी टीकामें लिखा गया है कि ८८८ शककी फाल्गुन कृष्ण द्वितीया गुरुवारको यह विवृति लिखी गयी। दीक्षित ने[2] इस पर शंका प्रकट की है कि ये संवत् गत नहीं है वर्तमान हैं परन्तु उनकी यह शंका निर्मूल है। यह दोनों गत शक संवत् हैं। दूसरी तिथि अमान्त फाल्गुन मास की है जो इधरकी परिपाटीके अनुसार चैत्र कृष्ण कहा जा सकता है। खण्डखाद्यककी टीका इससे भी पहले लिखी गयी थी[3] क्योंकि वृहत्संहिताकी टीकामें इसकी चर्चा है। लघुजातक पर भी इनकी टीका है।

वृहत्संहिताकी टीकासे पता चलता है कि इन्होंने प्राचीन ग्रन्थोंका खूब अध्ययन किया था। वराहमिहिरने जिन जिन प्राचीन ग्रंथोंके आधार पर वृहत्संहिताकी रचना की थी उन सब ग्रंथोंके अवतरण देकर इन्होंने अपनी टीका की रचना की है[4]। इससे यह भी पता चलता है कि वराह-

१—चन्द्रोच्चरव्यन्तरेण रविचन्द्रान्तरेण च स्पष्ट चन्द्रे तदीय गतौ चान्यः संस्कारश्च पूर्वाचार्यप्रणीतसंस्कारतो विलक्षण प्रतिपादितः।...अयं संस्कारश्च इवेक्शन् वेरिएशन् नामक संस्कारवत् प्रतिभाति। [गणक तरंगिणी पृ० २१]

२—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृ० २३४

३— ,, ,,

४— ,, ,, २३५

मिहिरके पहले संहिता पर ८, १० आचार्यों ने लिखे हैं। इस टीकामें सूर्यसिद्धान्तके जो वचन उद्धृत किये गये हैं वे इस समयके सूर्यसिद्धान्त में नहीं मिलते। वराहमिहिर के पुत्रकी लिखी षट्पञ्चाशिकाकी भी जिसमें शुभाशुभ प्रश्न पर विचार किया गया है इन्होंने टीका लिखी है।

चतुर्वेद पृथूदक स्वामी

इन्होंने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त पर एक टीका लिखी है। भास्कराचार्य द्वितीयने अपने ग्रंथोंमें इनकी चर्चा कई स्थान पर की है। दीक्षितके मत से यह भटोत्पलके समकालीन हैं। परन्तु बबुआ मिश्रकी सम्पादित खण्डखाद्यक की आमराजकी टीकामें लिखा है[1] कि शक ८०० में इन्होंने अयनांश ६।। अंश देखा था। इस प्रकार इनका समय मुंजालसे भी पहलेका सिद्ध होता है। परन्तु भास्कराचार्य आदिने इसका उल्लेख कहीं नहीं किया है। इन्होंने खण्डखाद्यककी टीका भी की है जिसकी चर्चा प्रबोधचन्द्रसेन गुप्त अपनी टीकामें करते हैं।[2]

श्रीपति

यह ज्योतिषकी तीनों शाखाओंके अद्वितीय पंडित थे। इनके लिखे ग्रन्थ हैं, १–सिद्धान्तशेखर, धीकोटिकरण, रत्नमाला (मुहूर्त ग्रंथ), और जातक पद्धति (जातक ग्रन्थ)। धीकोटिकरणमें गणितका जो उदाहरण दिया गया है उसमें ९६१ शक[3]की चर्चा है इस लिये श्रीपतिका समय इसीके लगभग सन १०३९ ई० हो सकता है। सिद्धान्तशेखरका एक संस्करण शायद कलकत्ता विश्वविद्यालयसे प्रकाशित हुआ है। प्रबोधचन्द्र सेनगुप्त के[4] अनुसार श्रीपतिके पहले किसी भारतीय ज्योतिषी ने काल समीकरणके उस भागका पता नहीं लगा पाया था जो क्रान्तिवृत्तके झुकावके कारण उत्पन्न होता है।

भोजराज

राजमृगाङ्क नामक करण ग्रंथके बनानेवाले राजा भोज कहे गये हैं। यह ग्रंथ ब्रह्मसिद्धान्तके ग्रहोंमें बीज संस्कार देकर बनाया गया है। इसका आरम्भकाल शक ९६४ है[5] और इसी समयके ग्रहोंका क्षेपक दिया गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसके रचनेवाले स्वयम् राजा भोज हैं अथवा उनका आश्रित कोई ज्योतिषी। इस पुस्तकका आदर चार पाँच सौ वर्ष रहा। इसमें मध्यमाधिकार और स्पष्टाधिकारके केवल ६६ श्लोक हैं।[6] अयनांश जाननेका नियम भी दिया गया है।

ब्रह्मदेव

करणप्रकाश– यह एक करण ग्रन्थ है। इसका आरंभ १०१४ शक (१०९२ ई०) में किया गया था और इसका आधार आर्यभटीय है। इसके कर्त्ताका नाम ब्रह्मदेव है। ग्रहोंकी गणनाके लिए आर्यभटके ध्रुवाङ्कों में लल्लके बीजसंस्कार देकर काम लिया गया है। क्षेपक[7] चैत्र शुक्ल प्रतिपदा शुक्रवार शाके १०१४ का है। इसमें ९ अधिकार हैं जिसमें ज्योतिष संबंधी सभी बातें आ गयी हैं। इसमें ४४५ शक को शून्य अयनांश का समय माना गया है और अयनांश की वार्षिक गति एक विकला मानी गयी है। यह ग्रन्थ आर्यपक्षका है इस लिए दक्षिण के माध्वसंप्रदायके वैष्णव इसीके अनुसार एकादशी व्रत का निश्चय करते आ रहे हैं[8]।

१—चतुर्वेदपृथूदकस्वामिना त्वेतदसदूषणमित्यभिहितम्। यतस्तेन खखाष्टसंख्यशाके सार्द्धाः षट्दृष्टा इति। कलकत्ता विश्वविद्यालयसे प्रकाशित और बबुआ मिश्र की सम्पादित खण्डखाद्यककी टीका पृ० १०८

२—Introduction p. XXiii, XXiv

३—चन्द्राङ्गनन्दोन शकोऽर्कनिघ्नश्चैत्रादिमासैर्युगधो द्विनिघ्नः (गणक तरंगिणी पृष्ठ ३०)

४—खण्डखाद्यककी अंग्रेजी टीका पृष्ठ ११

५—भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३८

६—भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृष्ठ २३९

७—किसी पुस्तककी ग्रहगणनाके आरंभ कालमें सूर्य, चन्द्र, आदि ग्रहोंकी जो स्थिति होती है उसे क्षेपक कहते हैं। इसको आगे होने वाली ग्रहकी गतिमें जोड़ देनेसे उस समयकी ग्रहस्थिति ज्ञात हो जाती है।

८—भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २२४

शतानन्द

भास्वतीकरण—यह करण ग्रन्थ वराहमिहिर स्वीकृत सूर्यसिद्धान्तके आधार पर बनाया गया है। इसके लेखक शतानन्द हैं जिन्होंने ग्रन्थका आरंभ १०२१ शक (१०९९ ई०) में किया था। यह ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध था। मलिक मोहम्मद जायसी ने अपनी पद्मावतमें इसकी चर्चा की है। इसकी कई टीकाएँ संस्कृतमें हैं। इस ग्रन्थकी कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं :—

ग्रहोंका क्षेपक शक १०२१ की स्पष्ट मेष संक्रान्ति काल (गुरुवार) का है। दूसरी विशेषता यह है कि इसमें अहर्गणकी गणनासे ग्रहोंको स्पष्ट करनेकी रीति नहीं है वरन् ग्रहोंकी वार्षिक गतिके अनुसार है, जिससे गणना करनेमें बड़ी सुविधा होती है, गुणा भाग नहीं करना पड़ता, केवल जोड़नेसे काम चल जाता है। तीसरी विशेषता यह है कि इन्होंने शतांशपद्धतिसे काम लिया है, अर्थात् राशि, अंश, कला, विकला, आदि लिखनेकी जगह राशिके सवें भागोंमें अथवा नक्षत्रके सवें भागोंमें ग्रह स्थिति बतलायी है। उदाहरणके लिए चन्द्रमा की एक वर्षकी गति ९९५$\frac{५}{६}$ नक्षत्र (शतांशों में) बतलायी गयी है जिसका अर्थ है[1]—

$$\frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \text{ नक्षत्र} = \frac{९९५\frac{५}{६}}{१००} \times ८०० \text{ कला}$$

$$= ७९६६\frac{२}{३} \text{ कला}$$

$$= ४ \text{ राशि } १२ \text{ अंश } ४६ \text{ कला } ४० \text{ विकला}$$

शनिका क्षेपक ५९४ शतांश राशि है जिसका अर्थ दशमलव भिन्न में हुआ ५·९४ राशि। इस प्रकार प्रकट है कि शतानन्दने दशमलव भिन्नका व्यावहारिक प्रयोग किया था। शायद शतांश पद्धतिका आविष्कार करनेके कारण उन्होंने अपना नाम भी शतानन्द रखा था।

भास्वतीमें तिथिध्रुवाधिकार, ग्रहध्रुवाधिकार, स्फुट तिथ्यधिकार, ग्रहस्फुटाधिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्य-ग्रहण, परिलेख नामक आठ अधिकार हैं। इसमें शक ४५० शून्य अयनांशका वर्ष माना गया है और अयनांश की वार्षिक गति १ कला मानी गयी है।

भास्वतीकी कई टीकाएँ हुई हैं। एक टीका हिन्दी भाषामें संवत् १४८५ वि० (शक १३५०, १४२८ ई०) में वनमाली पंडितने की थी जिसकी एक खंडितप्रति काशीके सरस्वती भवनमें है[1]।

इस समयके आस पास और कई ज्योतिषी हो गये हैं जिन्होंने करण ग्रन्थोंकी रचना की है परन्तु इनका नाम न गिनाकर अब हम प्रसिद्ध भास्कराचार्यका वर्णन करेंगे जिनकी कीर्ति सात सौ वर्ष तक फैली रही और जिनकी बनायी पुस्तकें, सिद्धान्तशिरोमणि और लीलावती अब तक भारतीय ज्योतिषके विद्यार्थियोंको पढ़नी पड़ती हैं। इस नामके एक ज्योतिषी आर्यभट प्रथमके शिष्य हो गये हैं इसलिए इनका नाम भास्कराचार्य द्वितीय रखा जायगा।

भास्कराचार्य द्वितीय

इन्होंने अपना जन्मस्थान सह्याद्रि पर्वतके निकट विज्जडविड ग्राम लिखा है परन्तु पता नहीं इसका वर्तमान नाम क्या है। इन्होंने अपना जन्मकाल तथा ग्रन्थ निर्माण काल स्पष्ट भाषामें लिखा है[2]। इनका जन्म शक १०३६ (१११४ ई०) में हुआ था और ३६ वर्ष की आयुमें इन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की। करण कुतूहल ग्रन्थ का आरंभ १ ०५ शक में हुआ था इसलिए यही इसका रचनाकाल है जो ११८३ ई० होता है। इससे प्रकट होता है कि करणकुतूहल की रचना ६९ वर्ष की अवस्थामें की गयी थी। इनके बनाये चार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हैं, १—सिद्धान्तशिरोमणि दो भागोंमें जिनके नाम गणिताध्याय और गोलाध्याय हैं, २—लीलावती, ३—बीजगणित और ४—करण कुतूहल। सिद्धान्तशिरोमणि पर इन्होंने स्वयम् वासना भाष्य नामक टीका लिखी है जो सिद्धान्तशिरो-मणिका अंग समझी जाती है और साथ ही साथ छपती है।

१—भारतीय ज्योतिषशास्त्र, पृ० २४४

१—गणक तरंगिणी पृष्ठ ३३

२—रसगुण पूर्ण मही सम शक नृप समयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुण वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥५८॥
गोलाध्यायका प्रश्नाध्याय

पारिभाषिक शब्दावली

[ले० डा० गोरख प्रसाद]

डाक्टर ब्रजमोहनके विचारोंसे मैं अधिकतर सहमत हूँ, परंतु 'ऊर्ध्वाधर' (vertical) के बदले 'खड़ा' शब्द का प्रयोग मुझे पसन्द नहीं है। क्योंकि यह शब्द ज्योतिष की पुस्तकोंमें सैकड़ों वर्षोंसे प्रयुक्त होता आ रहा है। 'घोड़ा बैठा था, उठकर खड़ा हो गया,' या 'if one straight line stands (खड़ा है) on another then the sum of the adjacent angles are equal to two right angles' में खड़ा शब्दसे क्या वही अर्थ निकालना होगा जो ऊर्ध्वाधरसे निकलता है! कदापि नहीं। तब फिर क्यों प्रतिदिनके व्यवहार वाले शब्दको विशेष पारिभाषिक अर्थमें प्रयोग किया जाय और उससे अपनी भाषामें भ्रम उत्पन्न होने की संभावना खड़ी की जाय? यदि ऊर्ध्वाधरके बदले कोई अन्य शब्द हो जो छोटा हो, परंतु जो साधारण बोलचालमें अन्य अर्थमें न आता हो तो यह आपत्ति लागू न होगी और वह शब्द अवश्य अधिक उपयुक्त होगा। कुछ भाषाओंमें तो बहुत ही बड़े-बड़े शब्द प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणतः जरमन भाषा का Wahrscheinlichkeitsrechnung लीजिये। इसके सामने तो हमारा ऊर्ध्वाधर अत्यंत नन्हा-सा है।

फिर Ellipse को दीर्घवृत्त ही कहना चाहिए दीर्घवृत्त शब्द अब हिन्दीकी इतनी पुस्तकोंमें आ चुका ि कि उसे बदलना उचित न होगा। 'बड़ा दीर्घवृत्त' मुझे त तनिक भी नहीं खटकता। दीर्घवृत्त सुनने पर मस्तिष्क कोई बड़े-से वृत्त की धारणा नहीं होती, उस आकृति व भास होता है जिसे हम परिभाषाके अनुसार दीर्घवृ (ellipse) कहते आये हैं। वृहत् वृत्तसे (grea circleका बोध होगा। यह समझना कि विशेषज्ञको भ्रम होगा, भूल है। और यदि डाक्टर ब्रजमोहनके नवी शब्द 'अवलय' पर ही विचार किया जाय तो पता चले कि वह अनुपयुक्त है क्योंकि उसका अर्थ है 'वह आकृ जो वलय नहीं है' और इस प्रकार त्रिभुज, चतुर्भुज अ सभीके लिए 'अवलय' शब्द उपयुक्त होना चाहिए।

असली घी या वनस्पति घी

[श्री रामेशबेदी, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामी बाग़, लाहौर]

वनस्पतियोंके तेलोंसे मशीन द्वारा बनाये नकली घी की विशुद्ध देसी घीसे तुलना करना ऐसा ही है जैसे माँ के दूधकी डिब्बेके दूधसे अथवा नकली सोनेकी असली सोनेसे तुलना करना। दोनोंके रूप रंगमें कुछ सादृश्य भले ही हो लेकिन नकली चीज़ असलीका प्रतिनिधि भी नहीं बन सकती। जिस तरह बच्चेके लिये माँ का दूध सब भोजनोंसे अधिक सात्म्य है उसी तरह मानव शरीरके लिये देसी प्राकृतिक घी ही हितकर है। शरीर रसको सुगमतासे ग्रहण करके अपना अंग बना लेता है और अवयवों पर इसका किसी भी प्रकारसे विपरीत प्रभाव नहीं होता। वनस्पति घीके निर्माणमें जिन अम्लों और रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग होता है उनके कारण यह कृत्रिम चीज़ मनुष्य शरीरके लिये अनुकूल नहीं रह जाती।

स्नेहों के अन्दर डाली गई औषधियोंके गुणोंको स्नेह बहुत जल्दी अपने अन्दर ले लेते हैं। ऐसा आयुर्वेदशास्त्र का मत है। नानाविध औषधियोंसे संस्कार करके अनेक प्रकारके सिद्ध (medicated) तेल और घी बनाये जाते हैं। द्रव्योंके संयोगसे स्नेहोंमें गुणोंके उदयके सिद्धांत को सत्य स्वीकार किया जाय तो निपीड़े हुए तेलोंको वनस्पति घी का रूप रंग देनेमें जिन हानिप्रद रासायनिकों (chemicals) का प्रयोग किया गया है उनके हानिकारक प्रभावको अपनानेमें भी उन्हें उतनी ही शीघ्रता और योग्यता दिखानी चाहिये। इस लिये यह उपज निस्सन्देह बहुत निकृष्ट होनी चाहिये।

खाने पर जिस अवयवके सम्पर्कमें यह आता है उसको विकृत करता जाता है। अस्वाभाविक चीज़ोंकी मिलावट के कारण तथा हानिकर रासायनिक पदार्थोंकी अधिकता के कारण गलेके नीचे उतरते ही यह गले और अन्न प्रणालीकी श्लैष्मिक झिल्ली (mucous membrane) के साथ चिपक कर एक ऐसी तह सी बना देता है जिसके कारण गला पकड़ा हुआ सा, छाती रुकी हुई हुई और मेदेमें जैसे बहुत बोझ सा अनुभव होने लगता है।

गलेकी खराश खांसीका रूप धारण कर लेती है और गलेकी गिल्टियाँ लाल होकर तथा सूज कर (टौन्सिलाइटिसके रूपमें) व्यापी संक्रमणका कारण बन जाती हैं।

प्राकृतिक घी मृदु और सुपच है। आंतोंमें बिना किसी प्रकारका क्षोभ उत्पन्न किये कोमल प्रकृति वालोंको भी हज़्म हो जाता है। बनस्पति घीमें विद्यमान दूषित रासायनिक पदार्थ आंतों और मेदेको विक्षुब्ध करते हैं जिससे स्वस्थ मनुष्य भी कुछ काल बाद बदहज़्मी, अतिसार, आंतोंकी चिरस्थायी शोथ तथा अन्त्रक्षय आदि रोगों का शिकार बनने की ओर झुकने लगता है। यह बात ग़लत है कि वनस्पति घीका शारीरिक अवयवों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता और इसके मत्थे मढ़े जाने वाले सब विकारोंका कारण मानसिक भ्रम ही है।

आयुर्वेदिक शास्त्रों और धार्मिक शास्त्रोंके दृष्टिकोणसे पवित्र घीका ही प्रयोग करना चाहिये। नेत्रोंकी हीन ज्योति, शरीरमें ओजस् तत्वका अभाव, आदि अवस्थाएँ नकली घी के प्रसारके साथ साथ बढ़ रही हैं। देसी घी की पैदावार बढ़ा कर हम इन पर काबू पा सकते हैं। घी दूध प्रधान इस देशका जो करोड़ों रुपया नकली घीके बनानेमें लगाया जा रहा है वही धन यदि गौओंकी नस्लों को उन्नत करके देसी घीके उत्पादनमें लगाया जाय तो राष्ट्रका महान कल्याण हो।

कल्पना कीजिये कि एक स्त्री अपने गरीब पतिको सोनेके आभूषण ख़रीदनेके लिए बाधित करती है। अपनी सामर्थ्यसे बाहरकी चीज़ देख कर वह निकल के गहनों पर सोनेका पानी चढ़वा कर उससे पत्नीको सजा लेता है। इसका दूसरा तरीका भी हो सकता था। वह अपनेको अधिक साधन सम्पन्न बनाता और तब पत्नीको सजानेके लिये सोनेके गहने बनवाता। ठीक इसी तरह, यह सच है कि पवित्र घी दुष्प्राप्य है, महंगा है, सोनेमें मिलावटकी तरह इसमें मिलावट बहुत है और परिवारका मुखिया उसे अपने बड़े परिवारके लिये खरीदनेमें असमर्थ है। परिवारका समझदार पालक बननेके लिये हमें अपनेको अधिक साधन सम्पन्न बना कर प्राकृतिक घीको जुटानेमें प्रयत्नवान होना चाहिये।

वैज्ञानिक अनुसन्धान हमें बताते हैं कि प्राकृतिक घी में पाये जाने वाले जीवनके लिए आवश्यक तत्व (विटामीन्स कृत्रिम घीमें नहीं होते। जिनका अभाव आंखके रोग, प्रजनन अंगों की निर्बलता, रोगोंसे मुकाबला करनेकी शक्तिका ह्रास, मसूड़ोंका सूजन, स्कर्वी, हड्डियोंका कमज़ोर तथा भंगुर होना (रिकेट्स) आदि अनेक रोग पैदा करनेका कारण बनता है।

उड़नशील अम्ल (volatile acids) अल्प मात्रामें प्राकृतिक घीमें विद्यमान होते हैं। घीमें जो विशिष्ट सुगन्ध और रुचिकर स्वाद होता है वह इनकी उपस्थितिके कारण ही है। कृत्रिम घीमें ये पदार्थ नाम मात्रको भी नहीं होते और यदि कृत्रिम रूपसे तय्यार करके मिलाये जांय तब भी कुछ देर बाद स्वतः नष्ट हो जाते हैं और साथ ही इन्हें बनानेमें खर्च इतना बढ़ जाता है कि नकली घी असलीसे भी कहीं अधिक महंगा पड़ता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि निर्जीव यान्त्रिक प्रयोगशालामें बनाया घी प्रकृतिकी सजीव प्रयोगशालामें बने असली घीकी तुलना में बहुत अधिक हीन गुण वाला है और उसे असली घीके अनुरूप बनाना क्रियात्मक तथा व्यापारिक दृष्टिसे व्यवहार्थ भी नहीं।

हौलेण्डमें पहले पहल नकली घी बना। वहाँसे इसका प्रसार दूसरे देशोंमें हुआ। सभ्य कही जाने वाली जातियों ने वैज्ञानिक साधनोंका पूरा लाभ उठाकर अपने देशमें प्रचलित नकली घीकी मार्जरिन आदि किस्मों को मक्खनके अनुरूप बनानेमें सब सम्भव उपाय किये। रंग, स्वाद और गन्ध आदि को ऐसा बनाना चाहा जिससे तश्तरियों में परोसी हुई इस नकली चीज़में और ताज़े मक्खनकी क्रियामें कोई भेद न नज़र आये। हम ग़रीबोंके मुकाबले उनके प्रयत्न महान् थे। उन्हें आंशिक सफलता मिली थी। लेकिन विस्तृत खोजोंने उन्हें बताया कि रासायनिक विधियोंमेंसे गुज़ारकर तय्यार किये गये इस पदार्थमें घीके सदृश होनेकी क्षमता तो दूर रही उल्टे यह उनके राष्ट्रोंके स्वास्थ्य का सफाया कर रहा है। अब कितने ही ऐसे देश हैं जिनमें निर्जीव कारखानों की इस कृत्रिम पैदावारका भोजनके रूपमें प्रयोग बन्द हो गया है और उन देशोंके अखबारोंमें इसके विज्ञापन निकलने भी बन्द कर दिये गये हैं घी दूधके घर हमारे देशमें इसका प्रयोग लज्जा की बात समझी जानी चाहिए थी लेकिन यहाँ तो बड़े बड़े आकर्षक और प्रेरणाजनक विज्ञापनोंमें इसकी प्रशंसामें लाखों रुपये बरबाद करनेके साथ-साथ देशके स्वास्थ्य को जानबूझकर नष्ट किया जा रहा है।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=)

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।)

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।)

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=)

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ।।)

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०; १।)

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=)

११—केदार-बद्री यात्रा—केदरानाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।)

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।)

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=)

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।)

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।)

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १।।)

१८—फल-संरक्षण—दूसरा परिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसार डी० एस-सी०; २)

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १।।)

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १।।)

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिश करनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख

Reg. No. A 372

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०, २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥)

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २)

२४—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥)

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं—ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पेज, ६२ चित्र; सजिल्द १॥)

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥)

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन) सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही; जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र, सजिल्द; २॥)

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि २६० पृष्ठ, १५० चित्र आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३)

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक घरमें एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। हिन्दुस्तान रिविउ लिखता है—should be widely welcomed by the Hindi knowing public in this country.

अमृत बाजार पत्रिका लिखती है—It will find an important place in every home like the Hindi almanac.

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १)

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥)

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा महलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

निम्न पुस्तकें छप रही हैं

रेडियो—ले० प्रो० आर० जी० सक्सेना

सरल विज्ञान सागर (द्वितीय खंड)—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद, विश्व विद्यालय, वार्षिक चन्दा ३) विज्ञान परिषद, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

// विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६०	कुम्भ, सम्वत् २००१ फरवरी १९४५	संख्या ५

प्लास्टर आफ़ पेरिस*

(लेखक—सर्जन बी० एन० सिनहा एम० बी० बी० एस० (लखनऊ); एल० आर० सी० पी०; एम० आर-सी० एस० (लन्दन) एफ़० आर-सी०एस० (इङ्गलैंड) आर्थोपीडिक सर्जन (अस्थिशल्य विशेषज्ञ) किंग जार्ज हासपिटल लखनऊ)

व० श्रीमती कमलावती सिनहा एम० ए० डिप०
(लखनऊ)

प्लास्टर आफ़ पेरिस एक प्रकारका सफ़ेद पाउडर है। इसका प्रयोग वर्तमान अग्रगामी चिकित्सालयोंमें आर्थोपीडिक सर्जरी यानी अस्थिशल्य-क्रियामें टूटी या चिटकी, फटी हड्डीको जोड़ने अथवा टेढ़ी मेढ़ी हड्डी को सीधा करनेमें किया जाता है। यह पाउडर जिपसम साल्ट (Gypsum salt) से बनाया जाता है जिसमें विशेषतः कैलसियम सलफ़ेट (Caso4 2H20) होता है। जिपसम-साल्टको मशीन द्वारा अत्यन्त बारीक पीस कर इतना गरम करते हैं कि वह जलरहित हो जाय। ऐसी निर्जल अवस्थामें ही इसे ऐसे डिब्बोंमें बन्द कर देते हैं जिसमें बाहरकी हवा घुसकर अपनी भापसे इसको गीला न कर सके।

जब कभी पट्टी बाँधनेकी ज़रूरत पड़ती है उसी समय इसे पाउडर को थोड़ेसे पानीमें सानकर और झिन्ने कपड़े (पट्टी बाँधने वाला कपड़ा Bandage cloth) पैर उसे फैलाकर कपड़ेको गुनगुने पानीमें डुबो देते हैं। कुछ मिनट बाद जब पट्टी अच्छी तौरसे भीग जाती है पानीसे निकाल कर एक पट्टीको दूसरी पट्टी पर रख कर तहकी तह जमाते हैं, जिससे एक मोटी पट्टी बन जाय। जिस अंगको बाँधना होता है उस पर यह मोटी पट्टी अन्य पतली प्लास्टर की हुई पट्टियोंकी सहायतासे बाँधकर ऊपरसे प्लास्टरका लेप (Plaster cream) चढ़ाकर चिकना तथा सुडौल कर देते हैं। चिकनानेके लिये सोडियम सलफ़ेटका २ प्रतिशत घोल (Hypertoni saline) काममें लाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ऊपरसे बार्निश भी कर सकते हैं।

इस प्रकारसे पट्टी बाँधनेकी कला इतनी बढ़ गई है कि प्रायः सभी लोग लाभ उठाते हैं। शल्यकारका काम भी बहुत हल्का हो गया है। प्रारम्भमें एक दिन पट्टी बाँधने तदनन्तर दो एक दिन देखभालके अतिरिक्त कुछ करना नहीं पड़ता। प्रकृति स्वयं रोग निवारण करती है। एक नियमित समयके बाद प्लास्टर काटकर निकाल दिया जाता है और रोगी अपनेसे आप कष्टसे मुक्त हो जाता है। लेकिन इस कलामें जितना चमत्कार है उतनी ही वीभत्सता भी। यदि लापरवाही, नासमझी या संयोगसे प्लास्टर ज्यादा कसकर बंध गया या त्वचा पर कोई कीटाणु पहलेसे ही अपना रंग जमा चुके हों तो पट्टीके अन्दर सड़न पैदा हो जाती है और उसके निकालने तक दशा भयानक हो जाती है। इस लिये यह आवश्यक है कि इस प्रकारके प्लास्टर लगानेका कार्य उसी विशेषज्ञके हाथों सौंपा जाय जो इस कार्यको ही करता रहता है। सड़न या अन्य उपद्रवोंसे बचानेके लिये प्लास्टर चढ़ानेसे पहले अंगको शुद्ध स्पिरिटसे साफ़ करके डसटिङ्ग पाउडर छिड़क देते हैं जिससे न तो खुजली हो और न दाने ही निकलें। त्वचाके ऊपर रुईका पैड रख दिया जाता है या बनियाइन जैसा कोई कपड़ा पहना दिया जाता है, तब ऊपरसे प्लास्टर चढ़ाया जाता है। ऐसे प्लास्टरको पैडेड प्लास्टर कहते हैं। बिना रुई या कपड़ा रक्खे भी प्लास्टर चढ़ा दिया जाता है और उसे अनपैडेड प्लास्टर कहते हैं। रुई रख देनेसे उठी हुई हड्डी पर दबाव नहीं पड़ता।

---

*यह लेख "घरेलू डाक्टर' के द्वितीय भागका एक अंश है।

रबर*

(ले० श्री ओंकारनाथ परती)

वल्कनाइज़ेशन × (Vulcanisation)

पहिले लिखी गई विधिसे कच्ची रबर प्राप्त होती है। यह रबर उसी रूपमें होती है जैसी कोलम्बस या टारक्यूमाडाने देखी थी। अब हम उस खोजका वर्णन करेंगे जिससे रबर मनुष्यके लिये इतनी उपयोगी बन सकी। इस खोजको वल्कैनाइज़ेशन कहते हैं। चार्ल्स गुडियर (Charles Goodyear) ने सन् १८३९ ई०में यह आविष्कार किया था।

चार्ल्स गुडियर सन् १८०० ई०में अमेरिकाके कनेक्टीकट प्रान्तके न्यूहेवन नगरमें पैदा हुआ था। यह एक ठठेरे और लुहारका काम करता था। इसकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी। एक दिन यह न्यूयार्ककी राक्सबरी रबर कम्पनीमें गया और तभीसे इसका ध्यान रबरकी ओर आकृष्ट हो गया। रबरकी वस्तुओंके विषयमें एक कठिन समस्या थी। यह वस्तुएँ गर्मीके दिनोंमें मुलायम हो जाती थीं और जाड़ेके दिनों में कड़ी हो जाती थीं। कम्पनीके मैनेजरने गुडियरसे यह समस्या हल करनेके लिये कहा। इसी समयसे गुडियरको रबरकी धुन सवार हो गई।

गुडियर अपनी धुनका पक्का था। उसने लगभग बारह विभिन्न विधियोंसे रबरके इस दुर्गुणको दूर करनेका प्रयास किया। कभी ऐसा जान पड़ता था कि उसे सफलता मिल गई किन्तु फिर निराश होना पड़ता था। अपनी औरतकी कमाई पर, दूसरोंसे उधार लेकर, अपना सामान गिरवी रखकर, और एक समय तो अपने बच्चोंकी स्कूली किताबें तक बेचकर, गुडियर अपने प्रयोग करता रहा। सन् १८३६ ई०में एसिड गैस (Acid Gas) विधिसे वह कुछ सफल रहा किन्तु इस समय इसके साझी विलियम बलार्डका दिवाला निकल गया और आर्थिक कठिनाइयोंके कारण गुडियरको काम बन्द कर देना पड़ा। इसके बाद वोबर्न, मैसाचुसेट्सके निवासी नथानियल हेवर्ड ने गुडियरको एक तरकीब बताई। इस विधिके अनुसार रबरके गोंदमें गन्धक मिलाकर उसे धूपमें रख देना था। इस तरकीबसे कुछ सफलता प्राप्त हुई। गुडियरने सरकार के लिये डाकके थैले ऐसी रबरके बनाये। किन्तु उसकी आशाओं पर तुषारपात हो गया। थैले रखे रखे अपने आप चूर-चूर हो गये। अन्तमें सन् १८३९ ई० की शरद ऋतुमें गुडियरके भाग्यने पलटा खाया। इस समय गुडियरकी आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय हो गई थी। वह अपने रसोई घरमें ही प्रयोग किया करता था। संयोगसे एक दिन उसने कुछ रबर गन्धकके साथ चूल्हे पर गरम की। रबर जली नहीं किन्तु चमड़ेकी तरह धीरे धीरे कोयला बन गई। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने एक दूसरा टुकड़ा रबर का लिया और उसे गन्धकके साथ गरम किया। जब दोनों चीज़ें अच्छी तरह मिल गईं तो उसने उस रबरके टुकड़े को कड़ाकेकी ठंडमें दरवाज़े पर कीलसे लटका दिया। दूसरे दिन उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने देखा कि कड़ाकेकी ठंडमें भी वह रबरका टुकड़ा मुलायम रहा। गुडियरने इस आविष्कारका नाम वल्कैनाइज़ेशन रखा।

वल्कैनाइज़ेशनसे रबरकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती है। वल्कैनाइज़ेशनके बाद रबर गर्मी और सर्दीमें सदा एक सी मुलायम रहती है। वह मज़बूत भी अधिक हो जाती है। आधुनिक कालमें वल्कैनाइज़ेशन कई प्रकारसे किया जाता है:—

(१) साधारण तापक्रम पर—

यह विधि पार्कने सन् १८४६ ई० में निकाली थी। इस विधिमें सल्फर क्लोराइड [Sulphur chloride, $S_2 cl_2$] का एक घोल बनाया जाता है। पतली पतली रबरकी चादरें इसमें भिगो कर निकाल ली जाती हैं। फिर इन चादरोंको इसी घोलकी भापमें लटका दिया जाता है। थोड़ी देरमें वल्कैनाइज़ेशन पूरा हो जाता है।

(२) उच्च तापक्रम पर —

यह गुडियरकी विधि है। इस विधिमें गन्धक रबरके साथ कूट कर मिला दिया जाता है और यह गन्धक युक्त रबर १३५ - १६०° सेंटीग्रेड तक गरम की जाती है। कुछ समय बाद वल्कैनाइज़ेशन पूरा हो जाता है। इस विधिमें गन्धकके कई रासायनिक यौगिक भी गन्धककी

× विज्ञान भाग ६०, संख्या ३, पृष्ठ ६८के आगे।

जगह काममें लाये जा सकते हैं।

(३) रासायनिक विधि—

इस विधिका सर्व प्रथम प्रयोग पीची (Peachy) ने सन् १६१६ ई० में किया था। इस विधिमें रबरके घोल या रबरकी पतली चादरों पर हाइड्रोजन सलफ़ाइड (Hydrogen Sulphide) और सल्फ़र डाइ-ऑक्साइड (Sulphur dioxide) का प्रयोग किया जाता है। हाइड्रोजन सलफ़ाइड और सल्फ़र डाइऑक्सा-इडके मिलनेसे गन्धक बनता है और वह रबरमें मिल जाता है। इस प्रकार वल्कैनाइज़ेशन हो जाता है।

ऊपर लिखी गई विधियोंके अतिरिक्त, सेलीनियम (Selenium), रबर हाइड्रोक्लोराइड, और कतिपय पोलीनाइट्रो बेनज़ीन (Polynitro benzene) द्वारा भी वल्कैनाइज़ेशन किया जा सकता है। सेलीनियम और गन्धकके मिश्रणसे कदाचित् सबसे अच्छा वल्कैनाइ-ज़ेशन होता है।

वल्कैनाइज़ेशनके लिये तोलमें लगभग ५ प्रतिशत गन्धक और ६५ प्रतिशत रबर ली जाती है और गरम की जाती है। रबरके गुण इस बात पर निर्भर हैं कि कितनी देर तक वह गरम की जाती है। अधिकतर उस मिश्रण को गरम करते रहते हैं और समय समय पर थोड़ासा निकाल कर उसके गुणोंकी परीक्षा करते रहते हैं। जब उपयुक्त रबर तैयार हो जाती है तो गरम करना बन्द कर दिया जाता है।

वास्तवमें वल्कैनाइज़ेशनमें गन्धकके कुछ परमाणु रबर के अणुसे रासायनिक रूपमें मिल जाते हैं और कुछ गन्धक रबरमें मिश्रणके रूपमें रह जाती है।

वल्कैनाइज़ेशनमें गन्धककी मात्रा बदलनेसे रबरके गुण भी बदल जाते हैं। साधारण मुलायम रबर पत्थरकी तरह एक ठोस पदार्थ, वल्कैनाइट (Vulcanite) के रूपमें भी बदली जा सकती है। ऊँचे तापक्रम पर रबरमें ३५ प्रतिशत (तोल में) गन्धक मिलाने पर वल्कैनाइट बनता है।

रबरकी वस्तुएँ केवल शुद्ध वल्कैनाइज़ (Vulca-nised) रबरकी नहीं होतीं। इनमें अधिकतर मिलावट रहती है। इस मिलावटसे रबरकी वस्तुओं का मूल्य कम हो जाता है और उसके गुणमें इच्छानुसार परिवर्तन भी हो जाता है। उदाहरणके लिये, रबरमें ज़िन्क-ऑक्साइड या मैगनीसिया मिलानेसे रबरकी शक्ति बढ़ जाती है और उसपर दबाव और रगड़ का कम प्रभाव पड़ता है, पेन्सिलके दाग मिटाने वाली श्रेष्ठ रबरमें "कृत्रिम सफेद रबर" मिलाई जाती है। यह "कृत्रिम सफेद रबर" रेप ऑयल (Rape oil) पर सलफ़र-मौनोक्लोराइडके प्रयोगसे बनती है।

रबरमें कभी-कभी रंग भी दिये जाते हैं। इस कामके लिये अधिकतर ऐन्टीमनी सलफाइड का प्रयोग होता है। यह रंग रबरमें मिल जाता है। अन्य पदार्थ जो रबरमें रंग देनेके काममें आते हैं यह हैं। आरसीनियस सलफ़ाइड, क्रोमियम ऑक्साइड, ज़िन्क क्रोमेट, अल्ट्रामैरीन और काजल, काममें लायी हुई पुरानी रबर भी नई रबरमें मिलाई जा सकती है। पुरानी रबरके बहुत छोटे छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं और इन्हें अम्ल या क्षारसे खूब अच्छी तरह धो लिया जाता है। फिर इन्हें भापके दबावमें रखा जाता है। कुछ समय बाद यह टुकड़े मुलायम पड़ जाते हैं। अब यह नई रबरमें मिलाये जा सकते हैं। कभी-कभी ऐसी रबरकी वस्तुएँ भी बनाई जाती हैं। इसे रीक्लेम्ड (Reclaimed) रबर कहते हैं।

वल्कैनाइज़ेशन शीघ्र पूरा करनेके लिये कच्ची रबर में कई वस्तुएँ मिलायी जाती हैं। इन्हें वल्कैनाइज़ेशन करनेवाले उत्तेजक (Accelerator) कहते हैं। बहुत समय तक दो कार्बनिक यौगिक इस कामके लिये प्रयोग किये जाते थे—एनीलीन (Aniline) और थायो-कार्बएनीलाइड (Thiocarbanilide)। परंतु आधुनिक कालमें बहुतसे यौगिक काममें लाये जाते हैं। इनमें से मुख्य मुख्य यह हैं—मैगनीसिया (Magne-sia), चूना और लिथार्ज (Litharg); पाइपरी-डीन (Piperidine), डाइएमीन (Diamines), एलडीहाइड अमोनिया (Aldehyde ammonia) हैक्सा-मिथिलीन-टेट्रामीन (Hexamethylene tetramine), डाईफिनाइल ग्वानीडीन (Diphe-nylguanidine)। इनमें सबसे शक्तिशाली थायो

कार्बएनीलाइड है।

उत्तेजकोंसे वल्कैनाइजेशन थोड़े समयमें कम तापक्रम पर ही पूरा हो जाता है। इनके प्रयोगसे रबरके गुण और भी अच्छे हो जाते हैं। रबर कम घिसती है और रबरकी वस्तुओंकी आयु भी बढ़ जाती है।

कभी कभी यह अनुभव किया गया है कि कई उत्तेजक अनुचित रूपसे शक्तिशाली होते हैं। इनकी शक्तिको कम करनेके लिये इनमें कुछ पदार्थ और मिलाये जाते हैं। आधुनिक कालमें ऊपरसे कुछ मिलानेकी जगह उत्तेजकके अणुमें ऐसा परिवर्तन कर दिया जाता है जिससे उनकी शक्तिकी रोकथाम हो जाती है। अति शक्तिशाली उत्तेजकोंके अणुमें अधिकतर एक शक्तिशाली (Active) उद्जन (Hydrogen) परमाणु होता है। रासायनिक परिवर्तनों द्वारा इस शक्तिशाली उद्जन परमाणुके स्थान पर एक कार्बनिक परमाणु समूह (Organic radical) कर दिया जाता है। इससे उत्तेजक की शक्ति कम हो जाती है। यह कार्बनिक परमाणु समूह ऐसा होता है जो आसानीसे हटाया जा सकता है और इस भाँति उत्तेजककी शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

शक्तिशाली उत्तेजककी शक्ति कम करनेके लिये ऊपरसे मिलाये जाने वाले पदार्थ अधिकतर रोजन (Resins), वसाअम्ल (Fatty acids) या उनके एनीलीन व यूरीया (Urea) लवण हैं। इन पदार्थोंका विशेष प्रभाव रबर पर तो कुछ पड़ता नहीं किन्तु यह उत्तेजककी शक्तिको कम कर देते हैं।

साधारणतया रबरकी वस्तुएँ कुछ समय बाद कड़ी होकर चिटखने लगती हैं। यह ओषजन (Oxygen) के प्रभावसे होता है। हवामें ओषजन होता है और धीरे-धीरे यह रासायनिक रूपसे रबरमें मिलने लगता है। इससे रबर कड़ी हो जाती है और टूटने लगती है। ओषजनका प्रभाव कम करनेके लिये दो उपाय काममें लाये जाते हैं—(१) कुछ रासायनिक पदार्थोंका घोल रबरकी वस्तुओं पर लगा दिया जाता है जिससे ओषजन का प्रभाव उन पर कम पड़ता है। (२) कच्ची रबरमें ही कुछ रासायनिक यौगिक मिला दिये जाते हैं जिससे ओषजनसे बचावकी शक्ति रबरमें आ जाती है। कई कार्बनिक यौगिक इस कामके लिये प्रयोग किये जा सकते हैं। इनमें से मुख्य फिनोल (Phenols), हाइड्राक्सलिक यौगिक (Hydroxylic Compounds), एमीन (Amines), और एल्डीहाइड (Aldehydes) वर्गके कार्बनिक यौगिक हैं। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि इनमेंसे कई यौगिक रबर का रंग ख़राब कर देते हैं अतः इनके प्रयोगमें सतर्कतासे काम लेना चाहिये।

समालोचना

सावुन-विज्ञान— लेखक—ताराचन्द्र दोसी, प्रकाशक—हुनर विज्ञान साहित्य मंडल, सिरोही, मूल्य २)।

साबुनपर हिन्दीमें इसके पहले भी कुछ पुस्तकें निकली हैं जिन्हें देखनेका अवसर मुझे मिला है। उन सब पुस्तकोंके बारेमें मेरी धारणा है कि इस विषय पर उचित प्रकाश उन पुस्तकों ने नहीं डाला है। श्री ताराचन्द्र दोसी की पुस्तक देखकर और इसकी भूमिका पढ़कर मुझे यह आशा हुई थी कि इस पुस्तकमें साबुन-विज्ञान पर अच्छा प्रकाश डाला गया होगा। लेकिन पुस्तकको पढ़नेके बाद मुझे निराशा ही हुई।

पुस्तकमें जहाँ-जहाँ विषयका रासायनिक विवेचन किया गया है वह अपूर्ण होनेके अतिरिक्त अशुद्धियोंसे भरा है। जिन बातों पर ठीकसे प्रकाश डालनेकी आवश्यकता थी उन्हें लेखकने इतने संक्षिप्त रूपसे समाप्त किया है कि वे ठीकसे साधारण पाठकोंके समझमें नहीं आ सकती। पुस्तक में वर्णित बहुत-सी निरर्थक बातोंको हटा कर मुख्य-मुख्य बातों पर अधिक प्रकाश डालना चाहिए था। पुस्तककी वर्णन शैली तथा भाषा भी परिमार्जित नहीं है।

वास्तवमें साबुनपर हिन्दीमें एक अच्छी पुस्तककी बहुत आवश्यकता है। ऐसी पुस्तकमें इस विषयका रासायनिक विवेचन होनेके साथ-साथ साबुन बनानेके सम्बन्धकी सभी व्यावहारिक बातोंका भी समावेश होना चाहिए। तभी पुस्तक हिन्दी जनताके लाभकी हो सकती है।

सरल विज्ञान सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम सरल विज्ञान सागरका एक और अंश यहाँ देते हैं।

लीलावती और बीजगणित भी यथार्थमें सिद्धान्त शिरोमणिके ही अंग माने गये हैं और इनके अंतमें यह लिख भी दिया गया हैं, क्योंकि सिद्धान्त ज्योतिषका पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब विद्यार्थियोंको पाटीगणितका जिसमें क्षेत्रफल, घनफल, आदि विषयोंका भी समावेश है तथा बीजगणितका आवश्यक ज्ञान हो।

लीलावती—इसमें लीलावती नामक लड़कीको संबोधन करके प्रश्नोत्तर रूपमें पाटीगणित, क्षेत्रमिति, आदि के प्रश्न बहुत रोचक ढङ्गसे बतलाये गये हैं। इसमें वह सब विषय आ गये हैं जिनकी चर्चा ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तके शुद्ध गणित भागमें की गयी है। अंतमें गणितपाश (permutation) नामक एक अध्याय और है। इसकी भाषा बड़ी ललित है। इसकी संस्कृत और हिन्दी टीकाएँ कई हैं जो बम्बई और लखनऊसे प्रकाशित होकर ज्योतिषके विद्यार्थियोंके काममें आती हैं। इसकी प्राचीन टीकाएं, गङ्गाधरकी गणितामृतसागरी (१३४२ शक), ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञकी बुद्धिविलासिनी (१४६७ शक), धनेश्वर दैवज्ञकी लीलावतीभूषण, मुनीश्वरकी लीलावतीविवृत्ति (१५४७ शक), महीधरकी लीलावतीविवरण, रामकृष्णकी गणितामृतलहरी, नारायणकी पाटीगणित कौमुदी, रामकृष्णदेवकी मनोरंजना, रामचन्द्र कृत लीलावती भूषण, विश्वरूपकी निसृष्टदूती, सूर्यदासकी गणितामृतकूपिका, तथा अन्य कई टीकाएँ हैं। वर्तमान् कालमें पं० बापूदेव शास्त्रीकी टिप्पणी और पं० सुधाकर द्विवेदी की उपपत्ति सहित टिप्पणी भी प्रकाशित हुई हैं।

बीजगणित—इस पर कृष्ण दैवज्ञ की बीजनवांकुर (शक १५२४) और सूर्यदासकी टीका प्रसिद्ध हैं। उपपत्तिके साथ इसकी टीका पं० सुधाकर द्विवेदीजीने भी की है। इनके सिवा और भी कई टीकाएँ हैं।

सिद्धान्त शिरोमणि (गणिताध्याय और गोलाध्याय) ज्योतिष सिद्धान्तका एक उत्तम और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्योतिष सिद्धान्तकी वह सभी बातें जिनका वर्णन ब्राह्मस्फुटसिद्धांत अथवा महासिद्धांतमें है विस्तार और उपपत्तिके साथ बतलायी गयी हैं। इसकी अनेक टीकाएँ हैं। ग्रहलाघवकार गणेश दैवज्ञकी एक टीका है। नृसिंहने वासनाकल्पलता अथवा वासनावार्तिक नामक टीका १५४३ शकमें लिखी थी, मुनीश्वर या विश्वरूपकी मरीचि नामक टीका बहुत उत्तम और विस्तारके साथ १५५७ शकमें लिखी गयी थी। आर्यभटीयके टीकाकार परमादीश्वरने सिद्धान्तदीपिका नामक टीका की थी। रंगनाथकी मितभाषिणी नामक टीका शक१५८०के लगभग लिखी गयी थी।

करण कुतूहल—इसमें ग्रहोंकी गणनाके लिए सुगम रीति बतलायी गयी है जिस पर कई टीकाएं लिखी गयी हैं। इसके अनुसार पंचांग बनानेका काम सरलतासे किया जा सकता है।

अन्य भाषाओंमें भी इन ग्रन्थोंका अनुवाद किया गया है। अकबर बादशाहके नवरत्न फैज़ीने फ़ारसीमें लीलावतीका अनुवाद सन् १५८७ ई० में किया था। शाहजहां बादशाहके समयमें अताउल्लाह रसीदीने १६३४ ई० में बीजगणितका अनुवाद किया था। कोलब्रुकने सन् १८१७ ई० में लीलावती और बीजगणितका अनुवाद अंग्रेज़ीमें किया था। टेलरने १८१६ ई० में लीलावतीका अनुवाद तथा ई० स्ट्रेचीने बीजगणितका अनुवाद सन् १८१३ ई० में अंग्रेज़ीमें किया था। म०म० बापूदेव शास्त्रीने गोलाध्यायका अंग्रेजी अनुवाद १८६६ ई० में किया था। पंडित गिरिजाप्रसाद द्विवेदीने गोलाध्याय और गणिताध्याय दोनों पर संस्कृत और हिन्दीमें एक अच्छी टीका लिखी है जो नवलकिशोर प्रेससे १९११ और १९२६ ई० में प्रकाशित हुई है।

ऊपरके वर्णनसे स्पष्ट है कि भास्कराचार्यने गणित ज्योतिषका विस्तार किया और उपपत्ति संबंधी बातों पर पूरा ध्यान दिया परन्तु आकाशके प्रत्यक्ष वेधसे बहुत कम काम लिया। वेधोंके लिए इन्होंने ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तको आधार माना है।

किसी-किसी ग्रन्थमें भास्कराचार्य रचित मुहूर्त ग्रन्थ तथा विवाह पटल नामक ग्रन्थका भी वर्णन है परन्तु यह उतने प्रसिद्ध नहीं हुए।

वाविलाल कोच्चन्ना

तैलंग प्रान्तके उपर्युक्त नामके ज्योतिषीने एक करण ग्रन्थ श० १२२० में लिखा था जिसमें फाल्गुन कृष्ण ३० गुरुवार शक १२१६ का क्षेपक दिया है। यह पुस्तक

वर्त्तमान सूर्यसिद्धान्तके आधार पर लिखी गयी थी। इस पुस्तकमें कोई बीज-संस्कार नहीं दिया है जैसा मकरंदमें है। मद्रासमें वारन नामक अंग्रेज़ विद्वानने काल संकलित नामक एक ज्योतिषकी पुस्तक १८२५ ई० में लिखी है जिसमें इस पुस्तकसे बहुत कुछ लिया गया है। इससे जान पड़ता है कि मद्रास प्रान्तमें इस पुस्तकसे उस समय तक पंचांग बनाये जाते थे।

बल्लालसेन

मिथिलाधिपति श्री लक्ष्मणसेनके पुत्र महाराजाधिराज बल्लालसेनने शक १०६० (११६८ ई०) में अद्भुत-सागर नामक संहिताका एक बृहत् ग्रन्थ रचा जो वराहमिहिरकी बृहत्संहिताके ढंगका एक उत्तम ग्रन्थ है। उसमें गर्ग, वृद्धगर्ग, पराशर, कश्यप, वाराहसंहिता, विष्णु धर्मोत्तर, देवल, वसन्तराज, वटकणिक, महाभारत, बाल्मीकिरामायण, यवनेश्वर, मत्स्यपुराण, भागवत, मयूरचित्र, ऋषिपुत्र, राजपुत्र, पञ्चसिद्धान्तिका, ब्रह्मगुप्त, भट्ट बलभद्र, पुलिशाचार्य, सूर्यसिद्धान्त, विष्णुचन्द्र और प्रभाकरके अनेक वचन उद्धृत हैं। वराहसंहितामें अध्यायों-के नाम 'चार' जैसे ग्रहचार, राहुचार आदिसे प्रकट किये गये हैं परन्तु अद्भुतसागरमें अध्यायोंके नाम 'आवर्त' रखे गये हैं जैसे अगस्त्यावर्तमें अगस्त तारेके उदय अस्तके विषयमें है, इत्यादि। बल्लालसेनने कई आकाशीय घटनाओं का उल्लेख किया है जिससे जान पड़ता है कि यह केवल ग्रन्थकार ही नहीं थे वरन् तारों और नक्षत्रोंका भी बेध करते थे। बुध-सूर्ययुति और शुक्र-सूर्ययुति (transit of mercury or venus) का भी परिचय इनको हो गया था। अयन विन्दुके संबंधमें भी इन्होंने स्वयम्[1] परीक्षा करके लिखा है।

सब बातोंका विचार करनेसे प्रकट होता है कि अद्भुतसागर वास्तवमें एक बड़ा और अद्भुत ग्रन्थ है।

१—सकल वसुधाधिनाथ श्रीमद् बल्लालसेनदेवेन।
अयनद्वयं यथावत् परीक्ष्य संलिख्यते सवितुः॥
इदानीं दृष्टिसंवादादयनं दक्षिणं रवेः।
भवेत्पुनर्वसोरादौ विश्वादावुत्तरायणम्॥
गणक तरंगिणी पृ० ४४

केशवार्क

इनका बनाया हुआ विवाह वृन्दावन नामक एक मुहूर्त ग्रन्थ है जिसमें विवाह संबंधी मुहूर्तोंका अच्छा परिचय है। इसकी टीका भी पीछे की गयी थी। यह गणेश दैवज्ञके पिता केशवाचार्यसे भिन्न थे और उनसे बहुत पहले हुए थे। गणक-तरंगिणीके अनुसार इनका समय शक ११६४ (१२४२ ई०) के लगभग ठहरता है क्योंकि गणेश दैवज्ञकी टीकासे प्रकट होता है कि ग्रन्थ निर्माण कालमें अयनांश १२ था।

कालिदास

इतिहासके बहुतसे विद्वान् इनको शकुन्तलाके रच-यिता प्रसिद्ध कालिदास समझते हैं और इनका समय विक्रमीय संवतके आरंभमें समझते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। इन्होंने ज्योतिर्विदाभरण नामक एक मुहूर्त का ग्रन्थ रचा है जिसमें २० अध्याय हैं। अन्तिम अध्यायमें राजा विक्रमादित्यकी सभाका वर्णन किया गया है और लिखा गया है कि कलि संवत् ३०६८ में यह ग्रन्थ रचा गया।[2] परन्तु यह या तो लोगोंको ठगनेके लिए स्वयम् ग्रन्थकारने लिखा है अथवा किसी अन्यने भ्रमसे यह लिख दिया है क्योंकि इसमें अयनांश निर्णय करने और क्रान्तिसाम्यका विचार करनेकी बातें सिद्ध करती हैं कि यह ग्रन्थ इतना पुराना नहीं हो सकता। अयनांश के संबंधमें प्रथमाध्यायके १८वें श्लोकमें लिखा है, "शाकः शराम्भोधियुगोनितो हृतो मानं खतर्कैरयनांशका स्मृता"। क्रान्तिसाम्य कब संभव होता है, इस विषय में चौथे अध्यायमें लिखा है:—

ऐन्द्रे त्रिभागे च गते भवेत्तयोः शेषे ध्रुवेपक्रम साम्य संभवः।
यद्येकरेखास्थित मेश चण्डगूस्यातां तदाऽपक्रम चक्रवालके॥

इससे प्रकट है कि कालिदासका समय वही है जो केशवार्क का है। इसलिए यह रघुवंश या शकुन्तला के कालिदाससे भिन्न हैं[3]।

२—वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै र्यातेकलेः संमिते।
मासे माधव संज्ञिके च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः।
गणक तरंगिणी पृ० ४६

३—गणक तरंगिणी पृ० ४६-४७

महादेव

इन्होंने पैतामह, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर, आदि आचार्योंके सिद्धान्तोंके अगाध समुद्रको पार करनेके लिए महादेवी सारिणी नामक एक नौका शक १२३८ में तैयार की थी। इसमें ग्रन्थारंभकालके ग्रहोंका क्षेपक देकर ग्रहोंकी वार्षिक गति दे दी गयी है जिसकी सहायता से ग्रहोंकी स्थिति बड़ी सरलतासे ज्ञात हो जाती है। इसमें कुल ४२१ श्लोक हैं।

इसीके आदर्श पर नृसिंह दैवज्ञने शक १४८० में माहादेवी नामकी एक दूसरी सारिणी भी तैयार की है जिसमें अयनांश १३°४५' और पलभा ४।३० दिये गये हैं।[1]

महेन्द्रसूरि

यह फीरोज़शाह बादशाहकी सभाके प्रधान पंडित थे। इन्होंने यन्त्रराज नामक यंत्र भी १२९२ शक में बनाया था। इनकी बनायी यन्त्रराज नामक पुस्तककी टीका इनके शिष्य मलयेन्दुसूरिने लिखी थी जिसको उपपत्तिके साथ म० म० सुधाकर द्विवेदीने शक १८०४ (१८८२ ई०) में चन्द्रप्रभा प्रेससे प्रकाशित की थी। इन्होंने सूर्यकी परम क्रान्ति २३°३५' पायी थी और अयनांशकी वार्षिक गति ५४ विकला लिखी है। इस ग्रंथ में पांच अध्याय हैं जिनके नाम हैं—गणिताध्याय, यन्त्रघटनाध्याय, यन्त्ररचनाध्याय, यन्त्रशोधनाध्याय और यन्त्रविचारणाध्याय। सुधाकर द्विवेदी समझते हैं कि यह ग्रन्थ शायद किसी फारसी ग्रन्थका अनुवाद है।[2]

महादेव

इन्होंने पंचाग बनाने की सुविधा के लिए कामधेनु नामक करणग्रन्थ शक १२७९ (ई० १३५७) में बनाया था।

पद्मनाभ

ध्रुवभ्रम यंत्र—इस नामका ग्रंथ पद्मनाभने १३२० शकके लगभग रचा था जिसमें केवल ३११ श्लोक हैं। इसमें ध्रुवभ्रमयंत्र का वर्णन है जिससे रातको ध्रुवमत्स्य नामक नक्षत्र पुंजको बेध करके समयका ज्ञान करनेकी रीति बतलायी गयी है। इस ग्रन्थकी टीका स्वयम् ग्रन्थकारने की है। दिनमें सूर्यके बेधसे समयका ज्ञान करनेकी रीति है जिससे लग्नका ज्ञान भी हो सकता है। २८ नक्षत्रोंके योगतारोंका मध्योन्नतांश भी दिये गये हैं जिससे प्रकट होता है कि यह २४ अक्षांशके स्थानों के लिये बनाया गया था।

दामोदर

इनका भटतुल्य नामक आर्यभटानुसारी एक करण ग्रन्थ है जिसका आरंभ वर्ष शक १३३९ (१४१७ ई०) है। यह पद्मनामके शिष्य थे और इन्होंने ध्रुवभ्रम यंत्र पर टीका लिखी थी। इसमें अयनगति ५४ विकला वार्षिक बतलायी गयी है। इन्होंने नक्षत्रोंके योगतारोंके भोगांश और शर दिये हैं जो अन्य ग्रन्थकारोंके भोगांशोंसे कुछ भिन्न हैं जिससे जान पड़ता है कि इन्होंने स्वयम् बेध करके निश्चय किया है।

गंगाधर

इन्होंने कलि संवत् ४५३५ (शक १३५६) में प्रचलित सूर्यसिद्धान्तके अनुसार एक तन्त्र ग्रन्थ रचा है चान्द्रमानाभिधान तन्त्र। इसमें चान्द्रमासके अनुसार ग्रहोंकी गति देकर ग्रह स्पष्ट करनेकी रीति बतलायी गयी है।

मकरंद

इन्होंने शक १४०० (१४७८ ई०) में सूर्यसिद्धान्त के अनुसार तिथ्यादि साधनके लिये अपने ही नामकी एक सारणी काशीमें रची थी जिसके अनुसार काशी और मिथिला आदि प्रान्तोंमें अब भी पंचाग बनाये जाते हैं। यह सारणी दिवाकर दैवज्ञके मकरन्द विवरण और विश्वनाथके उदाहरणके साथ प्रकाशित हुई है और मिलती है। गोकुलनाथने १६८८ शकमें इसकी उपपत्ति भी लिखी है। इस सारणीका अनुवाद अंग्रेजीमें बेंटली साहबने किया था। इसीका विस्तार करके शहर मिरज़ापुर के पं० रघुबीरदत्त ज्योतिषीने सिद्धखेटिका नामक एक सारणी तैयार की थी जो शाके १८०५ (ई० १८८३) में भारतमित्र यन्त्रालयसे प्रकाशित हुई थी। इस सारणी में तिथि, नक्षत्र, योगों और ग्रहोंका दैनिक चालन दिया गया है जिससे इन विषयोंकी स्पष्ट गणना बहुत ही सुगमतासे की जा सकती है। मिरजापुर निवासी पं० राम-

1—गणक तरंगिणी पृष्ठ ४७—४८
2—गणक तरंगिणी पृष्ठ ४९

प्रताप ज्योतिषीकी कृपासे जो फलित ज्योतिषके अच्छे विद्वान हैं इसकी एक प्रति इन पंक्तियोंके लेखकको भी प्राप्त हुई है। इसमें पंचाँग बनानेकी प्रायः सभी बातें बतलायी गई हैं। इसमें बीज-संस्कार करनेके लिये भी कहा गया है और इसका नियम बतलाया गया है।

केशव द्वितीय

विवाह-वृन्दावनके रचयिता केशवकी चर्चा पहले हो चुकी है जिन्हें गणक-तरंगिणीमें केशवार्क कहा गया है। दूसरे केशव उनसे भिन्न हैं। यह ग्रहलाघवके प्रसिद्ध लेखक गणेश दैवज्ञके पिता और ज्योतिषके महान् आचार्य और संशोधक थे। इनका जन्म पश्चिमी समुद्र के तीर नंदिग्राम में हुआ था। इनके जन्मका समय कहीं नहीं लिखा मिलता। सूर्य, चन्द्रमा और तारागृहोंको बेध करके इनकी गणना ठीक करनेके लिये इन्होंने बड़ा जोर दिया है और भविष्यके लिये पथप्रदर्शकका काम किया है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक ग्रहकौतुक है जिसकी मिताक्षरा टीका भी इन्होंने स्वयम् लिखी थी। इससे प्रकट होता है कि गृहोंको बेध करनेमें यह कितने निपुण थे और पुरानी लिखी हुई बातोंको बेधसे ठीक करके संशोधन करनेमें बुराई नहीं समझते थे। ब्राह्म, आर्यभटीय और सूर्यसिद्धान्त; आदिके अनुसार आये हुये ग्रहोंके स्थानोंमें बहुत अंतर देखकर इन्होंने लिखा है कि किस ग्रहके लिये कितना बीज-संस्कार देना चाहिये और बतलाया है कि सदैव वर्तमान घटनाओंको देखकर ग्रहगणित करना चाहिये। मैंने इस सम्बन्धमें इस पुस्तकका लम्बा अवतरण सूर्य-सिद्धान्तके विज्ञानभाष्य पृष्ठ १६७ पर दिया है जो यहाँ संक्षेप में दिया जाता है—

.....एवं बह्वंतरं भविष्येः सुगणकै नक्षत्रयोग ग्रह योगोदयास्तादिभि वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यै ग्रहगणितानि कार्याणि। यदा तत्काल चेपक वर्ष भोगान् प्रकल्प्य लघु करणानि कार्याणि[1]।

ग्रहकौतुक का आरम्भ शक १४१८ (ई० १४९६) में हुआ था। इसके सिवा इन्होंने वर्ष ग्रहसिद्धि, तिथिसिद्धि जातकपद्धति, जातकपद्धति निवृत्ति, ताजकपद्धति, सिद्धान्तवासना पाठ, मुहूर्त तत्व, कायस्थादि धर्मपद्धति, कुण्डाष्टक लक्षण, गणितदीपिका नामक पुस्तकोंकी रचना की थी। इससे प्रकट है कि यह ज्योतिष की सभी शाखाओं के अच्छे विद्वान् थे और ग्रहोंकी बेध सम्बन्धी बातोंको आजकलके वैज्ञानिकोंकी तरह लिखते थे। ऐसे पिताके साथ रहकर गणेश दैवज्ञ क्यों न ग्रहलाघव जैसी पुस्तक बनावें जिसके अनुसार आज भी बम्बई, गुजरात, राजपूताना में पञ्चाङ्ग बनाये जाते हैं।

गणेश दैवज्ञ

यह भी अपने पिताके समान ज्योतिषकी प्रायः सभी शाखाओंके अच्छे विद्वान् थे और गृहोंका बेध करके उनकी ठीक-ठीक गणना करनेके पक्षमें थे[2]। इनका मुख्य ग्रन्थ ग्रहलाघव है जिसमें ग्रहोंकी गणना करनेके लिये ज्या, कोटिज्या आदिसे काम नहीं लिया गया है। यह बड़े पांडित्य की बात है। ग्रहलाघवका आरम्भ शाक १४४२ (ई० १५२०) है। यह इतना अच्छा ग्रन्थ समझा गया था कि इसकी कई टीकाएँ हुईं। शक १५०८में गंगाधरने शक १५२४ में मल्लारिने, लगभग शक १५३४ में विश्वनाथने इसकी टीकाएँ लिखी थीं। म० म० सुधाकर द्विवेदीने इस पर उपपत्तिके साथ एक सुन्दर टीका लिखी है जिसमें मल्लारि और विश्वनाथकी टीकाओंका भी समावेश है। मल्लारिके कई वचन सूर्यसिद्धान्तके विज्ञानभाष्यमें इसी संस्करणसे लिये गये हैं। इस ग्रन्थ का प्रचार महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, ग्वालियर आदि प्रान्तों में अब भी है।

इस ग्रन्थ में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, पंचतारा-धिकार, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, मासगण ग्रहण, स्थूल गहण साधन, उदयास्त, छाया, नक्षत्रछाया, शृङ्गोन्नति गृहयुति और महापात नामक १४ अधिकार हैं। विश्वनाथ

१—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ २५६

२—कथमपि यदिदं चेन्द्रूरिकाले श्लथं स्यान्मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु गृहाद्यृक्षयोगम्। सदमल गुरुतुल्यं प्राप्त बुद्धि प्रकाशैः कथितसदुपपत्त्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये।

बृहत्तिथि चिंतामणि (गणक तरङ्गिणी पृष्ठ ६३ के अनुसार)

और मल्लारिने अपनी टीकाओंमें पञ्चाङ्ग गृहणाधिकार का नाम भी लिखा है।

बृहत्तिथिचिंतामणि और लघुतिथिचिंतामणि नामक सारिणियाँ भी गणेश दैवज्ञकी बनाई हुई हैं जिनसे पंचांगके तिथि, नक्षत्र योगोंका साधन बहुत सरलतासे और कम समयमें किया जा सकता है। इनके सिवा नीचे लिखे गून्थ भी गणेश दैवज्ञके लिखे हुये हैं।

सिद्धान्तशिरोमणि टीका, लीलावती टीका (शक १४६७) विवाह बृन्दावन टीका (शक १४७६), मुहूर्त तत्व टीका, श्राद्धादि निर्णय छन्दोऽर्णव टीका; सुधीरञ्जनी, तर्जनी यन्त्र, कृष्ण जन्माष्टमी निर्णय और होलिका निर्णय।

लक्ष्मीदास

इन्होंने शक १४२२ (ई० १५००) में भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणिकी टीका उपपत्ति और उदाहरण के साथ की थी जिसका नाम है गणिततत्व चिंतामणि।

ज्ञानराज

सिद्धान्त सुन्दर--नामक करण गून्थके कर्ता ज्ञानराज थे। यह वर्तमान सूर्यसिद्धान्तके अनुसार बनाया गया है। इसका क्षेपक १४२५ शकका है इसलिये यही इसका रचना काल समझना चाहिये। पहले गोलाध्याय है जिसमें सृष्टिक्रम, लोकसंस्था आदि १२ अध्याय हैं और गणिताध्यायमें मध्यमाधिकार आदि ८ अध्याय हैं। मध्यमाधिकारमें बीज संस्कारकी बात भी कही गयी है। यह नहीं बतलाया है कि इनके समयमें अयनांश क्या था परन्तु अयनांशकी वार्षिक गति एक कला बतलायी है और लिखा है कि मध्यान्ह छायासे जाने हुये स्पष्ट सूर्य और गणनासे आये हुये स्पष्ट सूर्यका अंतर निकालकर अयनांशका ठीक-ठीक ज्ञान कर लेना चाहिये जैसा सूर्यसिद्धान्त में बतलाया गया है।

सूर्य

यह ज्ञानराजके पुत्र थे। भास्कराचार्यके बीजगणितके भाष्य में अपना नाम सूर्यदास लिखा है और किसी ग्रन्थमें अपना नाम सूर्यप्रकाश लिखा है। लीलावतीकी टीका गणितामृत कूपिका इन्हींकी लिखी हुई है जो १४६३ शकमें लिखी गयी थी जिस समय इनकी अवस्था ३४ वर्षकी थी। इसलिये इनका जन्म शक १४२९ में हुआ था। इनके लिखे ग्रन्थों के नाम ये हैं--लीलावती टीका, बीज टीका, श्रीपतिपद्धति गणित, बीजगणित, ताजिक ग्रन्थ, काव्यद्वय और बोध सुधाकर वेदान्त ग्रन्थ। कोलब्रुक लिखते हैं कि इन्होंने सम्पूर्ण सिद्धान्तशिरोमणिकी टीका भी लिखी है परन्तु लीलावती की टीकामें इन्होंने स्वयं जिन आठ ग्रन्थोंके नाम लिखे है उनमें यह नाम नहीं आया है।

१--गणकतरंगिणी, पृष्ठ ५८।

अनन्त प्रथम

इन्होंने शक १४४७ में पंचांग बनाने के लिये अनन्त सुधारस नामक ग्रन्थ लिखा था जो सुधाकर द्विवेदीके मत से एक सारणी है।

ढुंढिराज

इनका बनाया जातकाभरण ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है जिससे जन्मपत्री बनायी जाती है। अनन्तकृत सुधारस की टीका भी है जिसका नाम सुधारसकरणचषक है। गृहलाघवोदाहरण, गृहफलोपपत्ति, पंचांगफल, कुंडकल्पलता, गून्थोंको भी लिखा है। इन्होंने अपना जन्मकाल कहीं नहीं लिखा है परन्तु ज्ञानराजके यह शिष्य थे इसलिये उनके पुत्र सूर्य के समकालीन अवश्य रहे होंगे।

नीलकंठ

इन्होंने ताजिक नीलकंठी नामक बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा है जिसे ज्योतिषी लोग वर्ष फल बनानेके लिए अब भी काममें लाते हैं। इसमें फारसी और अरबीके बहुत से शब्द आये हैं। यह अकबर बादशाहके दरबारके सभा पंडित थे और मीमांसा तथा सांख्य शास्त्रके अच्छे विद्वान् थे। नीलकंठीका निर्माण काल शक १५०९ (ई० १५८७) है। इस पर विश्वनाथने उदाहरणके साथ एक टीका शक १५५१ में की थी। सुधाकर द्विवेदी जी लिखते हैं कि इन्होंने एक जातकपद्धति भी लिखी है जो मिथिला प्रान्तमें बहुत प्रसिद्ध है।

रामदैवज्ञ

यह नीलकंठके छोटे भाई थे। इनका शक १५२२ का रचा मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है और ज्योतिषके विद्यार्थियोंको पढ़ाया जाता है। इस प्रान्तमें यात्रा, विवाह, उत्सव आदि सभी बातोंके लिए इसी ग्रन्थ के आधार पर साइत निकाली जाती है। इस ग्रन्थ पर

पीयूषधारा नामक टीका इनके भतीजे नीलकंठके पुत्र गोविन्दने लिखी है जो बहुत प्रसिद्ध है।

इनका रचा रामविनोद नामक एक करण ग्रन्थ भी है जिसे अकबर बादशाहके कृपापात्र जयपुरके महाराजा रामदासकी प्रसन्नताके लिए शक १५१२ में पंचांग बनानेके लिए लिखा गया था। इसमें वर्षमान, क्षेपक और ग्रह-गति वर्तमान सूर्यसिद्धान्तके अनुसार दिये गये हैं। बीज संस्कार भी दिया है। इसमें ११ अधिकार और २८० श्लोक हैं।

कृष्णदैवज्ञ

यह बादशाह जहाँगीरके प्रधान पंडित थे। भास्कराचार्यके बीजगणितकी नवाङ्कर नामक सुन्दर टीका इनकी लिखी हुई है जिसमें कई नवीन कल्पनाएँ हैं। सूर्यसिद्धान्त की गूढ़ार्थप्रकाशिका टीकाके लेखक रंगनाथ लिखते हैं कि कृष्णदैवज्ञने श्रीपतिपद्धति की टीका और छादक निर्णय भी लिखा है। इन्होंने अपना समय नहीं लिखा है। सुधाकर द्विवेदीजी का अनुमान है कि इनका जन्मकाल शक १४८७ के लगभग होगा।

गोविन्द दैवज्ञ

यह नीलकंठ दैवज्ञके पुत्र और रामदैवज्ञके भतीजे थे। इन्होंने मुहूर्त चिन्तामणिकी पीयूषधारा टीका काशी में शक १५२५ (१६०३ ई०) में लिखी थी। यह ज्योतिष, व्याकरण, काव्य, साहित्य, आदिमें निपुण थे और १४७१ शककी आश्विन शुक्ल ७ रविवार पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे।

विष्णु

विदर्भ देशमें पाथरी नामका एक प्रसिद्ध गाँव है जिससे पच्छिम १० कोस पर गोदा नदीके उत्तर किनारे गोलग्राम एक गाँव है। इसमें एक कुल ऐसा था जिसमें बहुतसे विद्वान् और ग्रन्थकार हो गये हैं। विष्णु इसी कुलके थे। इनका लिखा सौरपक्षीय एक करण ग्रंथ है जिसका आरम्भवर्ष शक १५३० है। इसकी टीका उदाहरणके साथ इनके भाई विश्वनाथने शक १५४५ में की थी। सिद्धान्ततत्व-विवेकके कर्त्ता प्रसिद्ध कमलाकर इसी वंशके थे।

मल्लारि

यह उपर्युक्त विष्णुके वंशमें थे। इन्होंने ग्रहलाघव पर उपपत्ति सहित एक सुन्दर टीका लिखी है जिससे जान पड़ता है कि वेधके कामोंमें यह बड़े निपुण थे और समझते थे कि प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थोंमें गणनाका जो भेद पड़ जाता है उसका कारण क्या है[1] और बीज संस्कार की आवश्यकता क्यों पड़ती है। इन्होंने अपना समय नहीं लिखा है परन्तु सुधाकर द्विवेदीजीका मत है कि यह शक १४९३ में उत्पन्न हुए होंगे।

विश्वनाथ

यह भटोत्पलके समान टीकाकार थे और पूर्ववर्णित गोलग्राम में उत्पन्न हुए थे। ताजिक नीलकंठीकी टीकामें लिखते हैं कि शक १५५१ (१६२९ ई०) में यह टीका पूरी हुई थी। विष्णुकृत करण ग्रन्थकी टीका १५४५ में की गयी थी। इन्होंने जो उदाहरण दिये हैं वे शक १५१४ के हैं। इनके उदाहरण मुख्यतः १५०८, १५३०, १५३२ १५४२ और १५५५ शकके हैं।

इन्होंने सूर्यसिद्धान्त पर गहनार्थप्रकाशिका तथा सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल, मकरंद, ग्रहलाघव, गणेश दैवज्ञ कृत पातसारणी, अनंत सुधारस, और रामविनोद करण पर टीकाएँ तथा नीलकंठी पर समातंत्रप्रकाशिका टीका (शक १५५१) लिखी हैं। इन सब ग्रन्थोंको इन्होंने काशीमें लिखा था।

नृसिंह

यह भी गोलग्रामके प्रसिद्ध वंशमें उत्पन्न हुए थे और अपने चाचा विष्णु तथा मल्लारिसे शिक्षा पाई थी। शक १५३३ में सूर्यसिद्धान्त पर सौरभाष्य नामक टीका उपपत्तिके साथ तथा सिद्धान्तशिरोमणि पर वासना वार्तिक टीका १५४३ शकमें लिखी थी जिनमें पर्याप्त विशेषता है जिससे प्रकट होता है कि यह गणित ज्योतिष में बड़े निपुण थे।

रंगनाथ

यह विदर्भ प्रान्तके पयोष्णी नदीके तीर दधिग्राम के प्रसिद्ध कुलमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सूर्यसिद्धान्त

१—सूर्यसिद्धान्त, विज्ञानभाष्य पृष्ठ १६६।

पर गूढार्थप्रकाशिका टीका लिखी है जो शक १५२५ (१६०३ ई०) में प्रकाशित हुई थी जिस दिन इनके पुत्र मुनीश्वरका जन्म हुआ था। यह ज्योतिषसिद्धान्तके अच्छे आचार्य थे क्योंकि अपनी टीका उपपत्ति सहित लिखी है।

मुनीश्वर

यह रंगनाथके पुत्र थे और शक १५२५ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने लीलावती पर निसृष्टार्थदूती लीलावती-विवृति नामक टीका सिद्धान्तशिरोमणिके गणिताध्याय और गोलध्याय पर मरीचि नामक टीका और सिद्धान्त सार्वभौम नामक स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रन्थ शक १५६८में रचा था। गणक तरंगिणीके अनुसार इन्होंने पाटीसार नामक स्वतंत्र गणित पर भी पुस्तक लिखी थी। यह प्रसिद्ध भास्कराचार्यके बड़े प्रशंसक थे। सिद्धान्त सार्वभौमके वर्षमान, ग्रहभगण, आदि सूर्यसिद्धान्तसे लिये गये हैं।

इनका दूसरा नाम विश्वरूप था। यह शाहजहाँ बादशाहके आश्रयमें थे और इनके राज्याभिषेकका समय अपनी पुस्तकमें लिखा है।

दिवाकर

यह गोलग्रामके प्रसिद्ध ज्योतिषियोंके कुलमें शक १५२८ में उत्पन्न हुए थे। शक १५४७ में जातकमार्ग पद्म नामक जातक ग्रन्थ लिखा था। केशवी जातकपद्धति पर प्रौढ़मनोरमा टीका भी इन्हींकी लिखी हुई है। शक १५४१ में मकरंदसारिणी पर मकरंद विवरण नामक उदाहरण सहित टीका लिखी थी।

कमलाकर

यह ज्योतिषके एक प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनका जन्म शक १५३० (ई० १६०८) के लगभग हुआ था।

सिद्धान्ततत्वविवेक—यह कमलाकरका प्रसिद्ध सिद्धान्तका ग्रन्थ है जिसे इन्होंने काशीमें शक १५८० में प्रचलित सूर्यसिद्धान्तके अनुसार लिखा था जिसमें बहुत सी नवीन बातोंका समावेश है परन्तु एक बातमें यह प्राचीन परम्पराके विरोधी थे। यहाँ तक जो कुछ लिखा गया है उससे सिद्ध होता है कि यह प्राचीन परंपरा है कि ज्योतिषके ग्रन्थोंकी गणनासे यदि बेधसिद्ध गणनामें अंतर दिखाई पड़े तो उसमें बीज संस्कार करना चाहिए। परन्तु इन्होंने इसका विरोध किया और लिखा कि सूर्यसिद्धान्तकी गणनामें किसी प्रकारका बीज-संस्कार न होना चाहिए। इस विषय पर इनके वचन[1] सूर्यसिद्धान्तके अन्धभक्त बड़े ज़ोरोंसे अपने समर्थन में उपस्थित करते हैं जिसका खंडन इन पंक्तियोंके लेखकने सूर्यसिद्धान्तके विज्ञानभाष्यमें प्राचीन ज्योतिषियों के उद्धरण[2] देकर अच्छी तरह किया है। इन्होंने भास्कराचार्य और मुनीश्वरकी कई ठीक बातोंका खंडन केवल इसलिए किया है कि ये सूर्यसिद्धान्तके अनुकूल नहीं है।

सिद्धान्ततत्वविवेकमें बहुत सी नयी बातें लिखी गयी हैं जिनसे पता चलता है कि यह आकाशके सूक्ष्म निरीक्षक थे। किसी भारतीय ज्योतिष ग्रन्थमें ध्रुव तारा के चलनेकी बात नहीं लिखी है परन्तु इन्होंने लिखी है। स्थानोंके पूर्व पच्छिम अंतरको पुराने ज्योतिषी रेखांश या देशान्तर कहते थे परन्तु इन्होंने इसका नाम 'तूलांश' रखा है जो फ़ारसीके 'तूल' (लंबाई) शब्द से निकला है। विषुववृत्त पर खालदात्त नगर को मुख्य याम्योत्तर वृत्त पर समझ कर २० नगरोंके अक्षांश और तूलांश दिये गये हैं जिसके अनुसार कुछ नगरोंके अक्षांश और तूलांश नीचे दिये जाते हैं :—

	अक्षांश		तूलांश	
	अंश	कला	अंश	कला
उज्जयिनी	२२	१	११२	०
इंद्रप्रस्थ	२८	१३	११४	१८
सोमनाथ	२२	३५	१०६	
काशी	२६	५५	११७	२०
लखनऊ	२६	३०	११४	१३
कन्नौज	२६	३५	११५	
लाहौर	३१	५०	१०९	२०
काबुल	३४	४०	१०४	०
समरकंद	३९	४०	९९	०

इसमें काशीका अक्षांश डेढ़ अंशके लगभग अशुद्ध है।

१—अदृष्टफल सिद्ध्यर्थं निर्बीजार्कोक्तमेव हि।
गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥
मध्यमाधिकार ३२६

२—सूर्य सिद्धान्त विज्ञानभाष्य पृष्ठ १५८—१७०

इन्होंने तुरीययंत्रसे वेध करने की रीति विस्तारके साथ लिखी है। यह भी लिखा है कि सूर्यग्रहण कालमें चंद्रमा पर रहनेवालोंको पृथ्वी पर ग्रहण लगा हुआ दिखाई पड़ता है जो बिलकुल ठीक है। यह भी लिखा है कि शुक्रसे सूर्य बिम्बका भेद होता है। मेघ, भूकंप, उल्कापात का कारण भी लिखा है जो कुछ-कुछ ठीक है। अंकगणित, रेखागणित, क्षेत्रविचार, ज्यासाधनकी रीतियाँ बिलकुल नयी हैं। अधिकांश सिद्धान्त ग्रंथों में ३४३८ की त्रिज्याके अनुसार ज्याओंकी सारणी दी गयी है परन्तु इसमें त्रिज्या ६० मान कर प्रत्येक अंश की ज्या दी गयी है जो गणनाके लिये बड़ी सुगम है। ग्रह के भोगांशसे विषुवांश निकालनेकी सारणी भी है। यह बात किसी और सिद्धान्त ग्रंथमें नहीं है। इन सब नवीन बातोंको लिखते हुए भी यह ज्योतिषकी शोधके बिलकुल विरुद्ध थे यह दुःखजनक बात है। इससे ज्योतिष सम्बन्धी गवेषण को बड़ा धक्का लगा, इसमें सन्देह नहीं है। इधरके बहुतसे आचार्य यहाँ तक कि पं० सुधाकर द्विवेदी जी भी इन्हींकी देखादेखी ज्योतिष सम्बन्धी सुधारके प्रबल विरोधी हो गये जिसके कारण यह प्रान्त अन्य प्रान्तोंसे कमसे कम ५० वर्ष पिछड़ा हुआ है।

पूर्व लिखित मुनीश्वर इनके समकालीन थे और दोनों एक दूसरेके प्रबल विरोधी थे। मुनीश्वर भास्कराचार्यके पक्षमें थे और यह सूर्यसिद्धान्तके पक्षमें, जैसे अर्वाचीन कालमें म० म० पं० बापूदेव शास्त्री और पं० सुधाकर द्विवेदी। एक नवीन सुधारके पक्षमें और दूसरे विपक्ष में।

सिद्धान्ततत्वविवेक ज्योतिषकी आचार्य परीक्षामें नियत है और इस पर प्रतापगढ़ (अवध) के मेहता संस्कृत विद्यालयके ज्योतिषके अध्यापक पं०गंगाधर मिश्र ज्योतिषाचार्यकी अच्छी टीका है। इसका एक संस्करण म० म० सुधाकर द्विवेदी और म० म० पं० मुरलीधरझाकी टिप्पणी सहित व्रजभूषणदास कंपनीने सन् १९२४ में प्रकाशित किया था।

नित्यानन्द

यह कुरुक्षेत्रके समीप इन्द्रपुरीके रहने वाले थे और संवत् १६९६ (ई० १६३९) में सिद्धान्तराज नामक ग्रन्थकी रचनाकी थी। इसमें गोलाध्याय और गणिताध्यायके प्रायः सब अधिकार हैं। विशेषता यह है कि इसमें वर्षमान सायन है और इसीके अनुसार ग्रहोंके भगण मान दिये गये हैं और मीमांसाध्याय में कहा गया है कि सायनमान ही देवर्षिके मतके अनुसार ठीक है निरयण नहीं। इनके अनुसार एक कल्पमें सावन दिनोंकी संख्या १५७७८४७७४८१०१ है। इसलिये १ वर्षमें ३६५-२४२५-३४२८ दिन अथवा ३६५ दिन १४ घड़ी ३३ पल ७-४०४४८ विपल होते हैं। इस समय सूक्ष्म यंत्रोंसे निकाला हुआ सायन वर्षका मान ३६५ दिन १४ घड़ी ३१ पल ५३-४२ विपल है।

ग्रहोंको स्पष्ट करनेके लिये बीज संस्कार करनेको भी कहा गया है।

भग्रहयुत्यधिकारमें ८४ तारोंके ध्रुवांश और शर दिये गये हैं।

जयसिंह द्वितीय और जगन्नाथ सम्राट

जयपुरके महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय सन १६८६ ई० या शक १६०८ में उत्पन्न हुए थे जिस वर्ष यूरोपमें निउटनका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रिन्सिपिया प्रकाशित हुआ था। १३ वर्ष की अवस्थामें यह जयपुरकी गद्दी पर बैठे थे। यह ज्योतिषके अद्वितीय विद्वान् और शोधक थे, इनका और इनकी बनवायी हुई वेधशालाओं का विशेष विवरण पृष्ठ ३९६-३९८ पर दिया जा चुका है। इन्होंने टालमी की 'अलमेजिस्ट' और मिर्जाउलूगवेगकी सारणियों और युक्लिडकी रेखागणितका खूब अध्ययन किया था और ग्रहोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म गतिका निर्णय करनेके लिये बड़े-बड़े यन्त्रों का निर्माण कराया था जो जयपुर, दिल्ली, उज्जैन और काशीमें अब भी इनकी कीर्ति फैला रहे हैं। इन्होंने जगन्नाथ सम्राट के द्वारा टालमीके अलमेजिस्ट के अरबी अनुवाद मिजिस्ट्रीका संस्कृतमें अनुवाद शक १६५३ में कराया था जिसका नाम सम्राट सिद्धान्त रखा गया था।

जिज मुहम्मदशाही—जयसिंहने इस नामकी एक ज्योतिष की सारणी बादशाह मुहम्मदशाह के नाम पर

१—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ २८३।

बनवायी थी जिसमें अपने यंत्रोंके वेधोंके अनुसार ध्रुवांक रखे थे। इसमें ४८ नक्षत्रोंकी सूची दी गयी है जो उलूगबेगकी सूचीमें संशोधन करके बनायी गयी है।

इन्होंने भारतीय ज्योतिषका आवश्यक सुधार करनेके लिए बड़ा प्रयत्न किया परन्तु दुःख है कि इनके सुधारोंका प्रचार भारतवर्षमें उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिये।

मणिराम

ग्रहगणितचिंतामणिमें शक १६६६ चैत्र शुक्ल १ रविवारके प्रातःकालका क्षेपक दिया गया है जो ग्रहलाघवके अनुसार बहुत कुछ मिलता है और ध्रुवाङ्क उससे सूक्ष्म हैं। ग्रन्थकार मणिराम सूर्यसिद्धान्तके अनुयायी जान पड़ते हैं परन्तु ग्रहलाघवकी पद्धतिसे काम लिया है। इन्होंने स्वयम् वेध करके ग्रहोंके ध्रुवांक शुद्ध किये हैं। अयनांश सूर्यसिद्धान्तके अनुसार माना है। इस ग्रन्थमें कुल १२ अधिकार हैं और श्लोकोंकी संख्या १२० है।

नृसिंह उपनाम बापूदेव शास्त्री

यह ज्योतिषके प्रसिद्ध आचार्य थे और इस प्रान्तमें अपने दूसरे नामसे अब तक प्रसिद्ध हैं। भारतीय और पाश्चात्य ज्योतिषके यह अगाध विद्वान् थे। इनका जन्म महाराष्ट्र प्रान्तके अहमदनगर जिलेमें गोदा नदीके किनारे टोंके गाँवमें शक १७४३ (१८२१ ई०) में हुआ था। नागपुरमें ढुण्ढिराज मिश्रसे बीजगणित, लीलावती और सिद्धान्तशिरोमणिका अध्ययन किया और अन्तमें काशीमें आकर संस्कृत कालिजके प्रधान गणिताध्यापक हुए। आप बंगाल एशियाटिक सोसाइटीके आदरणीय सभासद तथा कलकत्ता और इलाहाबाद विश्वविद्यालयोंके सदस्य थे। आपको महामहोपाध्यायकी पदवी भी मिली थी।

आप भारतीय ज्योतिषमें सुधार करनेकी आवश्यकता समझते थे और चाहते थे कि पंचांगोंकी गणना शुद्ध वेधसिद्ध मूलाङ्कोंसे करनी चाहिये। इसका प्रचार करनेके लिये आपने पुस्तकें लिखीं और पंचांग भी बनाना आरम्भ किया परन्तु उस समय काशीके पंडितोंके दलने इनका घोर विरोध किया। दैवदुर्विपाकसे म० म० सुधाकर द्विवेदी इस विरोधी दलके अग्रणी थे इसलिये ज्योतिष सम्बन्धी सुधार अब तक नहीं हो पाया। आश्चर्य तो यह है कि जिस सूर्यसिद्धान्तको द्विवेदीजी स्वयम् आर्षग्रन्थ नहीं मानते[1] और कहते हैं कि यह हिपार्कस नामक यवन ज्योतिषीके ग्रन्थके आधार पर लिखा गया है[2] उसीको प्रामाणिक कह कर पंचांग बनानेके लिये आवश्यक समझते हैं और पहलेके आचार्योंके चलाये हुये बीजसंस्कारकी पद्धतिको भी त्याज्य समझते हैं। यदि दोनों विद्वान् मिलकर काम करते तो इस प्रान्तमें पंचांगकी जो दुर्दशा हो रही है वह न होती।

आपके बनाये हुये ग्रन्थोंके नाम नीचे दिये जाते हैं :—

रेखागणित प्रथमाध्याय, त्रिकोणमिति, सायनवाद, प्राचीन ज्योतिषाचार्याशयवर्णन, अष्टादशविचित्रप्रश्न संग्रह सोत्तर, तत्वविवेक परीक्षा, मानमन्दिरस्थ यंत्र वर्णन, और अंकगणित। यह सब संस्कृत भाषामें हैं और छपकर प्रकाशित हुए हैं। कुछ ग्रन्थ अप्रकाशित हैं जैसे चलनकलन सिद्धान्तके २० श्लोक, चापीय त्रिकोणमिति सम्बन्धी कुछ सूत्र, सिद्धान्त ग्रन्थोपयोगी टिप्पणी, यंत्रराजोपयोगी छेद्यक, और लघुशंकुच्छिन्न क्षेत्रगुण।

हिन्दीमें इनके नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—अंकगणित, बीजगणित और फलित विचार, सायनवादानुवाद, सिद्धान्तशिरोमणिके गोलाध्यायका अंगरेजी अनुवाद स्वयं और विलकिनसनके सहयोगसे सूर्यसिद्धान्तका अंगरेजी अनुवाद किया है। यह दोनों ग्रन्थ ई० सन् १८६१-६२ में प्रकाशित हुए थे।

आपने सिद्धान्तशिरोमणिके गणित और गोल दोनों अध्यायोंका शोधपूर्वक टिप्पणीके साथ एक संस्करण शक १७८८ (ई० १८६६) में और लीलावतीका १८०५ शकमें प्रकाशित किया था।

१—भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृष्ठ २१६

१—'भटोत्पलानान्तरं भास्कराचार्यतः प्रागेव भारतवर्षेऽस्य सूर्यसिद्धान्तस्य प्रचारो जात'। सुधावर्षिणी टीकाकी भूमिका पृष्ठ १ (१६२१ ई० की छपी)

२—पंचांग विचार पृ० ११, १२।

आप शक १७६७ से १८१२ तक नाटिकल अलमैनकके आधार पर पंचांग बनाकर प्रकाशित करते थे। अब भी आपके नामके पंचांगमें यही विशेषता पायी जाती है। १८१२ शकमें आपका देहावसान हुआ।

नीलाम्बर शर्मा

आपका जन्म शक १७४५ (ई० १८२३) में हुआ था और आप गंगा और गंडकीके संगमसे दो कोस पर पटनाके रहनेवाले मैथिल ब्राह्मण थे। आपने यूरोपीय पद्धतिके अनुसार गोलप्रकाश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखा है जिसको १७९३ शकमें पं० बापूदेव शास्त्रीने शोधकर छपाया था। इसमें पांच अध्याय हैं—ज्योत्पत्ति, त्रिकोण-मितिसिद्धान्त, चापीयरेखागणितसिद्धान्त, चापीय त्रिकोणमिति सिद्धान्त और प्रश्न।

विनायक उर्फ केरो लक्ष्मण छत्रे

आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्तमें शक १७४६ (ई० १८२४) में हुआ था। आप गणित, ज्योतिष और सृष्टि विज्ञानमें बड़े निपुण थे और बंबई प्रान्तके अनेक स्कूलों और कालेजोंमें उच्च पद पर काम करते थे। आपका लोकप्रिय नाम नाना था।

आपने फरासीसी और अंग्रेजी ज्योतिष ग्रन्थोंके आधार पर ग्रहसाधनकोष्ठक नामक एक मराठी ग्रन्थ शक १७७२ में तैयार किया था जो शक १७८२ में छापा गया था। इस ग्रन्थमें वर्षमान सूर्यसिद्धान्तके अनुसार लिया गया है परन्तु ग्रहगतिस्थिति सायन लिया है, ज़ीटा पिसियमको रेवतीका योगतारा माना है जो शक ४९६ में बसंतसंपात पर था। अयनकी वार्षिक गति ५०.१ विकला मानी है। शक १७८७ (१८६५ ई०) से आपने नाविक पंचांगके अनुसार पंचांग प्रकाशित करना आरंभ किया। इस बातमें आबा साहब पटबर्धनने आपकी सहायता की जिससे यह पंचांग खूब चलने लगा और इसका नाम पड़ गया नानापटवर्धनी पंचांग।

तिथिसाधनके लिए तिथिचिंतामणिके समान एक ग्रन्थ नाना साहबने लिखा था परन्तु अब इसका प्रचार नहीं है।

आपने स्कूलोंके लिए मराठीमें पदार्थविज्ञान शास्त्र और अंकगणितकी पुस्तकें लिखी थीं।

विसाजी रघुनाथ लेले

आपका जन्म नासिकमें शक १७४९ (ई० १८२७) में हुआ था और शक १८१७ में ६८ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हुआ। आपने मराठी पत्रिकाओंमें इस बातका खूब आन्दोलन किया कि पंचांग सायन पद्धतिसे बनाना चाहिए और इस बातमें केरोपंतका विरोध किया। कई वर्ष तक ग्रहलाघवकी सहायतासे सायन पंचांग बनाकर चलाते रहे फिर नाविक पंचांगकी सहायतासे काम लेते थे, परन्तु इस कामके लिए अपना कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं बनाया।

चिंतामणि रघुनाथ आचार्य

आपका जन्म शक १७५० (ई० १८२८) में तामिल प्रान्तमें हुआ था। आप युरोपीय ज्योतिष और गणितके अच्छे विद्वान् थे और रायल एशियाटिक सोसायटी के फेलो थे। ई० १८४७ से आप मद्रास वेधशालामें काम करने लगे और उसके प्रथम असिस्टेंटके पद पर पहुँच गये थे। आपने यहांसे तारोंका एक स्थितिपत्र Catalogue तैयार किया और दो रूपविकारी तारोंकी खोज की। ज्योतिषचिंतामणि ग्रन्थ आपका ही लिखा हुआ है जिसके तीन भाग हैं। पहलेमें मध्यम गति, पृथ्वी आदि ग्रहोंके आकार और महत्व पर विचार किया गया है। दूसरेमें स्फुट गति आदि पर लिखा गया है और तीसरे का नाम करणपद्धति है जिसमें ग्रहगणित करने के लिए बहुतसे कोष्टक हैं। यह ग्रन्थ तामिल भाषामें लिखा गया था। फिर संस्कृतमें अनुवाद करके तामिल, तेलगू और देवनागरी लिपिमें छपाने पर विचार करनेके लिए १८७४ ई० में मद्रासमें एक सभा की गई थी। ८०० पृष्ठोंकी ५०० प्रतियां छपानेमें ७०००) का खर्च पड़ता था इसलिए यह काम आरंभ नहीं किया गया।

आप शक १७९१से नाविक पंचांगके आधार पर दृग्गणित पंचांग बनाकर प्रकाशित करने लगे जिसे आपके दो पुत्र शक १८०८ तक चलाते रहे। आपका वर्षमान सूर्यसिद्धान्तके अनुसार था और अयनांश २२।५ था[1]।

कृष्णशास्त्री गाडगीले

आपका जन्म शक १७५३ (१८३१ ई०) में बंबई

1—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृ० ३०४-३०५

प्रांतमें हुआ था। उस प्रांतके बहुतसे स्कूलोंके शिक्षकके पद पर रह कर आप हेडमास्टरीसे रिटायर हुए और पूनामें रहने लगे थे। आपने बम्बईकी वेधशालामें भी कुछ दिन काम किया था। १८८६ ई०में आपका स्वर्गवास हुआ।

शक १७७८ में आपने वामन कृष्ण जोशी गद्रेके सहयोगसे ग्रहलाघवका मराठी भाषांतर उदाहरण सहित किया जो प्रधानतः विश्वनाथकी टीकाका भाषांतर है। इस पुस्तकका दूसरा संस्करण भी छपा है। कृष्ण शास्त्री ने ग्रहलाघवकी उपपत्ति भी मराठीमें लिखी है। शक १८०७ में एक छोटा सा ज्योतिष शास्त्रका इतिहास लिखा था। आपने पाठशालोपयोगी बहुत सी गणितकी पुस्तकों की रचनाकी थी।

चन्द्रशेखरसिंह सामन्त

आपका जन्म शक १७५७ (ई० १८३५) में उड़ीसा प्रान्तमें कटकसे ५०, ६० मील पश्चिम खंडपारा गाँवके एक राजवंशमें हुआ था। बचपनमें आपने संस्कृत, व्याकरण, स्मृति, पुराण, तर्कशास्त्र और आयुर्वेदकी शिक्षा पायी थी और सभी महत्वपूर्ण काव्य ग्रन्थोंको पढ़ लिया था। जब आप दस वर्षके थे तब आपके एक चाचाने आपको फलित ज्योतिषका कुछ पाठ पढ़ाया और आकाश के कुछ नक्षत्रों और ग्रहोंको दिखलाया क्योंकि इनका फलित ज्योतिषसे बहुत सम्बन्ध रहता है। धीरे धीरे इस बालकका मन आकाशका दर्शन करने और तारोंकी बदलती हुई स्थितिको देखने में लग गया क्योंकि फलित ज्योतिष में यह ठीक ठीक जानना बहुत आवश्यक होता है कि किस समय क्या लग्न है। थोड़े दिनोंमें यह पूरे आकाशदर्शक (astronomer) हो गये। परन्तु ऐसा कोई शिक्षक नहीं था जो आपको ज्योतिषसिद्धान्तका पाठ पढ़ाता क्योंकि संस्कृत और उड़िया भाषाके सिवा आप और कोई भाषा नहीं जानते थे। इस लिये घरके पुस्तकालयमें संस्कृत सिद्धान्तके जो ग्रंथ मिले उनको अपने आप ही भाष्योंकी सहायतासे पढ़ने और समझने लगे।

१५ वर्षकी अवस्थामें जब 'लग्न' का अर्थ समझने लगे और ग्रहोंकी स्थितिकी गणना करने लगे तब आपको विदित हुआ कि गणनासे ग्रहोंकी जो स्थिति निकलती थी वह आकाशमें ग्रहोंकी प्रत्यक्ष स्थितिसे नहीं मिलती थी, दोनोंमें बड़ा अन्तर पड़ता था। इस बातकी जाँच आपने बार बार की परन्तु सदैव अन्तर देख पड़ता था। तब आपको ग्रंथोंमें दिये हुये अंकोंकी शुद्धतामें सन्देह हुआ। इस लिये आपने स्वयम् कुछ साधारण यंत्र बनाकर समय और ग्रहोंकी दूरियाँ नापनेका काम आरंभ किया।

इस युवककी वेधशालामें नीला आकाश, भूभंगोल यंत्र, एक ऊर्ध्व चक्र, जलघड़ी और कई प्रकारके शंकु थे। परन्तु जिस यन्त्रका व्यवहार बहुत आप करते थे वह आपही का बनाया हुआ एक साधारण यंत्र था जिसे मानयन्त्र कहते थे। इस मानयन्त्रमें २४ अंगुलकी एक सीधी लकड़ी समकोण पर कसी जा सकती थी। इसमें जगह जगह छेद इस प्रकार किये गये थे कि लड़कीके दूसरे किनारे पर आँख रखकर छेदोंके द्वारा ग्रहोंको देखकर उनका उन्नतांश जान लिया जाय। बस इन्हीं स्थूल यंत्रोंसे आपने सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंके मूलाङ्कोंका संशोधन करके एक पुस्तक लिख डाली जिसका नाम है सिद्धान्तदर्पण। यह ज्योतिष सिद्धान्तका एक सुन्दर ग्रंथ है और भास्कराचार्यके सिद्धान्तशिरोमणि अथवा कमलाकरके सिद्धान्ततत्वविवेककी टक्करका है। जगन्नाथपुरी और उड़ीसा प्रांतमें इसीके अनुसार बनाये हुए पंचांग शुद्ध माने जाते हैं।

इस विद्वान्ने युरोपीय आविष्कारों और ग्रन्थोंका बिना सहारा लिये अपने स्थूल यंत्रोंसे ज्योतिषमें जितने क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये वह आश्चर्यजनक है। महाराष्ट्र प्रान्तके विद्वानोंने युरोपीय आविष्कारोंकी सहायतासे जो सुधार किये हैं उनकी तुलनामें यह सुधार और ही महत्व रखता है। सिद्धान्तदर्पणका मूल रूप तालपत्र पर उड़िया अक्षरोंमें लिखा गया था जिसको कटक कालेजके गणितके अध्यापक श्री योगेशचन्द्र राय ने अपनी अंग्रेजी भूमिकाके साथ सन १८६६ ई० (श० १८२१) में छपाया है। यह ग्रंथ उड़ीसा और बिहारके ज्योतिषके छात्रोंको पढ़ाया जाता है।

शंकर बालकृष्ण दीक्षित

आपका जन्म भी शक १७७५ में आषाढ़ शुक्ल १४

भौमवार (ता० २०-२१ जुलाई सन् १८५३ ई०) को रत्नागिरीके मुरुड गाँवमें हुआ था। कठिनाईके कारण आपकी शिक्षा मेट्रीकुलेशनसे अधिक नहीं हुई थी। महाराष्ट्र प्रान्तके अनेक मराठी और अँग्रेजी स्कूलों और ट्रेनिंग कालेजमें आप शिक्षकका काम करते रहे। परन्तु आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। आपने मराठीमें विद्यार्थीबुद्धिवर्धिनी (इ० स० १८७६), सृष्टिचमत्कार (इ०१८८२), ज्योतिर्विलास (ई० १८९२) और धर्ममीमांसा (१८९५) नामक पुस्तकें छपायी थी। व० मि० सिवेलके सहयोगसे आपने इंडियन कैलेंडर (Indian Calender) नामक ग्रन्थ अंग्रेजीमें लिखा था। परन्तु आपका सबसे उपयोगी और गंभीर विद्वत्ताका ग्रन्थ मराठीका भारतीय ज्योतिषशास्त्र है जिसे आपने सन् १८८७ ई० (शक १८०९) नवम्बर मासमें आरंभ किया था और सन् १८८८ (शक १८१०) के अक्टूबर तक समाप्त किया। एक वर्षके भीतर ऐसी उत्तम खोजकी पुस्तक लिखना दीक्षित जी ऐसे परिश्रमशील विद्वानका ही काम था। इस पुस्तक पर आपको पूनेकी (दक्षिणा प्राइज कमेटीसे ४५०) का पुरस्कार मिला था।

इस ग्रन्थके पहले भागके पहले विभागमें वैदिककालका वर्णन है जिसमें वैदिक संहिता और ब्राह्मणोंमें आये हुए ज्योतिष संबंधी वचनोंका अवतरण देकर बतलाया गया है कि वैदिक ऋषियोंको ज्योतिष संबंधी बातोंका कितना ज्ञान था।

दूसरे विभागमें वेदांगकालकी ज्योतिषका वर्णन है जिसमें आर्च और याजुष ज्योतिषका विस्तृत वर्णन है। इसके कुछ श्लोकोंका अर्थ भी जो पहले नहीं ज्ञात था किया गया है। अथर्व ज्योतिषकी भी चर्चा है। इसी विभागमें कल्पसूत्र, निरुक्त और पाणिनीय व्याकरणमें आये हुए ज्योतिष संबंधी वचनोंका विवेचन है। यह पहले प्रकरणमें है। दूसरे प्रकरणमें स्मृति और महाभारतमें आये हुए सब ज्योतिष संबंधी वचनोंका विवेचन किया गया है। इस प्रकार पहला भाग डिमाई साइजके १४७ पृष्ठोंमें समाप्त हुआ है।

दूसरे भागमें ज्योतिषसिद्धान्त-कालके ज्योतिषशास्त्रका इतिहास दिया गया है। पहले खंडका नाम गणितस्कंध है जिसके मध्यमाधिकार प्रकरण १ में प्राचीन सिद्धान्तपंचकके पितामहसिद्धान्त, वसिष्टसिद्धान्त, रोमकसिद्धान्त और पुलिशसिद्धान्तका विवेचन बड़ी विद्वत्ताके साथ किया गया है फिर वर्तमानकालके सूर्यसिद्धान्त, सोमसिद्धान्त, वसिष्टसिद्धान्त और शाकल्य संहितोक्त ब्रह्मसिद्धान्तका उत्तम वर्णन है। इसके बाद प्रथम आर्यभटसे लेकर (शक ४२१) सुधाकर द्विवेदी (शक १८०६) तकके प्रसिद्ध ज्योतिषके आचार्यों और उनके ग्रन्थोंका वर्णन १११ पृष्ठोंमें किया गया है। ग्रन्थोंमें लिखे हुए कालकी शुद्धता जाँचकर लिखी गयी है और यह भी बतलाया गया है कि किस ग्रन्थमें क्या विशेषता है। यह कितने परिश्रमका काम है इसका अनुमान करना कठिन है।

इसके बाद भारतीय ज्योतिष पर मुसलमान ग्रन्थकारों, विशेषकर अलबेरूनीके मतका विवेचन किया गया है।

२रे प्रकरणमें भुवनसंस्थाके संबंधमें भिन्न भिन्न आचार्योंके मतोंका तुलनात्मक विवेचन है। ३रे प्रकरणमें अयनचलन पर विस्तृत विवेचन किया गया है। ४था प्रकरण वेधप्रकरण है जिसमें दिखलाया गया है कि हमारे ग्रन्थोंमें वेध संबंधी बातों और यंत्रोंका कैसा वर्णन है।

स्पष्टाधिकारके प्रकरण १में ग्रहोंकी स्पष्ट गति और स्थितिके संबंधमें तुलनात्मक विवेचन है, प्रकरण २ में पंचांग और विविध सनों तथा संवतोंका वर्णन किया गया है। इसी प्रकरणमें पंचांगशोधनविचार नामक एक अध्याय है जिसके ३२ पृष्ठोंमें दिखलाया गया है कि पंचांगका शोधन करना क्यों आवश्यक है, सायनपंचांग क्यों स्वाभाविक है।

इस प्रकार कुल ४४२ पृष्ठोंमें इतनी बातें लिखी गयी हैं। इसके आगे संक्षेपमें त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रसूर्यग्रहणाधिकार, छायाधिकार, उदयास्ताधिकार, शृङ्गोन्नति, ग्रहयुति, भग्रहयुति और महापात अध्याय हैं। भग्रहयुति अध्यायमें योगतारोंके भोगांशों और शरों पर तुलनात्मक विचार विस्तारके साथ किया गया है।

संहितास्कंधमें संहिता और मुहूर्त संबंधी पुस्तकोंका वर्णन है।

जातकस्कंधमें जातकशास्त्र संबंधी पुस्तकोंका वर्णन है और बतलाया गया है कि जन्मपत्री क्या है कैसे बनायी जाती है और उसका सिद्धान्त क्या है। अंतमें ताजिकपर भी थोड़ा सा विचार है जिससे वर्षफल बनाया जाता है।

उपसंहारमें भारतीय ज्योतिषकी तुलना अन्य देशोंके ज्योतिषसे की गयी है और इस संबंधके अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानोंके मतोंका विवेचन किया गया है।

अंतमें संस्कृत और अन्य ज्योतिष ग्रन्थोंकी एक बृहत् सूची तथा ज्योतिष ग्रन्थकारोंकी सूची दी गयी है। ज्योतिषके सिवा अन्य पुस्तकोंकी सूची है जिससे ज्योतिष सम्बन्धी अवतरण लिये गये हैं। इसके सिवा अन्य ग्रन्थकारों, व्यक्तियों और स्थानोंकी सूची है। अंतमें विषयानुसार सूची देकर ५६० पृष्ठोंमें पुस्तक समाप्त की गयी है।

ऐसी अमूल्य पुस्तक लिखकर दीक्षितजीने भारतीय ज्योतिषका बड़ा उपकार किया है, इसमें सन्देह नहीं। इस ग्रन्थसे इन पंक्तियोंके लेखकने बहुत लाभ उठाया है।

वेंकटेश बापूजी केतकर

आपका जन्म पौष शुक्ल १४ शुक्रवार शक १७७५ (ई० १८५४) में हुआ था और १८७४ ई० से आप बंबई प्रान्तके स्कूलोंमें शिक्षकका काम करने लगे थे। आप बागलकोटके अंग्रेजी स्कूलमें हेडमास्टरके पद पर भी रहे हैं। आप प्राच्य और पाश्चात्य ज्योतिषके अद्वितीय विद्वान् और ग्रन्थकार थे। आपकी मृत्यु शक १८५२ (ई० १९३०) में ७६॥ वर्षकी अवस्थामें हुई है।

आपने ज्योतिष पर कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनके नाम यह हैं—ज्योतिर्गणित, केतकीग्रहगणित, वैजयन्ती, केतकी परिशिष्ट, सौरार्यब्रह्मपक्षीयतिथिगणितम्, केतकी वासना भाष्यम्, शास्त्रशुद्धपञ्चांगअयनांश निर्णय और भूमण्डलीयसूर्यग्रहणगणित संस्कृतमें और नक्षत्रविज्ञान, ग्रहगणितम्, गोलद्वयप्रश्न, भूमंडलीयगणित मराठीमें लिखे हैं।

ज्योतिर्गणित—यह बड़े आकारके लगभग ५०० पृष्ठोंका ग्रन्थ है जिसमें पञ्चांग बनाने, ग्रहण की गणना करने, नक्षत्रोंके उदय और अस्तका गणित करनेकी सभी आवश्यक बातोंके लिए कोष्ठक दिये गये हैं जिनके आधार पर पञ्चाङ्ग सुगमता और शुद्धता पूर्वक बनाये जा सकते हैं। जिन पाश्चात्य गवेषणाओं और गणनाओंके आधार पर यह कोष्ठक बनाये गये हैं उनके सूत्र भी दे दिये गये हैं। दशमलव भिन्नका उपयोग करके गुणाभाग करनेका काम बहुत सरल कर दिया गया है, भुजज्या, कोटिज्या आदिकी सारणी दे दी गयी है। यह एक अपूर्व ग्रन्थ है जिससे ग्रन्थकर्ता के गंभीर परिश्रम और विद्वत्ताका पता चलता है। इसके ध्रुवा शक १८००के हैं। इस ग्रन्थमें इन्होंने रेवती योग ताराको नक्षत्रचक्रका आदि बिन्दु मानकर तथा चित्राको नक्षत्रचक्रका मध्य मानकर दोनों प्रकारसे अयनांश दे दिये हैं, क्योंकि महाराष्ट्र प्रान्तमें इन दोनों पद्धतियोंसे पंचांग बनाये जाते हैं और प्रत्येकके समर्थक बड़े-बड़े विद्वान् हैं। परन्तु पीछेसे यह केवल चित्रा मतके समर्थक हो गये हैं और केतकी ग्रहगणित तथा पंचांग अयनांश निर्णयमें यह सिद्ध किया है कि प्राचीन परंपराके अनुसार चित्रा तारा ही नक्षत्र चक्रका मध्य होना चाहिए जिससे अश्विनी नक्षत्र या मेषका आदि बिन्दु चित्रासे १८०° पर ठहरता है। यह ग्रन्थ शक १८१२ के लगभग लिखा गया था।

केतकीग्रहगणित—यह ग्रहलाघवके ढंग पर संस्कृत श्लोकोंमें अर्वाचीन ज्योतिषके आधार पर पञ्चांग बनानेके लिए उपयोगी ग्रन्थ है। पुराने ढङ्गके पंडित श्लोकोंको याद करके गणना करनेका काम सुगमतासे कर सकते हैं इसलिए उनके लिए यह बहुत उपयोगी है, इससे तिथि, नक्षत्र, आदि की तथा ग्रहों की स्पष्ट गणना काफी शुद्ध होती है।

इसपर ग्रन्थकारने अपनी अंकविवृति व्याख्या भी भी की है जिसमें उदाहरण देकर ग्रन्थको और सुगम बना दिया है। इसके साथ ग्रन्थकारके सुयोग्य पुत्र दत्तराज वेंकटेश केतकरने केतकीपरिमलवासनाभाष्य नामक टीका लिखी है जिसमें चित्र देकर वैज्ञानिक रीतिसे नियमों की उपपत्तियोंका वर्णन बिस्तारके साथ किया है। यह पुस्तक शक १८१५में लिखी गयी थी और शक १८५१

(ई० १६३०) में आर्यभूषण मुद्रणालयसे प्रकाशित हुई है और संस्कृतमें अर्वाचीन ज्योतिष पर अच्छी पुस्तक है।

वैजयन्ती—इसमें पञ्चांगोपयोगी तिथि, नक्षत्र और करणोंकी गणना करनेके लिए सारणी है जिससे गणना बड़ी आसानीसे की जा सकती है। इसमें चन्द्रमामें केवल ५ संस्कार देकर काम लिया गया है।

नक्षत्र विज्ञान—इसमें आकाशके विविध प्रकार के तारोंका वर्णन, उनकी सूची, भोगांश, शर तथा आकाशके नकशे दिये गये हैं। जिन नक्षत्रोंके नाम भारतीय ज्योतिषमें नहीं है उनके नाम इन्होंने स्वयम् बनाये हैं जैसे Ophiuchus को 'भुजगधारि', Pegasus को उच्चैःश्रवा, Lyra को स्वर मण्डल, आदि।

बाल गङ्गाधर तिलक

आपका जन्म शक १७७८ (ई० १८५६) में हुआ। आप गणित, ज्योतिष, विज्ञान, प्राचीन इतिहास, दर्शन और वेदके अद्वितीय विद्वान् थे। राजनीतिके भी आप प्रकांड पंडित और नेता थे जिसके कारण आपको कई बार जेल जाना पड़ा था। इनसे आप देश विदेश सभी जगह प्रसिद्ध हैं और आपको 'लोकमान्य' कहा जाता है। आप 'मराठा' नामक अंगरेजी पत्र तथा 'केसरी' मराठी पत्रके सफल सम्पादक थे। आपके लिखे तीन गून्थ बहुत प्रसिद्ध हैं १—ओरायन, २—आर्कटिक होम इन् दि वेदाज़ और, ३—गीता रहस्य।

ओरायन—यह अँग्रेजी ज्योतिष संबंधी गून्थ है और सन् १८६३ ई० में लिखा गया था। इसमें आपने वेद, ब्राह्मण, संहिता तथा ज्योतिषके गून्थोंसे सिद्ध किया है कि किसी समय वसंतसंपात ओरायन (Orion मृगशिर) नामक नक्षत्रमें होता था जिससे वेदका काल ४५०० वर्ष ईसापूर्व ठहरता है। इसके पहले पाश्चात्य विद्वान् कहते थे कि वेदकाल २००० ईसा पूर्वसे अधिक पुराना नहीं है। आपके मतका समर्थन प्रोफेसर जेकोबीने भी अपनी स्वतन्त्र गणनासे किया। इस गून्थकी गंभीरता और नवीनता पर विदेशी पण्डित मोक्षमूलर महाशय मुग्ध थे।

आर्कटिक होम इन दि वेदाज़—भी अंग्रेजीका ग्रन्थ है जिसमें आपने वेदों, पुराणों तथा ईरानकी पौराणिक कथाओं और भूगर्भविज्ञानके आधार पर सिद्ध किया है कि प्राचीन आर्य उत्तरी ध्रुवके पास निवास करते थे और वहींसे जैसे जैसे जलवायु प्रतिकूल होता गया वे भारतवर्षमें आये। यह पुस्तक सन १६०३ ई० में लिखी गयी थी।

गीतारहस्य— यह दर्शनशास्त्रका एक अपूर्व ग्रंथ है। इसमें भगवद्गीताके अनुवादके साथ साथ प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनकी तुलना करके दिखलाया गया है कि भगवद्गीताका सिद्धान्त क्या है। इसीके एक श्लोक 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' के अर्थकी खोजमें आपने 'ओरायन' ग्रंथका निर्माण किया था।

इन पुस्तकोंके सिवा आपने केसरी समाचार पत्रके द्वारा महाराष्ट्र प्रान्तमें ज्योतिष संबंधी बातोंकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया और बतलाया कि पंचांग बनानेकी रीतिमें किस प्रकारका सुधार करनेकी आवश्यकता है। आपके मतके अनुसार एक पंचांग महाराष्ट्र प्रान्तमें चलता है जिसमें अयनांशका मान रैवत पक्षके अनुसार माना जाता है जिसकी चर्चा ज्योतिर्गणितके सम्बन्धमें पहले की जा चुकी है। आपका देहावसान सन १६२१ ई० में हुआ।

सुधाकर द्विवेदी

आप काशीके निकट खजुरी ग्रामके निवासी थे। आपका जन्म शक १७८२ (१८६० ई०) में हुआ था। पं० बापूदेव शास्त्रीके पेंशन लेने पर आप बनारस संस्कृत कालेजके गणित और ज्योतिषके मुख्याध्यापक हुए। आप को सरकारसे महामहोपाध्यायकी पदवी मिली थी। आप शक १८४४ (१६२२ ई०) में स्वर्गवासी हुए।

आप गणित और ज्योतिषके अद्वितीय विद्वान् थे। आपने अनेक प्राचीन ज्योतिष ग्रंथोंकी शोध करके टीकायें लिखी हैं और अर्वाचीन उच्च गणित पर स्वतन्त्र ग्रंथ भी लिखे हैं। आपके रचे ग्रंथोंके नाम यह हैं:—

१—दीर्घवृत्त लक्षण (१८०० शक), २—विचित्र प्रश्न (शक १८०१) जिसमें २० कठिन प्रश्न और उत्तर हैं, ३—वास्तव चन्द्रशृंगोन्नतिसाधन (शक १८०२) इसमें लल्ल, भास्कर, ज्ञानराज, गणेश, कमलाकर, बापूदेव आदिकी लिखी रीतियोंमें दोष दिखला कर युरोपीय

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार वास्तवशृंगोन्नति साधन कैसे किया जाता है दिखलाया गया है। इसमें ६२ पद्य हैं।

४—द्युचरचार (शक १८०४) में ग्रहकी कक्षाका विवेचन युरोपीय ज्योतिषके अनुसार किया गया है।

५—पिंडप्रभाकर शक १८०७ में लिखा गया था इसमें वास्तु (भवन निर्माण) संबंधी बातें है।

६—भाभ्रमरेखा निरूपणमें दिखाया गया है कि शंकु की छायासे कैसा मार्ग बनता है।

७—धराभ्रममें पृथ्वीके दैनिक भ्रमणका विचार किया गया है।

८—ग्रहणकरणमें इस पर विचार किया गया है कि ग्रहणोंका गणित कैसे करना चाहिये।

९—गोलीय रेखागणित।

१०—युक्लिडकी छठीं, ११वीं और १२वीं पुस्तकों का संस्कृतमें श्लोकबद्ध अनुवाद है।

११—गणकतरंगिणीमें भारतीय ज्योतिषियोंकी जीवनी और उनकी पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय है जिसकी चर्चा यहाँ कई जगह पर आयी है। यह शक १८१२ में लिखी गयी थी।

यह सब ग्रंथ संस्कृतमें हैं। सुधाकरजीकी संस्कृत टीकाके ग्रंथ यह है—

१—यंत्रराज पर प्रतिभाबोधक टीका (श० १७९५)

२—भास्कराचार्यकी लीलावती पर सोपपत्तिक टीका, शक १८००।

३—भास्कराचार्यके बीजगणितकी सोपपत्तिक टीका शक १८१०।

४—भास्कराचार्यके करणकुतूहलकी वासनाविभूषण टीका, शक १८०३ में।

५—वराहमिहिरकी पञ्चसिद्धान्तिक पर पञ्चसिद्धान्तिकाप्रकाश टीका शक १८१० में, जो डाक्टर थीबोकी अंग्रेजी टीका और भूमिकाके साथ शक १८११ में प्रकाशित हुई थी।

६—सूर्यसिद्धान्तकी सुधावर्षिणी टीका १९०६ ई० के जून मासमें पूर्ण हुई थी और इसका पहला संस्करण 'बिब्लियोथिका इंडिका' के दो भागों (सं० ११८७ और १२९६) में सन १९०९ और १९११ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसका दूसरा संस्करण बंगालकी एशियाटिक सोसाइटी ने १९२५ ई० में प्रकाशित किया जो इस समय काशीमें मिलता है।

७—ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त टीका सहित १९०२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

८—आर्यभट द्वितीयका महासिद्धान्त टीका सहित पहले बनारस संस्कृत सीरीज़ संख्या १४८, १४९ और १५० में निकला था जो १९१० में पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था।

९—याजुष और आर्च ज्योतिष पहले बनारसके 'पंडित' पत्रिकामें सोमाकर और सुधाकरके भाष्य सहित निकला था जो ई० १९०८ में अलग पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया था।

१०—ग्रहलाघवकी सोपपत्तिक टीका जिसमें मल्लारि और विश्वनाथकी टीकाएँ भी सम्मिलितकी गयी हैं।

इन टीकाओंके सिवा हिन्दीमें चलनकलन, चलराशिकलन और समीकरणमीमांसा नामकी उच्चगणितकी पुस्तकें भी सुधाकरजीकी लिखी हुई हैं। अंतिम पुस्तक दो भागोंमें विज्ञान परिषद्से प्रकाशित है। आपने हिन्दी भाषाकी भी कई पुस्तकें लिखी हैं।

उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट है कि सुधाकर द्विवेदी इस प्रान्तमें ज्योतिष और गणितके अद्भुत विद्वान् हो गये हैं। पता नहीं, आप ज्योतिषके आवश्यक सुधारके प्रतिकूल क्यों थे जब इस सम्बन्धमें बहुत प्राचीनकालसे यह परंपरा चली आयी है कि दृग्तुल्यताके लिये आवश्यक सुधार करते रहना चाहिये। यदि आप बापूदेव शास्त्री जी का सहयोग देते तो इस प्रान्तमें ज्योतिषशास्त्रकी जो दुर्दशा है वह न होती और काशीके पञ्चांग भी शुद्ध और प्रामाणिक बनते होते।

एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्लई

आपका जन्मकाल, जन्मस्थान आदिका पता नहीं मिलता परन्तु आपकी अंग्रेजीमें लिखी इंडियन क्रॉनोलोजी जिसमें सौर चान्द्र तिथियों और ग्रहोंकी गणना करने की रीति, उपपत्ति और सारिणियाँ दी गयी है और जिससे इस्वी सन् के २००० वर्षोंकी तिथि, नक्षत्र, जन्मपत्र तथा अन्य ऐतिहासिक लेखोंकी तिथियोंकी शुद्धता परखी जा

सकती है, एक अनोखा ग्रन्थ है जो इन पंक्तियोंके लेखक के पास गत २३ वर्षोंसे है और बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें भारतवर्ष भरमें प्रचलित सभी प्रकारके सम्वतों, तिथियों और तारीखोंके जाननेकी रीति बहुत सरल रीतिसे समझायी गयी है। थोड़ेसे अभ्याससे किसी तारीखकी शुद्धताकी जाँच एक मिनटमें कर सकते हैं।

विज्ञानके आकारके ११४ पृष्ठोंमें भारतीय ज्योतिष के सभी व्यावहारिक अंगों पर बहुत ही वैज्ञानिक रीतिसे प्रकाश डाला गया है। किस मासमें कौनसी तिथि किस पर्व या त्योहारके लिये कैसे निश्चित की जाती है, पञ्चाग कैसे बनाये जाते हैं, पञ्चागके अंग क्या है, इसका पूरा विवेचन किया गया है। इसके बाद २३२ पृष्ठोंमें २२ सारणियाँ हैं। पहली सारणीमें दक्षिण भारतमें प्रचलित ६६० ई० से १६२६ ई० तकका संवत्सर-चक्र दिया गया है। दूसरीमें सूर्यसिद्धान्त और आर्यसिद्धान्त (आर्यभटीय) के अनुसार सौरमासोंके मान, अधिमासों क्षय मासोंकी सीमाएँ और तिथियोंके मान बतलाये गये हैं। तीसरीमें नक्षत्रोंके नाम, उनके देवता और उनके मान वर्तमान प्रथा तथा गर्ग और ब्रह्माके अनुसार दिये गये हैं। चौथीमें केवल एक पृष्ठमें युरोपीय तारीखोंकी जंत्री (perpetual calender) दी गयी है जिससे आप ३००१ ई० पू० से लेकर २३६१ ई० तक के अर्थात् कलि संवतके आरम्भसे ५३६६ कलि संवत तक की इसवी तारीखोंके वार आध मिनटमें जबानी निकाल सकते हैं। ५वीं में नक्षत्रों, योगों और संवत्सरोंके गुणक, ६ठी में सूर्यसिद्धान्त और आर्यसिद्धान्तके अनुसार शताब्दि ध्रुवांक और तिथिके अंश, कला, विकला तकके गुणक दिये गये हैं। ७वीं में सूर्यसिद्धान्त और आर्यसिद्धान्तके अनुसार ६००० वर्षके मेषसंक्रान्तिकालके सौर वर्ष और चंद्रकेन्द्रके ध्रुवांक तथा सौर वर्षकी पहली अमावस्याके ध्रुवांक तथा सूर्य और चंद्रकेन्द्रकी विकलात्मक गतिके गुणक दिये गये हैं। ८वीं में यह जाननेको बतलाया गया है कि किस अँग्रेजी तारीखमें कौनसी सौर तिथि, चांद्र तिथि, नक्षत्र, योग या करण है। नवीं सारणीमें तिथि, नक्षत्र और योगोंको स्पष्ट करनेकी रीति सूर्यसिद्धान्त और आर्यसिद्धान्तके अनुसार बतलायी गयी है। इससे पञ्चांग बहुत ही आसानीसे बनाये जा सकते हैं। १०वीं सारणीके १०८ पृष्ठोंमें ईस्वी सन के आरम्भसे १६६६ ई० के अंत तकके प्रत्येक मासकी अमावस्याकी अंग्रेजी तारीख और वार, कलियुग, विक्रम और ईस्वी सन, अधिमास और क्षयमास और ग्रहणके दिन, सौर वर्षके आरंभ कालका समय, उस समयका चन्द्रकेन्द्र, आदि दिये हुए हैं, जिनसे आप २००० वर्षके किसी तारीखकी तिथि और वार ५ मिनटमें जान सकते हैं। ११वींमें नक्षत्र और योग जाननेके ध्रुवांक हैं। १२वींमें १८४० ई० से १६२० ई० तकके कलियुग, शक, विक्रम, ईस्वी, हिजरी, कोल्लम सनोंके अंक और प्रत्येक मासकी अमावास्याका मध्यम और स्पष्टकाल और सूर्य, चन्द्रमाके मन्द्रकेन्द्र दिये गये हैं। १३वींमें ८ से लेकर ३५ अक्षांश तकके एक-एक अंशके अंतरके स्थानों तथा बम्बई और कलकत्ताके वर्षके प्रतिदिनके सूर्योदयका समय दिया गया है। १४वींमें नर्मदोत्तर भारतमें व्यवहार किये जाने वाले ११६६ ई० से १६४० ई० तकके संवत्सरचक्रकी सारणी है। १५वींमें आरंभसे लेकर १४२१ हिजरी सनोंके समानार्थक ईस्वी सन और उन महीनोंके नाम जिनमें हिजरी वर्ष आरम्भ होता है, दिये गये हैं। १६वींमें अर्वाचीन चान्द्रगणनाके अनुसार स्पष्ट तिथि निकालनेके कोष्ठक हैं। १७वींमें सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और राहुको स्पष्ट करनेके कोष्ठक हैं। १८वींमें उपर्युक्त ग्रहोंकी स्पष्ट स्थिति दस दस दिनके अंतरपर सन् १८४० से १६१६ ई० तक की बतलायी गयी है जो जन्मपत्र मिलाने वालोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। १६वींमें घड़ी और पलके मान दिनके दशमलव भिन्नोंमें तथा २०वींमें घंटा और मिनटके मान दिनके दशमलव भिन्नोंमें लिखे गये हैं। २१वींमें नवमांशोंका (प्रत्येक नक्षत्रके एक एक चरणका) मान बतलाया गया है। २२वींमें कलियुगके आरंभसे किसी दिन तकके दिनों (अहर्गण) की संख्या जाननेके कोष्ठक हैं। अंतमें एक दृष्टि सारणी (eye table) है जिससे तिथियोंकी स्पष्ट गणना जबानी ही की जा सकती है।

परिषदका ३१वां वार्षिक अधिवेशन

विज्ञान-परिषदका ३१वां वार्षिक अधिवेशन म्योर सेंट्रल कालेजके भौतिक-विज्ञान-विभागके व्याख्यान-भवन में १४ सौर माघ सं० २००१ वि० तदनुसार २७ जनवरी १९४५ ई०के ५ बजे अपराह्नमें प्रो० सालगराम भार्गवके सभापतित्वमें हुआ। जलपानके पश्चात् परिषदके सभ्यों और अन्य सज्जनों तथा विद्यार्थियोंके सन्मुख, लखनऊ विश्वविद्यालयके गणित-विभागके डा० रामाधर मिश्रजी का सापेक्षवाद पर मनोहर व्याख्यान हुआ और परिषदके ३१वें वर्षका कार्य विवरण पढ़ा गया जो नीचे प्रकाशित है।

१९४४-४५ वर्षके लिए डा० श्रीरंजन सभापति, डा० हीरालाल दुबे द्वितीय मंत्री, डा० सन्तप्रसाद टंडन प्रधान सम्पादक और प्रो० फूलदेवसहाय वर्माकी जगह पं० सालिगराम भार्गव उपसभापति तथा डा० बी एन० प्रसाद, श्री वेदमित्र, डा० गोरखप्रसाद स्थानीय अंतरंगी चुने गये। शेष पदाधिकारियों और अंतरंगियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

उपस्थित सज्जनों और डा० रामधरमिश्रको धन्यवाद देनेके बाद सभा विसर्जित हुई।

विज्ञान परिषद् प्रयागका वार्षिक विवरण

(अक्टूबर १९४३से सितम्बर १९४४ तक)

विज्ञान परिषद् प्रयागका इकतीसवां वर्ष गत वर्षोंकी अपेक्षा अधिक सफलतापूर्वक समाप्त हुआ। इस वर्ष पुस्तकोंकी बिक्रीसे जितनी आय हुई वह गत वर्षकी आय की दूनीसे भी अधिक है, इसलिए गतवर्षके अनुमानपत्रमें जितनी आयका अनुमान किया गया था उससे कहीं अधिक आय हुई। विज्ञानकी ग्राहक संख्याभी अच्छी बढ़ी। कागजके नियन्त्रणके कारण गत जुलाई माससे विज्ञानकी पृष्ठ संख्या ४४की जगह १४ कर देनी पड़ी इस लिए वर्षके अंतमें ग्रहकोंकी संख्या कुछ मन्द गतिसे बढ़ी और इस मध्ये आय अनुमानसे ८४।) कम पड़ गयी। साधारण और आजीवन सभ्योंकी संख्या भी पर्याप्त मात्रा में बढ़ी। हमारे आजीवन सभ्य हैदराबाद निवासी पं० वेंकटलाल ओझाजीने इस वर्ष भी परिषदके आजीवन सभ्य बनानेमें अच्छा प्रयत्न किया इसलिए परिषद उनका अत्यन्त आभारी है।

विज्ञानकी पृष्ठ संख्या कम कर देनेके लिए लाचार होने पर अपने ग्राहकों और सभ्योंको अधिकसे अधिक पठनीय सामग्री देनेके लिए हमने कवर पर भी लेख छपाना आरंभ कर दिया। पतेके लिए अंतिम पृष्ठका थोड़ा-सा भाग छोड़ दिया जाता है। इससे एक हानि अवश्य हुई कि डाकखानेकी मुहर कभी कभी पठनीय सामग्री पर पड़ जाती है जिससे पढ़नेमें ही कठिनाई नहीं पड़ती वरन पत्रिकाका रूप भी कुछ बिगड़ जाता है। परन्तु अब यह कठिनाई नहीं रहेगी क्योंकि प्रयाग विश्वविद्यालयके भौतिक विज्ञानके प्रधान डाक्टर कृष्णननूके उद्योगसे पेपर अफसरने कृपा करके २४ पृष्ठोंका विज्ञान प्रकाशित करनेकी आज्ञा दी है जिससे अब हम विज्ञानके अन्तिम पृष्ठोंको लेखोंसे नहीं भरेंगे। इस कृपाके लिए हम डाक्टर कृष्णनन् और पेपर अफसरको धन्यवाद देते हैं।

पुस्तक प्रकाशन—वर्षके आरंभमें 'घरेलू डाक्टर' सब सभ्योंके पास भेज दिया गया था। इसके उपरान्त डाक्टर गोरखप्रसाद जी की पुस्तक, 'तैरना' और श्री रामेशबेदीजी की पुस्तक 'अंजीर' प्रकाशित हुई थी। श्री रामेशबेदीजीकी पहली पुस्तक त्रिफलाका दूसरा संस्करण भी छप गया है और शीघ्र ही प्रकाशित किया जायगा। यह हर्षकी बात है कि डाक्टर गोरखप्रसादजीकी पुस्तक 'फल संरक्षण' और 'उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर' की मांग बहुत बढ़ रही है। 'फल संरक्षण' का पहला संस्करण समाप्त भी हो गया है। इसलिए इसका दूसरा संस्करण जिसमें बहुत-सी उपयोगी बातें बढ़ा दी गयी हैं छपनेके लिए दे दिया गया है। कागजके नियंत्रणके कारण छपाईकी गति बहुत मन्द है। आशा है कि आगामी फरवरी तक हम इसे प्रकाशित कर सकेंगे। रेडियोकी पुस्तकका छपना

बहुत पहले आरंभ हुआ था परन्तु कई कठिनाइयोंके कारण वह अब तक प्रकाशित नहीं की जा सकी। आशा है कि आगामी ग्रीष्म-ऋतु तक यह अवश्य पूरी हो जायगी। 'सरल विज्ञान सागर'का प्रथमखंड छप गया है और शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा।

यह हर्षकी बात है कि विज्ञान परिषदकी प्रकाशित पुस्तक सूर्यसिद्धान्तके विज्ञान-भाष्य पर उसके लेखकको नागरी प्रचारिणी सभा काशीसे २००) का छन्नूलाल पुरस्कार और ग्रीब्ज पदक मिला और अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे गत जयपुरके अधिवेशनमें १२००) का मंगला प्रसाद पुरस्कार मिला।

परिषदकी जो भूमि और दो कमरे क्रास्थवेट रोड पर थे वे बेच दिये गये और रुपया पंजाब नेशनल बैंकके स्थायी कोषमें जमा कर दिया गया है। अनुकूल समय आने पर विश्वविद्यालयके पास जहाँ परिषदके अधिकांश पदाधिकारी रहते हैं पर्याप्त भूमि लेकर परिषदके लिए एक भवन निर्माण करनेका उद्योग किया जायगा जिसमें व्याख्यानों के लिए एक हाल तथा दफ़्र और गोदामके लिए पर्याप्त कमरे बनवाये जायंगे। इसके लिए समय आनेपर सभ्यों और अन्य विद्याप्रेमियोंसे सहायताके लिए प्रार्थना की जायगी।

इस वर्ष निम्नाङ्कित सज्जन परिषदके पदाधिकारी रहे :—

सभापति—प्रो० सालगराम भार्गव
उपसभापति —डा० धीरेन्द्र वर्मा
प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा
प्रधान मन्त्री—श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव
मन्त्री —डा० रामशरण दास
कोषाध्यक्ष—डा० रामदास तिवारी
स्था० अन्तरंगी डा० श्रीरंजन
,, प्रो० ए० सी० बैनर्जी
,, डा० सन्तप्रसाद टंडन,
,, श्री महेशचन्द्र इंजीनियर
प्रधान सम्पादक डा० गोरख प्रसाद
बाहरी अन्तरंगी श्रीबैंकटलाल ओझा (हैदराबाद)
,, श्री हीरालाल खन्ना (कानपुर)
,, श्रीपुरुषोत्तमदासस्वामी (डूँगरपुर)
,, श्री छोटूभाई सुथार (नडियाद)
,, डा० दौलतसिंह कोठारी (दिल्ली)
आय-व्यय परीक्षक डा० सत्यप्रकाश

इस समय (३० सितम्बर सन् १६४४ तक) परिषद के आजीवन सभ्यों की संख्या ३५ और सभ्यों की संख्या १११ है। अक्टूबर १६४३ से ३० सितम्बर १६४४ तक नीचे लिखे सज्जन परिषदके सभ्य हुए :—

आजीवन सभ्य—

१—श्री ओंकरनाथ शर्मा, आगरा
२ - श्री कल्याण जी ओधव जी गांधी, बम्बई
३—स्वामी अभयानन्द जी, गुरुकुल घटकेश्वर
४ - श्री ओंकारनाथ परती रिसर्च स्कालर, इलाहाबाद
५—राजा बेंकटलाल जी लोया, हैदराबाद दक्खिन

साधारण सभ्य—

१—श्री कृष्ण शास्त्री ऐस्ट्रालाजर, मद्रास
२—श्री श्यामाचरण गुप्त, कानपुर
३—श्री आत्माराम गुप्त, हिन्दू होस्टल
४—पं० शिवगोविंद दुबे, पटना
५—श्री दयासागर एम० एस-सी०, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय
६—श्री अभयकुमार ,, ,,
७—श्री एफ़० सी० आलक, दिल्ली वि० वि०
८—श्री कृष्णलाल पोद्दार, कलकत्ता
९—श्री सी० पी० सिन्हा, इंजीनियर कलकत्ता
१०—पं० अंबिकाप्रसाद्र पांडे, एडवोकेट, इलाहाबाद
११—पं० सीताराम ओझा, गुलबर्गा
१२—पं० हरिश्चन्द्र भार्गव, लश्कर
१३—श्री वी० डी० आचार्य डेंटल सर्जन नरोना
१४—श्री विद्याप्रकाश एम० एस-सी०, आगरा
१५—श्री कन्हैयालाल गोविल, इलाहाबाद

हमें खेद है कि इस वर्ष निम्नलिखित सभ्यों का देहान्त हुआ जिनके कुटुम्बियोंसे हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

१—प्रो० ब्रजराज, २—सर पी० सी० राय, ३—श्री शिवप्रसाद गुप्त, और ४—श्री शालिग्राम वर्मा

अक्टूबर १९४३ से सितम्बर १९४४ तक के आय-व्ययका लेखा इस प्रकार है—

आय

आजीवन सभ्योंसे	६३६)
साधारण सभ्योंसे	५०२॥=)
पुस्तकोंकी बिक्रीसे	२६६३॥।-)॥
विज्ञानके ग्राहकोंसे	८१५।।।)
व्याजसे	२।-)।।।
परिषद्की भूमिकी बिक्रीसे	७६००)
	१२५२०॥-)।
गत वर्षकी रोकड़ बाकी	१८५३)।
	१४३७३॥-)॥

वर्तमान रोकड़ बाकीका ब्यौरा

भूमिकी बिक्रीका	७६००)	८१८७॥)
गतवर्षका संरक्षक और आजीवन सभ्योंका	६५१॥)	
वर्तमान वर्षका ”	६३६)	
साधारण खर्चके लिए		२६२=)
		८४७९॥=)
टिकट बचे हुए		८≡)।
		८४८८।।।-)।

व्यय

क्लर्क	२६५)
चपरासी	१२६।=)॥
दफ़्तरका किराया	५७)
प्रूफ देखनेका पारिश्रमिक (विज्ञान)	२०)
ब्लाक बनवाई (विज्ञान)	५४५)
” (पुस्तक)	२८६।=)
छपाई (विज्ञान)	७७५॥≡)
” पुस्तक	३८१।।।)
” फुटकर	१६।-)
डाकखर्च (विज्ञान)	१४४।)।
” (पुस्तकोंके लिये)	२१८-)।
” (दफ़्तर)	४० ॥≡)॥
तांगा, इक्का, आदि	३७=)॥
स्टेशनरी, पैकिंग	४६।।।≡)।
कागज खरीदा	१०६४≡)
बिक्रीकी पुस्तकें खरीदी	३०१-)
सम्पादकके लिये पुस्तकें	२०॥)
रेलभाड़ा आदि	१७।।।)
म्यूनिसिपैलिटीको घरकी चुङ्गी	१०।=)
पुस्तकोंकी जिल्द बंधाई	३३५॥)॥
इंसीडेंटल चार्ज, चेक भुनाई	२५।=)
पेशगी लौटाया	२२।≡)
साइकिलकी मरम्मत और टैक्स आदि	२८।।।)
फुटकर	८≡)॥
मुकदमेमें खर्च	४०॥≡)।।।
दफ़्तरकी किताबोंकी जिल्द बंधाई	३॥=)
रोकड़ बाकी	८४८८।।।-)।
	१४३७३॥-)॥

विज्ञानके सम्बन्धमें आय-व्ययका ब्यौरा यह है :—

आय

ग्राहकोंसे	८१५ ॥)
सभ्योंसे (८४)	२१०)
घाटा जिसे स्थायीकोषमें जमा होने वाले रुपयेसे पूरा किया गया	८३८=)॥
	१८६३।।।=)॥

व्यय

कागज	३१८)
प्रूफ दिखाई	२०)
ब्लाक	५४५)
छपाई	७७५॥≡)
डाकखर्च	१४४।)॥
सम्पादनकी पुस्तकें	२०।)
क्लार्कका वेतन (तिहाई)	८८।-)
चपरासीका वेतन (तिहाई)	४२=)
	१८६३।।।=)॥

आगामी वर्ष १९४४-४५ के लिये परिषद्के आय व्ययका अनुमान पत्र

आय

सं० प्रां० की सरकारसे बकाया	६००)
,, वर्तमान वर्षका	६००)
विज्ञानके ग्राहकोंसे	६००)
सभ्योंसे	४००)
बकाया किराया वसूल होने पर	२००)
अपनी पुस्तकोंकी बिक्रीसे	२०००)
अन्य पुस्तकोंका कमीशन	५०)
गतवर्षकी रोकड़ बाकी	२९२=)
(संरक्षक और आजीवन सदस्योंका चंदा छोड़कर)	
	५०४२=)

व्यय

विज्ञानके लिए—

प्रतिमास २४ पृष्ठोंकी ५०० प्रतियां छपने पर—

१॥ रीम कागज	१८)
३ फरमोंकी छपाई और बँधाई	५७)
प्रूफ दिखाई	६)
ब्लाक	३०)
सम्पादनके लिये पुस्तकें, पत्रिकाएँ, आदि	१०)
सहायक सम्पादक	२०)
डाक व्यय वी० पी० आदिके लिये	१२)
इक्केका किराया	१)
स्टेशनरी	१)
क्लार्क (एक तिहाई वेतन)	८-)४
चपरासी ,,	६)
मासिक खर्च	१६६।-)४
वार्षिक	२०३२)

अन्य मासिक खर्च :—

पुस्तकोंके ब्लाक	३०)
स्टेशनरी पैकिंग आदिके लिये	४)
डाक व्यय	२२)
इक्का, तांगा, ठेला आदि	३)
रेल भाड़ा आदि	१।)
साइकिलकी मरम्मत चुङ्गी आदि	२॥)
इंसीडेंटेल चार्ज तथा चेककी भुनाई	१)
दफ़्तर और गोदामका किया	१७)
क्लार्कका वेतन दो तिहाई	१६।=)८
चपरासीका वेतन दो तिहाई	१२)
अन्य मासिक खर्च का योग	१०९॥=)८
वार्षिक खर्च १०९॥=)८ × १२ =	१३१६)

व्यय

अन्य वार्षिक खर्च

जिल्द बंधाई	५००)
डिगरी इजरा कराने में खर्च	१५)
स्थायी कोष को ऋण चुकाना	६००)
नयी पुस्तकोंके लिए कागज और छपाई का खर्च	५७९=)
	५०४२=)

'विज्ञान' के प्रधान सम्पादक डा० गोरखप्रसादजीने इस वर्ष अस्वस्थ होते हुए भी विज्ञानके सम्पादन तथा पुस्तकोंके प्रकाशनके लिए बहुत परिश्रम किया है जिसके लिए हम उन्हें हृदयसे धन्यवाद देते हैं। अन्तमें हम परिषद् के सभापति प्रो० सालिगराम भार्गव, कोषाध्यक्ष डा० रामदास तिवारी तथा आयव्यय परीक्षक डा० सत्यप्रकाशको धन्यवाद देते हैं जिनके सहयोगसे विज्ञान परिषद का काम सरलता पूर्वक चलता रहा। आशा है कि भविष्यमें भी परिषद्के लिए ऐसी सहायता मिलती रहेगी।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव
प्रधान मंत्री

कार्तिकी पूर्णिमा, ३१ अक्टूबर १९४४ ई०

मुद्रक तथा प्रकाशक - विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

****

भाग ६० | मीन, सम्वत् २००२ मार्च १९४५ | संख्या ६

****

मनोवैज्ञानिक चिकित्सा

(Psycho-Theraphy)

[डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, प्रोफेसर, मेडिकल कॉलेज, पटना]

Psychoses और Psychoneuroses या neuroses—यह चिकित्सा प्रायः मानसिक-कष्ट (psyconeurosis or neurosis) को दूर करनेके लिए प्रयोग की जाती है। आजकल मस्तिष्क विकार (Mental diseases) दो मुख्य भागोंमें बाँटा गया है--(क) मानसिक-कष्ट (neuroses) और (ख) प्रलाप या पागलपन (Psychoses)

मानसिक-कष्ट (Neuroses) में मनुष्यमें व्यक्तित्वका ज्ञान वर्तमान रहता है। इस रोगमें मानसिक अन्यमनस्क-अवस्था भिन्न-भिन्न श्रेणीकी पाई जाती है तथापि यह रोगी अपनी स्थितिके ज्ञानसे परिचित रहता है। इसके विपरीत पागलपन (psychoses) में रोगी अपनी असली स्थितिसे शून्य रहता है। इस बीमारीमें मनुष्यका आत्म-ज्ञान पूर्णतया विकृत हो जाता है और उसके प्रत्येक कार्य्यसे यह बोध होता रहता है कि इस मनुष्यका दिमाग खराब है। मानसिक-कष्टकी बीमारीमें—अतिचिन्तावस्था (anxiety State), हिस्टिरिया (Hysteria), विकृत मानसिक प्रवृत्ति (the Obsessive convulsive neuroses) और मानसिक-थकावट (Neurasthenia) का बोध होता है। मानसिक-कष्ट (neuroses) से पीड़ित व्यक्तिको इच्छा होती है कि वह अपने मर्ज़की दवा करावे किन्तु पागल (psycotics) यह समझता ही नहीं कि वह बीमार है अथवा इलाजकी आवश्यकता है। पागलपनके भी अनेक भेद हैं, जैसे उन्माद (Manic-depressive psychosis), आन्तरिक शून्यता (Involutional melancholia), इत्यादि।

चिकित्सा—मनका प्रभाव शरीर पर बहुत है। मनुष्य जब बहुत डर जाता है उस समय हृदयकी गति तीव्र हो जाती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परीक्षाके समय विद्यार्थीको शीघ्र २ पेशाबकी हाजत होती है। यह शरीर पर मस्तिष्कका प्रभावके उदाहरण है। कितनी ही बीमारियोंमें खास डाक्टर पर विश्वास या किसी खास औषधि पर विश्वास होनेसे लाभ शीघ्र पाया गया है। यह भी शरीर पर मस्तिष्क का प्रभावका उदाहरण है।

मनुष्यके दिमागमें चेतन विचारके साथ अचेतन विचारकी तरंग भी चलती रहती है। इस अचेतन तरंग का प्रभाव शरीर पर बड़ा ज़बरदस्त होता है। इस प्रकार की बीमारीमें पहले केवल दवा दी जाती थी किन्तु आधुनिक समयमें दवाके साथ-साथ मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकारके इलाजका एक साधारण उदाहरण यह है—रोगी अपने स्वास्थ्यके विषयमें डाक्टरसे निर्भयरूपसे बातें करता है। डाक्टर बीमारीके लक्षणोंको उस रोगी को अच्छी तरह समझाता है। इसी समय डाक्टर विश्वास दिलाता है कि इन लक्षणोंसे कोई गूढ़ बीमारी प्रगट नहीं होती है, और रोगी जिस कारणसे भयभीत है वह बिलकुल निर्मूल है। इस प्रकारकी बातचीत और आश्वासनसे बीमारी दूर हो जाती है। कभी कभी डाक्टरको विशेष ज़ोर देकर काम कराना पड़ता है और एक बार सफलता प्राप्त होनेसे ही वह बीमारी दूर

हो जाती है। एक वास्तविक उदाहरण यह है। एक शरीरसे बलवान युवक, जिसकी शादी हुये कुछ ही महीने हुये थे, सदा इस बातसे खिन्न रहता था कि वह अपने को दाम्पत्य कार्योंमें बहुत कमजोर पाता था। स्त्री भी बहुत सुन्दर और स्वस्थ थी। यह युवक जब डाक्टरसे मिला तब उस डाक्टरने उसे अपनाया और बातोंसे अपने विश्वासमें ले लिया। फिर पता लगा कि वह युवक पहले हस्तमैथुनकी आदतमें फँसा था। उसके साथियोंने बताया था कि इस आदतसे स्तंभन-शक्ति कमजोर हो जाती है। इसी प्रकारकी बेसरपैरकी बातें उसने पेटेन्ट दवाओंके विज्ञापनोंमें भी पढ़ी थीं। अचेतन ज्ञान शक्तिपर इस बातका बड़ा प्रभाव बुरा पड़ा था जिससे वह युवक दाम्पत्य कार्योंके समय बिलकुल डर जाता था और इसीलिये यह कमजोरी थी। डाक्टरके विश्वास दिलाने पर और बहुत आश्वासन देने पर उसका डर कुछ घटा। फिर वह अपने कामोंमें सफल हुआ और आश्वासन दिलानेके बाद भय दूर होते ही उसकी कल्पित बीमारी भी जाती रही।

मनोविश्लेषण (psycho-analysis) का प्रयोग मानसिक कष्ट (Neuroses) में बहुत लाभ पहुँचाता है। इस क्रियामें रोगीको आज़ादी दी जाती है कि वह अपना विचार पूर्णरूपसे प्रकट करे। इस प्रकार का विचार प्रगट करना शिक्षितों से ही हो सकता है और इसीलिये यह चिकित्सा शिक्षितोंके ही लिये लागू है।

जब रोगी अपना विचार प्रगट करता रहता है तब डाक्टर उसको ग़ौरसे सुनता है। बीच बीचमें डाक्टर रोगीको विश्वास दिलाता जाता है जिसमें रोगी स्वतंत्र भावसे अपने विचारोंको प्रगट करता जाय। इन बातोंमें डाक्टरको विशेष ध्यान इस बात पर देना पड़ता है कि रोगी अपने घटना चक्रकी किसी बातको कहीं छिपाना चाहता है। यह मनोविश्लेषण क्रिया कभी कभी बहुत समय लेती है। महीनों इसमें समय लगाना पड़ता है।

आत्म-प्रभाव (Auto-suggestion)—प्रभावित होने वाला व्यक्ति, मनोवैज्ञानिक-चिकित्सासे बहुत लाभ उठाता है। प्रभावितता (suggestibility) होनेसे तात्पर्य यह है कि व्यक्ति किसी बातको विश्वाससे और बिना किसी तर्क-वितर्कके मान लेता है। इससे साफ पता चलता है कि वह उस मानसिक अवस्थामें जिसमें न्याय और तर्कका आगमन नहीं हुआ है, विशेष प्रभावित होगा। ऐसी अवस्था कम उमरवाले और दिमागसे कमजोर व्यक्तियोंमें पाई जाती है। प्रभावित होने वाला व्यक्ति कभी-कभी 'आत्म-प्रभाव चिकित्सा' से खूब लाभ उठाता है। इस चिकित्सामें रोगीको बग़ैर किसी तर्कके कोई ख़ास बताई बातें माननी और करनी पड़ती हैं और उसे कुछ भी अवकाश नहीं दिया जाता है कि वह स्वयं समझ जाय कि यह बताया मंत्र बिलकुल गलत है। इसके बाद उस बताये मंत्रके विपरीत मंत्र बताया और कराया जाता है। समझ अपने-आप उत्पन्न होने पर मस्तिष्कमें प्रौढ़ता आजाती है और उसका रोग दूर हो जाता है। कये (Coue) साहबकी आत्म-प्रभाव चिकित्साका ब्यौरा यह है- व्यक्तिको आदेश दिया जाता है कि वह किसी एकान्त स्थान में एक हाथको दूसरे हाथसे जोरसे पकड़कर बैठ जाय और बिना कुछ भी रुके कहता रहे कि 'मैं अपने हाथोंको नहीं छुड़ा सकता'। कुछ ही देर बाद वह व्यक्ति कहना चाहेगा कि 'यह बिलकुल गलत है'। किन्तु यह अवस्था जब तक न आवे तब तब वह व्यक्ति एक शक्तिहीन अवस्था अनुभव करता है। यह अवस्था बिलकुल दूर तभी होगी जब वह २०-३० बार यह कहे कि 'अब मैं अपने हाथोंको छुटा सकता हूँ।'

पारिभाषिक शब्दावली (२)*

(डा० ब्रजमोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

पारिभाषिक शब्द जहां तक हो सके सरल और छोटे होने चाहिये। गणितकी पुरानी पुस्तकोंमें theorem को प्रमेयोपपाद्य और problem को निर्मे-

*पहिला लेख विज्ञान भाग ६० संख्या ४, जनवरी १९४५, में निकल चुका है।

योपपाद्य कहते थे। यह नाम इतने बड़े थे कि किसी समयमें भी इनका चालू होना कठिन था। इन्हीं शब्दोंके संक्षिप्त रूप 'प्रमेय' और 'निर्मेय' आजकल गणितकी समस्त पुस्तकोंमें प्रचलित हो गये हैं। prism और pyramid के लिये अभी तक गणितकी पुस्तकोंमें 'समपार्श्व' और 'त्रिपार्श्व'—शब्दोंका उपयोग हो रहा है। इन नामोंका उच्चारण कठिन है। यह आवश्यक है कि इनके नाम बदले जायं। यदि हम 'समपार्श्व' के स्थान पर 'समकोर' कहें तो क्या हर्ज है? 'समकोर' का तात्पर्य एक ऐसे ठोससे है जिसके 'कोर' (Edges) बराबर हों। अतः 'समकोर' से prism का ही मतलब निकलेगा। pyramid के लिये अरबी नाम 'हरम' है। जब इतना सरल और छोटा नाम मिल रहा है तो इसे क्यों न अपना लिया जाय? Approximation का पुराना पर्याय 'सन्निकटीकरण' बहुत कर्ण-कटु लगता है। मेरे विचारमें इस शब्दके लिये 'उपनयन' कहें तो बहुत उपयुक्त होगा।

कुछ सज्जनोंका मत है कि हमें समस्त अँग्रेजी शब्दों का यथा तथा शब्दानुवाद कर देना चाहिये, शब्दोंके अर्थ पर बिलकुल ध्यान नहीं देना चाहिये। ऐसी नीति तनिक भी युक्ति-संगत न होगी। Calculus का वास्तविक अर्थ कंकड़ है। तो क्या आज हम Differential Calculus को 'चलन कलन' न कह कर 'आन्तरिक कंकड़' कहें? ऑडिटर (Auditor) का शाब्दिक अर्थ है 'सुनने वाला'। अनुमानसे कह सकते हैं कि आरम्भमें ऑडिटर किसी संस्थाके भिन्न-भिन्न कर्मचारियोंसे एक दूसरेकी शिकायतें सुना करता होगा। परन्तु आज इसका काम केवल आय-व्यय परीक्षण ही रह गया है। इसीलिये भिन्न भिन्न संस्थाओंमें ऑडिटर का पर्याय 'निरीक्षक' या 'आय-व्यय परीक्षक' रक्खा जाता है। यदि हम 'इसको' 'सुनक' कहना चाहें तो कहाँ तक उचित होगा? स्पष्ट है कि पारिभाषिक शब्द बनानेमें अर्थ पर ही विशेष रूपसे ध्यान देना होगा। (वर्चुअल) (Virtual) का शाब्दिक अर्थ है 'वास्तविक'। अतः हम गणितमें वर्चुअल वर्क (Virtual Work) का शाब्दिक अनुवाद 'वास्तविक कार्य' कर सकते हैं। परन्तु आधुनिक गणितमें इसका अर्थ 'वर्चुअल' का बिलकुल उल्टा है। 'वर्चुअल' वर्क उस 'कार्य' को कहते हैं जो देखनेमें वास्तविक-सा प्रतीत हो परन्तु यथार्थमें केवल काल्पनिक हो। अतः 'वर्चुअल वर्क' को 'वास्तविक कार्य' के बदले 'आभास कार्य' कहना होगा।

इसके विपरीत कुछ लोग दूसरे ही छोर पर पहुँच जाते हैं। वह चाहते हैं कि पर्यायवाची शब्दमें अर्थका इतना समावेश हो कि शब्दकी सारी परिभाषा उससे स्पष्ट हो जाय। parallelopiped का पुराना नाम है 'समानान्तर अष्टफलक'। इस नामसे ठोसकी परिभाषा तो बिलकुल स्पष्ट हो गई—'ऐसा ठोस जिसमें आठ फलक (faces) हों और सम्मुख फलक समानान्तर हों।' परन्तु क्या वास्तवमें इस गाढ़ी भरे नाम—समानान्तर अष्टफलक—के बिना काम नहीं चल सकता? इस सम्बन्धमें अपने तीन चार प्रस्तावित नाम मैं यहाँ देता हूँ :—

अँग्रेजी नाम	पुराना नाम	मेरा प्रस्तावित नाम
parallelogram	समानान्तर चतुर्भुज	समानाभुज
Rhombus	सम चतुर्भुज	समभुज
Trapezium	समलम्ब चतुर्भुज	समलम्भुज
parallelopiped	समानान्तर अष्टफलक	समानाफलक

दो वृत्तोंकी 'रैडिकल ऐक्सिस' (Radical Axis) का यह गुण है कि यदि उसके किसी बिन्दुसे दोनों वृत्तोंको स्पर्शी खींचे जायं तो वह आपसमें बराबर होंगे। इसीलिये नागरी प्रचारिणी सभाकी शब्दावलीमें इसका पर्याय 'समस्पर्शाक्ष' दिया है। इस नाममें 'रैडिकल ऐक्सिस' की सारी परिभाषा निहित है परन्तु इतने बड़े शब्द तो तभी बनाये जायं जब छोटे शब्द बन न सकें। हम अपनी शब्दावली इस प्रकार क्यों न बनायें?

Root	मूल
Radical Sign	मौल चिन्ह
Radical Axis	मौलाक्ष

Radical Centres मौल केन्द्र

पाठक कहेंगे कि यहाँ शब्दानुवाद क्यों किया, अर्थानुवाद क्यों नहीं किया? बात यह है कि शब्दावलीका प्रधान नियम यह होना चाहिये कि शब्द सरल और छोटे बनें। शेष सब सिद्धान्त इस नियम पर बलिदान हो सकते हैं। इस नियमका उल्लंघन तभी करना चाहिये जब अर्थका अनर्थ होता हो या किसी अन्य कारणसे 'सरल और छोटा' शब्द अनुपयुक्त प्रतीत होता हो। ऑडिटरको 'सुनक' कहनेमें अर्थका अनर्थ होता है, रैडिकल ऐक्सिसको 'मौलाक्ष' कहनेमें अर्थका अनर्थ नहीं होता।

मेरे मित्र डा० राजनाथ* ने मुझे भूगर्भविद्याके दो बहुत ही सुन्दर शब्द बताये हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई नदी अपने पथमें एक अर्ध-वृत्त बनाती हुई चलती है। कुछ वर्ष पश्चात् वह अर्ध-वृत्ताकार पथ को छोड़कर सरल रेखामें चलने लगती है। इस प्रकार छोड़े हुये अर्ध-वृत्तको भूगर्भकी अंग्रेज़ी शब्दावलीमें 'ऑक्स-बो लाइन' (Ox-bow line) कहते हैं। ग्रामीणोंमें इसका नाम 'छाड़न' है। दूसरा शब्द है 'streamlet'। पहाड़ी लोग इसको 'डोरा' कहते हैं। 'several streamlets make a stream' का अनुवाद होगा—'कई डोरोंके मिलनेसे एक नाला बनता है।' 'छाड़न' और 'डोरा'—कितने सरल, छोटे और उपयुक्त शब्द है। भूगर्भकी हिन्दी शब्दावलीमें क्यों न इन दोनों शब्दोंको ज्योंका त्यों अपना लिया जाय?

अंग्रेजीमें बहुतसे पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो संज्ञा और विशेषण दोनोंका कार्य करते हैं। ऐसे शब्दोंके लिये हिन्दीमें दो पृथक-पृथक पर्याय बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं। एक ही शब्दसे काम चल सकता है। दो एक उदाहरणों पर विचार कर लीजिये:

(१) Variable (विशेषण) = चल:—

X is a *variable* quantity

= 'य' एक चल राशि है।

Variable (संज्ञा) = चल:

How many *variables* are there in the equation?

= समीकरणमें कितने चल हैं?

(२) solid (विशेषण) = ठोस:

A solid sphere floats in water

= एक ठोस गोला पानीमें तैरता है।

solid (संज्ञा) = ठोस:

solids of Revolution are of three kinds

= परिक्रम ठोस तीन प्रकारके होते हैं।

भाषामें यथाशक्ति सरलता लानेका उद्योग करना चाहिये। कुछ लेखक संज्ञा और विशेषणमें सर्वथा अंतर करना चाहते हैं। उपरिलिखित जिन दोनों वाक्योंमें शब्द संज्ञाके रूपमें आये हैं, उनके अनुवाद वे इस प्रकार करेंगे:

समीकरणमें कितनी चलराशियां हैं?

परिक्रम ठोसपिण्ड तीन प्रकारके होते हैं।

परन्तु यह अनुवाद Variable Quantity और solid body का हुआ, variable और solid का नहीं हुआ। वास्तविक अनुवाद करनेके लिये 'चल' और 'चल राशि' के अतिरिक्त एक तीसरा शब्द variable (संज्ञा) के लिये बनाना पड़ेगा। इसी प्रकार 'ठोस' और 'ठोस पिण्ड' के अतिरिक्त एक तीसरा शब्द solid (संज्ञा) के लिये बनाना पड़ेगा। परन्तु इतनी छानबीनकी क्या आवश्यकता है? अंग्रेजीमें कम से कम पारिभाषिक भाषामें एक ही शब्द अबाध्य रूप से संज्ञा और विशेषण दोनोंका काम करता है। उसी प्रकार हम भी हिन्दीमें, कमसे कम पारिभाषिक विषयों की भाषामें, दोनोंका काम एक ही शब्दसे क्यों न निकाल

[शेष पृष्ठ १३७ पर]

*काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके भूगर्भ (Geology) विभागके अध्यक्ष।

सरल विज्ञान सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम सरल विज्ञान सागरका एक और अंश यहाँ देते हैं।

यह ग्रन्थ ज्योतिषके विद्यार्थियों, इतिहासज्ञों, पुरातत्व के अन्वेषकों और अदालतोंके लिये कितना उपयोगी है इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके विद्वान् लेखकका देहावसान अभी हाल हीमें हुआ है।

लाला छोटेलाल

आपका जन्म कब और कहाँ हुआ था यह नहीं ज्ञात हो सका। आप एक सुयोग्य इञ्जीनियर थे। जहाँ तक याद पड़ता है दो तीन वर्ष हुए जब आपका देहावसान हुआ। ज्योतिषवेदाङ्ग पर आपने अंग्रेजीमें एक सुन्दर भाष्य लिखा है जो १९०६-७ के हिन्दुस्तान रिविउमें प्रकाशित हुआ था। इसकी चर्चा वेदाङ्गज्योतिषके संबंध में आ चुका है। उससे प्रकट होता है कि आपने भारतीय ज्योतिषका अच्छा अध्ययन किया था और इसके साथ यूनान, मिश्र, बेबिलन आदिके प्राचीन ज्योतिषका भी तुलनात्मक अध्ययन किया था। आपने वेदाङ्गज्योतिषके कई श्लोकोंका अर्थ बड़ी विद्वत्ता पूर्वक किया है और अपना उपनाम 'बार्हस्पत्य' रखा था।

दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

आपका जन्म संवत १९२० (शक १७८५) में अयोध्यासे ८ कोस पश्छिम 'पण्डित पुरी' गाँवमें हुआ था। आप जयपुरके संस्कृत पाठशालाके अध्यक्ष बहुत दिन तक रहे और अपनी विद्वत्ताके लिए महामहोपाध्यायकी पदवी प्राप्त की।

भास्कराचार्यकी लीलावती और बीजगणित पर आपने संस्कृत और हिन्दीमें उपपत्ति सहित टीका और सिद्धान्तशिरोमणिका प्राचीन और नवीन विचारोंसे पूर्ण उपपत्तीन्दुशेखर नामक भाष्य लिखा है। चापीय त्रिकोणमिति, क्षेत्रमिति, सूर्यसिद्धान्तसमीक्षा, अधिमास परीक्षा, पञ्चाङ्ग तत्व नामक पुस्तक और पुस्तिकाएँ भी आपने लिखी हैं। जैमिनिपद्यामृत नामक जैमिनि सूत्रका पद्यानुवाद सरस छन्दोंमें उदाहरण सहित किया है। ज्योतिषके सिवा दर्शन और साहित्यमें भी आपने ग्रन्थ लिखे हैं। आपका देहावसान सं० १९९४ में हुआ।

दीनानाथ शास्त्री चुलैट

आप एक अद्वितीय ज्योतिषी हैं, और वेदोंके मर्मज्ञ भी। आपने वेदोंके अध्ययनसे यह निस्कर्ष निकाला है कि बहुत से मन्त्रोंमें गणित और ज्योतिष संबंधी बातें हैं। आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें वेदकाल निर्णय और प्रभाकर सिद्धान्त मुख्य हैं।

वेदकाल निर्णय—इस ग्रन्थमें चुलैटजीने यह सिद्ध किया है कि वेदोंका समय केवल छः या साढ़े छः हजार वर्ष ही पुराना नहीं है जैसा लोकमान्य तिलकने अपने 'ओरायन' ग्रन्थमें सिद्ध किया है वरन् इनके कुछ मन्त्रोंसे सूचित होता है कि यह लाखों वर्ष पुराने हैं। लोकमान्य तिलकजीने तो भगवद्गीताके 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम' से केवल यही सिद्ध किया और बड़ी कठिनतासे कि मार्गशीर्ष पहला मास इस लिए समझा जाता था कि ६ हजार वर्ष पहले इसी नामके नक्षत्रमें अर्थात् मृगशिरा नक्षत्रमें वसंत संपात होता था। परन्तु चुलैटजीने इसके प्रतिकूल यह सिद्ध किया है कि मृगशिरा नक्षत्रमें नहीं वरन् मार्गशीर्ष मासमें ही वसंत का आरंभ होता था अर्थात उस समय अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्रमे वसंत संपात था इस प्रकार वह समय था १८००० वर्ष पुराना।

इसी प्रकार कात्यायन श्रौतसूत्रके भाष्यकार कर्काचार्य के उद्धरणोंसे आप सिद्ध करते हैं कि उनके समयमें वसंत संपात चित्रा और स्वाती नक्षत्रोंके बीचमें था इसलिए कर्काचार्य का समय चौदह, पन्द्रह हजार वर्ष प्राचीन है। इस पुस्तकमें आप भूगर्भविज्ञानके अनेक चित्र देकर यह सिद्ध करते हैं कि संस्कृत साहित्यमें वर्णित जल प्रलयों और भूगर्भ विज्ञानके विविध कालों (epock) में कितना सामञ्जस्य है। पुस्तक अद्भुत है और हिन्दी भाषामें लिखी गयी है। भाषा सरल और शुद्ध नहीं है इसलिए पढ़ने वालोंको कुछ कठिनाई पड़ती है।

प्रभाकरसिद्धान्त—इसमें ग्रहलाघवके मूलांकोंमें अर्वाचीन ज्योतिषके आधार पर बीजसंस्कार देकर ग्रहों की शुद्ध गणना करनेकी रीति बहुत सुगम कर दी गयी है। इसीके आधार पर शास्त्री जी पहले प्रभाकर पञ्चाङ्ग बनाते थे जिसमें ऐसा उपाय किया गया था कि वह सारे भारतवर्षमें काम दे सके। इसकी एक प्रति लगभग २५ वर्ष हुए मुझे भी देखनेको मिली थी जिसमें लोकमान्य तिलक आदिके भी प्रशंसापत्र थे। इसीके आधारपर बनाया हुआ 'भारतविजय पञ्चाङ्ग इन्दौरके ज्योतिष

सम्मेलनके बाद जिसका आयोजन आपने ही इन्दौर सरकार की सहायतासे लगभग ६ वर्ष हुए किया था संवत १९९५ में प्रकाशित किया था। इस पञ्चांगमें भी इतनी सामग्री भर दी गयी है कि यह एक उपयोगी ग्रन्थ सा हो गया है क्योंकि ग्रन्थाकार छपा भी है। इसे मैंने अपने पास बड़ी सावधानीसे रखा है।

इन्दौरके ज्यौतिष सम्मेलनकी रिपोर्ट भी एक वृहदाकार ग्रन्थ है जिसमें दृग्गणनाके पक्ष और विपक्ष दोनों ओर की बातें रखकर सिद्ध किया है कि दृग्गणना ही उचित है।

शास्त्रीजीके नवीन निष्कर्षों पर वेदके विद्वानोंको ध्यानसे विचार करनेकी आवश्यकता है। परन्तु जान पड़ता है कि इस पर अभी तक उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना देना चाहिए।

गोविन्द सदाशिव आप्टे

आपका जन्म शक १७९२ (१८७० ई०) में महाराष्ट्र प्रान्तमें हुआ था। आप गणितके प्रोफेसर रहे हैं और रिटायर होने पर उज्जैनकी वेधशालाके प्रधान बहुत दिन तक रहे अभी तीन चार वर्ष हुए जब आपका देहावसान हुआ। आपने शक १८५१ (१९२९ ई०) में सर्वानन्द करण नामक ज्योतिष ग्रन्थकी रचना प्रसिद्ध ग्रहलाघवके ढंग पर की है। इसके पूर्व खंडमें कुल ११ अधिकार हैं जिनमें सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहोंकी गणना करनेकी सरल रीतियां बतलायी गयी है। चंद्रमामें केवल पांच संस्कार करनेको कहा गया है। इस ग्रन्थकी विशेषता यह है कि इससे ग्रहोंके जो भोगांश आते हैं वह सायन होते हैं। सायनसे निरयण बनानेके लिए अयनांश घटा देना पड़ता है। जो अपने अपने मतके अनुसार ग्रहण किया जा सकता है। इसलिए यह पुस्तक प्रत्येक पक्षके लिए उपयोगी हो सकती है। इस संबंधमें आप केतकरके चित्रापक्षके प्रबल विरोधी हैं। आपने एक अंग्रेजी पुस्तिका में कई प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि भारतीय राशिचक्रका आदि स्थान वह नहीं है जहांसे चित्रा तारा ठीक १८० अंश पर है वरन् रेवती नक्षत्रका ज़ीटा पिसियम तारा है जिसके अनुसार अयनांश लगभग ४ अंश कम ठहरता है। आपके इस मतके समर्थक महाराष्ट्रमें कई विद्वान् हैं। इस पक्षके अनुसार वहां कई पंचांग भी बनते हैं। चित्रा और रेवती पक्षके पंचांगोंमें मलमासके संबंधमें बहुत भिन्नता रहती है जिसके कारण पर्वों और व्यवहारोंके निश्चय करने में वहां बहुत गड़बड़ रहती है।

इस खंडमें एक उपकरणाधिकार है जिसमें चन्द्रमाकी सूक्ष्मगति निकालनेकी भी रीति बतलायी गयी है। इससे चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणका समय सूक्ष्मतापूर्वक बतलाया जा सकता है।

सूर्यातिक्रमणाधिकारमें यह बतलाया गया है कि बुध और शुक्र सूर्यके बिम्बका वेध कब करते हैं। इस खंड के परिशिष्टमें आपने दस दस कलाओंके भुजज्या, कटिज्या और स्पर्शज्याकी सारणी दी है जिसमें त्रिज्या १०००० मानी गयी है।

उत्तर खंडमें आपने पहले दशमलव भिन्नके गुणा भाग की रीति बतलाकर नवीन रीतिसे ग्रहगणना करनेकी विधि लिखी है जिसमें त्रिकोणमिति, और गोलीय त्रिकोणमितिके अनुसार गणना करनेकी रीति बतलायी गयी है क्योंकि यह उन्हींको प्रिय हो सकता है जो उच्च गणितका ज्ञान रखते हैं। इसलिए इस खंड का नाम प्रौढ़ रंजन रखा है।

इसमें सौरार्यतिथि साधन, सूक्ष्म नक्षत्रानयन, तिथि तारिखानयन और उपपत्तिकथन नामक अध्याय बहुत महत्वके हैं।

यह ग्रन्थ उज्जैनमें लिखा गया था जिसकी वेधशाला का आपने फिर से उद्धार किया है।

रघुबीरदत्त

आपका जन्म शहर मिरजापुरसे कुछ दूर अर्जुनपुर गांवमें हुआ था। मिरजापुर निवासी पं० रामप्रताप ज्योतिषीसे ज्ञात हुआ है कि 'सिद्धखेटिका छपनेके १० वर्ष बाद ६० वर्षकी अवस्थामें आपकी मृत्यु हुई थी। इसलिए आपका जन्म शक १७५१ के लगभग हुआ होगा।

सिद्धखेटिका—यह मकरंदसारिणीके आधार पर बनायी गयी है जिसमें तिथि, नक्षत्र, योग तथा ग्रहों का दैनिक चालन दिया गया है। इससे पंचाग बनानेमें बड़ी सुविधा होती है। इसके सिवा आपने लग्न सारिणी गृह पिंड सारणी और आयुर्बलकी विशुद्ध सारणी नामक छोटी

छोटी पुस्तिकाएं लिखी थीं जिनका उपयोग जन्मकुण्डली बनाने में किया जाता है।

उदयनारायण सिंह

आपके जन्म और मृत्युके समयका कुछ पता नहीं है। आपके आर्यभटीयके हिन्दी अनुवादसे जिसमें परमेश्वराचार्यकी संस्कृत टीका सम्मिलित है प्रकट होता है कि आप बड़े उत्साही क्षत्रिय कुमार बिहार प्रान्तके मुज़फ्फर पुर जिलेके मधुरापुरके रहने वाले थे, जहांके शास्त्रप्रकाश कार्यालयसे आपने गौतमीय न्यायशास्त्र, सामवेदीय गोभिल गृह्यसूत्र, सूर्यसिद्धान्त, पिङ्गलसूत्रका सटीक अनुवाद प्रकाशित किया था और सिद्धान्तशिरोमणि, सचित्र भारतवर्षीय प्राचीन भूगोल तथा सर्वदर्शनसंग्रहको प्रकाशित करनेवाले थे। आर्यभटीय हिन्दी अनुवाद सहित संवत् १९६३ (ई० १९०६) में छपा था। इसलिए सूर्यसिद्धान्त का अनुवाद इससे पहले हुआ होगा। बहुत दिन हुए पंडित रामजीलाल शर्माकी कृपासे इसकी एक प्रति मुझे थोड़े दिनके लिए मिली थी। इसमें एक बड़ी भूमिकाके बाद सूर्यसिद्धान्तका हिन्दी अनुवाद किया गया है। चित्र नहीं हैं, इसलिए विषयके समझनेमें कठिनाई होती है।

आर्यभटीयमें भी एक बड़ी भूमिका है जिसमें समुद्र-मंथन, श्रीकृष्ण लीला, रासलीला, वस्त्रहरण, आदि पौराणिक कथाओंको आकाशके राशिचक्र, नक्षत्र-चक्र, सूर्य, चन्द्रमा आदिका रूपक माना गया है। आर्यभटीयके श्लोकोंके साथ परमेश्वरकी भटदीपिका टीका देकर केवल इसीका हिन्दी अनुवाद किया गया है। जिससे विषयका ज्ञान स्पष्ट नहीं होता। चित्र भी कहीं नहीं हैं इसलिए इस पुस्तकसे विषयका बोध अच्छी तरह नहीं होता।

माधव पुरोहित

आप जयपुरके निवासी थे। आपने सूर्यसिद्धान्तकी सौरदीपिका नामक संस्कृत टीका तथा भाषा भाष्य टीका लिखी है जो नवलकिशोर प्रेससे ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजा प्रसाद द्विवेदीजी से संपादित होकर १९०४ ई० में प्रकाशित हुई थी। सौरदीपिकामें श्लोकोंके अन्वयके अनुसार संस्कृतमें टीका लिखी है और उसीका अनुवाद हिन्दीमें किया है, उपपत्ति भी लिखी है। पुस्तकके अन्तमें शुभ संवत १९६० सन् १९०३ ई० लिखा है जिससे सिद्ध होता है कि भाषाभाष्य इसी वर्ष समाप्त किया गया था। आपके सूर्यसिद्धान्तमें ऐसे श्लोक भी दिये गये हैं जो अन्य प्रामाणिक ग्रन्थोंमें नहीं मिलते। पता नहीं यह कहाँसे लिये गये थे और क्यों लिये गये थे।

स्वामी विज्ञानानन्द

आपका नाम हरिप्रसन्न चट्टोपाध्याय था। डिस्ट्रिक्ट इंजीनियरके पदसे रिटायर होकर आप स्वामी रामकृष्ण परमहंसके बेलूर मठमें रहने लगे थे। सन्यास लेने पर आपका नाम विज्ञानानन्द होगया। प्रयागके रामकृष्ण मिशनके आश्रम पर बहुत दिन तक रहकर आपने प्रयाग निवासियोंकी अच्छी सेवा की। थोड़े दिन हुये आपका देहावसान हो गया। आपने सूर्यसिद्धान्त पर बंगलामें एक अच्छी टीका लिखी है जिसमें पहले श्लोकोंका अनुवाद दिया गया है फिर उपपत्ति, उदाहरण और चित्र देकर समझाया गया है। अन्तमें वेदाङ्ग ज्योतिषका मूल और पाठान्तर देकर एक बड़े अध्यायमें भारतीय ज्योतिषका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इसके बाद पाश्चात्य ज्योतिष और ग्रीक ज्योतिष (यवन ज्योतिष) के भी संक्षिप्त विवरण दिये गये हैं।

इस पुस्तकके अध्ययनसे सूर्यसिद्धान्तका अच्छा ज्ञान हो सकता है। यह टीका शक १८३१ (ई० १९०९) में कलकत्ते में छपी थी।

इन्द्रनारायण द्विवेदी

आप प्रयागके बुद्धिपुरी (सराय आकिल) के रहने वाले थे और प्रयागमें ही रहकर ज्योतिषका कार्य करते थे। हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके आप उत्साही सदस्य थे। आपने सूर्यसिद्धान्तका हिन्दी अनुवाद टिप्पणी सहित संवत १९७४ वि०में लिखा था और साहित्य-सम्मेलन ने उसे संवत १९७९में प्रकाशित किया था। इसकी भूमिका अच्छी है। अनुवाद भी साधारणतः ठीक है परन्तु चित्रोंके अभावसे यह पुस्तक जल्दी समझमें नहीं आती। आपका विश्वास था कि सूर्यसिद्धान्तका बिना बीज संस्कार किये ही उपयोग करना चाहिये और उसीसे व्रतोपवासादिके लिये तिथिका निश्चय करना चाहिए।

आपने सुमतिप्रकाशिका नामक एक पुस्तक और लिखी है जिसमें सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि पृथ्वी नहीं

चलती है सूर्य ही चलता है। यह पुस्तक संवत् १९६५में प्रयागके राघवेन्द्र यन्त्रालयसे प्रकाशित हुई थी।

सुमतिप्रकाशिकाके विज्ञापनसे पता चलता है कि आपने सूर्यसिद्धान्तके अनुसार पंचांग बनानेके लिए, सरिमद्धान्तप्रकाशिका और पंचांगप्रकाशिका नामक पुस्तकें और लिखी थीं जो शायद प्रकाशित नहीं हुई हैं।

बलदेवप्रसाद मिश्र

आप मुरादाबादके रहने वाले थे और संवत १९५२ में सूर्यसिद्धान्तका हिन्दी अनुवाद बम्बईके खेमराज श्री कृष्णदासके द्वारा प्रकाशित किया था। हिन्दी अनुवादमें कोई विशेषता नहीं है और कलकत्तेके विमलाप्रसाद सिद्धान्तवागीशके बंगानुवादका अक्षर-अक्षर अनुवाद है। उपपत्तिका कहीं नाम नहीं है। इस अनुवादके साथ रंगनाथ की संस्कृत गूढार्थप्रकाशिका टीका भी दे दी गई है इस लिए इस संस्करणका कुछ मूल्य हो गया है अन्यथा इससे किसीका कोई काम नहीं निकल सकता।

हरिशंकरप्रसाद लाल

आप मिरजापुर शहरसे लगे हुए बथुआ गाँवके निवासी कानूनगो थे। गणित और फलित दोनों विषयोंके अच्छे ज्योतिषी थे। मिरजापुर निवासी पं० रामप्रताप ज्योतिषी लिखते हैं कि आपने मकरंदकी उपपत्तिका संशोधन कर एक मकरंदसारिणी सोदाहरण तैयार की थी जिसमें एक ओर सूर्यसिद्धान्त और दूसरी ओर मकरन्दके अंकोंकी तुलनाकी थी। यह बड़े परिश्रमसे ६ भागोंमें लिखी गई है और बम्बई, जबलपुर, बनारस, कानपुरके प्रकाशकोंको छपानेके लिए भेजी गयी थी परन्तु विशेष व्ययके कारण किसीने प्रकाशित करना स्वीकार नहीं किया।

दूसरी पुस्तकका नाम 'जन्म दिवाकर' है जो खेमराज श्री कृष्णदासके यहाँ डेढ़ वर्षसे पड़ी हुई है। इसके लिए शायद मुकदमेबाजी भी होने वाली है।

लगभग दस वर्ष हुए जब आपकी मृत्यु हो गयी।

ओंकारलाल शर्मा

आपका जन्म संवत् १९०६ वि० (१८४९ ई०) में रतलाममें हुआ था। गणित और फलित दोनों प्रकारके ज्योतिषमें बड़े निपुण थे और राजपूताना तथा गुजरातके प्रायः सभी राज्योंमें सम्मानित हुए थे। आपके लिखे ग्रन्थ हैं, सिद्धान्तप्रकाश भाग १ और सिद्धान्तप्रकाश भाग २। पहली पुस्तक अहमदाबादमें संवत् १९४० के लगभग लिखी गयी थी। आप लिखते हैं कि इसको पढ़कर "सामान्य मनुष्य भी ज्योतिषका अच्छा गणितज्ञ हो सकता है।" दुःख है कि यह पुस्तक मेरे देखनेमें नहीं आयी। आप ग्रहों या तारों का बेध करनेमें भी बड़े निपुण थे, ऐसा आपके लिखने और प्रमाण पत्रोंसे जान पड़ता है।

सिद्धान्तप्रकाश भाग २ यथार्थमें बड़े परिश्रमसे लिखा गया है। संस्कृतमें श्लोक देकर हिन्दीमें व्याख्या और उदाहरण दिये गये हैं। भाषा शुद्ध नहीं है। इसमें मध्यम ग्रहाध्याय, स्पष्ट ग्रहाध्याय, त्रिप्रश्नाध्याय, चन्द्रग्रहणाध्याय, सूर्यग्रहणाध्याय छायाधिकाराध्याय, उदयास्ताधिकाराध्याय, शृङ्गोन्नत्यधिकाराध्याय, युत्यधिकाराध्याय, नक्षत्रयुत्यधिकाराध्याय, भूगोलाध्याय, यन्त्राध्याय पाताध्याय, फलिताध्याय और प्रश्नाध्याय, नामक अध्याय हैं। इस पुस्तकमें सबसे बड़ा गुण यह है कि सिद्धान्तशिरोमणि और सूर्यसिद्धान्तके अनुसार मध्यमग्रह गणना करनेकी सारणियाँ दी गयी हैं जिनसे ग्रहोंकी वार्षिक, दैनिक और घड़ी, पल तककी गति सहज ही जानी जा सकती है। जहां तक हो सका है प्रत्येक अध्यायमें सारणियां दी गयी हैं। क्षेपक संवत् १८७८ के मध्यम मेष संक्रान्ति कालका दिया गया है और इसीकालको ग्रन्थारंभकाल कहा गया है जो भ्रमोत्पादक है क्योंकि ग्रन्थकर्ताका जन्म हुआ १९०६ संवत्में, इस लिए इससे पहले वह ग्रन्थ कैसे लिख सकता है।

इस ग्रन्थकी भाषाका संशोधन और सम्पादन ठीक ढंगसे किया गया होता तो इसमें सन्देह नहीं कि यह ज्योतिष ग्रन्थोंमें विशेष स्थान पा जाता। इस दशामें इसका विशेष प्रचार नहीं हुआ। पिछले दो अध्याय फलित ज्योतिषके हैं। इस ग्रन्थमें ग्रन्थकर्ताकी संवत् १९६८ तककी जीवनी दी गयी है। इसके बाद यह कितने दिन तक और जीते रहे इसका पता नहीं।

यह ग्रन्थ सं० १९६९ वि० में विट्ठलनाथ प्रेस कोटामें मुद्रित हुआ था।

उपसंहार

भारतीय ज्योतिष और ज्योतिषियोंके संबंधमें यहां तक जो कुछ लिखा गया है उसकी बहुत-सी सामग्री म० म० सुधाकर द्विवेदीजीकी गणक तरंगिणी और आचार्य शंकर बालकृष्ण दीक्षितके मराठी भारतीय ज्योतिषशास्त्रसे ली गयी है इस लिए लेखक उनका बहुत आभारी है। इनमें आये हुए कुछ ज्योतिषियों और उनके ग्रन्थोंकी चर्चा विस्तार भयसे छोड़ दी गयी थी जो नीचेकी तालिकामें दी जाती है—

ग्रन्थकर्ता	ग्रन्थ	रचनाकाल शक	विशेष
बलभद्र	?	८८८ ?	कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। भटोत्पल और पृथूदक स्वामीकी टीकाओंमें कुछ श्लोकोंके अवतरण हैं।
वरुण	खण्डखाद्यककी टीका	९६२ ?	इस टीकामें ९६२ शकके उदाहरण हैं।
दशबल राजा	करणकमल मार्तण्ड	९८०	राजमृगाङ्कोक्त बीजसंस्कृत ब्रह्म सिद्धान्तके अनुसार करण ग्रन्थ।
?	करणोत्तम	१०३८	इसकी चर्चा महादेव कृत श्रीपतिरत्नमालामें कई बार आयी है और ताजक सारमें भी एक श्लोक है।
सोमेश्वर (भूलोकमल्ल)	अभिलषितार्थ चिंतामणि मानसोल्लास	१०५१	अनेक विषयोंका संग्रह जिसमें ज्योतिषका भी विषय है और १०५१ शकके क्षेपक हैं।
माधव	सिद्धान्तचूड़ामणि		भास्कराचार्यके सिद्धान्तशिरोमणिमें उल्लेख है परन्तु पुस्तकका अब पता नहीं है।
ब्रह्मा	बीजगणित		भास्कराचार्यके बीजगणितमें उल्लेख है परन्तु पुस्तकका पता नहीं है।
विष्णुदैवज्ञ	बीजगणित		
अनन्तदैवज्ञ	ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तके छंदश्चित्युत्तर और बृहज्जातक पर टीकाएं		शक ११४४ के एक शिलालेखसे ज्ञात
भोजराज ?	आदित्यप्रतापसिद्धान्त		श्रीपतिकी रत्नमालाकी महादेवी टीका (शक ११८५) में इसके कुछ वाक्योंका उल्लेख है और आफ्रेच सूचीमें इसके कर्ता भोजराज कहे गये हैं।
चक्रेश्वर	ग्रहसिद्धि ?		
नार्मद	सूर्यसिद्धान्तकी टीका या इसके आधारपर कोई ग्रन्थ जिसका पता नहीं है	१३०० के लगभग	यह पद्मनाभके पिता थे।
सूर्यदेव यज्व	आर्यभटीयप्रकाशिका टीका		इस्वीकी १२वीं शताब्दी (दत्त और सिंह)
रामचन्द्र	कल्पद्रुम करण		करणकुतूहलकी १४८२ शककी टीकामें यह नाम है।
अनन्त	महादेवकृत कामधेनुकी टीका जातक पद्धति	१४८० ?	
रघुनाथ	सुबोधमंजरी (करण)	१४८४	ब्रह्मपक्षीय ग्रन्थ
कृपाराम	वास्तुचंद्रिका	शक १४२० के बाद	बीजगणित, मकरंद, यंत्रचिंतामणि पर उदाहरण सहित टीका तथा सर्वार्थ चिंतामणि, पंचपक्षी और मुहूर्त तत्व की टीका भी लिखी है।
रघुनाथ शर्मा	मणिप्रदीप (करण)	१४८७	सिद्धान्तशिरोमणि और सूर्यसिद्धान्तके आधारपर
नारायण	मुहूर्तमार्तण्ड और इसपर टीका मार्तण्ड वल्लभ	१४९३-९४	मुहूर्त ग्रन्थ
दिनकर	खेटकसिद्धि, चन्द्रार्की	१५००	ब्रह्मसिद्धान्तके अनुसार करणग्रन्थ
गंगाधर	गृहलाघवकी मनोरमा टीका	१५०८	

ग्रन्थकर्ता	ग्रन्थ	रचनाकाल शक	विशेष
श्रीनाथ	ग्रहचिंतामणि (करण)	१५१२	
गणेश	जातकालंकार	१५३५	जातकपर प्रसिद्ध पुस्तक
नाग या नागेश	ग्रहप्रबोध	१५४१	दृग्गणितानुसार करणग्रन्थ
विट्ठल-दीक्षित	मुहूर्तकल्पद्रुम और उसकी टीका मुहूर्तकल्पद्रुममंजरी	१५४६ ?	मुहूर्तग्रन्थ
नारायण	केशवपद्धति टीका नारायणीबीजम्		यह मुनीश्वरके गुरु थे जो शक १५२५ में पैदा हुए थे। दूसरी पुस्तक बीजगणित पर है।
शिवदैवज्ञ	अनन्तसुधारसविवृति (गणित) मुहूर्तचूड़ामणि (मुहूर्त)	जन्मकाल १५२८	कृष्ण दैवज्ञके पुत्र और नृसिंहदैवज्ञके अनुज
बलभद्र मिश्र	हायनरत्न (ताजिक ग्रन्थ)	१५६४	रामदैवज्ञके शिष्य, शाहजहाँके द्वितीयपुत्र शाहसुजाके आश्रित।
सोमदैवज्ञ	कल्पलता	१५६४	संवत्सरके राजा मंत्री, आदिके शुभाशुभ फल पर विचार।
रंगनाथ	(१) सिद्धान्तशिरोमणिकी मितभाषिणी टीका (२) सिद्धान्त चूड़ामणि	१५६२	यह नृसिंहदैवज्ञके पुत्र और कमलाकरके भाई थे। सूर्यसिद्धान्तके अनुसार करण ग्रन्थकी रचना की थी।
कृष्ण	करणकौस्तुभ	१५७५	महाराज शिवाजीके समयमें ग्रहकौतुक, ग्रहलाघव तथा निज वेधके अनुसार करण ग्रन्थ बनाया।
यादव	ग्रहप्रबोध पर उदाहरणसहित टीका	१५८५	
रत्नकंठ	पंचांगकौतुक	१५८०	खण्डखाद्यकके अनुसार पञ्चांग बनानेके लिए उपयोगी।
विद्दण	वार्षिक तंत्र	१६००सेपूर्व	वर्तमान् सूर्यसिद्धान्तके अनुसार
जटाधर	फत्तेशाह प्रकाश	१६२६	श्री नगरके चन्द्रवंशी राजाके नामपर
दादाभट	किरणावलि	१६४१	सूर्यसिद्धान्तकी टीका
शंकर	वैष्णव करण	१६८८	भास्कराचार्यके अनुसार
परमानन्द-पाठक	प्रश्नमाणिक्यमाला	१६७०	जन्मकुण्डलीके भावोंका शुभाशुभ फल विचार है। यह काशिराज बलवन्तसिंहके प्रधान गणक थे।
भुला	ब्रह्मसिद्धान्तसार	१७०३	ब्रह्मपक्षानुसार सिद्धान्तग्रन्थ, सिद्धान्तशिरोमणि और ग्रहलाघवके आधारपर लिखा गया।
मथुरानाथ शुक्ल	१–यन्त्रराज घटना २–नक्षत्र स्थापन विधि	१७०४	राजा शिवप्रसाद, सितारे-हिन्दके बाबा डालचन्दके आश्रित थे।
चिंतामणि दीक्षित	१–सूर्यसिद्धान्तकी सारणी २–गोलानन्द (वेधग्रन्थ)	 १७१३	
राघव (खांडेकर)	१–खेटकृति २–पंचांगार्क ३–पद्धति चन्द्रिका	१७३२ १७३६ १७४०	पहली पुस्तक ग्रहलाघवके अनुसार है, दूसरी सिद्धान्त ग्रन्थ है और तीसरी जातक पर है।
शिवदैवज्ञ	तिथिपारिजात	१७३७	ग्रहलाघवके अनुसार
यज्ञेश्वर (बाबा जोशी रोडे)	१–ज्योति: पुराण विरोध मर्दन २–यंत्रराज वासना टीका ३–गोलानंदकी अनुभाविकी टीका ४–मणिकांति टीका ५–प्रश्नोत्तरमालिका	१७५६ १७६४	
विनायक पांडरंग खानापूरकर	वैनायिकी ताजिकग्रन्थ सिद्धान्तसार		

मुरलीधर झा

आपने काशी संस्कृत कालेजके प्रधानाध्यापकके पद पर रह कर कमलाकरके सिद्धान्ततत्त्वविवेकका सम्पादन अपनी विशेष और विस्तृत टिप्पणियोंके साथ सन् १६२४ ई० में किया था। इसके पहले आपने सन् १६०८ ई०में म०म० सुधाकर द्विवेदीके वेदाङ्गज्योतिषके भाष्यके साथ संस्कृतमें लघुविवरण तथा अंग्रेज़ीके परिशिष्टके साथ सम्पादन किया था जिसमें बार्हस्पत्यजीके आक्षेपोंका उत्तर दिया गया था।

गङ्गाधर मिश्र

आप प्रतापगढ़ (अवध) के मेहता संस्कृत विद्यालयके प्रधान अध्यापक थे और सिद्धान्त ज्योतिषमें बड़े निपुण थे। आपने म०म० सुधाकर द्विवेदीके वास्तवचन्द्रशृङ्गोन्नति साधनकी उदाहरण सहित एक टीका लिखी थी जो १६३२ ई०में प्रकाशित हुई थी। कमलाकरके सिद्धान्ततत्त्वविवेककी एक अच्छी संस्कृत टीका नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे आपने सं० १६८६ वि० में प्रकाशित की थी। गत वर्ष आपका स्वर्गवास हो गया। आप एक होनहार ज्योतिषी थे परन्तु दुर्भाग्यसे आपका देहान्त बहुत थोड़ी अवस्थामें होगया।

इनके अतिरिक्त गणकतरंगिणीमें पं० शिवलाल पाठक, लक्ष्मीपति, बबुआ ज्योतिषी, परमसुखोपाध्याय, बालकृष्ण ज्योतिषी, कृष्णदेव, दुर्गाशंकर पाठक, गोविन्दाचारी, जयराम ज्योतिषी, सेवाराम शर्मा, लज्जाशंकर शर्मा, नन्दलाल शर्मा और देवकृष्ण शर्माकी जीवनियाँ भी हैं जो ज्योतिषके अच्छे विद्वान् थे परन्तु जिन्होंने किसी ग्रंथकी रचना नहीं की थी इसलिए इनका विशेष वर्णन छोड़ दिया गया है। ज्योतिषके वर्तमान् विद्वानों और ग्रंथकर्ताओंका विवरण भी इस समय नहीं लिखा जा रहा है।

यहां तक भारतीय ज्योतिषके सम्बंधमें जो कुछ लिखा गया है उससे विदित होता है कि इसके अधिकांश लेखक महाराष्ट्र प्रांतके हैं। संयुक्तप्रांत विहार और मद्रासके भी ज्ञात ज्योतिषियोंकी चर्चा आ गयी है। परंतु बंगाल प्रांतके किसी ग्रंथकर्ताकी चर्चा नहीं है क्योंकि इनके संबंधमें ऐसी पुस्तक मुझे नहीं मिली जिससे कुछ जाना जा सके। अर्वाचीन कालमें यह श्रेय कलकत्ता विश्वविद्यालय और उसके प्रसिद्ध कुलपति (वाइस चांसलर) सर आशुतोश मुकुर्जीको है जिनके कारण कलकत्तेमें प्राचीन भारतीय ज्योतिष और गणितके अनुसंधानके लिए पर्याप्त प्रबंध किया गया है जिसके फल स्वरूप वहाँके कई विद्वानों ने अंग्रेज़ीमें कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

अब हम उन विदेशी विद्वानोंकी भी संक्षेपमें चर्चा कर देना चाहते हैं जिन्होंने भारतीय ज्योतिष पर अपनी भाषाओंमें अनेक ग्रंथ लिखे हैं और जिनके कारण हमारी ज्योतिषका प्रचार अरब, तुर्किस्तान, युरोप और अमेरिकामें भी हुआ है। इनमें सबसे पहले अरबके विद्वानोंका नाम आता है।

भारतीय ज्योतिष का प्रसार

(अरबी देशोंमें)

ब्रह्मगुप्तके वर्णनमें यह चर्चा की गयी थी कि इनके दोनों ग्रन्थोंका अनुवाद अरबीमें कराया गया था। यहाँ इस संबंधमें कुछ विशेष बातें बतलायी जाती हैं। रोमके प्रोफेसर सी. ए नलिनो 'इन्साइक्लोपीडिया आफ़ रिलिजन एन्ड एथिक्स' अध्याय १२, ६६[1] में लिखते हैं, "ज्योतिषके प्रथम वैज्ञानिक मूलाङ्कोंके लिए मुसलमान भारतवर्षके ऋणी हैं। ७७१ ई० में भारतवर्षकी एक विद्वन्मंडली बग़दाद गयी जिसके एक विद्वान्ने अरबोंको ब्राह्मस्फुट सिद्धान्तका परिचय कराया जिसे ब्रह्मगुप्तने संस्कृतमें ६२८ ई० में लिखा था। इस ग्रन्थ से (जिसे अरब वाले अस् सिंदहिन्द पुकारते थे) इब्राहीम इब्न हबीब-अल-फ़ज़ारी ने मूलाङ्कों और गणनाकी रीतियोंको लेकर अपने ज्योतिषकी सारणियाँ मुसलमानी चान्द्रवर्षके अनुसार तैयार कीं। प्रायः इसी कालमें याकूब इब्न तारीकने अपना 'तरकीब-अल अफलाक' (खगोल की रचना) लिखा जो ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तके मूलाङ्कों और रीतियों पर तथा उन ध्रुवाङ्कों पर जिन्हें एक दूसरे भारतीय वैज्ञानिकने एक दूसरी मण्डलीके साथ १६१ हिजरी (७७७-७७८ ई०) में बग़दाद आकर दिया था

१—जी. आर. के. की हिन्दू एस्ट्रोनामी, पृष्ठ ४६ की पाद टिप्पणी।

आश्रित था। ऐसा जान पड़ता है कि प्रायः उसी समय खण्डखाद्यकका भी अरबी में 'अल्अर्कंद' के नामसे अनुवाद किया गया जिसे ६६५ ई० में ब्रह्मगुप्तने ही रचा था परन्तु जिसके मूलाङ्क उसके पहले ग्रन्थके मूलाङ्कोंसे भिन्न थे। अलफ़ज़ारी और याक़ूब इब्न तारीकके समकालीन अबुल हसन अल् अहवाज़ी ने विद्वान भारतवासियोंके शायद मौखिक शिक्षाओंसे प्रभावित होकर 'अल् अर्जभद' (भारतीय ज्योतिषी आर्यभटका बिगड़ा हुआ नाम जिसने ५०० ईस्वीमें आर्यभटीय लिखा था) के अनुसार ग्रहगतियोंका परिचय अरबोंको कराया। मुसलिम संसारमें हिजरीकी पंचम शताब्दीके पूर्वार्द्ध के अन्त तक (इस्वीकी ११वीं शताब्दी) इन भारतीय ग्रन्थोंके बहुतसे अनुगामी हुए, कुछ ज्योतिषियोंने (जैसे, हबश, अननैरीज़ा, इब्न असूसंभ) भारतीय मूलाङ्कों और प्रणालियोंके आधार पर भी पुस्तकें लिखीं और यूनानी-अरबी मूलाङ्कोंके अनुसार भी। दूसरों ने (जैसे मुहम्मद इब्न इसहाक़ अस्-सरहसी, अबुलवफ़ा, अल्बीरूनी, अल्हजीनी) उन मूलाङ्कों को ग्रहण किया जिनकी गणना मुसलमान ज्योतिषियोंने भारतीय ज्योतिषियोंके अनुकरणमें कृत्रिम दीर्घ युगोंके अनुसार की थी।"

इस संबंधमें अलबीरूनीने अपने अरबी ग्रन्थ 'इंडिकामें' जिसका अंगरेजी भाषान्तर बर्लिनके प्रोफेसर एडवर्ड सी. साचो ने किया है और जिसका हिन्दी अनुवाद इंडियन प्रेसने प्रकाशित किया है बहुत कुछ लिखा है। यह विद्वान् ९७३ ई० में खीवामें उत्पन्न हुआ था और महमूद गज़नवीके साथ भारतवर्षमें आकर यहाँ सन १०१७ ई०से लेकर १०३१ ई० तक रहा था और संस्कृत भाषा सीखकर इसके साहित्यकी बहुत सी, विशेषकर ज्योतिषकी बातें जानकर अरबीमें इंडिका 'ग्रन्थका' निर्माण किया था। यह लिखता है कि पूर्वकालीन मुसलिम ज्योतिषियोंने आर्यभट और अन्य सिद्धान्त ग्रन्थोंकी चर्चा की है। आर्यभटका अरबी रूपान्तर आर्जबह था जो और बिगड़ कर 'आर्ज़भर' हो गया। अल्बीरूनी लिखता है कि 'सिंदहिंद' नाम की अरबी पुस्तकको हिन्दू सिद्धान्त कहते हैं।

(यूरोप और अमेरिका में)

ईसा की १७वीं शताब्दीके अन्तमें यूरोपमें भारतीय ज्योतिषकी चर्चा आरंभ हुई जिसमें लाप्लेस, बेली, प्लेफेयर, डीलाम्बर, सर विलियम जोन्स, जान बेंटले, आदि ने भाग लिया। १६९१ ई०में फ्रांसके प्रसिद्ध ज्योतिषी जियोवनी डोमिनिको कैसिनीने डी. ला लूबियरके आसाम से लाये हुए कुछ ज्योतिष संबंधी नियमोंका प्रकाशन किया और उसके थोड़ी ही देर बाद 'हिस्टोरिया रेग्नी ग्रीकोरम बैक्ट्रियानी' के परिशिष्टमें टी० एस् बेयरने हिन्दू ज्योतिषकी चर्चा की जिसमें लियोनार्ड आयलरका एक निबंध ३६५ दिन ६ घंटा १२ मिनट और ३० सेकेंडके हिन्दू वर्ष पर था। १७६९ ई० में 'लीजेंटिल' पांडीचेरीमें शुक्र की वेधयुति देखनेके लिए आया और १७७२ ई० में उसने 'त्रिवेलोर' कोष्ठकों और हिन्दू ज्योतिष पर एक लेख प्रकाशित किया। इस प्रकाशनका सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि जीन सिलवेन बेली (पेरिसका पहला मेयर और नेशनल एसेंबलीका सभापति जो १७३६ ई० में जन्मा और १७९३ ई० में शूली पर चढ़ाया गया था) इस ओर आकर्षित हो गया और १७८७ ई० में भारतीय ज्योतिष पर एक ग्रन्थ[1] प्रकाशित किया। बेलीकी पुस्तक से 'लाप्लेस' और 'प्लेफेयर' का ध्यान इस ओर बहुत आकर्षित हुआ। प्लेफेयर ने १७९२ ई० में एशियाटिक सोसाइटीमें व्याख्यान देकर सुझाया कि हिन्दू गणित और ज्योतिषका नियम पूर्वक अनुशीलन किया जाय।

इसी बीचमें एस् डेविस ने १७८९ ई०में सूर्यसिद्धान्त का विश्लेषण किया और लिखा कि इस ग्रन्थमें क्रान्तिवृत्त की परम क्रांति २४ अंश है जो आकाशके प्रत्यक्ष अवलोकनसे जानी गयी होगी और यह अवलोकन २०५० ई० पूर्व किया गया होगा। सर विलियम जोन्सने इसका समर्थन किया और कहा कि भारतीय नक्षत्र चक्र-अरब या यूनानसे नहीं लिया गया। १७९९ ई० में जान बेंटले ने बेलीकी इस बात का विरोध किया कि भारतीय ज्योतिष बहुत प्राचीन है और यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि सूर्य सिद्धान्त १०९१ ई०के आसपासका बनाया हुआ है। इस संबंधमें कोलब्रुक, डीलाम्बर और बेंटले ने १८२५ ई० तक अच्छा वादविवाद किया। परन्तु इसके साथ-साथ भारतीय

१—Traite de lastronomie Indienne et orientale

ज्योतिष का अनुशीलन भी होता रहा। बंगाल के सेनानायक सर डबल्यू बाकरने काशीके जयसिंह निर्मित मान मन्दिरके यंत्रोंका अध्ययन किया और इसके कुछ बाद ही प्लेफेयर ने अपना सुझाव उपस्थित किया। १७६६ ई०में हंटर ने उज्जैन की बेधशाला का ब्योरेवार वर्णन लिखा। परन्तु भारतीय ज्योतिषके इतिहास का सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वेबर (१८६०-६८ ई०), ह्विटनी (१८५८) और थीबो १८७७-१८८६) ने बुनियाद डाली। वेबरने वेदाङ्ग ज्योतिष, ह्विटनी ने सूर्यसिद्धान्त का अनुवाद अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियोंके साथ और थीबा ने वराहमिहिर की पञ्चसिद्धान्तिका अपने अनुवाद और टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किया। इनके साथ साचो ने अलबेरूनी के 'भारत का अनुवाद किया और यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मध्यकालीन हिन्दू ज्योतिष और यूनानी ज्योतिषमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस लिए प्राच्य विद्या विशारदोंका ध्यान वैदिक और वदोत्तर कालोंकी ओर गया। १८६३ ई० में जैकोबी और तिलकने अलग-अलग सुझाव उपस्थित किये कि वैदिक ग्रन्थोंमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वैदिककाल बहुत प्राचीन है, परन्तु ह्विटनी, आल्डेनबर्ग और थीबाने इसका घोर विरोध किया।[१]

इस वादविवादके बीचमें रेवरेंड ई. बर्जेसने सन् १८६० ई०में सूर्यसिद्धान्तका प्रसिद्ध अनुवाद अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटीके जरनलमें प्रकाशित किया जिसमें भारतीय ज्योतिषके पक्ष और विपक्षमें कहनेवालोंका वैज्ञानिक रीतिसे विचार किया गया और दिखाया गया कि भारतीय ज्योतिषका महत्व क्या है। इस सुन्दर अनुवादका दूसरा संस्करण कलकत्ता विश्वविद्यालयके फणीन्द्रलाल गंगोली द्वारा सम्पादित होकर प्रबोधचन्द्र सेनगुप्तकी भूमिकाके साथ कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा सन १६३५ ई०में प्रकाशित हुआ है और संग्रह करने योग्य है।

भारतीय ज्योतिषका एक दूसरा ग्रन्थ डब्लू ब्रेनंडने सन् १८६६ ई० में लिखा था जिसके पहले भागके १३ अध्यायोंमें हिन्दू ज्योतिषपर यूनान, मिश्र, चीन और अरबके ज्योतिषके साथ तुलनात्मक विचार किया गया है और कई पौराणिक कथाओं, शिव और दुर्गाका विवाह, सतीकी मृत्यु आदिका संबंध ज्योतिषिक घटनाओंसे बतलाया गया है और दूसरे भागमें सूर्यसिद्धान्तका अंग्रेजीमें अच्छा अनुवाद किया गया है। इस विद्वान्का विश्वास था कि युरोपवालोंने हिन्दुओंको इनके साहित्य और गणितीय विज्ञानके लिए उतना श्रेय नहीं दिया जितनेके वे अधिकारी हैं इस लिए उनके ज्योतिषको ऐसी सरल भाषामें लिखा जाय जिससे इस विषयमें रुचि रखने वालोंको स्वतंत्रतापूर्वक विचार करनेका अवसर मिले कि यथार्थ बात क्या है और इस संबंधमें और अधिक खोज करें। यह ग्रन्थ लदनमें १८६६ ई०में मुद्रित और प्रकाशित हुआ था ब्रेनंड महाशय बंगालमें बहुत दिन तक किसी कालेजके अध्यक्ष रह चुके हैं।

इन ग्रंथोंके होते हुए भी जी० आर० के महाशय अपने विविध लेखों और हिन्दू एस्ट्रानोमी[१] में हिन्दू ज्योतिषके संबंधमें कुछ बातें ऐसी लिखते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि यह भी भारतीय ज्योतिषको उतना श्रेय नहीं देना चाहते जितनेका वह अधिकारी है। इसका उत्तर प्रयागके श्री नलिनीबिहारी मित्रने १६१५-१६के माडर्न रिविउमें और कलकत्ता विश्वविद्यालयके कई आचार्यों, विशेषकर डाक्टर विभूतिभूषण दत्त और प्रबोधचन्द्र सेन गुप्तने भारतीय और यूनानी ज्योतिषका तुलनात्मक अध्ययन करके दिया है जिसे भारतीय ज्योतिषके अनुसंधान कर्ताओंको अवश्य पढ़ना चाहिए।

आकाशके चित्र

अब हम आकाशके कुछ नकशे जिनकी चर्चा पृ० ३७१ में आयी है, देकर बतलाना चाहते हैं कि इनसे आकाशके तारोंका परिचय कैसे हो सकता है।

१ला नकशा उत्तर ध्रुवसे ५० अंश दूर तक फैले हुए तारों और नक्षत्र-पुंजोंका है। केन्द्रमें आकाशका

१ —जी० आर० के की हिन्दू ऐस्ट्रोनोमीकी भूमिकाका सारांश।

१— Memoirs of the Archaeological survey of India, No.18, published by Government of India in 1924
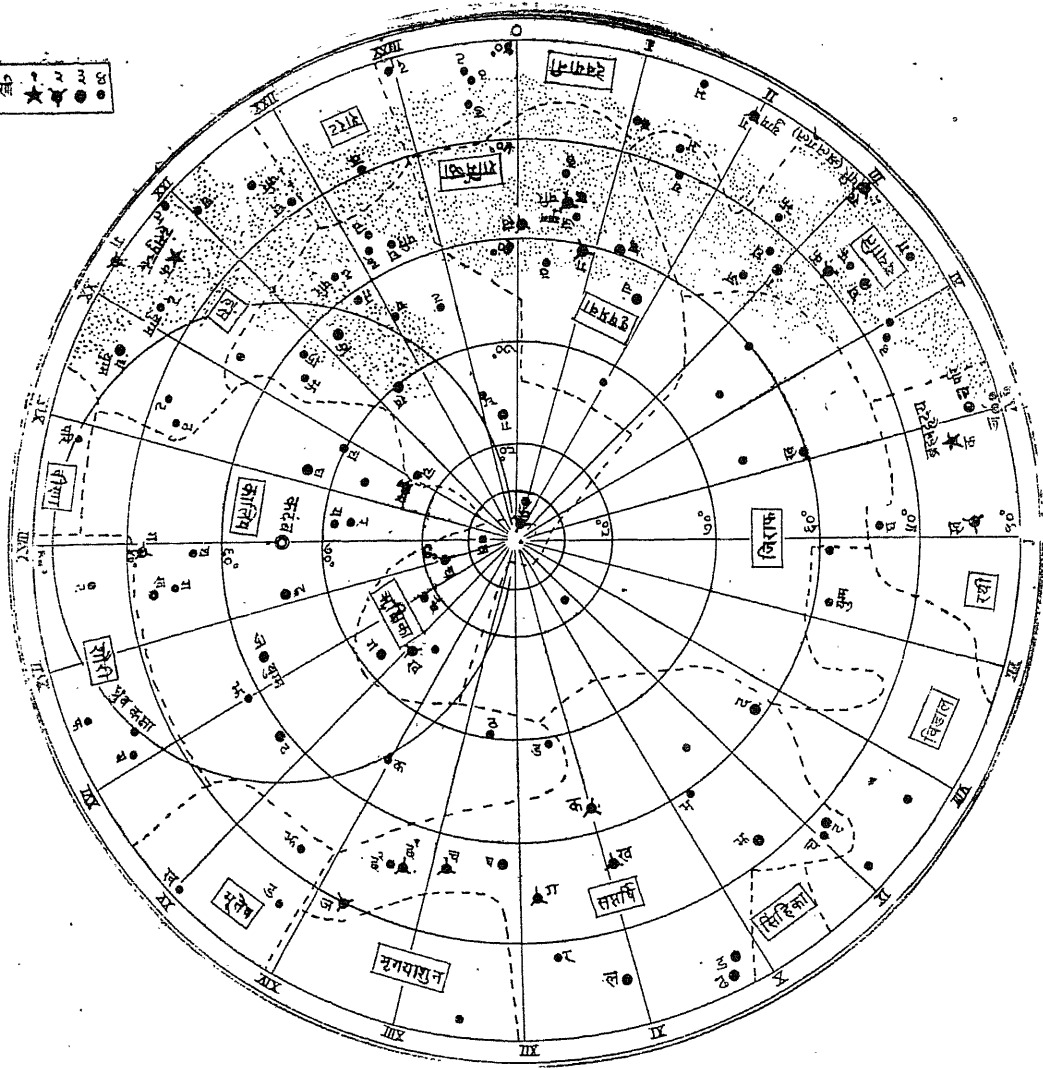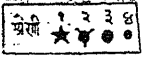
चित्र १

दस बजे रातको देखनेके लिए सारणी

मास	६ठीं तारीख	२१वीं तारीख	मास	६ठीं तारीख	२१वीं तारीख
अप्रैल	XI (११)	XII (१२)	अक्टूबर	XXIII (२३)	0 (०)
मई	XIII (१३)	XIV (१४)	नवम्बर	I (१)	II (२)
जून	XV (१५)	XVI (१६)	दिसम्बर	III (३)	IV (४)
जुलाई	XVII (१७)	XVIII (१८)	जनवरी	V (५)	VI (६)
अगस्त	XIX (१९)	XX (२०)	फरवरी	VII (७)	VIII (८)
सितम्बर	XXI (२१)	XXII (२२)	मार्च	IX (९)	X (१०)

उत्तरकी ओर ध्रुव तारेके सामने मुँह करके खड़ा होकर इस नकशे को इस प्रकार पकड़े रहना चाहिए कि यह खड़ा रहे और जिस महीनेका आकाश दस बजे रातको देखना हो उस महीनेके सामने वाला घंटा (देखें सारणी) ऊपर रहे। अन्य समयके लिए नकशेको घुमाकर काम लिया जा सकता है, जैसे अप्रैलकी ६ तारीखको ९ बजे देखना चाहें तो दस घंटे वाला बिन्दु ऊपर रहे और ८ बजे देखना चाहें तो ९ घंटे वाला बिन्दु ऊपर रहे। ६ठीं तारीखके बाद प्रतिदिन चार-चार मिनट पहले ही यह स्थिति आ जाती है। यदि १४ अप्रैलको देखना हो तो ११ घंटे वाला बिन्दु ९।। साढ़े नौ बजे ही ऊपर करना चाहिए। ऐसी स्थितिमें बायीं ओरके तारे पच्छिमकी ओर और दाहिनी ओरके तारे पूरबकी ओर दिखाई पड़ेंगे। [आजकलके सरकारी समयके अनुसार यह स्थिति १ घंटा बाद दिखाई पड़ेगी]

उत्तर ध्रुव दिखलाया गया है जिसके पास ही प्रसिद्ध ध्रुव नामक तारा है। ध्रुवताराके पासके छोटे वृत्तको छोड़कर शेष जितने ध्रुवकेन्द्रिक वृत्त खींचे गये हैं वे ध्रुवसे दस-दस अंशके अंतर पर हैं। परन्तु इन वृत्तोंकी दूरी ध्रुवसे न देकर विषुववृत्तसे दी गयी है जो क्रान्ति कहलाती है इसलिए ध्रुवसे दस अंशपर जो वृत्त है उस पर ८० लिखा हुआ है, बीस अंश पर जो वृत्त है वहां ७० लिखा हुआ है जिसका अर्थ है कि इन वृत्तोंकी क्रान्ति क्रमशः ८०° या ७०° है। इसी प्रकार और वृत्तोंके लिए भी समझना चाहिए।

ध्रुवसे जो सीधी रेखाएँ बाहरी परिधि तक दिखलायी गयी हैं वे विषुवांश (right ascension) की रेखाएं हैं और एक-एक घंटे अथवा पन्द्रह-पन्द्रह अंशके अंतर पर खिंची हुई हैं। बाहरी परिधिके पास रोमन अंकोंमें, जिनसे घड़ीके घंटे सूचित किये जाते हैं, घंटे लिखे हुए हैं। शून्यका घंटा वसंत-संपात-विन्दुसे ध्रुव तक जाने वाली रेखा पर है इसी रेखापर शर्मिष्ठा नक्षत्र पुंज-का प्रथम तारा स्थित है। २१ मार्चको जब सूर्य वसंत सम्पात पर होता है तब यह रेखा मध्याह्नमें याम्योत्तरवृत्त (meridian) पर होती है और इस पर स्थित तारे मध्याह्नमें याम्योत्तरवृत्त पर आते हैं। इस दिन मध्याह्नसे एक-एक घंटेके अंतर पर I, II, III, IV आदि रेखाएं याम्योत्तर वृत्त पर आती हैं। इस दिन रातके ८ बजे VIII घंटे वाली रेखा, ९ बजे IX घंटे वाली रेखा, १० बजे X घंटे वाली रेखाएं याम्योत्तरवृत्त पर देख पड़ेंगी। इसी प्रकार अन्य घंटे वाली रेखाएं भी याम्योत्तर वृत्त पर आवेंगी। रातके ११ बजे XI घंटे वाली रेखा याम्योत्तरवृत्त पर रहेगी, इसी रेखा पर सप्तर्षि पुंजके पहले दो तारे हैं जिन्हें 'ध्रुवसूचक' भी कहते हैं। ११ घंटेसे लगभग १४ घंटे तक सप्तर्षिके तारे याम्योत्तर वृत्तपर दिखाई पड़ेंगे। इसका सातवां तारा रातके ठीक पौने दो बजे याम्योत्तरवृत्त पर देख पड़ेगा। इसी प्रकार और नक्षत्रोंकी पहचान भी की जा सकती है। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि यह समय विषुवकाल[1] के अनुसार है और केवल २१ मार्चके लिए लागू हो सकता है। आजकल युद्धके कारण भारतवर्षका प्रामाणिक काल (Standard time) १ घण्टा बढ़ा दिया गया है इसलिए ऊपर जो समय दिया गया है उसमें १ घण्टा बढ़ा देनेसे २१ मार्चको घड़ीका समय ज्ञात होगा।

चित्र कैसे देखना चाहिये—रातमें ध्रुवतारेकी ओर मुँह करके खड़े हो जायँ और नकशेको इस प्रकार लें कि घण्टेवाला अंक ठीक ऊपर रहे। यदि २१ मार्चको आज-कलकी घड़ीके अनुसार १२ बजे आकाश देखना चाहें तो नकशेकी ११ घंटे वाली रेखा यानी सप्तर्षिके ध्रुवसूचक तारोंके ऊपरसे जानेवाली रेखा ऊपर कर लें। फिर आप देखेंगे कि सप्तर्षिके यह दो तारे ठीक उत्तरकी ओर, इसके अन्य तारे दाहिनी ओर, 'रथी' तारापुंज तथा इसका प्रमुख तारा ब्रह्महृदय उत्तर-पच्छिम क्षितिजके पास और 'भूतेश' पुंजके तारे पूर्वसे कुछ उत्तर क्षितिजके पास दिखाई पड़ेंगे। इस प्रकार चित्र पकड़नेसे तारा-पुंजोंके नाम उल्टे छपे हुए दिखाई पड़ेंगे, इस बातका ध्यान रखना चाहिए।

और महीनों या तारीखोंमें घण्टोंके हिसाबमें कुछ भेद पड़ेगा क्योंकि जो तारा आज १० बजे रातको याम्योत्तर वृत्त पर देख पड़ेगा वह कल ४ मिनट पहले ही उस स्थान पर पहुँच जायगा। इसी प्रकार प्रति दिन चार चार मिनट पहले पहुँचते हुए १५ दिनमें वह एक घण्टा पहले आ जायगा और एक महीने-पीछे २ घण्टा पहले पहुँच जायगा। अर्थात् सप्तर्षिका जो तारा २१ मार्चको आजकलके १२ बजे और पुराने ११ बजे रातको देख पड़ेगा वह २१ अप्रैल को १० बजे रातको ही याम्योत्तरवृत्त पर आ जायगा। २१ मईको यह स्थिति ८ बजे रातको ही हो जायगी।

[1]—विषुव कालकी गणना उस समयसे आरम्भ होती है जब बसंत-सम्पात-बिन्दु याम्योत्तरवृत्त पर आता है। जब दूसरे दिन यह विन्दु फिर याम्योत्तरवृत्त पर आता है तब विषुवकालके २४ घण्टे पूरे होते हैं। यह हमारी घड़ीके २४ घण्टे अथवा सौर दिनसे ४ मिनट छोटा होता है इसलिए इसके आगे बढ़नेकी दैनिक गति ४ मिनट है। १५ दिनमें यह अन्तर १ घण्टेके बराबर हो जाता है अर्थात् २१ मार्चको यदि सप्तर्षिकेसूचक तारे ११ बजे रात को याम्योत्तरवृत्त पर आ जाते हैं तो ५ अप्रैलको यह १० बजे ही ऊपर आ जायंगे और २० अप्रैलको ९ बजे ही।
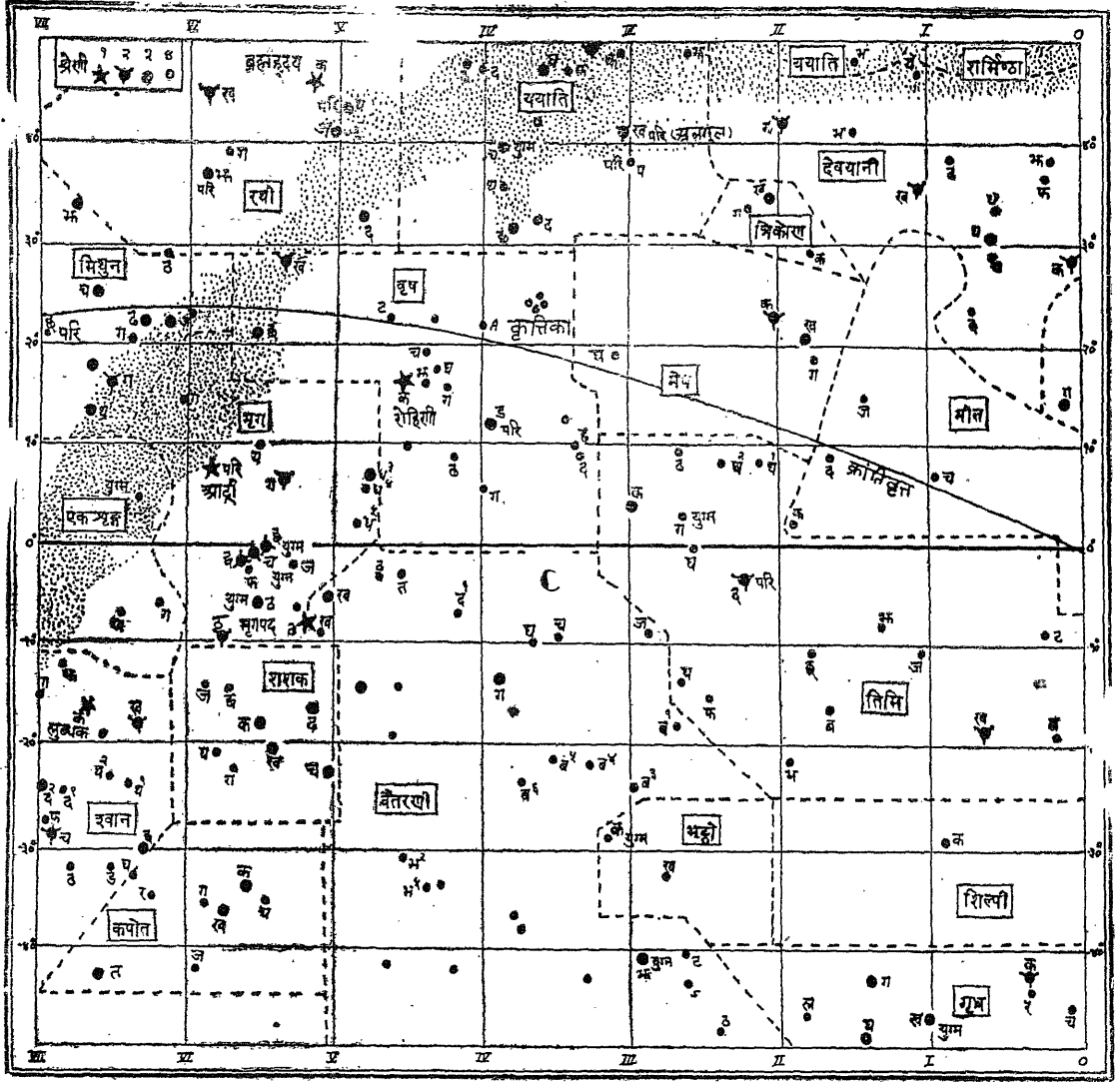
दक्षिण

चित्र २

उत्तर मुँह खड़े होकर हाथोंको ऊपर करके यह चित्र इस प्रकार थामें कि इसकी पीठ आकाशकी ओर रहे, जिस किनारे पर पश्चिम लिखा है वह पश्चिमकी ओर और जिस किनारे पर पूर्व लिखा हुआ है वह शिरोविन्दुसे कुछ पश्चिम रहे अर्थात् ८वें घं॰की रेखा सिर पर रहे तो मिथुन राशिके पुनर्वसु नक्षत्र वाले दो तारे (देखें चित्र ३) ठीक सिर पर दिखाई पड़ेंगे और मेष, वृष राशियोंके अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी मृगशिरा, अग्रहायन श्वान, शशक आदि तारा-पुञ्ज पश्चिम क्षितिजसे क्रमशः ऊपर दिखाई पड़ेंगे। अर्थात् पश्चिम क्षितिजके पास अश्विनीके तीन तारे, इससे ऊपर कृत्तिकाके कई तारे पास ही पास, कृत्तिकासे ऊपर जरा दक्खिन हटकर रोहिणीके तारे और रोहिणीसे भी ऊपर दक्खिनकी ओर मृगपद या अग्रहायनके बहुतसे तारे दिखाई पड़ेंगे। उत्तर पूर्वकी ओर सप्तर्षि और उत्तर पश्चिमकी ओर रथी ब्रह्महृदय ययाति, तारा पुञ्ज दिखाई पड़ेंगे। (६ अप्रैल को ८ बजेके लगभग)

दक्खिन मुँह खड़े होकर देखनेसे तिमि, शिल्पी, वैतरणी, शशक, श्वान और कपोत तारा पुंज दिखाई पड़ेंगे।

यदि यह बात ध्यानमें रखकर नकशे देखे जायं तो पाँचों नकशोंसे आकाशके उन सब तारोंकी पहचान हो सकती है जो भारतवर्षके किसी स्थानसे देखे जा सकते हैं।

तारा-पुञ्जोंकी कल्पित सीमा बतलानेके लिए कटी हुई टेढ़ी रेखाएं खिंची हुई हैं और प्रत्येक पुञ्जके तारोंके नाम नागरी वर्णमालाके सानुनासिक अक्षरोंको छोड़कर अन्य अक्षरोंसे सूचित किये गये हैं। सप्तर्षि तारापुञ्जके सात प्रधान तारे क, ख, ग, घ, च, छ और ज अक्षरोंसे और अन्य तारे इसके आगेके अक्षरोंसे सूचित किये गये हैं। इस पुञ्जका कुछ अंश तीसरे नकशेमें भी आया है जहाँ 'ल' अक्षर तकके पासका तारा भी आ गया है। 'छ' अक्षरके दो तारे दिखाए गये है, छ१, छ२-क्योंकि यह युगल तारा 'वशिष्ट' है जिसके पासका दूसरा तारा 'अरुंधती' है। इस पुञ्जमें ट ठ, ड ढ, और त थ दो दो तारे क्रमशः नौ, सवादस और सवाग्यारह घण्टों पर स्थित हैं। ठ की जगह नकशेमें भूलसे 'च' छप गया है।

पहले नकशेमें १८ घण्टेकी रेखा पर बीचमें एक गोल विन्दु है जिसे 'कदम्ब' कहा गया है। यहाँ यथार्थमें कोई तारा नहीं है परन्तु यह वह स्थान है जो नक्षत्रचक्र या क्रान्तिवृत्तका ध्रुव है। इसीकी चारों ओर हमारी पृथ्वीका ध्रुव या विषुवमंडलका ध्रुव लगभग २६००० वर्षमें एक परिक्रमाकर लेता है। यह परिक्रमा पथ उस वृत्तसे प्रकट किया गया है जो हंस, वीणा, शौरी आदि पुंजोंसे होता हुआ जाता है और जिसे नकशेमें ध्रुवकक्षा कहा गया है। इसीके भीतर 'कालिय' और 'ऋक्षिका' नामक पुंज हैं। ऋक्षिकाको लघु सप्तर्षि भी कहते हैं।

दूसरे चित्रमें वे तारे दिखाये गये हैं जो शून्य घण्टेसे सात घण्टे वाली रेखाओंके बीचमें और ४० अंश उत्तर और दक्षिण क्रान्तियोंके बीचमें हैं। आकाशके इस भागमें बड़े महत्वके तारा-पुंज हैं। बीचोबीच आड़ी रेखा विषुव वृत्त सूचित करती है जिसकी क्रान्ति शून्य होतीहै। इसीके समानान्तर दस दस अंश क्रान्तिके अन्तर पर उत्तर और दक्षिण ओर रेखाएँ खींची गयी है। उत्तरकी ओरके तारा पुंजोंको पहचाननेके लिए उत्तर तरफ मुँह करके खड़ा होना चाहिये। अप्रैलके पहले सप्ताहमें आजकल ८ या ९ बजे रातको आकाश देखनेसे ८ या ९ घण्टोंकी रेखावाले तारे ऊपर याम्योत्तरवृत्त पर देख पड़ेंगे जो तीसरे चित्रमें हैं परन्तु तीन, चार और पाँच घण्टोंवाले तारे पश्छिमकी ओर रहेंगे।

दूसरे नकशेमें विषुववृत्तके पश्छिम किनारे से एक धनुषाकार रेखा पूर्व किनारे के उस विन्दु तक खिंची हुई है जो विषुववृत्त से २२ अंश के लगभग उत्तर की ओर है। यही क्रान्तिवृत्त है जिस पर पृथ्वीकी वार्षिक गतिके कारण सूरज चलता हुआ देख पड़ता है। विषुव वृत्त के पश्छिम किनारे वाला विन्दु जहांसे क्रान्तिवृत्त की रेखा निकली हुई दिखाई गयी है विषुवसम्पात या वसंत सम्पात है जहां सूर्य २१ मार्च को रहता है। पूरे क्रान्तिवृत्त के बारह समान भाग किये गये हैं जिन्हे राशि कहते हैं। बसंत-सम्पात विन्दुसे ३० अंश तक मेष ३० अंश से ६० अंश तक वृष और ६० अंश से ९० अंश तक मिथुन (सायन) राशियां हैं। ६ घंटे विषुवांश पर क्रान्ति-वृत्त विषुववृत्त से परम अन्तर २३ अंश २७ कला पर हो जाता है। इसके बाद वह विषुववृत्त की ओर झुकता है और १२ घंटे विषुवांश पर फिर विषुववृत्त पर पहुँच जाता है जहां सूर्य २३ सितम्बर को पहुँचता है (देखिए चित्र ३) यहां से क्रान्तिवृत्त विषुववृत्त से दक्खिन हो जाता है और १८ घंटे विषुवांश पर इसका अंतर सबसे अधिक २३°२७′ हो जाता है जहां सूर्य २२ दिसम्बर को पहुँचता है। इस स्थानसे क्रान्तिवृत्त उत्तर की ओर मुड़ जाता है और २१ मार्चको फिर बसंतसंपात विन्दु पर आ जाता है। क्रान्तिवृत्त के कुछ उत्तर या दक्खिन भारतीय ज्योतिष की मेष, वृष आदि बारह राशियां और अश्विनी भरणी आदि २७ नक्षत्र दिखलाये गये हैं। मघा, और चित्रा दो तारे क्रान्तिवृत्तके बिलकुल पास हैं।

पञ्चाङ्ग

आकाश में सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहों की स्थिति जानने के लिए ज्योतिषग्रन्थोंके आधार पर पञ्चाङ्ग बनाये जाते हैं। पञ्चाङ्ग में मुख्यतः पांच अंग होते हैं जिन्हें (१) तिथि (२) वार, (३) नक्षत्र (४) योग और (५) करण कहते हैं। जिससे इन पांचोंका ज्ञान हो सकता है उसे पञ्चाङ्ग, पंजिका, पत्रा या तिथिपत्र कहते हैं। तिथियों और नक्षत्रों की चर्चा पहले ही विस्तारसे की जा चुकी है। वार सात

उत्तर

पूर्व

पश्चिम
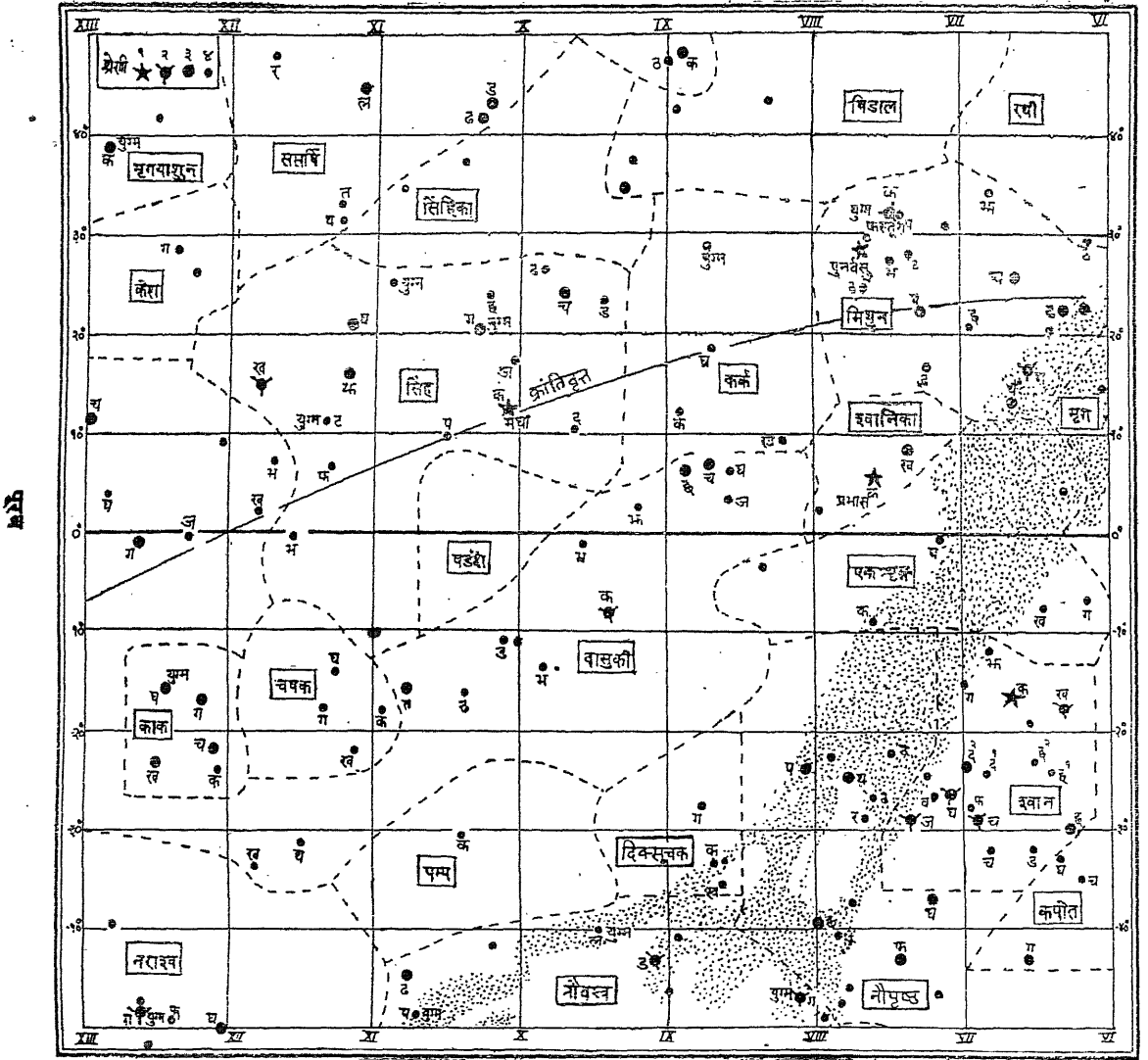
दक्षिण

चित्र ३

पहले नकशेमें महीनोंका जो क्रम दिया गया है उसीके अनुसार यह नकशा तथा आगे दिये गये नकशे भी देखे जा सकते हैं। जैसे ६ अप्रैलकी दस बजे रातको उत्तर ध्रुव तारेकी तरफ़ मुँह करके खड़ा होकर तीसरे नकशेको इस प्रकार थामें कि नकशेकी पीठ आकाशकी ओर और ११ घंटे वाली रेखा जो चित्र ३ में है ठीक ऊपर रहे तो बायीं ओर मिथुन और कर्क राशियोंके तारे दिखाई पड़ेंगे, सिरके ऊपर सिंह राशिके तारे होंगे और दाहिनी ओर मृगयाशुन, भूतेश, स्वाती किरीट, शौरी, आदिके तारे होंगे जो चित्र ४ में दिखाये गये हैं।

दक्षिणकी ओर मुँह करके खड़ा होने पर 'काक' तारापुंज जिसे 'हस्त' या 'हथिया' नक्षत्र भी कहते हैं पूर्व-दक्षिण क्षितिज पर देख पड़ेगा।

श्रीसंवत् २००२ शकः १८६७ सौम्यायनम्

दि.	ति.	वा.	घ.	प.	न.	घ.	प.	यो.	घ.	प.	क.	घ.	प.	क.	घ.	प	योगाः	अं.	फा.	सौ.	चन्द्रः			उ.	अ.
३१/२९	१	शु.	२४	४४	अ.	२९	४७	वि.	२८	५६	व.	२४	४४	वा.	५१	५०	वज्र	१३	२९	३१				५/४३	६/१७
२९	२	श.	१८	५७	भ.	२५	५६	प्री.	२१	२८	कौ.	१८	५७	तै.	४६	१४	ध्वांक्ष	१४	१	१	४०	५	वृष	४२	१८
३२	३	र.	१३	३२	कृ.	२२	३२	आ	१४	२२	ग	१३	३२	व.	४१	९	धूम्र	१५	२	२				४२	१८
३५	४	चं.	८	४६	रो.	१९	४६	सौ	७	४७	भ.	८	४६	व.	३६	४९	प्रवर्ध.	१६	३	३	४८	५०	मि.	४१	१९
३८	५	मं.	४	५१	मृ.	१७	५४	शो	४/५४	६२/५४	बा.	४	५१	कौ.	३३	१	राक्षस	१७	४	४				४०	२०
४२	६	बु	१/५८	२२/६	आ	१६	५५	सु.	५२	२	तै.	१	५२	ग	३०/५८	५५/६	मुसल	१८	५	५				४०	२०
४५	८	बृ.	५९	१७	पु.	१७	५	धृ.	४९	४	भ.	२७	४६	व	५९	१७	सिद्ध	१९	६	६	२	२	कर्क	३९	२१
४८	९	शु.	५९	५३	पु.	१८	२९	शू.	४६	४४	वा	२९	३५	कौ.	५९	५३	उत्पात	२०	७	७				३८	२२
५२	१०	श.	६०	०	श्ले	२१	१०	गं	४५	२८	तै.	३०	५३	ग.	६०	०	मानस	२१	८	८	२१	१०	सिं.	३७	२३
५५	१०	र.	१	५३	म.	२५	३	वृ.	४५	२	ग.	१	५३	व.	३३	२५	मुद्गर	२२	९	९				३७	२३
५८	११	चं.	४	५६	पू	३०	२	ध्रु.	४५	२०	भ.	४	५६	व.	३७	०	ध्वज	२३	१०	१०	४६	३०	कं.	३६	४
३२/१	१२	मं.	९	४	उ.	३५	५३	व्या	४६	५५	वा.	९	४	कौ.	४१	५०	धाता	२४	११	११				३६	२४
५	१३	बु.	१३	५३	ह.	४२	१८	ह.	४८	४	तै.	१३	५३	ग.	४६	३०	आनंद	२५	१२	१२				३४	२६
८	१४	बृ.	१९	६	चि	४८	५४	व.	४९	४१	व	१९	६	भ	५१	४०	चर	२६	१३	१३	१५	३६	तु.	३४	२६
११	१५	शु	२४	१४	स्व.	५५	१५	सि.	५१	३	व.	२४	१४	वा.	५६	३०	गद	२७	१४	१४				३४	२६

शु. चैत्र शुक्ल पक्षः — वसन्ततुः सन् १९४५ अप्रैल ४ ।

चन्द्रदर्शनम् मु. १५ अश्विन्यां मेषेचार्कः मु. ३०❀
❀१६।३९ नवरात्रारंभ: शुक्राऽस्तः प्रतीच्यां ६।११†
भ. ४१ ९ उ. †पूर्वाभाद्रभे भौमः १३।१
भ. ८।४६ या. सर्वार्थसि. यो. र. यो. १९।४६ या.
वक्रगत्यारेवत्यां बुध ६।१ यमघंटयो. १७।५४ उ. =
भ. ५८।६ उ. आर्द्रा ४ पादेराहुः पूर्वाषाढ २ च. ×
भ. २७।४६ या. × केतुः शुक्रोदयः प्राच्याम्
राम नवमी ९ व्रतम् = रवियोगश्च

भ. ३३।२५ उ. बुधोदयं पूर्वे २०।१
भ. ४१।५६ या. कामदा ११ व्रतं सर्वेषाम्
प्रदोषव्रतम्

भ. १९।६ उ. ५१।४० या. मीनेभौमः २४।३२ +
स्नानादौ + व्रताय १५

१ पं० १ भृगौ, ४६।२२

सू	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा	के.
०	१०	११	४	११	२	२	८
०	२०	२९	२७	२६	१३	२२	२२
२८	९	१६	३	४१	७	१९	१९
३१	३२	५२	२४	५६	४३	४२	४२
५८	४५	४४/५८	६/१८	३८/५४	४	३	३
४५	५४	व	व	व	१२	११	११

२ शु. १२ ११ चं. १२. मं. ११ रा. १२ ४ १० बु. ५ ७ के. ६ ६ ८

२ पं० ९ शुक्रे. ४६।३८

सू	मं.	बु	बृ	शु	श	रा.	के.
०	१०	११	४	११	२	२	८
७	२५	२१	२६	२२	१३	२१	२१
१८	२९	१७	२९	३०	३८	५७	५७
३६	५	२५	५९	६	५९	३७	२७
५८	४५	२३/३	२०/९	२/२	५	३	३
१९	५७	व	व	व	९	११	११

२ शु. १२ रा. १२ १२ मं. ११ चं. ४ १० बृ. ५ के. ६ ६ ८

होते हैं, रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, वृहस्पतिवार, शुक्रवार और शनिवार। यह सात ग्रहों के नाम पर रखे गये हैं इसलिए ग्रहोंके पर्यायके अनुसार इनके पर्याय भी हैं जैसे रविवार को आदित्यवार या छोटा नाम इतवार कहते हैं, सोमवारको चन्द्रवार, मंगलवारको भौमवार, वृहस्पतिवारको गुरुवार आदि। संसारके सभी देशोंमें वारोंके नाम एक से हैं और ग्रहों के नाम पर रखे गये हैं। वार का आरंभ सूर्योदय से माना जाता है।

योग योग कई प्रकार के होते हैं। पञ्चाङ्ग का 'योग' सूर्य और चन्द्रमाके भोगांशों के योगको कलाओंमें लिखकर ८०० कला से भाग देने पर आता है। जो लब्धि आती है उससे गत योगों का पता चलता है और शेषसे वर्तमान योगका। यह योग भी २७ हैं जिनके नाम हैं:—१-विष्कम्भ, २-प्रीति, ३-आयुष्मान, ४ सौभाग्य, ५-शोभन, ६-अतिगंड, ७-सुकर्मा, ८-धृति, ९-शूल, १०-गंड, ११-वृद्धि, १२-ध्रुव, १३-व्याघ्यात, १४-हर्षण, १५-वज्र, १६-सिद्धि, १७-व्यतापात, १८-वरीयान, १९-परिघ, २०-शिव, २१-सिद्धि, २२-साध्य, २३-शुभ, २४-शुक्ल, २५-ब्रह्मा, २६-ऐन्द्र, २७-वैधृति।

करण—तिथिके आधे भागको करण कहते हैं, इसलिए एक तिथि में दो करण होते हैं। यह दो प्रकार के हैं, चल और स्थिर। चल करण सात हैं, १-बव, २-बालव ३-कौलव, ४-तैतिल, ५-गर, ६-वणिज और ७-विष्टि या भद्रा। स्थिर करण चार हैं-१-शकुनि, २-चतुष्पद, ३-नाग और ४-किंस्तुघ्न।

शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा के उत्तरार्ध को बव द्वितीया के पूर्वार्धको बालव और उत्तरार्धको कौलव, तृतीया के पूर्वार्ध को तैतिल, और उत्तरार्धको गर, चतुर्थीके पूर्वार्धको वणिज और उत्तरार्ध को विष्टि करण कहते हैं। पंचमी के पूर्वार्धसे फिर बव का आरंभ होता है। इस प्रकार कृष्ण पक्षकी चतुर्दशाके पूर्वार्ध तक इन सात करणोंके ८ फेरे होते हैं। इसीलिए यह चल कहलाते हैं। कृष्ण चतुर्दशीके उत्तराधमें शकुनि, अमावसके पूर्वार्धमें चतुष्पद उत्तरार्ध में नाग और शुक्ल प्रतिपदाके पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न होते हैं। शुभाशुभ विचारसे भद्रा अशुभ समझी जाती है।

पञ्चाङ्ग कैसे देखना चाहिए? उदाहरण के लिए इस वर्ष के काशीके एक पञ्चाङ्गके शुद्ध चैत्र शुक्ल पक्षकी एक प्रति-लिपि दी जाती है। पहले कालम के ऊपर 'दि' से दिनमान अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तकका समय समझना चाहिए जो घड़ी पलमें दिया जाता है। इसके नीचे पहले खाने में $\frac{३१}{२५}$ लिखा है जो ३१ घड़ी २५ पल है। दूसरे खानेमें केवल २९ लिखा है जिसका अर्थ है ३१ घड़ी २९ पल। इसकी तथा नीचेके और खानोंकी ३१ घड़ी जगहकी तंगीके कारण छोड़ दी गयी है। ३१।५८ के बाद जब दिनमान ३२ घड़ी १ पलका हो गया तब ३२ भी लिख दिया गया। उसके बाद केवल पलके अंक लिखे गये हैं। एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तकका समय ६० घड़ीका होता है, इसलिए रात्रिमान जाननेके लिए ६० घड़ीसे दिनमान घटा देना चाहिए, जैसे परिवाके दिन शुक्रवारको रात्रिमान = ६० घड़ी - ३१ घड़ी २५ पल = २८ घड़ी ३५ पल।

दूसरे कालमके ऊपर 'ति से तिथि और तीसरे कालमके ऊपर 'वा' से वार समझना चाहिये। चौथा कालम दो पतले पतले कालमों में बँटा है जहां घ. प. लिखे हैं; इससे समझना चाहिये कि परिवा १ तिथि शुक्रवारको २४ घड़ी ४४ पल तक रहेगी उसके बाद दूइज लगेगी, परन्तु लौकिक व्यवहारमें दूइजका मान शनिवारको होगा जब वह १८ घड़ी ५७ पल तक ही रहेगी। इस तरह प्रकट है कि तिथिका मान प्रति दिन घटता जारहा है, यहाँ तक कि बुधवारको छठ सूर्योदयसे १ घड़ी ५२ पल तक रहेगी फिर सप्तमी लग जायगी जो इसके उपरान्त ५८ घड़ी ६ पल तक रहेगी और इसी दिन समाप्त हो जायगी और अष्टमी लग जायगी। इस लिए सप्तमी तिथि लौकिक व्यवहारमें नहीं लिखी जायगी और इसका हानि' (क्षय) समझी जायगी। ऐसी तिथिको 'अवम्' तिथि और वार को 'त्र्यहस्पर्श' कहते हैं क्योंकि इस दिन तीन तिथियोंका स्पर्श होता है। वृहस्पतिको अष्टमी ५९ घड़ी १७ पल तक और शुक्रवारको नवमी ५९ घड़ी ५३ पल तक रहेगी। शनिवारको दशमी पूरे दिन रात रहेगी और दूसरे दिन रविवारको १ घड़ी ५३ पल पर समाप्त होगी। इसलिए दशमीकी वृद्धि हुई। साधारणतः एक ही पक्षमें तिथि की वृद्धि और क्षय नहीं होता।

[शेष पृष्ठ १२० का]

पारिभाषिक शब्दावली (२)

लें ? भाषाको आवश्यकतासे अधिक क्यों जटिल बनाया जाय ?

पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि अँग्रेजीमें बहुतसे शब्द ऐसे हैं जिनके साधारण अर्थोंमें बहुत सूक्ष्मान्तर है परन्तु पारिभाषिक अर्थोंमें महान् अन्तर हो जाता है। साधारण बोलचालमें type, kind, class, category, species, rank, deqree—शब्दोंके अर्थोंमें बहुत थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। परन्तु गणितीय विषयोंमें इनमेंसे लगभग प्रत्येकका एक विशेष अर्थ है। अतः गणितीय शब्दावलीमें इन सबके लिये पृथक-पृथक पर्याय नियुक्त करने होंगे। हमारी शब्दावली इस प्रकारकी हो सकती है :

type	नमूना
kind	प्रकार
class	संघ
order (of a diff. coeff.)	वर्ग
order (of terms)	क्रम
category	जातिवर्ग
species	जाति
rank (of a matrix)	पदवी
degree (of an equation)	घात
degree (in an angle)	अंश

यदि किसी शब्दका पर्याय बनाना कठिन हो तो अंग्रेजीके शब्द ज्योंके त्यों लेनेमें कुछ हर्ज नहीं है, यदि शब्द सरल और छोटे हों। 'स्केल' को हम 'मापदण्ड' नहीं कह सकते क्योंकि 'मापदण्ड' हम 'standard' के अर्थमें ले चुके हैं। इसके अतिरिक्त 'स्केल' एक छोटा और सरल शब्द है जिसके याद करनेमें अशिक्षित लोगों को भी कठिनाई नहीं होगी। अतः 'स्केल' शब्दको हम ज्योंका त्यों अपना सकते हैं। इसी प्रकारका शब्द Pole है जिसके चार अर्थ हैं :

Pole (of polar coordinates)	आदि बिन्दु
Pole and polar	ध्रुव और ध्रुवी
Pole (measure)	पोल
Poles (of a function)	ध्रुव

परन्तु हम अँग्रेजीके केवल ऐसे ही शब्द ग्रहण कर सकते हैं जिन पर हिन्दी व्याकरणके नियमोंका प्रयोग न करना पड़े। 'पोल' और 'स्केल'—शब्दोंको हम इसलिये अपना सकते हैं कि इन शब्दोंके किसी रूपान्तरकी गणितीय भाषामें आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु यदि हम 'Graph' शब्दको अपनाना चाहें तो Graphic, Graphical, Graphically और Graph-paper को क्रमशः ग्राफीय, ग्राफात्मक, ग्राफतः और ग्राफ-पत्र कहना होगा। 'ग्राफ-पत्र' को तो हिन्दी-भाषी कदाचित अंगीकार कर लें परन्तु अन्य शब्द कदापि स्वीकृत नहीं हो सकते। इसलिये 'ग्राफ' के लिये एक नये शब्द 'आलेख' का सृजन करना आवश्यक है। इस प्रकार उपरिलिखित शब्दोंके पर्याय यह होंगे :

Graph	आलेख
Graph-paper	आलेख-पत्र
Graphic representation	आलैखिक निरूपण
Graphical method	आलेख विधि
Graphically	आलेखतः

व्यक्तिवाचक शब्दोंके पर्याय तो व्यक्तिवाचक ही बनाने पड़ेंगे। Abel's Theorem को 'ऑबेलका प्रमेय' के अतिरिक्त और कुछ भी कहना युक्ति-संगत न होगा। इस प्रकारके शब्दोंमें तो कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी परन्तु कुछ व्यञ्जक ऐसे हैं जिनके नाम विभक्ति रूपमें नहीं हैं वरन व्यक्तियोंके नामोंके रूपान्तर मात्र हैं। Jacobi's determinant का एक स्वतन्त्र नाम Jacobian ही पड़ गया है। इसी प्रकार Wronski's determinant का नाम Wronskian ही पड़ गया है। इन नामोंके पर्याय यदि हम चाहें तो 'जैकोबीका सारणिक' और 'रौन्स्कीका सारणिक' रख

सकते हैं। परन्तु यहाँ एक बात विचारणीय है। जब हम Euler's constant कहते हैं तो उसका अर्थ होता है 'एक ऐसा अचल जिसका अध्ययन या उपलंभन सबसे पहिले औयलर ने किया था।' इसलिये इसको 'औयलरका अचल' कहना ही उचित होगा। इसी प्रकार यदि हम Jacobian को 'जैकोबीका सारणिक' कहें तो कोई विशेष हानि नहीं है। परन्तु Jacobian के विषय ने अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर लिया है जिसका 'सारणिक' के साधारण नियमोंसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। Jacobian के प्रसंगका अब 'वास्तविक विश्लेषण' (Real Analysis) में ऐसा ही स्थान है जैसा ज्यामितिमें वृत्तका या बीजगणितमें 'निष्पत्ति और अनुपात' का। इसलिये यदि Jacobian का 'सारणिक' विषयसे एक बिलकुल स्वतन्त्र नाम रख दिया जाय तो अत्युत्तम है। अतः Jacobian को हिन्दीमें भी 'जैकोबियन' ही क्यों न कहें? यदि यह व्यापक नियम बना लें कि अँग्रेजीके जो शब्द व्यक्तियोंके नामोंके रूपान्तर मात्र हैं उन्हें ज्योंका त्यों हिन्दीमें अपना लिया जाय तो बहुत सुविधाजनक होगा। इस प्रकार हिन्दीमें भी Hessian को 'हेसियन' और 'Wronskian' को 'रौन्स्कियन' ही कहेंगे।

— —

हवाई फोटोग्राफी द्वारा सिंचाईके इञ्जीनियरोंकी सहायता

सिंचाईके इंजीनियर जब पानी इकट्ठा करनेके लिये किसी तालाबके निर्माणका विचार करते हैं तो इसके लिये जो क्षेत्र चुना जाता है, उसमें कितना पानी आ सकता है यह जानना अत्यन्त महत्व रखता है। अभी तक इसके लिये यह किया जा रहा है कि थोड़ी थोड़ी दूर पर सारे क्षेत्रके आरपारके कुछ भाग लेकर उन्हें पृथक् पृथक् नाप कर औसत निकाल लिया जाता है। इस प्रणालीमें जहाँ कहीं सन्देह रह जाय उसे दूर करनेके लिये सीधी फोटोग्राफीसे काम लिया जाता है। आकाश से सीधे नीचेकी तस्वीर ली जाती हैं। पृथ्वीका प्रत्येक भाग दो चित्रोंमें आ जाता है। जब इन चित्रोंको स्टीरियोस्कोप यंत्रसे देखा जाता है तो दर्शकको ऐसा मालूम होता है कि वह एक ठोस प्रतिरूपको देख रहा है। इन दोनों चित्रोंको एक साथ नक्शेमें जोड़कर रखनेसे उस स्थानमें पानी भरनेकी वास्तविक शक्तिका पता लग जाता है। पहली प्रणालीकी तरह इसमें बहुत सी बातोंको यों ही मान नहीं लेना पड़ता।

यह प्रणाली इतनी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है कि भारतीय पर्यवेक्षण विभाग ने यह निश्चय किया है कि भूमिकी शक्तिकी नाप जोखके लिये बहुत सा खर्च उठा कर उसे जगह जगह बराबर करनेकी आवश्यकता नहीं रही है।

शार्क-यकृत तेलका उपयोग नाजोंका शर्करीकरण

भारतमें शार्क मछलीके यकृतके तेलके उपयोगकी जो इधर पिछले ४ वर्षोंमें उन्नति हुई है उसका कारण जितना चिकित्साकी दृष्टिसे इसका उत्तरोत्तर मान्य हो जाना है उतना ही विदेशसे आने वाले तेलकी युद्धकालीन कमी भी है। काड मछलीके तेलके मानमें इसका उत्पादन अभी भारतमें १५,००,०० पौंड तक पहुँच सका है। पौष्टिक तत्त्व प्रदान करनेके उद्देश्यसे इसका उपयोग व्यापक क्षेत्रमें संभव है और समुद्रतटके प्रदेशोंमें इसका उत्पादन लगातार बढ़ता जा रहा है। वस्तुतः इस उद्योगके रूपमें आय-वृद्धिका एक नवीन साधन उपलब्ध हुआ है। इस उद्योगकी प्रगतिके सम्बन्धमें कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों पर "वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसन्धान पत्रिका" के जनवरी मासके अंकमें प्रकाश डाला गया है। नाजोंमें उपस्थित स्टार्चको शक्करमें परिवर्तित करने और उसके घोलोंका शराब, सिरका इत्यादि तैयार करनेके उद्योगोंके लिये इसका विशेष महत्व है। नाजोंके शर्करीकरणकी परम्परागत विधि उनके 'माल्ट' तैयार करनेकी रही है। ज्वार, बाजरा, मकई और गेहूँके नये साधनों द्वारा शर्करीकरणकी विधियों पर भी पत्रिकाके एक लेखमें प्रकाश डाला गया है।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—**विज्ञान प्रवेशिका, भाग १**—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—**ताप**—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—**चुम्बक**—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ॥=)

४—**मनोरञ्जक रसायन**—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

५—**सूर्य-सिद्धान्त**—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—**वैज्ञानिक परिमाण**—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ॥।),

७—**समीकरण मीमांसा**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥), द्वितीय भाग ॥=),

८—**निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)**—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ॥),

९—**बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित**—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।-),

११—**केदार-बद्री यात्रा**—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—**वर्षा और वनस्पति**—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—**मनुष्यका आहार**—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—**सुवर्णकारी**—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—**रसायन इतिहास**—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ॥।),

१६—**विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक**—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—**विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क**—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १॥),

१८—**फल-संरक्षण**—दूसरापरिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसार डी० एस-सी०; २),

१९—**व्यङ्ग-चित्रण**—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—**मिट्टीके बरतन**—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—**वायुमंडल**—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १॥),

२२—**लकड़ी पर पॉलिश**—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २॥),

२४—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १॥),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये – ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगडान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, १२० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक घरमें एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। हिन्दुस्तान रिविउ लिखता है—should be widely welcomed by the Hindi knowing public in this country.

अमृत बाजार पत्रिका लिखती है—It will find an important place in every home like the Hindi almanac.

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशबेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

निम्न पुस्तकें छप रही हैं

रेडियो—ले० प्रो० आर० जी० सक्सेना।

सरल विज्ञान सागर (द्वितीय खंड)—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद।

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ६१	मेष, सम्वत् २००२ अप्रैल १९४५	संख्या १

पारिभाषिक लिपि

(डा० ब्रजमोहन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

आज कल 'नागरी लिपिमें सुधार' का प्रश्न छिड़ा हुआ है। इस प्रश्नके व्यापक अंगोंसे मुझे इस समय कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ केवल उन्हीं अंगों पर विचार करना है जिनका सम्बन्ध पारिभाषिक-शब्दावलीसे है। सबसे पहली बात तो यह दृष्टिगोचर होती है कि अंग्रेजी में कुछ स्वर ऐसे हैं जिनके लिए हिन्दीमें संगत-स्वर नहीं है, जैसे Cod, और Hocky में 'O' का उच्चारण और Hat और And में 'A' का उच्चारण। लोग प्रायः Hat को 'हैट' और And को 'ऐण्ड' लिखते हैं। यह रीति अब लगभग सर्वव्यापी हो गई है। परन्तु अंग्रेजी के God को कुछ लोग गाड, कुछ गॉड और कुछ अन्य लोग 'गौड' लिखते हैं। प्रश्न यह है कि इन तीनोंमेंसे किस रूपको उचित माना जाय।

इसी प्रकार अंग्रेजीके शब्द 'Pen' के 'e' के उच्चारणके लिए हिन्दीमें कोई स्वर नहीं है। हिन्दी भाषी इन शब्दोंके लिखनेमें 'ए' की मात्रासे ही काम लेते हैं। अतः यह लोग Pen को पेन, Get को गेट, Pest को पेस्ट लिखते हैं। इस प्रकार अंग्रेजीके Get और Gate में, Pen और Pain में तथा Pest और Paste में कोई अन्तर नहीं रहता। इसलिए कुछ लोगोंने यह प्रस्तावित किया है कि अंग्रेजीके इस स्वरके लिये हिन्दीकी 'ए' की उल्टी मात्रा निर्धारितकी जाय। यदि यह प्रस्ताव मान लिया जाय तो हम उपरिलिखित शब्द इस प्रकार लिखेंगे

Get गेट	Gate गेट
Pen पेन	Pain पेन
Pest पेस्ट	Paste पेस्ट

यह प्रस्ताव तर्क-सम्मत तो मालूम देता है परन्तु युक्ति-संगत नहीं है। प्रश्न यह है कि हम हिन्दीका पारिभाषिक शब्द-भांडार बढ़ाना चाहते हैं अथवा हिन्दी भाषियोंको अंग्रेजी सिखाना चाहते हैं। जिस दिन हिन्दी भाषियोंको नागरी लिपि द्वारा अंग्रेजीका ज्ञान कराना होगा उस दिन तो नागरी लिपि अथवा वर्णमालामें थोड़े बहुत हेर फेर करने आवश्यक होंगे। परन्तु आज तो प्रश्न केवल हिन्दीकी शब्द-सम्पत्ति बढ़ानेका है। इस अभिप्रायकी पूर्तिके लिए यह बिलकुल अनावश्यक है कि कोई नया स्वर बनाया जाय। जितनी जीवित भाषायें संसारमें हैं सबकी सब अन्य भाषाओंसे शब्द ग्रहण करती हैं परन्तु वह उन शब्दोंको अपनी लिपि और वर्णमालाके अनुसार तोड़ मरोड़ लेती हैं, और उन्हें अपने ही व्याकरणके नियमोंसे बाँधती हैं। उनके लिए कोई नया स्वर या व्यंजन नहीं बनातीं। चाणक्यका नाम अंग्रेजीमें इस प्रकार Chanakya लिखा जाता है, 'ण' के लिए कोई नया व्यंजन नहीं बनाया जाता। गंगाजी के नामको बिगाड़कर अंग्रेजोंने Ganges बनाया है। यदि नाम न भी बिगाड़ा होता तो भी वह लोग गंगाको Ganga लिखते। 'ङ' के लिए कोई नया अक्षर नहीं बनाते। हिन्दीके अनेक शब्द और नाम ऐसे हैं जिन्हें अंग्रेजीमें शुद्ध रूपमें लिख ही नहीं सकते। ऐसे शब्दोंका अंग्रेजी में निकटतम विकृत रूप ही लिखा जाता है और वही चालू हो जाता है जैसे विज्ञान—Vigyan (या Vijnan), दर्शन—Darshan, इतिहास—Itihas। केवल कहीं-कहीं वह लोग इतना अवश्य कर देते हैं कि ऐसे स्थलों पर n, d, t के नीचे एक बिन्दी लगा देते हैं। परन्तु यह प्रथा भी

सर्वव्यापी नहीं है। यदि आज हम अंग्रेजी नामों अथवा शब्दोंको अपनी पारिभाषिक शब्दावलीमें ग्रहण करते समय नये-नये चिन्ह और स्वर बनाने लगें तो कल को यदि हम कोई शब्द फ्रेंच, जर्मन, या रूसी भाषासे लेंगे तो कदाचित हमें और भी कई नये चिन्ह बनाने पड़ेंगे। इस प्रकार तो नये नये चिन्होंके निर्माणका कभी अन्त ही नहीं होगा। जब हम Platt नाम हिन्दीमें लिखते हैं तो 'प्लैट' लिखा जाता है, A के उच्चारणके लिए कोई नया स्वर नहीं बनाया जाता। इसी प्रकार यदि हमको गणितज्ञ Abel का नाम लिखना हो तो हम 'आबेल' या 'ऐबेल' क्यों न लिखें। उसके लिए एक नये स्वर 'ऑ' का सृजन क्यों करें ?

अंग्रेजीका एक और भी उच्चारण है जिसके लिए हिन्दीमें कोई चिन्ह नहीं है। अंग्रेजीके शब्द People को मैंने हिन्दीमें कई प्रकारसे लिखा देखा है--

पीपुल, पीपल, पीपिल, पीप्ल

वास्तवमें यह चारों हिज्जे अशुद्ध हैं। क्योंकि इनमें से एक भी उस उच्चारणका द्योतक नहीं है जो अंग्रेजीके शब्द People में समाविष्ट है। तो क्या हम इस उच्चारणके लिए भी एक नये चिन्हकी सृष्टि करें ? इस प्रकार तो हमारी चिन्ह-सूची अथवा वर्णमाला बढ़ती ही चली जायगी। मेरी समझमे तो जहां कहीं हिन्दीमें अंग्रेजीके किसी उच्चारणका अभाव दिखाई दे वहाँ निःसंकोच रूपसे उसके निकटतम हिन्दी उच्चारणके चिन्ह से काम लेना चाहिए। इस प्रकारके थोड़ेसे शब्दों और नामोंके उदाहरण मैं यहाँ देता हूँ—

College	कॉलिज
Hockey	हॉकी
Gauss	गाउस
Wronski	रौन्सकी
Landau	लैण्डाउ
Hessian	हेसियन
Euler	ऑयलर
Schlicht	श्लिख्ट
Rank	रैंक
Whipple	ह्विपिल
Little wood	लिटिल वुड

इस सम्बन्धमें एक प्रश्न और भी विचारणीय है। वह है विदेशियोंके नामोंके रूप का। फ्रेंच और जर्मनोंके नामोंके विकृत रूप ही अंग्रेजीमें प्रचलित हो गये हैं। जैसे De Moivre का वास्तविक उच्चारण दःम्वाव्रे था। परन्तु अंग्रेजीमें अधिकतर लोग इसे डी मौयवर पढ़ते हैं। अब प्रश्न यह है कि जब हम De Moivre का नाम हिन्दीमें लिखें तो दःम्वाव्रे लिखें या डीमौयवर। हिन्दी लेखकोंमें इस प्रकारके नामोंके लिखनेकी कोई निश्चित पद्धति नहीं है। मेरी समझमें जो नाम भारतवर्षमें जिस रूपमें अंग्रेज़ीमें प्रचलित हो गया है उसे हिन्दीमें भी उसी रूपमें लिखा जाय। अतः हम उपरिलिखित नामको डी मौयवर लिखेंगे न कि दःम्वाव्रे। जिन नामोंके दो या अधिक उच्चारण प्रचलित हों उनके वह उच्चारण लेंगे जो अधिक प्रचलित हों। अतः हम नामोंको इस प्रकार लिखेंगे :—

Dirichlet	डिरिचले
Des Cartes	दः कार्ते
Schwarz	श्वार्ज
Van der pol	वैन्दर पोल

विभिन्न रंगोंका शीशेका कपड़ा

लन्दन तार द्वारा—युद्धके बाद ब्रिटेनका शीशा-उद्योग संसारमें सबसे अधिक सुन्दर कपड़े बनाना प्रारंभ कर देगा। ब्रिटेनके अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिकोंने ऐसी प्रणाली ढूँढ़ निकाली है जिसके द्वारा शीशेके तारोंसे बुने, रेशम जैसे चमकदार इस कपड़ेमें इन्द्रधनुषके सारे रंग बुने जा सकते हैं।

यह कपड़ा सुन्दर तो है ही पर साथ ही साथ इसमें ये गुण विद्यमान हैं कि न तो इस पर धब्बा लगता है, न रंग फीका पड़ता है, और न आगसे जलता है। मोड़ने तोड़ने पर भी न तो यह टूटता है और न इसमें विकार पैदा होता है। यह कपड़ा सजावटके काममें लाया जायगा। ब्रिटिश वैज्ञानिक ऐसी योजनाएँ बना रहे हैं जिससे यह पहननेके भी काम आ सके। शैफील्ड युनिवर्सिटीके ग्लास टेकनोलाजीके प्रोफेसर डब्ल्यू टर्नरकी धर्मपत्नीने नववधूके रूपमें इसे पहना भी था।

रबर*

(ले०—श्री ओंकारनाथ परती)

रबरका व्यवसाय

गुडियरकी खोजसे रबरकी उपयोगिता बहुत बढ़ गई किन्तु रबरका प्रयोग धीरे धीरे ही बढ़ा। सन् १८६० ई० तक रबरसे बनाई जाने वाली मुख्य वस्तुएं यह थीं— जूते, बरसाती कोट, बागों में पानी देनेके पाइप और घरेलू वस्तुएँ। इसके बाद बाइसिकिल आई और रबरके टायर और ट्यूबों की माँग बढ़ने लगीं। सन् १६०७ ई० से मोटरकार बाज़ार में बिकने लगीं जिससे रबरके टायर और ट्यूबों की माँग बहुत बढ़ गई। इलीनौयस यूनिवर्सिटीके प्रो० राजर एडम्सके कथनानुसार "...रबरके दो पेड़ जितनी रबर साल भरमें देते हैं उससे फोर्ड मोटर का एक टायर बनता है।..."और जब यह ध्यान में रखा जाये कि केवल संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सन् १६२५ ई० में ६ करोड़ टायर बने थे तो संसारमें रबरके प्रयोग का कुछ अनुमान किया जा सकता है। यह अन्दाज़ लगाया गया है कि सन् १६४१ ई० में संसारमें १६६०००० टन रबर पैदा हुई थी।

कुछ रबरका प्रयोग इबोनाइट [Ebonite] और वल्कैनाइट बनानेमें भी होता है। यह रोजन हैं और इनसे बिजली के स्विच इत्यादि बनाये जाते हैं।

भारतवर्षमें सन् १६३८ ई० में रबर के व्यवसाय की यह दशा थी :—

खेतों की गिनती	१२,२२१
खेतों का क्षेत्रफल	
(१) जो बोये गये हैं	१,२५,०००एकड़
(२) जिनसे पैदावार होती हैं	१,१२,००० ,,
आदमी नौकर	३२,३७७
कच्ची रबरका बनना	३,१०,७७,०००पौंड
सुखाई हुई रबर (३१-१२-३८ को)	८०,५१,०००,टन

भारतमें रबरका व्यय कितना होता है इसका अनुमान निम्नलिखित आँकड़ोंसे लगाया जा सकता है। इन आँकड़ोंमें रबर और उससे बनाई हुई सब वस्तुएँ रबरके नाम से ही लिखी गई हैं :—

सन्	बाहरसे आयी रबर	बाहर भेजी गयी रबर
१६३५-३६	१६२ लाख रुपये	५७ लाख रुपये
१६३६-३७	१६६ ,, ,,	५३ ,, ,,
१६३७-३८	१८१ ,, ,,	८४ ,, ,,
१६३८-३६	१४१ ,, ,,	७२ ,, ,,
१६३६-४०	१४८ ,, ,,	६४ ,, ,,

भारतसे अधिकतर कच्ची रबर ही बाहर भेजी जाती है और यहाँ अधिकतर बर्मासे ही रबर आती थी। उदाहरणार्थ सन् १६३८ ई० में बर्मासे ५१,२६,००० पौंड रबर भारतमें आई थी।

आजकल मलाया, सिंगापूर और बर्मा जापानियों के हाथ में है। इन प्रदेशोंमें संसार की ६० प्रतिशत रबर होती थी। इन प्रदेशोंके जापानियोंके हाथमें चले जानेसे मित्र राष्ट्रोंके समक्ष रबर की बड़ी समस्या है। सब स्थानों में रबर पर नियन्त्रण (कन्ट्रोल) है। इसका मूल्य बढ़ता जा रहा है। सन् १६१० ई० में इसका मूल्य सबसे ऊँचा १२ शि० ६ पें० प्रति पौंड था, क्योंकि इस समय मोटरकार नई नई चलने लगी थी। इसका फल यह हुआ कि सब लोग रबरकी खेती करने पर टूट-पड़े। सन् १६२२ ई० में इसकी अत्यधिक उपज हुई और इसका भाव ६¾ पेंस प्रति पौंड तक गया। इसके बाद स्टीवेन्सन स्कीम आई और सन् १६२५ ई० में रबरका भाव ४. शि० ८ पें० प्रति पौंड हो गया। सन् १६३० ई० के आरम्भ में रबर का भाव गिर कर २ पें० प्रति पौंड ही रह गया। अब अन्तर्राष्ट्रीय रबर के रोक थाम की विधि [International Rubber Regulation Scheme] बनाई गई। इससे रबर का भाव कभी ६ पें० प्रति पौंडसे नीचे नहीं गिरा। सन् १६४३के अन्तमें रबरका भाव १ शि० प्रति पौंड पर स्थिर कर दिया गया।

पहिले कहा जा चुका है कि बर्मा, मलाया और सिंगापूर जापानियों के हाथ में चले जाने से भारत में रबर का अभाव बढ़ गया है। इसके दो कारण हैं: एकतो बर्मा और मलायासे रबरका आना बन्द हो गया, और दूसरे

मित्र राष्ट्रोंको अब यहीं से रबर जाती है। इस अभाव को पूरा करने के लिये बड़ा परिश्रम किया जा रहा है। सरकारकी ओरसे कई स्थानों पर रबरके पेड़ लगाये गये हैं, परन्तु रबर के पेड़ पाँच से सात साल के पहिले रबर नहीं देते अतः अभी तक रबरका अभाव ही है। भविष्यमें आशा है कि यह अभाव कुछ कम हो सकेगा।

सबसे बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि अमेरिका में रबरका जन्म हुआ किन्तु आजकल कदाचित् वहीं रबर का अभाव सबसे अधिक प्रतीत होता है। जबसे महायुद्ध प्रारम्भ हुआ है तबसे अमेरिकामें भी रबरकी खेती बहुत बढ़ा दी गयी है, किन्तु अभी इन नये खेतों से रबर निकलती नहीं।

जर्मनी, इँगलैंड, अमेरिका आदि देशों में कृत्रिम रबर बनतीहै जिसे यौगिक रबर [Synthetic Rubber] कहते हैं।

यौगिक रबर

प्राकृतिक रबरसे मिलने जुलने वाले सब पदार्थों को यौगिक रबर कहते हैं। सन् १८६० ई० में विलियम्स ने देखा कि रबरको गरम करने पर उसमेंसे जो गैसें निकलती हैं उनमें सर्वप्रधान आइज़ोप्रीन [Isoprene] है। रासायनिक अनुसन्धानोंसे यह सिद्ध हो गया है कि रबर वास्तवमें आइज़ोप्रीन अणुओंसे बनी है। रबरके अणुमें आइज़ोप्रीन अणु एक दूसरेसे गुथे हुये रहते हैं।

यौगिक रबरका इतिहास बड़ा रोचक है। इँगलैंड वाले यह मानते हैं कि सर्वप्रथम टिल्डन ने इसको बनाया और इस खोजका श्रेय उसे मिलना चाहिये। वास्तव में सन् १९०९ ई० में जर्मन रसायनज्ञ फ्रिट्ज़ हौफमैनकी अध्यक्षतामें बायर कम्पनी [Baeyer Company] में यौगिक रबर सफलतापूर्वक बनाई गई। इसके पहले कई रसायनज्ञों ने यौगिक रबर बनाने का दावा किया किन्तु वह उसे दोबारा बनाने में असफल रहे। इँगलैंडमें टिल्डन और परकिनने यौगिक रबरके क्षेत्रमें उत्तम अनुसन्धान किये। जर्मनीके निवासी हैरीज़ने सर्वप्रथम ऐसी यौगिक रबर बनाई जिसे वल्कैनाइज़ किया जा सकता था। सन् १९१२ ई० में न्यूयार्कमें आठवीं अन्तर्राष्ट्रीय ऐप्लाइड केमिस्ट्री की कांग्रेस हुई। इसमें जर्मनी के प्रतिनिधि कार्ल ड्युसबर्ग थे। इन्होंने इस कांग्रेसमें यौगिक रबरके बनाये हुये कुछ मोटरके टायर दिखाये जो चार हज़ार मील चल चुके थे। यौगिक रबरसे बनाई हुई यह प्रथम वस्तुएँ थी जिन्हें सारा संसार जान सका।

आजकल यौगिक रबरके कई नाम हैं और कई प्रकारके कार्बनिक यौगिक इसके बनानेमें प्रयुक्त होते हैं। नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें यौगिक रबर, उनके नाम और मुख्य रासायनिक अङ्ग दिये हुये हैं। इस सारिणी में केवल मुख्य यौगिक रबरों का हाल है।

नाम	मुख्य रासायनिक अङ्ग
एक्रोनाल [Acronal]	पोलीएक्राइलिक एस्टर [Polyacrylic ester]
ए० एक्स० एफ [A.X.F.]	कोपोलीमर आफ़ इथलीन [Copolymer of ethylene]
बूना ८५ [Buna 85]	ब्यूटाडाइन पोलीमर [Butadiene polymer]
बूना ११५ [Buna 115]	,, ,,
बूना एन [Buna N]	,, कोपोलीमर [,, Copolymer]
बूना एस [Buna S]	,, ,
बूना एस एस [Buna SS]	,, ,,
ब्यूटाइल [Butyl]	ओलीफीन-डाइओलीफीन कोपोलीमर [Olefine-di-olefine Copolymer]
केमीगम [Chemigum]	ब्यूटाडाइन कोपोलीमर [Butadiene Copoylmer]
इथानाइट [Ethanite]	आरगैनिक पोलीसलफाइड [Organic polysulphide]
फ्लेमीनाल [Flamenol]	पोलीविनाइल क्लोराइड [Polyvinyl chloride]
फौर्मवार [Formvar]	पोलीविनाइल फारमाल [Polyvinyl formal]
हाईकार [Hycar]	ब्यूटाडाइन कोपोलीमर [Butadiene copolymer]
इगलाइट [Igelite]	पोली विनाइल क्लोराइड [Polyvinyl chloride]
कर [Ker]	ब्यूटाडाइन पोलीमर

[Butadine polymer]
कोरोसील [Koroseal] पोली बिनाइल क्लोराइड [Polyvinyl chloride]
मस्टोन [Mustone] क्लोरोप्रीन पोलीमर [Chloroprene polymer]
नोवो प्लास [Novoplas] आरगैनिक पोली सल्फाइड [Organic polysulphide]
ओप्पानॉल [Oppanol] आइसोब्यूटलीन पोलीमर [Isobutylene polymer]
पी० वी० ए० [P.V A] पोली विनाइल एल्कोहल [Polyvinyl alcohol]
परबूनान एक्‌स्ट्रा [Perbunan extra] ,, ,,
प्लैक्सीगम [Plexigum] पोली एक्राइलिक एस्टर [Polyacrylic ester]
परड्यूरन [Perduren] आरगैनिक पोली सल्फाइड [Organic polysulphide]
पोलीथीन [Polythene] पोलीमराइज़ड इथलीन [Polymerised ethylene]
सारान [Saran] पोलीविनायलीडीन क्लोराइड [Polyvinylidene chloride]
एस० के० ए० [S.K.A.] ब्यूटाडाइन पोलीमर [Butadiene polymer]
एस० के० बी० [S K.B.] ,, ,,
सोवप्रीन [Sovprene] क्लोरोप्रीन पोलीमर [Chloroprene polymer]
थायोकॉल [Thiokole] आरगैनिक पोलीसल्फाइड [Organic polysulphide]
थायोनाइट [Thionite] ,, ,,
विनीड्यू [Vinidue] पोली बिनाइल क्लोराइड [Polyvinyl chloride]
विनीलाइट [Vinilite] पोलीविनाइल क्लोराइड कोपोलीमर [Polyvinyl chlorid copolymer]
विस्टानैक्स [Vistanex] आइसो ब्यूटिलीन पोलीमर [Iso butylene polymer]
वल्काप्लास [Vulcaplas] आरगैनिक पोलीसल्फाइड [Organic polysulphide]

उपरोक्त सारिणीसे यह पता चलता है कि यौगिक रबर बनानेमें मुख्यतर ब्युटाडाइन, आइसोब्यूटिलीन, एसिटलीन [Acetilene] और इथलीन काममें लाई जाती हैं।

ब्युटाडाइन [Butadiene] के अणुका रासायनिक रूप इस प्रकार है।

$Ch_2 = Ch—CH = CH_2$

जर्मनीमें यह या तो एसिटलीन गैससे बनाई जाती है जो कैल्सियम कारबाइड पर पानी छोड़ने से पैदा होती है या पेट्रोल स्वच्छ करते समय निकलती हुई गैसोंसे पृथक कर ली जाती है। अमेरिका में यह मुख्यतर पेट्रोलके सोतों से निकली हुई प्राकृतिक गैसोंसे प्राप्त की जाती है। रूस में यह अल्कोहलसे रासायनिक परिवर्तनों द्वारा प्राप्त की जाती है। यह अनुभव किया गया है कि एसिटलीनसे प्राप्त ब्युटाडाइन अधिक स्वच्छ होती है। एसिटलीन पहिले हलके गन्धकाम्ल [Sulphuric acid] में पहुँचाई जाती है। इस क्रियासे एसिटलडीहाइड [Acetaldehyde] बनाते हैं। एसिटलडीहाइड में थोड़ा क्षार [Alkali] मिलानेसे एल्डौल [Aldol] बन जाती है। एल्डौल में १००° सें० तापक्रम पर थोड़ा सा निकल [Nickel] मिलाकर हाइड्रोजन गैस मिलाई जाती है। इससे ब्युटिलीन ग्लाइकौल [Butylene glycol] बनता है। ब्युटिलीन ग्लाईकौलके अणुसे पानीके अणु निकाल देने पर ब्युटाडाइन बन जाती है। संक्षेप में,

एसिटलीनसे एसिटलडीहाइडसे एल्डौलसे ब्युटिलीन ग्लाईकौलसे ब्युटाडाइन

आइसोब्युटलीन [Isobutylene]: यह पेट्रोलके सोतोंसे निकली हुई गैसोंमें मिली रहती है। इनसे इसे पृथक कर लिया जा सकता है। यह पेट्रोलसे भी प्राप्त की जाती है।

एसिटलीन [Acetylene]: एसिटलीन अधिकतर कैलसियम कारबाइड पर पानी छोड़ कर प्राप्त की जाती है। एसिटलीन से रासायनिक प्रयोगों द्वारा कई पदार्थ

प्राप्त किये जाते हैं जिनसे यौगिक रबर बनाई जाती है। उदाहरण के लिये क्लोरोप्रीन [Chloroprene] बनाने के लिये पहले एसिटलीनसे मौनोविनाइल एसिटलीन [Monovinyl acetylene] बनाई जाती है और फिर उससे क्लोरोप्रीन

एसिटलीनसे मौनोविनाइल एसिटलीनसे क्लोरी विनाइल मौनो एसिटलीन या क्लोरोप्रीन

एसिटलीन पर हाइड्रोजन क्लोराइड [Hydrogen chloride] के प्रयोग से विनाइल क्लोराइड [Vinyl chloride] प्राप्त की जा सकती है। एसिटलीन पर ग्लेशियल एसिटिक अम्ल [Glacial acetic acid] के प्रयोग से [साथमें थोड़ेसे पारा के लवण (Mercury salt) का रहना आवश्यक है] विनाइल एसीटेट [Vinyl acetate] प्राप्त होता है।

इथलीन [Ethylene]: यह अधिकतर पेट्रोल के सोतोंसे निकली हुई गैससे प्राप्त की जाती है। यह यौगिक रूपसे भी तैयार की जा सकती है। रासायनिक क्रियाओं द्वारा इससे विनाइल क्लोराइड और विनाइल एसीटेट प्राप्त किये जाते हैं।

इन यौगिकोंके अतिरिक्त और भी यौगिक रबर बनाने की क्रियाओं में प्रयुक्त होते हैं जिनमेंसे मुख्य स्टाइरीन [Styrene] और एक्राइलोनाइट्राइल [Acrilonitrile हैं।

यौगिक रबर बनानेकी विधि

यौगिक रबर बनाने की दो विधियाँ हैं। पहली विधि में कार्बनिक यौगिकोंका जटिल अणु बनानेके लिये अधिकतर इन यौगिकोंमें सोडियम मिला कर रख दिया जाता है। सोडियमके प्रभावसे एक ही प्रकारके अणु आपस में गुथसे जाते हैं और एक जटिल अणु बन जाता है। आजकल यह विधि अधिकतर रूसमें प्रयुक्त होती है और एस० के० बी० रबर ऐसे ही बनाई जाती है। दूसरी विधि में कार्बनिक यौगिक पानीमें थोड़ा साबुन घोलकर मथ दिये जाते हैं। साबुनके अतिरिक्त और भी पदार्थ मिलाये जाते हैं। थोड़ी देर बाद रबरके दुग्धके समान एक पदार्थ बन जाता है जिससे रबर-दुग्धकी तरह रबर प्राप्त की जाती है। दूसरी विधि सर्वत्र प्रयोग में लाई जाती है और पहली विधिसे कई रूप में अच्छी है।

पहले जो सारिणी दी गयी है उससे यह ज्ञात हो सकता है कि किस यौगिक रबरमें कौनसा मुख्य रासायनिक अङ्ग है। इस मुख्य रासायनिक अंक को लेकर उपरोक्त विधियों से वह यौगिक रबर तैयार की जाती है।

यौगिक रबरमें बहुतसे दुर्गुण हैं और कई गुण। यौगिक रबरका मूल्य प्राकृतिक रबर से अधिक होता है कई प्रकार की यौगिक रबर प्राकृतिक रबरसे घटिया होती है। यह देखा गया है कि साधारणतया प्राकृतिक रबर ही उत्तम है किन्तु कुछ विशेष रूप में यौगिक रबर अधिक अच्छी है। रबर की कड़ी और मज़बूत वस्तुएँ बनानेमें यौगिक रबर प्राकृतिक रबरसे अच्छी रहती है।

इस महायुद्धके प्रारम्भ होनेसे पहिले संसार में रबर इतनी बनाई जाती थी :—

प्राकृतिक रबर , भारत में...........२०,००० टन
,, ,, , मलाया आदि प्रदेशों में ..१०००००० "
यौगिक रबर............... ×
१०२०००० "

जब से यह महायुद्ध प्रारम्भ हुआ है तब से मुख्यतर अमेरिका, रूस और जर्मनी में यौगिक रबर अधिकाधिक मात्रा में बनाई जाती है। मलाया, सिंगापूर आदि जापानियों के हाथ में चले जाने से मित्र राष्ट्रों में रबर का बहुत अभाव हो गया इससे यौगिक रबर के बनाने वालों को बड़ी मदद मिली, रबर का मूल्य बढ़ गया और यौगिक रबर की महत्ता भी बढ़ गई।

पहले दी गई सारिणीमें यौगिक रबरकी खपत नहीं के बराबर दी गई है। वास्तव में सन् १९३५ ई० में रूस ने २५००० टन यौगिक रबर बनाई थी, और सन् १९३८ ई० में जर्मनी में २५००० टन यौगिक रबर बनाई गई थी। अमेरिकामें भी यौगिक रबरका प्रचार बढ़ रहा था। अमरीकाकी रबर सर्वे कमेटी सन् १९४२ ई० में यौगिक रबरके नये कारखाने बनाने की सलाह दी थी। अमेरिका में लगभग ७५ करोड़ डालर यौगिक रबरके कारखानों पर खर्च किये जा चुके हैं। इन कारखानावालों का अनुमान है कि सन् १९४४ ई० में वह ८५०००० टन यौगिक रबर बना सकेंगे ।यह अमेरिका के साधारण वार्षिक व्यय

से ४० प्रतिशत अधिक है ।

इस विचारसे सब सहमत होंगे कि भविष्य में रबर का प्रयोग बढ़ जायेगा । एक लेखक का अनुमान है कि भविष्य में रबर की प्राप्ति ऐसे होगी :

प्राकृतिक रबर , भारत से.........	३,००,०० टन
,, ,, , मलाया आदि प्रदेशों से...	१,००,००,०० ,,
यौगिक रबर.........	१,००,००,०० ,,
	२,०३,००,०० ,,

भारतमें यौगिक रबर की सम्भावना

भारतमें पेट्रोलका अभाव है अतः पेट्रोलसे प्राप्य यौगिक भारतमें नहीं बनाये जा सकते । उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि यदि कैल्शियम कारबाइड भारत में बनाई जाय तो उससे एसिटलीन प्राप्त हो सकती है । हालमें बंगलोरमें किये गये अनुसन्धानोंसे यह ज्ञात होता है कि भारत में कैल्सियम कारबाइड बनाई जा सकती है । देहली में ई० एफ० जी० गिलमोर इस विषय पर विचार कर रहे हैं कि भारतमें कैलसियम कारबाइड बनानेका व्यवसाय कैसे आरम्भ किया जाय । किन्तु भारतमें यौगिक रबरका व्यवसाय प्रारम्भ करनेके पहले इस विषय पर विचार करना चाहिये कि इस देश में यौगिक रबरकी कितनी खपत होगी । विद्वानोंका मत है कि इस महायुद्धके बाद प्रकृतिक रबरके सामने यौगिक रबर की खपत भारत में बहुत कम होगी । यौगिक रबर कम मूल्य पर बनाने के लिये एक कारखानेमें कम से कम २८,००० टन रबर प्रतिवर्ष बननी चाहिये । ऐसा कारखाना बनाने में लगभग ३ करोड़ रुपये लगेंगे । इसके अतिरिक्त ऐसे कारखानेमें काम करनेके लिये रसायन विशेषज्ञोंकी आवश्यकता होगी । हमारे देशमें इस विषयके रसायन विशेषज्ञ नहीं हैं । यौगिक रबर की आजकल जो दशा है उसे देखते हुए यह कहना पड़ता है कि इसकी सम्भावना भारत में बहुत थोड़ी है ।

यौगिक रबर का भविष्य

रबरके विशेषज्ञोंका मत है कि महायुद्धके बाद प्राकृतिक रबर प्रति पौंड लगभग ४ आने में तैयार होगी । यौगिक रबर का मूल्य लगभग १४ आने प्रति पौंड होता है । युद्धकालमें तो यौगिक रबरकी खूब खपत हो रही है । अमेरिकाके यौगिक रबरके व्यवसाइयोंका विचार है कि युद्धोपरान्त प्राकृतिक रबरके सामने यौगिक रबरका टिकना कठिन प्रतीत होता है । हालमें यौगिक रबरके व्यवसाइयोंने अमेरिकामें सरकारसे इस विषय पर बातचीत की । सरकारकी ओरसे जो उत्तर मिला. उसमें कहा गया—"यह ज्ञात होता है कि आधुनिक विधियों के प्रयोगसे प्राकृतिक रबर युद्धोपरान्त पूर्व के देशोंसे आकर न्यूयार्क में १० सेन्ट [लगभग ४ आने] प्रति पौंड में बिकेगी । अतः यौगिक रबरके व्यवसायको सुरक्षित रखनेके लिये कमसे कम १० सेन्ट प्रति पौंड और सम्भवतः २० सेन्ट प्रति पौंड कर प्राकृतिक रबर पर लगाना पड़ेगा ।" इस उत्तरमें आगे कहा गया कि यदि ऐसा किया गया तो व्यापारकी हानि होगी और सम्भवतः अन्तमें एक और महायुद्धका श्रीगणेश होगा ।

यौगिक रबरका व्यवसाय स्थिर रखनेके लिये कई प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है । ऐसी खोजोंकी आवश्यकता है जिनसे इसका प्रयोग बढ़ जाय और इससे ऐसी वस्तुएँ बनने लगें जो उपयोगी हों और प्रकृतिक रबर से न बनाई जा सकें । इससे इसका महत्व बढ़ जायगा । अभी यह भी सम्भव है कि भविष्य में यह और सस्ती बनाई जा सके । एक बात स्पष्ट है कि यह चाहे जितनी सस्ती बनाई जाय प्राकृतिक रबरसे सस्ती नहीं बनाई जा सकती ।

इस महायुद्धमें कदाचित् अमेरिकामें ही यौगिक रबर का व्यवसाय बहुत बढ़ गया है । यह आशा है कि भविष्यमें अमेरिकाकी रबर की माँग यौगिक रबर से ही पूरी हो जायगी । युद्ध के बाद प्राकृतिक रबरके सामने यौगिक रबर का टिकना कठिन है । इसलिये अमेरिका की सरकार ने एक कानून पास किया है कि सरकार जब चाहे यौगिक रबर के कारखाने ले सकती है । इस युद्ध ने यौगिक रबर की उपयोगिता सिद्ध कर दी है । इसलिए अमेरिका की सरकार यह नहीं चाहती कि युद्धोपरान्त यौगिक रबर के सब कारखाने बन्द हो जायँ । युद्ध के बाद कदाचित् अमेरिका की सरकार इन कारखानों को ले लेगी और उन्हें यदि आवश्यकता हुई तो घाटे पर ही चलाती रहेगी ।

आजकल यौगिक रबर के क्षेत्र में अनेक अनुसन्धान हो रहे हैं। यह कहना कठिन है कि भविष्य में इसकी उपयोगिता कितनी बढ़ जायगी। सत्य तो यह है कि अभी तक मोटर लारी के टायर बनाने में प्राकृतिक रबर का ही प्रयोग होता है और संसार में रबर का व्यय इसी रूप में सबसे अधिक होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि भविष्य में प्राकृतिक रबर से ही अधिक वस्तुएँ तैयार की जायेंगी, और कुछ मुख्य और महँगी वस्तुएँ बनाने में यौगिक रबर का प्रयोग होगा।

प्राकृतिक रबर और यौगिक रबर

प्राकृतिक रबर के गुण हैं, बनाने की सरलता, मुलायमियत, खिंचाव सहन करने की शक्ति और कम मूल्य। यौगिक रबर के गुण हैं तेल, ताप और ओषजन का कम प्रभाव और कड़ापन। प्राकृतिक और यौगिक रबर के मुख्य गुणों को देखकर ज्ञात होता है कि प्राकृतिक रबर के व्यवसाइयों को यौगिक रबर के व्यवसाइयों से मुकाबले में घबराना न चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यौगिक रबर का चलन अब संसार में हो गया है। यौगिक रबर के क्षेत्र में नये-नये अनुसन्धान हो रहे हैं। इसके विपरीत प्राकृतिक रबर के क्षेत्र में अनुसन्धान नहीं के बराबर हैं। प्राकृतिक रबर के व्यवसाइयों को चाहिये कि वह एक अच्छी सी प्रयोगशाला बनाएँ जिसमें प्राकृतिक रबर पर नये-नये अनुसन्धान किये जायँ। अभी तक कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं है। प्राकृतिक रबर के व्यवसाइयों को सदा यौगिक रबर का ध्यान रखना चाहिये। उन्हें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि सन् १९३० ई० की तरह रबर का भाव गिर जाने से हज़ारों पेड़ न काट देने पड़ें।

उपसंहार

आजकल रबर की चर्चा सब जगह हो रही है। आधुनिक सभ्यता में रबर का प्रयोग बहुतायत से होता है। रबर से बनी हुई वस्तुएँ हज़ारों रूप में हमारे सामने आती हैं। जब से मलाया और सिंगापूर जापानियों के हाथ में चले गये हैं मित्र राष्ट्रों में सब जगह रबर का अभाव है। रबर का अभाव दो रीति से पूरा हो रहा है [यौगिक रबर बना कर और रबर की खेती बढ़ाकर। पहले दो पेड़ों के नाम दिये गये हैं जिनसे उत्तम रबर प्राप्त होती है, हैविया और कास्टीलोआ। इनके अतिरिक्त और भी पेड़ हैं जिनसे रबर प्राप्त की जाती है। इनमें मुख्य सीरीआ [Cearea] और फाइकस इलास्टिका [Ficus elastica] हैं। किन्तु इन वृक्षोंका प्रयोग कम होता है। रबरके अभावकी पूर्ति के लिये बहुतसे अनुसन्धान हो रहे हैं। यह देखा गया है कि क्रिप्टोस्टिजिया ग्रान्डीफ्लोरा [Cryptostegia grandi flora] नामक बेल से रबर प्राप्त हो सकती है। मथुरामें लगभग ७००० एकड़में यह बेल लगाई गई है। अगस्त सन् १९४४ ई० तक यह रबर देने लगेंगी। आशा है कि २०० से ५०० पौंड प्रति एकड़ प्रति वर्ष रबर इन खेतोंसे प्राप्त हो सकेगी।

कुछ विद्वानोंका मत है कि रबर एक ऐसा पदार्थ है जो कृत्रिम या यौगिक रूपसे न बनानी चाहिये। जब प्रकृतिसे थोड़ेसे व्यय से अच्छी रबर प्राप्त हो सकती है तो यौगिक पर क्यों करोड़ों रुपये व्यय किये जाँय। यौगिक रबर बनानेकी जगह क्या यह न अच्छा होगा कि रबरके पेड़ पर अनुसन्धान किये जाँय और प्रति पेड़से प्राप्त रबर की मात्रा बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय। यह सर्वत्र ज्ञात है कि वैज्ञानिक खोजों द्वारा चुकन्दरमें चीनीकी मात्रा ५ प्रतिशत से १८ प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकी। क्या यह सम्भव नहीं है कि रबरके पेड़में भी रबरकी मात्रा बढ़ाई जा सके?

उपरोक्त कथनमें बहुत कुछ सत्य है किन्तु इस महायुद्धने यह अनुभव करा दिया है कि युद्ध कालमें जिन राष्ट्रोंके पास रबरके खेत नहीं हैं वहाँ रबरका अकाल सा पड़ गया है। प्राकृतिक रबरके पेड़ सब देशों में नहीं पनप सकते। इन देशोंमें रबरके अभावकी पूर्ति केवल यौगिक रबर द्वारा ही हो सकती है। यौगिक रबरके कारखाने हर जगह बनाये जा सकते हैं। इन देशोंके लिये यौगिक रबरका व्यवसाय आवश्यक है।

[शेष पृष्ठ २१ पर]

सरल विज्ञान सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम इसका एक और अंश यहाँ देते हैं।
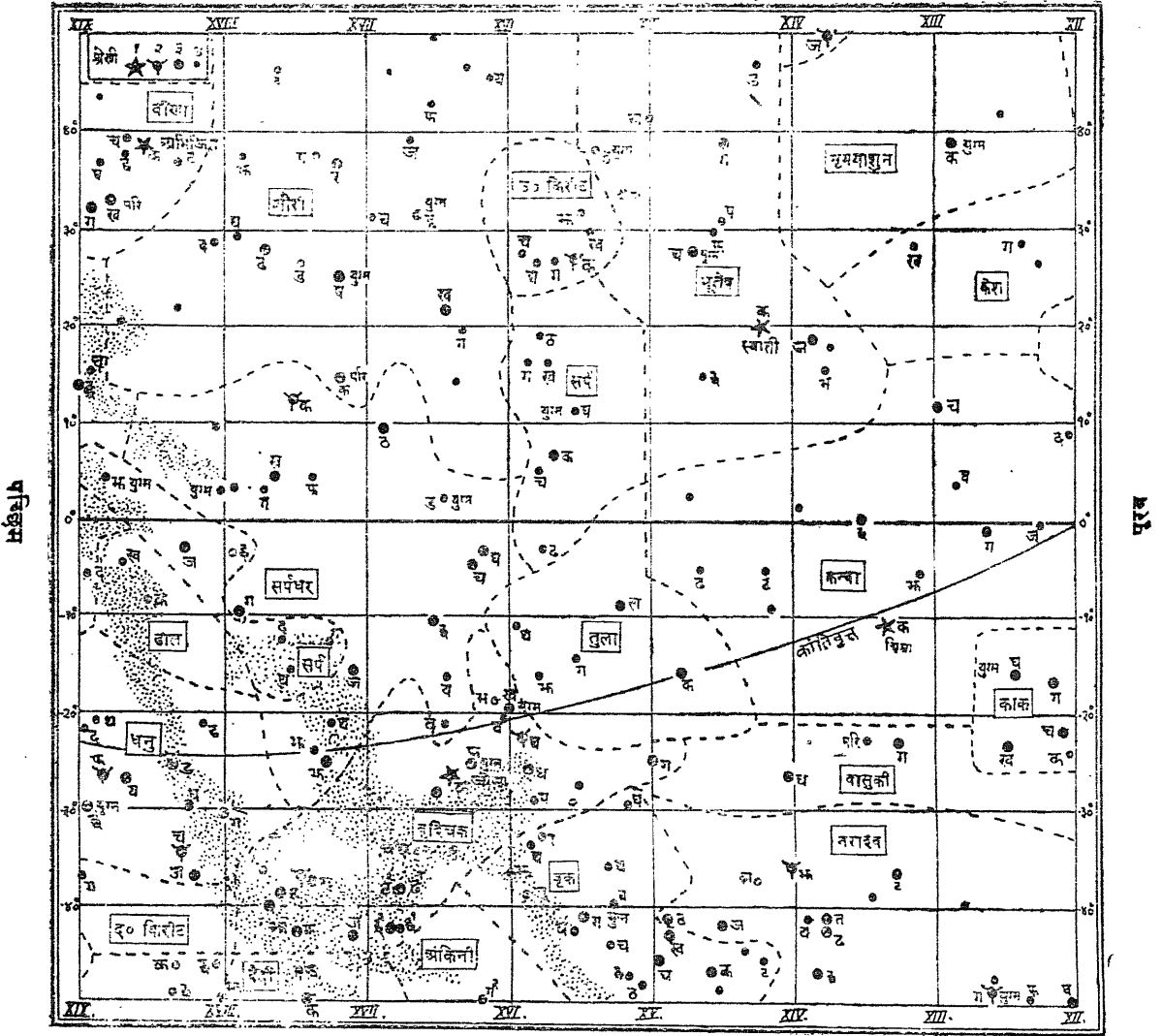
चित्र ४

इस चित्रसे मईके अन्तिम सप्ताहमें १० बजे रातके लगभग तारों की पहचान आसानीसे हो सकती है। इस समय उत्तर पूर्व आकाशमें वीणा और हंसमण्डलके तारा पुंजों की शोभा और उत्तर पच्छिममें सप्तर्षि की शोभा देखते ही बनती है। सिरके ऊपर किरीट विराजमान होगा, पच्छिम की ओर भूतेश, मृगयाशुन और मघाके तारे देख पड़ेंगे और दक्षिण की ओर का आकाश वृक, वृश्चिक, धनुराशिके तारोंसे प्रकाशमान होगा। आकाश गङ्गा भी इस समय उत्तर पूर्व कोनेसे दक्खिन की ओर पसरी हुई शोभायमान होगी। पूर्व की ओर बहुत ऊँचे पर श्रवण नक्षत्र दिखाई पड़ेगा।

पाँचवें खानेके तीन भागोंमें १ले में 'न' लिखा है जो नक्षत्रके लिए है। इसके नीचे नक्षत्रोंके प्रथम अक्षर लिखे गये हैं। अ,भ,कृ,रो से क्रमशः अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी आदि समझना चाहिए। 'आ' के नीचे 'पु' दो बार लिखा गया है जिसमें पहला पुनर्वसुके लिए और दूसरा पुष्यके लिए है। इसी प्रकार जहां कहीं एक ही अक्षर दो स्थानोंमें हों वहां क्रमके अनुसार नक्षत्र समझ लेना चाहिए। नक्षत्रके खाने में घड़ी, पलके नीचेके अंकोंसे यह समझना चाहिए कि वह नक्षत्र उस दिन सूर्योदयसे उस घड़ी और पल तक वर्तमान् था, उसके बाद आगेवाला नक्षत्र लग गया। इस पक्षमें किसी नक्षत्र की क्षयवृद्धि नहीं है।

छठें खाने के ऊपर 'यो' योगके लिए लिखा गया है। शुक्रवारको 'वि', विष्कम्भ योग २८ घड़ी ४६ पल तक और शनिवारको 'प्रीति' योग २१ घड़ी २८ पल तक था। पंचमी के दिन मंगलवार को 'शोभन' योग ४ घड़ी ४२ पल तक रहा फिर 'अतिगंड' लगा जो शोभन के समाप्तिकालसे ५४ घड़ी ५४ पल तक रहकर समाप्त हो गया और 'सुकर्म' लग गया जो दूसरे दिन ५२ घड़ी २३ पल तक रहा। इस प्रकार इस पक्षमें अतिगंड योग का 'क्षय' हो गया।

सातवें खानेमें 'क' के नीचे उन करणोंके नाम हैं जो सूर्योदयकालमें वर्तमान थे और आठवें खानेमें 'क' के नीचे उन करणोंके नाम हैं जो सूर्योदयकाल वाले करणोंके बाद लगे। शुक्रवारको सूर्योदय कालमें 'बव' करण था जो २४ घड़ी ४४ पल पर समाप्त हो गया तब बालव कारण लगा जो आठवें खानेके 'क' के नीचे दिखलाया गया है। यह ५१ घड़ी ५० पल पर समाप्त हो गया। इस प्रकार प्रति दिन दो दो करण चले। बुधवारको सप्तमी तिथिका क्षय है इसलिये इस दिन १ घड़ी ४२ पल तक जब छठ का अंत हो गया तैतिल करण रहा फिर सप्तमीके प्रथमार्धमें ३० घड़ी ५५ पल तक 'गर' करण रहा उसके बाद ५९।५८ तक वणिज करण रहा। पंचांगमें ५८।६ भ्रमके कारण अशुद्ध छपा है। दशमी शनिवारको गर करण ३० घ० ५३ पल पर आरम्भ हुआ परन्तु उस दिन समाप्त नहीं हुआ इस लिये इसके सामने ६० लिखकर अगले दिन 'गर' करण ३।५३ तक दिखलाया गया है। जब वह समाप्त हो गया।[1]

यात्रा विवाहादिमें भद्रा करणका विचार बहुत किया जाता है इसलिए अंतिम खानेमें भी इसकी विशेष चर्चा रहती है। तीजके दिन जहां 'भ ४१।६ उ' लिखा है उसका अर्थ है कि भद्रा सूर्योदयसे ४१ घड़ी ६ पल उपरान्त लगी और दूसरे दिन जहाँ 'भ ८।४६ या' लिखा हुआ है उसका अर्थ है कि भद्रा सूर्योदयसे ८ घड़ी ४६ पल यावत (तक) रही।

नवें खानेके ऊपर योगाः शब्द उन योगोंके लिए है जो वार और नक्षत्रके विचारसे मुहूर्तचिन्तामणिके अनुसार निश्चित किये जाते हैं। मुहूर्तादिके विचारमें नामके अनुसार इनका गुण भी होता है।

१०वें, ११वें और १२वें खानोंमें 'अ' से अंग्रेजी या ईस्वी, 'फा' से फारसी या हिजरी और 'सौ' से सौर तारीखें समझना चाहिये*। १३वें खानेमें बतलाया गया है कि चंद्रमा किस दिन कितने घड़ी पल पर किस निरयण राशिमें प्रवेश करता है। जिस खानेके ऊपर 'उ' लिखा है वह बतलाता है कि सूर्यका उदय कितने घंटा मिनट पर और जिस खानेमें 'अ' लिखा है वह बतलाता है कि सूर्यका अस्त कितने घंटा मिनट पर होता है। घंटेके अंक केवल पहली ही पंक्तिमें दिये गये हैं, नीचेकी पंक्तियोंमें केवल मिनटके अंक है। सूर्य उत्तरायण में है जिसके लिए सबसे ऊपर 'सौम्यायनम्' लिखा हुआ है। इसमें प्रतिदिन सूर्योदय कुछ पहले होता है और सूर्यास्त कुछ देरमें। परिवाको सूर्योदय ५ बजकर ४३

१—घड़ी, पलको घंटा मिनटमें बदलनेके लिए यह याद रखें—

१ घड़ी = २४ मिनट, $2\frac{1}{2}$ घड़ी = १ घंटा

१ पल = २४ सेकंड, $2\frac{1}{2}$ पल = १ मिनट

*अंग्रेजीका चालू महीना सबसे ऊपर कोनेमें लिखा हुआ है 'अप्रैल ४'। ४ का अर्थ है चौथा महीना। फारसी या हिजरी मास परिवा या दूइजके चंद्रदर्शनसे आरम्भ होता है। सौर मास संक्रान्तिके दूसरे दिनसे आरम्भ होता है।

पूर्व

पश्चिम

दक्षिण

चित्र ५

इस चित्रसे मई मासमें सूर्योदयसे डेढ़ या दो घंटा पूर्व प्रातःकाल आकाशका अवलोकन किया जा सकता है जिस समय अभिजित नक्षत्र सिर पर रहेगा। इस समय शर्मिष्ठा उत्तर पूर्व क्षितिजके पास और सप्तर्षि उत्तर पश्चिम क्षितिजके पास रहेंगे। सिरके ऊपर कुछ उत्तरकी ओर वीणापुञ्ज, अभिजित और इनसे दाहिनी ओर हंस, हंसपुच्छकी शोभा देखनेमें बड़ा आनन्द आता है। पूर्व क्षितिजके पास भाद्रपदावर्ग और कुम्भ राशिके तारे दिखाई पड़ेंगे। पूर्व दक्षिण दिशामें मकर राशिके तारे तथा दक्षिण पश्चिम दिशामें वृश्चिक, धनु और राशिके तारोंकी अपूर्व शोभा देखते ही बनती है। श्रवण नक्षत्र भी सिरके पास कुछ दक्खिनकी ओर दिखाई पड़ता है। आकाश गंगाकी छटा भी अपूर्व है। पश्चिम क्षितिजके पास स्वाती नक्षत्र देख पड़ेगा।

मिनट और सूर्यास्त ६ बजकर १७ मिनट पर हुआ। दूसरे दिन सूर्योदय और सूर्यास्त क्रमशः ५ घंटा ४२ मिनट और ६ घंटा १८ मिनट पर हुए। पक्षके अन्तमें सूर्योदय ५ घंटा ३४ मिनट पर और सूर्यास्त ६ घंटा २६ मिनट पर हुये। यह स्पष्ट है कि सूर्योदय ६ बजेसे जितना पहले होता है, सूर्यास्त ६ बजेसे उतना ही पीछे। चतुर्दशीके दिन सूर्योदय ५ घंटा ३४ मिनट पर हुआ परन्तु पत्रेमें ३ का अंक छूट गया है। यह सूर्योदय या सूर्यास्तका समय उस स्थानका धूपघड़ीके अनुसार स्पष्ट काल है जहांका पंचांग बना हुआ है अर्थात काशीका। इसमें कालसमीकरणका संस्कार करके २ मिनट ८ सेकंड घटाना पड़ता है तब पुराना रेलका समय आता है। नया रेलका समय इससे १ घंटा अधिक माना गया है।

अंतिम खानेमें विशेष बातें लिखी रहती हैं। पहला शब्द 'चन्द्रदर्शन' है जिसका अर्थ यह है कि चन्द्रमा आज ही सूर्यास्तके बाद दिखाई पड़ेगा क्योंकि परिवाका अन्त सूर्योदयसे २४ घड़ी ४४ पल पर हुआ इस लिये दूइज इसी समयसे अर्थात सूर्यास्तसे लगभग पौने सात घड़ी पहले ही लग गयी। ऐसी दशामें चन्द्रमाका दिखाई पड़ना आज ही संभव है इस लिए हिजरी मास आज ही समाप्त हो जायगा और दूसरे दिन नये महीनेकी पहली तारीख होगी। हिजरी महीनेका नाम इस पंचांगमें नहीं दिया है परन्तु बड़े बड़े पंचांगोंमें यह भी दिया रहता है। 'चन्द्रदर्शन' के बाद ही 'मु० १५' लिखा है। इसका अर्थ है मुहूर्त १५ जो यह सूचित करता है कि चन्द्र दर्शनका फल अच्छा नहीं है। यदि १५ की जगह ३० हो तो फल 'सम' समझना चाहिए और ४५ हो तो फल अच्छा समझना चाहिये। इसके बाद 'अश्विन्यां मेषेचार्कः' लिखा है जिसका अर्थ है कि सूर्य अश्विनी नक्षत्र और मेष राशिमें प्रवेश करेगा और इसका फल सम होगा क्योंकि मु० ३० लिखा है। ३० के बाद तारा-चिह्न दिया हुआ है जो दूसरी पंक्तिमें भी देकर १६।२९ लिखा है। तारा चिह्न सूचित करता है कि पहली पंक्ति की सब बातें उसमें पूरी नहीं हुई हैं इसलिए दूसरी पंक्तिमें भी पहले ही दिनकी बातें जारी रखी गयी हैं। १६।२९ सूचित करता है कि सूर्योदयसे १६ घड़ी २९ पल पर अश्विनी नक्षत्र और मेष राशिमें सूर्यका प्रवेश हुआ और इसी समय मेष संक्रान्ति लगी। इस लिए सौर वैशाखका महीना भी दूसरे दिनसे ही आरम्भ होगा। 'नवरात्रारम्भ' का अर्थ स्पष्ट है। 'शुक्रास्तः प्रतीच्यां ९।११' का अर्थ है कि पच्छिममें शुक्रका अस्त आज ही सूर्योदयसे ९ घड़ी ११ पलपर हुआ। कुछ लोगोंको आश्चर्य हो सकता है कि पच्छिममें तो शुक्र प्रतिदिन सूर्यास्तके बाद अस्त होता है परन्तु आज सूर्योदयसे ९ घड़ी ११ पल पर कैसे होगा। परन्तु यहाँ शुक्रके अस्तका और ही अर्थ है। इसका अर्थ यह है कि ९ घड़ी ११ पल पर आज शुक्र सूर्यके इतना निकट हो गया है कि अब वह पच्छिम क्षितिजमें सन्ध्या कालमें नहीं दिखाई पड़ेगा और इस पत्रेके अनुसार इसी पक्षकी छठको जब पूर्वमें उदय होगा तब पूर्व क्षितिजमें प्रातःकाल दिखाई पड़ेगा। ९।११ के बाद एक चिन्ह और लगाकर पहली पंक्तिकी बात तीसरी पंक्तिमें भी जारी रखी गयी है जहाँ लिखा है 'पूर्वाभाद्रभे भौमः' जिसका अर्थ है कि मंगल पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमें १३ घड़ी १ पल पर गया। इस प्रकार परिवाके दिनकी सब विशेष बातें पहली पंक्तिसे आरम्भ करके तीसरी पंक्तिमें समाप्त की गयी हैं।

तीजके दिन कोई विशेष बात नहीं है केवल भद्रा ४१ घड़ी ९ पल उपरान्त लगी जो अन्तिम खानेमें दिखायी गयी है। चौथके दिन भद्रा ८ घड़ी ४६ पल तक रहेगी जब चौथका अन्त होता है। इसके बाद 'सर्वार्थसिद्ध' योग लिखा है। यह योग वार और नक्षत्रके विचारसे माना जाता है और शुभफलदायक समझा जाता है। चन्द्रवारको रोहिणी नक्षत्र सूर्योदयसे १९ घड़ी ४६ पल तक है। यह सर्वार्थसिद्ध योग कहलाता है इस लिए यह भी सूर्योदयसे उतने ही पल तक लिखा गया है। इस योगके साथ साथ 'र.यो.' भी उतने ही समय तकके लिए लिखा है। यह रवियोगका लघुरूप है। यह सूर्य और चन्द्रमाके नक्षत्रोंसे निश्चय किया जाता है। सूर्य अश्विनी नक्षत्रमें है और चन्द्रमा रोहिणीमें, सूर्यसे चन्द्रमाका नक्षत्र चौथा है इस लिए

रवियोग[1] है। यह भी शुभ समझा जाता है। इसी प्रकार अन्य बातोंके लिए भी समझना चाहिये।

पंचांगके नीचे ग्रहोंकी स्थिति एक सप्ताहकी दी जाती है। बड़े बड़े पंचांगोंमें तो ग्रहोंकी दैनिक स्थिति भी देनेकी चाल है। यह अधिकतर पंचांगोंमें मकरंदके अनुसार निश्चितकी जाती है। ऊपर पहले १ से प्रकट होता है कि वर्षारंभके प्रथम सप्ताहकी गणना नीचे दी गयी है। पं० का अर्थ है पंक्ति। दूसरे १ का अर्थ है परिवा तिथि, भृगौका अर्थ है भृगु या शुक्रवार, ४६।२२ का अर्थ है काशीके सूर्योदयसे ४६ घड़ी २२ पल उपरांत का समय। यह काशीकी मध्यरात्रिका समय नहीं है वरन् उज्जैनकी मध्यम मध्यरात्रि काल है। मकरन्द सारणीसे ग्रहोंकी जो स्थिति आती है वह उज्जैनकी मध्यम मध्यरात्रि कालकी होती है। इससे काशीकी मध्यरात्रिका ग्रह निकालनेमें बहुत गणना करनी पड़ती है इसलिए सुविधाके लिए पंचांगोंमें उज्जैनके ही मध्यरात्रि की स्थिति लिख दी जाती और लिख दिया जाता है कि काशीके सूर्योदयसे कितने घड़ी पल उपरान्त यह समय होता है। इसमें काशीका देशान्तर, चरान्तर और काल-समीकरण (उदयान्तर) का संस्कार करना पड़ता है जो सुगम है। इस समय को मिश्रमान काल कहते हैं। नीचे छोटे छोटे ८ स्तम्भ हैं जिनके सिर पर ग्रहोंके नामके पहले अक्षर लिखे हैं। केवल चन्द्रमा का नाम नहीं है क्योंकि चन्द्रमाकी स्थिति नक्षत्र और चंद्र संचार के स्तम्भों से प्रकट हो जाती है। पहले स्तम्भ में 'सू' के नीचे ०,०,२८,३१, क्रम से लिखे हैं जो राशि, अंश, कला और विकला के द्योतक हैं। इससे प्रकट होता है कि आज मिश्रमान कालमें सूर्य शून्य राशि, शून्य अंश, २८ कला और ३१ विकला पर है अर्थात् पहली राशि मेष के २८ कला और ३१ विकला पर है और इसकी दैनिक गति ५८ कला ४५ विकला है।

दूसरे स्तम्भमें दिखलाया गया है कि मंगलका भोगांश १० राशि २० अंश ६ कला और ३२ विकला और इसकी दैनिक गति ४१ कला ५४ विकला है। १० राशि गत है अर्थात् मंगल दस राशिके उपरान्त ११ वीं राशिके २० अंश ६ कला ३२ विकला पर है।

तीसरे स्तम्भ में बु (बुध) के नीचे ११,२६,१६ ५२ प्रकट करता है कि बुध ११ राशि गत बारहवीं राशि के २६ अंश १६ कला और ५२ विकला पर है। इसकी दैनिक गति ४४ कला ५५ विकला है परन्तु गति वक्री है अर्थात यह आकाशमें पूरबसे पच्छिम की ओर बढ़ रहा है। इसी प्रकार वृहस्पति और शुक्र भी वक्री है। राहु और केतुकी गति तो सदैव वक्री होती है। इसलिए उनके नीचे 'वक्री' नहीं लिखा है।

ग्रहोंकी स्थितियोंकी बात बगलमें दूसरी तरह भी दिखाई गई है। चतुर्भुजाकार या वर्गाकार क्षेत्रमें दोनों कर्ण खींच कर आसन्न भुजोंके मध्य विन्दुओंको मिलाने-वाली रेखाएं खींचनेसे यह चित्र बनता है जो छापेमें कुछ विकृत सा हो गया है। यह क्षेत्र राशिचक्र का द्योतक है। जहां १ लिखा है वह पहली राशि मेषका द्योतक है। जब तक सूर्य मेष राशिमें रहता है तब तक यही राशि सूर्योदय कालमें पूर्व क्षितिजमें उदय होती हुई या लगी हुई रहती है, इस लिए यही सूर्योदय कालका लग्न है। आज सूर्य और चन्द्रमा दोनों मेष राशिमें हैं इसलिए १ के खानेमें र और चं दोनों दिखाये गये हैं। जहां २ लिखा है वह दूसरी राशिका खाना है। इस राशिमें कोई ग्रह नहीं है। तीसरी राशिमें शनि और राहु श और रा अक्षरों से प्रकट किये गये हैं। ४थी राशिमें भी कोई ग्रह नहीं है। यह खाना राशिचक्र के उस भाग का है जो क्षितिजके नीचे मध्य आकाशमें है। इसको पाताल भी कहते हैं। ५वीं राशिमें वृहस्पति है। छठीं राशिमें कोई ग्रह नहीं है। ७वीं राशिमें भी कोई ग्रह नहीं है। इस खानेको अस्त लग्न कहते हैं क्योंकि यह राशि-चक्रका वह भाग है जो पच्छिम क्षितिज में लगा रहता है जहां सूर्य, चन्द्र, तारे आदि, अस्त होते हैं। ८वेंमें कोई ग्रह नहीं है, ९वेंमें केतु है। राहु और केतु ग्रह नहीं हैं वरन् पृथ्वी और चन्द्र की कक्षाओंके पात (मिलन विन्दु) हैं जो एक दूसरेसे १८० अंशपर या ६ राशिके अंतर पर या ७वीं राशिमें होते हैं। जिस

[1] —सूर्यके नक्षत्रसे चन्द्रमाका नक्षत्र चौथा, नवाँ, छठां, १०वां, १३वां या २० वां हो तो रवियोग होता है (मुहूर्तचिन्तामणि, शुभाशुभ प्रकरण, २७)

खाने में १० लिखा है वह राशिचक्र का वह भाग है जो मध्य आकाशमें याम्योत्तरवृत्तपर लगा रहता है। इसलिए इसको मध्यलग्न या दशम लग्न भी कहते हैं। ११वें खानेमें मंगल दिखलाया गया है क्योंकि यह ११वीं राशिमें है १२वें खाने या राशि में बुध और शुक्र हैं।

इसी प्रकार दूसरे सप्ताहकी नवमी तिथिके मिश्रमानकालिक ग्रहोंकी स्थिति भी दिखलायी गयी है। राशि-चक्र के क्षेत्रमें रवि तथा अन्य ग्रह और राहु केतु उन्हीं राशियोंमें दिखलाये गये हैं जिनमें पहिला को थे केवल चन्द्रमाकी राशि बदली है। यह द्रुतगतिके कारण एक सप्ताहमें चौथी राशि कर्क में पहुँच गया है।

इस प्रकार यह प्रकट होगया कि पंचांगसे आकाशमें सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों, राहु, केतु, आदिकी स्थिति कैसे जानी जाती है।

जन्मपत्र

हमारे यहाँ बहुतसे लोग लड़कों या लड़कियों का जन्मपत्र बनवाते हैं जो फलित ज्योतिषपर विश्वास रखने वालोंके लिए तो महत्वपूर्ण है ही परन्तु व्यावहारिक उपयोगिताके विचारसे भी कम महत्वका नहीं है। उन्नत देशोंमें प्रत्येक लड़के या लड़कीका जन्मकाल दिन, महीना और सन् म्यूनिसिपैलिटी या पुलिसके दफ़्र में लिखानेका नियम है। हमारे यहाँ यह लेखा प्रत्येक सम्पन्न गृहस्थ जन्मपत्रके द्वारा रखता है। इस कामके लिए प्रत्येक नक्षत्र चार समान भागोंमें बाँटा गया है जिसे नक्षत्रका चरण कहते हैं। इसका दूसरा नाम नवांश भी है क्योंकि एक राशिका नवाँ भाग नक्षत्रके एक चरणके समान होता है। पहले तो लड़केका राशिनाम ऐसा रखा जाता है जिसका पहला अक्षर नक्षत्रके चरणका द्योतक हो। प्रत्येक चरणके लिए अलग-अलग अक्षर निर्दिष्ट हैं। चू, चे, चो, ला अश्विनीके चार चरणोंके द्योतक हैं, ली, लू, ले, लो भरणीके, इत्यादि। जन्मकालमें चन्द्रमा नक्षत्रके जिस चरणमें होता है उसीका द्योतक अक्षर नामका पहला अक्षर होता है। ऐसे नामको राशि नाम कहते हैं। इससे वर-वधूके स्वभाव और प्रकृति आदिका पता लगाया जाता है। जन्म पत्रमें सबसे मुख्य बात होती है जन्मकुंडली और नवांशचक्र। दोनोंके चित्र एक ही तरहके होते हैं। केवल इन्हीं दो से आप मनुष्यके जन्मकालीन आकाशकी पूरी स्थिति जान सकते हैं और बतला सकते हैं कि उसका जन्म दिन में हुआ या रातमें, शुक्ल पक्षमें हुआ या कृष्ण पक्षमें, कौन महीना और कौन वर्ष था। एक उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

एक मनुष्य का जन्म संवत् १९७५ विक्रमीय माघ कृष्ण ८, तदुपरान्त ९, शुक्रवारको सूर्योदयसे ५५ घड़ी १६ पल पर हुआ। उस समय धनु राशिका १२°२६′, १६″ पूर्व क्षितिजमें लग्न था। धनु राशिचक्रकी ९वीं राशि है। इसलिये जन्म कुण्डलीके पहले स्थानमें ९ लिखा जायगा, दूसरे स्थानमें १०, तीसरे स्थानमें ११, चौथे स्थानमें १२, पाँचवेंमें १, छठेंमें २, सातवेंमें ३, आठवें में ४, नवेंमें ५, दसवेंमें ६, ११वेंमें ७ और बारहवें स्थानमें ८ लिखे जायँगे। उस समय काशीके पंचांगके अनुसार ग्रहोंकी स्थिति यह थी :—

	सू	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा	के	लग्न
राशि	९	६	१०	८	२	९	४	७	१	८
अंश	११	२०	४	२३	१५	२७	६	१६	१६	१२
कला	१५	२६	१५	५३	४०	१४	१३	४२	४२	२६
विकला	५५	४६	९	४२	१५	५०	१६	२२	४३	१६

सूर्य दसवीं राशिमें है इस लिए कुण्डलीमें यह दूसरे स्थानमें दिखाया जायगा जहाँ दसवीं राशि है।

जन्म कुण्डली
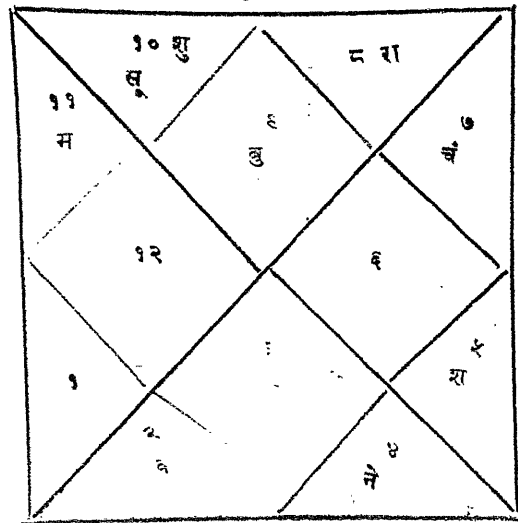
मंगल ११वीं राशिमें है इस लिए वह तीसरे स्थानमें दिखाया जायगा। इस प्रकार युक्तप्रान्तकी प्रथाके अनुसार जन्मकालीन कुण्डलीका चित्र यह हुआ। यदि और कुछ न मालूम हो, केवल यही दी हुई हो तो जन्मकाल का पता इस प्रकार लगाया जाता है :—

जन्म दिनका है या रातका—जन्म लग्न धनुराशि है अर्थात् जन्मकालमें धनु राशि उदय हो रही थी। धनु राशिके बाद मकर राशिका उदय होता है और एक राशि के उदय होनेमें लगभग दो घंटे लगते हैं इसलिए जन्मसे लगभग दो घंटे बाद जब मकरराशि उदय हो रही थी तभी सूर्योदय हुआ। इस लिये जन्म रातमें सूर्योदयसे लगभग दो घंटा पहले हुआ। प्रातःकाल जन्म हो तो सूर्य उस राशिमें भी हो सकता है जो लग्न होती है। ऐसी दशामें सूर्य पहले स्थानमें अथवा लग्नमें ही दिखाया जायगा। यदि सायंकाल जन्म हो तो सूर्य उसी राशिमें हो सकता है जो अस्तलग्न है, ऐसी दशामें सूर्य सातवें स्थानमें दिखाया जायगा। प्रात.काल या सायंकालके सिवा यदि रातके किसी अन्य भागमें जन्म हो तो सूर्य पहले और सातवें स्थानोंके बीच किसी घरमें रह सकता है। आधी रातका जन्म हो तो सूर्य चौथे स्थानमें होगा। इसी प्रकार यदि दिनमें जन्म हो तो सूर्य ८वें से १२ वें किसी स्थानमें रह सकता है। यदि सूर्योदयसे कुछ ही बाद या सूर्यास्तसे कुछ ही पहले जन्म हो तो संभव है कि सूर्य पहले या सातवें स्थानमें ही हो। इस प्रकार कुण्डलीमें सूर्यकी स्थितिसे यह पता लग जाता है कि जन्म रातका है या दिनका।

किस पक्षका जन्म है ? सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके स्थानोंसे पक्षका पता चलता है। यदि सूर्यसे बायीं ओर चलते हुए सातवें घरके भीतर चन्द्रमा कहीं हो तो शुक्लपक्षका जन्म समझना चाहिये। सूर्यसे सातवें घरसे भी आगे चन्द्रमा हो तो कृष्ण पक्षका जन्म है। उपर्युक्त कुण्डलीमें चन्द्रमा सूर्यसे दसवें घरमें पड़ता है इसलिए कृष्ण पक्षका जन्म हुआ।

किस मासका जन्म है ? सूर्य १०वीं राशि मकरमें है। इस लिये सौर माघ मास का जन्म है क्योंकि सूर्य मकर राशिमें १४ जनवरीके लगभग प्रवेश करता है जब मकर संक्रान्ति होती है और १३, फरवरी तक इसी राशिमें रहता है। इसी समयको सौर माघ कहते हैं। सूर्यकी राशिसे महीनेका पता चलता है।

किस वर्षका जन्म है ? यह जाननेके लिए शनि और बृहस्पतिकी राशि देखते हैं। शनि एक राशिमें २॥ वर्ष रहता है और इसका एक चक्र लगभग ३० वर्षमें पूरा होता है। बृहस्पति एक राशिमें एक वर्ष रहता है और इसका एक चक्र लगभग १२ वर्ष में पूरा होता है। इस-लिए इन दोनोंकी स्थितियोंसे वर्षका पता प्रायः ठीक-ठीक लग जाता है। प्रस्तुत कुंडलीमें शनि ५वीं राशि सिंह में है और बृहस्पति ३री राशि मिथुनमें। आजकल शनि मिथुनमें है और बृहस्पति सिंहमें। यदि आयु ३० वर्ष से कम है तो जन्मकालसे अब तक शनिका पहला चक्र समाप्त नहीं हुआ। ऐसी दशामें शनि १० राशिके लगभग चला, इसलिए आयु १०×२½=२५ वर्षके लगभग हुई। परन्तु इसमें एक या दो वर्ष का अंतर पड़ सकता है क्योंकि यह पता नहीं कि जन्मकालमें शनि सिंह राशि के आरंभमें था या मध्यमें या अन्तमें। इसलिए इसका मिलान बृहस्पतिकी राशिसे करना चाहिए। जन्मकालमें बृहस्पति मिथुन राशिमें था और अब सिंह राशिमें है। इसलिए संभव है कि जन्मकालसे अब तक बृहस्पति एक, दो, तीन या चार चक्कर पूरे करके २राशि आगे बढ़ा हो। यदि एक चक्कर पूरा हुआ तो जन्मसे अब तक १४ वर्ष हुए, दो चक्कर हुएतो २६ वर्ष और तीन चक्कर हुए तो ३८ वर्ष। इन तीनोंमें जो वर्षसंख्या शनिकी वर्ष संख्याके निकट हो वही यथार्थ आयु समझना चाहिए। इस प्रकार बृहस्पतिके अनुसार २६ वर्ष हो गये। यह शनिसे आये हुए समयसे एक ही वर्ष अधिक है इसलिए ठीक है। इसलिए मनुष्यकी आयु २६ वर्षकी है।

नवांश कुंडली—यदि लग्न कुंडलीके साथ नवांश कुंडली भी दी हुई हो तो जन्मकालका निश्चय बहुतही सूक्ष्मतापूर्वक किया जा सकता है। ऊपर बतलाया गया है कि एक राशिमें नव नवांश होते हैं। इसलिए प्रत्येक नवांश ३ अंश २० कलाका होता है। इन नवांशोंके नाम राशियोंके अनुसार भी रखे गये हैं। मेष राशिका पहला

राशि	नवांश								
	पहला ३°२०′	दूसरा ६°४०′	तीसरा १०°	चौथा १३°२०′	पांचवां १६°४०′	छठा २०°	सातवां २३°२०′	आठवां २६°४०′	नवां ३०°
मेष १	मेष	वृष	मिथुन	कर्क-	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु
वृष २	मकर	कुंभ	मीन	मे	वृ	मि	क	सिं	क
मिथुन ३	तु	वृ	ध	म	कुं	मी	मे	वृ	मि
कर्क ४	क	सिं	क	तु	वृ	ध	मं	कुं	मी
सिंह ५	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध
कन्या ६	म	कुं	मी०	मे	वृ	मि	क	सिं	क
तुला ७	तु	वृ	ध	म	कु	मी	मे	वृ	मि
वृश्चिक ८	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी
धनु ९	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध
मकर १०	म	कुं	मी	मे	वृ	मि	क	सिं	क
कुंभ ११	तु	वृ	ध	म	कु	मी	मे	वृ	मि
मीन १२	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कु	मी

नवांश मेषका नवांश कहलाता है, दूसरा नवांश वृषका तीसरा नवांश मिथुनका, इत्यादि। इस प्रकार मेष राशिके ९ नवांश क्रमानुसार मेष, वृष,... धनुके नवांश कहलाते हैं। वृष राशिका पहला नवांश मकरका नवांश, दूसरा नवांश कुंभका, तीसरा नवांश मीनका और चौथा नवांश मेषका नवांश कहलाता है। आगे वृष, मिथुन आदि के नवांश हैं। चक्रसे यह सब बातें एक साथ ही समझमें आ जायंगी।

इस चक्रसे यह सहज ही जाना जा सकता है कि कौन ग्रह किस राशिके नवांशमें है।

सूर्य मकर राशि के ११°१५′ पर है। चक्रमें मकर राशिके १० अंश तक मीनका नवांश है उसके बाद १३°२०′ तक मेषका नवांश है इसलिए नवांश कुंडलीमें सूर्य मेषमें दिखाया जायगा। चन्द्रमा तुलाराशिके २०°२६′ पर है इसलिए यह भी मेषके नवांशमें है। इसी प्रकार मंगल वृश्चिकके नवांशमें, बुध वृश्चिकके नवांशमें, वृहस्पति कुंभके नवांशमें, शुक्र कन्याके नवांशमें, शनि वृषके नवांशमें, राहु धनुके नवांशमें, केतु मिथुनके नवांशमें और लग्न कर्क के नवांशमें है। इसलिए नवांश कुंडली इस प्रकार हुई—लग्नमें कर्क राशिसूचक ४ का अंक रखकर आगेके स्थानोंमें क्रमानुसार अंक रखे गये हैं और जिस राशिके नवांशमें जो ग्रह है वह उस अंकके साथ रख दिया गया है।
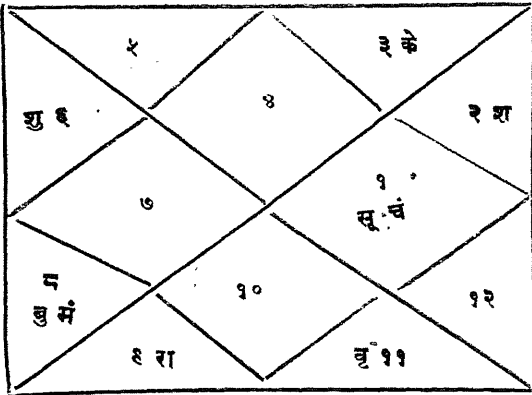
अब लग्न कुण्डली और नवांश कुण्डली दोनोंकी तुलना करनेसे किसी ग्रहकी स्थिति निकटतम तीन अंश तक जानी जा सकती है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों मेषके नवांशमें है परन्तु लग्न कुण्डलामें सूर्य १० वीं राशिमें और चन्द्रमा ७वीं राशिमें है इसलिए सूर्य मकर राशिके १०° और १३°२०′ के बीचमें है और चन्द्रमा तुलाराशि के २०° और २३°२०′ के बीच में है। इससे जन्मतिथि काफी शुद्धता पूर्वक जानी जा सकती है और तारीखमें अधिकसे अधिक ३ दिनका अंतर हो सकता है। इसी प्रकार नवांश चक्रसे प्रत्येक ग्रहकी स्थिति निकटतम ३ अंश तक जानी जा सकती है।

फलित ज्योतिष

इस सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है जो बहुत प्राचीन कालसे चला आता है। शुद्ध विज्ञानवादी इसमें विश्वास नहीं करते क्योंकि एक तो ग्रहोंकी स्थितिसे शुभाशुभ फल जाननेके नियमोंकी वैज्ञानिक रीतिसे परीक्षा नहीं हो सकती दूसरे जो फल बताये जाते हैं वे पूरे ठीक नहीं उतरते और भिन्न भिन्न ग्रंथों में फलोंके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। तीसरे अशुभ फलोंके पूर्व ज्ञानसे चित्तमें व्यर्थ ही खिन्नता उत्पन्न होती है। चौथी बात यह भी है कि अधिकांश फलितके ज्योतिषी गणित सिद्धान्तोंसे अपरिचित और वराहमिहिरके शब्दोंमें नक्षत्रसूचक[1] होते हैं जिनसे लोगोंको प्रायः धोखा होता है। परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं जिनके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि फलितमें विश्वास रखनेवाले केवल अन्ध परम्पराके भक्त हैं। दो चार उदाहरण ऐसे व्यक्तियोंके मुखसे सुननेमें आये हैं जिनके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे झूठे हो सकते हैं। हस्तरेखा विज्ञानवाले तो इतना तक कहते हैं कि केवल हथेलीकी रेखाओंको देखकर वह बतला सकते हैं कि उनके जन्म कालमें कौनसी राशि लग्न थी और कौन कौनसे ग्रह किस किस राशिमें थे। इस प्रकार यदि हाथकी रेखाओंसे लग्न कुण्डली बनायी जा सकती है तो यह निस्सन्देह ठीक

१—तिथ्युत्पत्तिं न जानंति ग्रहाणां नैव साधनं।
परवाक्येन वर्तते ते वै नक्षत्रसूचकाः॥
अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः।
वृहत्संहिता २-१७

है कि किसीके जन्मकालकी आकाशीय स्थिति और उसके शरीरकी बनावट अथवा उसकी प्रकृतिमें कोई घनिष्ट सम्बन्ध है। कोई कोई तो माथे पर की रेखाओंसे जन्म कुण्डली बनानेकी भी पटुता रखते हुए पाये गये हैं इस विषयमें स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षित अपने भारतीय ज्योतिष शास्त्रमें इस प्रकार लिखते हैं[२]: —

बाबाजी काशीनाथ पटवर्धन···कोल्हापुरमें वकालत करते थे। ईस्वी सन १८८२ में एक द्रविड ब्राह्मण ज्योतिषीसे उनकी भेंट हुई। वह विक्षिप्त था। मनुष्यके शरीरके लक्षणोंसे जन्मलग्न जाननेके कुछ मूलतत्व उसने पटवर्धनको बतलाया। बादमें उन्होंने स्वयं अनेक ग्रन्थोंको पढ़कर उनमें दिये लक्षणोंको मिलाया और उनसे स्वयम् सैकड़ों मनुष्योंको देखकर नियम बनाकर अपना ज्ञान बढ़ाया। ईस्वी सन १८९१ से उन्होंने इस ज्ञानको प्रसिद्ध किया। मुखचर्याको देखकर कुण्डली बनानेके काममें यह बड़े प्रवीण हो गये। मनुष्यको देखते ही बात की बातमें यह उसकी जन्म कुण्डली बना लेते थे। शरीरके लक्षणोंसे जन्म लग्न और जन्मकाल में अमुक अमुक ग्रह अमुक अमुक राशिमें है यही नहीं बतलाते थे वरन् यहाँ तक बता देते थे कि अमुक ग्रह अमुक राशिके अमुक अंश पर थे। अंशोंमें अधिकसे अधिक एक या दो अंशका अंतर होता था ऐसा अनुभव मैंने किया है।

इन अनुभवोंके होते हुये फलित ज्योतिषको निस्सार समझना ठीक नहीं जान पड़ता। विद्वानोंको चाहिये कि इसमें भी अनुसन्धान करें और देखें कि पुराने ग्रंथोंमें बतलाये हुए फल कहां तक ठीक उतरते हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मनुष्यके शरीर, मन और बुद्धि पर पूर्व जन्मके कर्मों और संस्कारोंका भी प्रभाव होता है। यह भी सिद्ध है कि सूर्य और चन्द्रमाकी भिन्न भिन्न स्थितियोंका प्रभाव केवल स्थूल शरीर पर ही नहीं पड़ता, मन और बुद्धि पर भी पड़ता है, जैसे बहुतसे रोग शुक्ल पक्षमें बढ़ते हैं तथा उनका वेग दिनके किसी भागमें विशेष रूपसे होता है। इसलिये यह भी संभव हो सकता है कि सूर्य, चन्द्रमाकी तरह अन्य ग्रहोंका भी स्थूल और सूक्ष्म जगत्‌में कुछ सूक्ष्म प्रभाव पड़ता हो।

यदि शरीरके लक्षणोंसे जन्मकालीन नक्षत्र चक्र और ग्रहोंकी स्थितियां जानी जा सकती हैं तो यह भी ठीक है कि जन्मकालीन ग्रहोंकी स्थितियोंसे मनुष्यके शरीरका ही नहीं उसके मन और बुद्धि अथवा प्रकृतिका भी पता लगाया जा सकता है जो शिक्षा-विभागके लिए बड़ा ही उपयोगी हो सकता है क्योंकि यदि बालकोंके स्वभाव और रुचिका पता आसानीसे लग सके तो हमको उनकी बुद्धि और प्रवृत्तियोंकी परीक्षा करनेमें, जिसका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें बड़े जोरोंसे हो रहा है बड़ी सहायता मिलेगी। इस विचारसे भी इस विषयमें अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता है।

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

२—बाबाजी काशीनाथ पटवर्धन···कोल्हापुर एथे वकिली करितात. इ० स० १८८२ मध्ये त्यांस एक द्राविड ब्राह्मण ज्योतिषी भेटला. तो विक्षिप्त होता. मनुष्याच्या शारीर लक्षणांवरून जन्मलग्न सांगण्याचीं कांहीं मूलतत्वें त्यानें पटवर्धनांस सांगितली. पुढें त्यानीं स्वतः अनेक ग्रंथ पाहून त्यांतला लक्षणांची एकवाक्यता झाली तितकी करून व स्वतः शेंकडों मनुष्यें पाहून नियम बसवून आपलें ज्ञान बाढविलें, ई० स० १८९१ पासून त्यांच्या या ज्ञानाची प्रसिद्धि झाली. मुखचर्या पाहून कुण्डली मांडण्याच्या कामीं यांची बुद्धि मोठी तीव्र आहे. मनुष्य पाहतांच हां हां ह्मणतां त्याची कुण्डली मांडितात ती मुख्यतः मुखचर्या पाहून व कधीं जीभ, आणि तलहात पाहून मांडितात. शारीरलक्षणां वरून जन्म लग्न आणि जन्मकालीं अमुक ग्रह अमुक राशीस होता एवढेंच हे सांगतात असे नाहीं, तर अमुक ग्रह अमुक राशीस अमुक अंशावर होता इतकें सांगतात. अंशांत फार तर सरासरी एक दोन अंशांची चूक पडते असा अनुभव मीं पाहिला आहे·········

भा० ज्यो० शा० पृष्ठ ४७९

मासिकधर्म या ऋतुकाल

[लेखकः डा० (मिस) पार्वती मलकानी एम-बी० बी० एस०, (पंजाब), रजिस्ट्रार वा रेसिडेन्ट मेडिकल आफिसर क्वीन मेरी अस्पताल (लखनऊ मेडिकल कालेजका स्त्री-रोग-विभाग) लखनऊ।]

प्रति मास एक नियमित समय पर युवा स्त्रियां कुछ असाधारण सी पाई जाती हैं या बना दी जाती हैं। कहा जाता है, वह "अलग हैं", "नासाज़ हैं", "महीने से हैं," बिल्लीका गू बूड़ गई हैं", "उनका हाथ नहीं है" इत्यादि। घरके उत्सुक बालक चकराते हैं कि यह बात क्या है। बात व्यवहारमें यह रजस्वला स्त्रियाँ सबसे अलग सी रहती हैं। परंतु इस विचित्रताका कोई कारण दिखलाई नहीं देता। स्त्रियोंके बाल्यकालमें जब प्रथम बार योनि-द्वारसे रक्तस्राव होता है, लड़कियां कुछ घबड़ा सी जाती हैं और समझ नहीं पाती यह क्या और कैसे हो गया। उनको इसके विषयमें ठीक ज्ञान नहीं दिया जाता तो विचित्र धारणायें मनमें बैठ जातीं हैं (या भर दी जाती हैं)। कितनाभी कमरमें दर्द हो, कितना ही खून जाय सब स्त्रियोंके माथे पर थोपा भाग्य ही समझा जाता है। मासिक धर्मके ३से ४ दिन तक देश जाति व कुल रीति के अनुसार उनको अपनी दिनचर्या बदल देनी पड़ती है। साधारणत: वे घरके काम काजमें हाथ नहीं फैलाने पातीं। उनका ओढ़ना, बिछौना अलग कर दिया जाता है। चाहे जितनी गर्मी पड़े वे दो दिन तक नहा नहीं सकतीं और तीसरे दिन कितना भी जाड़ेका मौसम हो विधिवत् स्नान अनिवार्य है। इन तीन दिनों उनकी संज्ञा धोबिन की मानी जाती है और अगर कोई उन्हे धोखे धड़ीमें छू जाय तो उसे भी बाकायदा स्नान करना पड़ता है। इन तीन दिनोंकी अछूतावस्थाके नियम इतने कठोर बना दिये गये हैं कि इस विषयमें ऋषि पंचमी नामक कथा धार्मिक ग्रंथोंमें घुसेड़ दी गई है। नियम पालन दृढ़ रखनेके लिये यह प्रथा बहुत दूषित हो गई है। कहा जाता है कि पहाड़ों पर मासिक धर्मके समय स्त्रियों को घर से बाहर निकाल देते हैं।

इन सब कुप्रथाओंसे लाभ एक ही निकलता है कि स्त्रियां इन दिनों पति सम्भोगसे बची रहें। इतने के लिये वे सैकड़ों कुरीतियों पर बलिदान हों, यह अवैज्ञानिक सामाजिक भूल है। मासिक धर्म एक साधारण प्राकृतिक नियम है। इसका होना अच्छे स्वास्थ्य का लक्षण है इसका युवावस्थामें न होना रोग है या शरीरकी अप्रा-कृतिक रचनाका फल है। गर्म देशोंमें १२से १५ वर्षकी अवस्था तक और ठंढे देशोंमें कभी-कभी १८ वर्षकी अवस्था तकमें स्त्रियोंके गर्भाशयसे एक प्रकार का द्रव पदार्थ जिसमें गर्भाशयकी झिल्लियां, कुछ रक्त व गर्भाशयके अन्य रस होते हैं निकलकर योनिद्वार होते हुये बाहर निकला प्रारम्भ करते हैं। यह दशा प्रायः हर चौथे हफ्ते या अट्ठाइसवें दिन हुआ करती है। कुछ स्त्रियोंको तीसरे हफ्तेमें ही मासिकधर्म होता है और किसीमें पांचवें तक। चाहे कितने भी दिन पर मासिकधर्म हो हर बार उतनेही दिनपर होना चाहिये। दिनान्तरमें विशेष घट बढ़ होना रोगसूचक है। स्राव दो दिनसे लेकर पांच दिन तक होता है और उसकी मात्रा व्यक्तिगत है। लेकिन बहुत कम स्राव होना य बहुत विशेष होना दोनोंही सूरतें अच्छी नहीं हैं।

किसी किसी लड़कियोंमें विशेष अवस्था हो जाने पर भी मासिकधर्म प्रारम्भ नहीं होता। इसके कई कारण होते हैं। यदि साधारण शरीर रचनामें आकस्मिक कोई भिन्नता आ जाती है तो उसे शल्यकार सहज ही में ठीक कर देते हैं। ऐसी दशामें लड़कियोंके सरमें व कमरमें दर्द रहा करता है। शरीर अनमनासा और भारी मालूम होता है। ऐसी दशामें शल्यकार को तुरन्त दिखलाना चाहिये। रक्ताल्पतामें भी रज नहीं बनने पाता। ऐसी लड़कियोंकी आंखे व नख पीले पड़ जाते हैं। हाथ पैर फूलेसे लगते हैं, सुस्ती घेरे रहती है। ऐसी अवस्थामें रक्ताल्पता दूर करनेका शीघ्र उपाय करना चाहिये नहीं तो अनेक उपद्रव खड़े होनेकी सम्भावना रहती है। किसी किसी लड़कियों में गर्भाशय ठीक नहीं बनता। इनकी संख्या बांझ स्त्रियों में की जाती है। इधर कुछ दिनोंसे पुंस

ग्रंथियोंके रसके उद्योगसे लाभ बतलाये गये हैं लेकिन यह चिकित्सा विधि अभी पालनेमें ही खेल पाई है।

कभी प्रथम रजोदर्शन विशेष रक्तस्रावके साथ होता है। ऐसी अवस्था आ जानेपर अनुभवी शल्यकार को शीघ्र दिखलाना चाहिये।

मासिकधर्म प्रारम्भसे ही सामयिक नहीं होने लगता। साल दो साल शरीरको अपनी गति ठीक करनेमें लगता है। जब एक बार ऋतुकाल समय से होने लगता है अपनी गति सामयिक रूपसे पचीस तीस वर्ष तक कायम रखता है। चालीस वर्षकी अवस्था तकमें या दस पांच सालके हेर फेरमें मासिकधर्म बन्द हो जाता है। स्त्रियोंका जीवन-काल परिवर्तित हो जाता है, फिर रजोदर्शन नहीं होता। एक बार मासिकधर्म बन्द हो जानेके बाद यदि फिर अकस्मात शुरू हो जाय तो इसे किसी कठिन रोगका प्रादुर्भाव समझना चाहिये। तुरन्त किसी डाक्टर को दिखलाना चाहिये।

युवावस्थामें रज या तो गर्भावस्था में या दूध पिलानेके दिनों बंद रहता है। यों यदि कभी डर समा जाता है या कोई मानसिक धक्का लग जाता है या मानसिक परिश्रम पड़ जाता है तो बंद हो जाता है किंतु कारण हट जाने पर फिर कायदेसे प्रारम्भ हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि रजोधर्ममें किसी प्रकारकी गड़बड़ी पड़ जाय तो डाक्टर को दिखलाना चाहिये।

साधारणतः युवावस्थामें जब रजोधर्म सामयिक व नियमित रूप पर आ जाय तो इसे स्वस्थ शरीरका लक्षण समझना चाहिये। अपनी दिनचर्य्यामें केवल इसीके कारण फर्क न आने देना चाहिये। केवल बहुत ठंढ व विशेष कसरत से बचना चाहिये और पुरुष सम्भोग बंद रखना चाहिये। स्राव सोखनेके लिये योनिद्वारमें जल सोखने वाला स्वच्छ मुलायम कपड़ा रखना चाहिये और किसी भी हालतमें गंदे कपड़े का प्रयोग न करना चाहिये। साधारण व्यक्तिके लिए स्वास्थके जो नियम हैं यानी खुली हवामें रहना, हलकी कसरत करना, अच्छा ताजा भोजन सदाकी भांति करना, स्नान करना, वह सब ठीक हैं। इन्हीं दिनों के उपलक्षमें रहनसहनमें कोई नवीनता न पैदा करनी चाहिये। हां विशेष अच्छा भोजन, ज्यादा सफाई, स्वास्थ्य-कर भोजन चित्तप्रसन्नता, इत्यादिका आयोजन करे तो अच्छा ही है।

कभी कभी रजस्वला स्त्रियोंको कब्ज व दस्त की शिकायत हो जाती है यानी पाचन प्रणाली कुछ बिगड़ जाती है। कब्ज रोकनेके लिये हलका जुलाब ले लेना चाहिये लेकिन यदि भोजन ठीक करनेसे ही, फल व तरकारी खानेसे पाचन-प्रणाली संभाली जा सके तो सराहनीय है।

स्त्रियां ऋतुमती होने पर रजस्वला होती हैं। रजोदर्शनके पहले स्त्री-बीज गर्भाशयमें आते हैं और यदि इनको पुरुष बीज मिल जाय तो गर्भाधान हो जाता है। पुरुष बीज न मिलने पर स्त्रीबीज रजके साथ मिल कर बाहर निकल जाते हैं। कदाचित इसी प्राकृतिक नियमको समझकर समाजमें कन्याके रजस्वला होनेके पहलेही ब्याह कर देनेकी प्रथा चल पड़ी थी और बहुत कुछ कायम भी है। रजोधर्म प्रारम्भ होते ही पुरुष बीज मिलने पर गर्भा-धान तो हो सकता है लेकिन यह वह समय है जब स्त्रीकी जननेन्द्रियां प्रारम्भिक कालमें रहती हैं तथा इनका रचना-कार्य जारी रहता है, दृढ़ नहीं रहतीं। इस प्रारम्भिककाल में यदि गर्भ आ जाता है तो जननेन्द्रियां सुदृढ़ नहीं होने पातीं और शारीरिक शक्ति गर्भावकाश में लग जाती हैं। दो एक गर्भधारणके बाद अनेक उपद्रव खड़े होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये मासिकधर्म का प्रारम्भ पुरुषसम्भोग व गर्भाधारण का ऋतुकाल-आगमन न सम-झना चाहिये।

लोगों में ऐसी धारणा है कि ऋतुकाल के एक हफ़्ते पहले और बाद के समय को छोड़कर मध्यम कालमें सम्भोग किया जाय तो गर्भधारण के कम अवसर रहते हैं और संताननिग्रहके लिये इसी समय का लाभ उठाना चाहिये। यह विशेषतः किम्बदन्ती ही जान पड़ती है।

रबर

[पृ० ८ का शेषांश]

इस महायुद्धमें सब ओर क्षति और हानि ही दिखाई पड़ती है। करोड़ों मनुष्य मारे गये हैं, करोड़ों घर बरबाद हो गये हैं और अभी तक युद्ध का अन्त नहीं दिखाई देता। इस युद्धकालमें जहाँ हज़ारों बाम्बर [Bombers] बने, नाना प्रकारके हथियार बने, वहाँ एक सुन्दर वस्तु भी बनी और यह है यौगिक रबर! यौगिक रबर आधुनिक रसायनकी सफलताका एक उदाहरण है।

इस पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों और लेखों से सहायता ली गई है। जिन पाठकोंको किसी विशेष विषय पर जानकारी करनी हो वह इन लेखों का अध्ययन करें :—

1. Encyclopaedia Brittanica
2. Book of Knowledge
3. Story of Chemistry--F. L. Darrow
4. Kurieu John, Jour. of Sci. and Ind. Research, India, 1944, 2, pp. 124-27.

रबर-दुग्धके लिये :—

5. Ind. Eng. Chem, 1927, pp. 1187.
6. Jour. of Soc. of Chem. Ind, 1937, pp. 397, T.

रबर-दुग्ध जमानेके लिये :—

7. Jour of. Soc. of Chem. Ind, 1918, pp. 48, T.
8. Comptes' rendus, 1907, 144, pp. 431.

वल्कैनाइज़ेशन के लिये :—

9. Jour. of Soc. of Chem. Ind, 1916, pp. 934.
10. English Patent, 129826 of 1916
11. Jour. of Soc. of Chem. Ind, 1921, pp-5, T.
12. Chem. and Ind, 1933, 90, pp. 95
13. Jour. of Soc. of Chem. Ind, 1915, pp 989; 1916, pp. 715.
14. Jour. of Chem. Soc. India, 1935, 13, T.

यौगिक रबर के लिये :—

15. Modern Synthetic rubbers Harry Barron (1942)
16. Jour. Indian. Chem. Soc, 1942 19, pp. 93
17. British Plastics, 1942, 6pp. 72193
18. British Plastics, 1939, 10, pp. 416.
19. Ind and Eng Chem, 1941, 33, pp. 1342.
2. ,, ,, ,, ,, , 1942, 34, pp. 243
21. Plastics, 1941, 5, pp. 9
22. British Plastics, 1912, 13, pp 281; 14; pp. 16
23. Chem. and Met. Eng, 1940, 47, pp. 220, 610.
24. India. rubber Ind., 1939-40, 15, pp. 51
25. Jour of Sci. and Ind. Research, 1944, 3, pp. 118 22.

सम्पादकीय

विज्ञान-परिषद् प्रयाग एक अखिल भारतीय संस्था है

माधुरीके दिसम्बर १९४४ के अंकमें पं० लक्ष्मीकान्त शुक्ल बी० एस-सी०, बी० टी०, का "राष्ट्रभाषा हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य" लेख छपा है इस लेखमें लेखक ने हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका अभाव बतलाते हुये इस बातकी आवश्यकता बतलाई है कि इस कार्यको करनेके लिए एक अखिल भारतीय विज्ञान परिषदकी स्थापना की जाय। इस लेखसे पाठकोंके हृदयमें यह विचार उठना स्वाभाविक है कि हिन्दीमें इस प्रकारका कार्य करने वाली कोई संस्था अभी तक नहीं है। विज्ञान-परिषद प्रयाग एक अखिल भारतीय संस्था है जो इस क्षेत्रमें पिछले बत्तीस वर्षोंसे काय करती आ रही है। शुक्ल जी ने अपने लेखमें विज्ञान परिषद्का कहीं नाम तक नही दिया है। इसके दो ही कारण हो सकते हैं। पहला यह कि शुक्लजीने विज्ञान-परिषद्का कभी नाम ही न सुना हो और दूसरा यह कि वह इस संस्थाको अखिल भारतीय संस्थाके रूपमें न मानते हो। यदि पहला कारण है तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि शुक्लजी ऐसे पढ़े-लिखे महानुभावको इस संस्थाके अस्तित्व तक का पता नहीं। यदि दूसरा कारण है तो भी यह खेद-जनक बात है कि जिस संस्थाने हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी इतनी सेवा की हो, उसके सम्बन्धमें ऐसी अनुचित धारणा शुक्लजी ऐसे पढ़े-लिखे सज्जन रखें।

शुक्लजीको यह मालूम होना चाहिये कि विज्ञान परिषद् ने हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यका कार्य उस समय उठाया था जब इस ओर साधारण हिन्दी जनताका ध्यान भी नहीं था। प्रारम्भमें बहुतोंने विज्ञान-परिषद्के प्रयासकी हँसी उड़ाई थी और यह समझा था कि यह व्यर्थ है और सफल नहीं हो सकेगा। आज जब कि चारों ओर मातृभाषाके माध्यम द्वारा शिक्षणकी पुकार मची हुई है विज्ञान-परिषद्के कार्योंकी महत्ता सब हिन्दी-प्रेमियोंकी समझमें आ रही है। विज्ञान-परिषद्ने अपने कार्योंसे यह सिद्ध कर दिया है कि मातृभाषामें ऊँचेसे ऊँचे वैज्ञानिक साहित्यका लिखना पढ़ना और पढ़ाना सफलता पूर्वक हो सकता है। पहले जिन लोगोंको यह सन्देह था कि हिन्दीमें विज्ञानकी शिक्षा सफलतापूर्वक नहीं दी जा सकती, अब वे भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि अपनी भाषा द्वारा यह शिक्षा अधिक सफल हो सकती है। विज्ञान साहित्यके क्षेत्रमें वर्तमान जागृति लानेका पूरा श्रेय विज्ञान-परिषद्को ही है।

विज्ञान परिषद् का मुख्य उद्देश्य प्रारम्भसे ही यह था कि लोगोंको हिन्दी द्वारा विज्ञानकी शिक्षा दी जाय। आज अपने इस कार्यको कुछ अंशों तक सफल हुआ देखकर स्वभावतः हर्ष और संतोष है। अपने इस उद्देश्य की पूर्तिके निमित्त परिषद्ने हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रकाशन कार्य भी प्रारम्भसे ही हाथमें लिया था। परिषद् ने विज्ञानके सब ही विषयों पर लगभग ६० ग्रंथ निकाले हैं। परिषद्की योजनामें विज्ञानके सभी अंगोंपर ऊँचे से ऊँचे ग्रंथोंका निर्माण करना है। इस संबंधमें कुछ कार्य हुआ भी है और हो भी रहा है। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण हमारा प्रकाशन कार्य बहुत तेजीसे नहीं चल पाया है। यदि हिन्दी-प्रेमी-धनिकोंसे अपने कार्यके लिए परिषद्को प्रचुर आर्थिक सहायता मिल सके तो परिषद् हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी अपूर्व सेवा कर सकता है।

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्यके लेखन तथा प्रकाशन का कार्य करनेके लिये और संस्थायें खुलें, अथवा नागरी प्रचारिणी सभा या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा यह कार्य और बढ़ाया जाय इसमें परिषद्को कोई आपत्ति नहीं है। वैज्ञानिक साहित्य सम्बन्धी कार्य जितना भी बढ़ेगा परिषद्को प्रसन्नता ही होगी। किन्तु मेरे विचारसे कार्यकी अधिक सफलता के लिए अच्छा यह है कि परिषद्की ही आर्थिक कठिनाइयोंको दूर कर इसके द्वारा यह कार्य करवाया जाय। परिषद् की यह समस्या धनी हिन्दी प्रेमी जनताके पूर्ण सहयोगसे ही हल हो सकती है। अतः मैं उन लोगोंसे अनुरोध करूँगा कि वे परिषद् के कार्योंमें अधिक रुचि लें और अपनी सहायता प्रदान करें जिससे परिषद् हिन्दी संसारकी वाञ्छनीय सेवा कर सके।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=),

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ॥),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचोली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १।।),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १।।),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २॥),

२४—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १।।),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, १२० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। प्रत्येक घरमें एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। हिन्दुस्तान रिविउ लिखता है—should be widely welcomed by the Hindi knowing public in this country.

अमृत बाजार पत्रिका लिखती है—It will find an important place in every home like the Hindi almanac.

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

निम्न पुस्तकें छप रही हैं

रेडियो—ले० प्रो० आर० जी० सक्सेना।

सांपों की दुनिया—ले०श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, प्रेस, प्रयागकला।

# विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

****

भाग ६१	वृष, सम्वत् २००२ मई १९४५	संख्या २

****

कुछ उपयोगी नुसखे

धातुओंकी क़लई और रँगाई

[डाक्टर गोरख प्रसाद]

'उपयोगी नुसखे' के अध्याय ११में बिजली द्वारा ताँबा, निकेल, क्रोमियम, चाँदी और सोनेकी कलई करनेकी रीतियाँ बतलाई जा चुकी हैं। अब कुछ अन्य धातुओंकी क़लई, तथा धातुओंकी रँगाई पर विचार किया जायगा।

बिजलीसे ताँबेके ठप्पे—इस्पात, ताँबे, जस्ते, लकड़ी आदिके ठप्पेसे (जिससे काग़ज़ या कपड़े पर चित्र या बेल-बूटे छापे जाते हैं) बिजलीके द्वारा ताँबेके ठप्पे बनाये जा सकते हैं जो प्रथम ठप्पेकी सच्ची नक़ल होते हैं। संक्षेप में इसकी रीति यह है कि असली ठप्पेसे मोमका साँचा बना लिया जाता है; फिर मोमकी सतह पर अत्यंत सूक्ष्म तह ग्रैफ़ाइटकी पोत दी जाती है, जिससे मोमकी सतह विद्युत-धाराका संचालक हो जाती है (केवल मोम में बिजली नहीं घुस पाती), फिर इस साँचेकी सतह पर ताँबा चढ़ाते हैं। ताँबेकी तह इतनी मोटी कर ली जाती है कि लकड़ी या सीसे आदि पर जड़नेसे वह ठप्पे का काम दे सके।

ठप्पेके लिए मोम—ठप्पेके लिए मोममें पहलेसे भी कुछ ग्रैफ़ाइट डाल दिया जाता है। नुसखा यह है :—

	(१) मधुमक्खी का मोम	४६ आउंस
	तारपीन (टरपेंटाइन)	३ आउंस
	ग्रैफ़ाइट (अत्यंत सूक्ष्म चूर्ण)	२ आउंस
या	(२) मधुमक्खी का मोम	३ पाउंड
	तारपीन (टरपेंटाइन)	६ आउंस
	ग्रैफ़ाइट (सूक्ष्म चूर्ण)	१ आउंस

गरम करके मिलाना चाहिए, परंतु बरतनको आँच पर न चढ़ाकर खौलते पानीमें रखना अधिक अच्छा है। आँच पर रखनेसे मोमके जल जानेका डर रहता है। गरमी के दिनोंमें संभवतः पूर्वोक्त नुसखोंसे बना मोम कुछ नरम जान पड़ेगा। ऐसी अवस्था में थोड़ा-सा बरगंडी पिच मिला देना उचित होगा।

अब धातुकी छिछली तश्तरीमें पूर्वोक्त रीतिसे बने मोमको उँडेल देते हैं। तश्तरी ½ इंच गहरी हो। इसके एक किनारे पर दो धातुके हुक लगे हों जिससे तश्तरीको क़लई करनेवाले घोलमें लटकाया जा सके। अब मोमकी सतहको आँच दिखलाकर नरम कर लिया जाता है और उसपर बहुत बारीक ग्रैफ़ाइटकी बुकनी नरम बुरुश से पोत दी जाती है। ग्रैफ़ाइटको पलंबेगो भी कहते हैं। बिजलीसे क़लई करनेका सामान बेचने वालोंके यहाँ ऐसी बुकनी खास इसी कामके लिए बनाकर बेची जाती है। फिर स्वच्छ नरम बुरुशसे पोंछकर फालतू बुकनी झाड़ दी जाती है। अब उस ठप्पेको जिसकी नकल करनी होती है ग्रैफाइट लगे मोम पर इतनी जोरसे दबाया जाता है कि सच्ची छाप उतर आये।

अब इस छाप या साँचेकी मरम्मत हाथसे की जाती है। ठप्पेके दबानेसे जो मोम उभड़ आया होता है उसको चाकूसे काट और छील देते हैं। जहाँ आवश्यकता प्रतीत होती है वहाँ और मोम चिपका देते हैं। ऐसा करते समय स्मरण रखना चाहिए कि इस साँचेमें जहाँ-जहाँ मोम चिपकाया जायगा, वहाँ-वहाँ इस साँचेसे बने ठप्पेमें गड्ढा रहेगा और इसलिए उस ठप्पे से वहाँ वहाँ सफेद छपेगा।

इसके बाद साँचेमें जगह-जगह पर कीलें ठोंक दी जाती हैं जिससे साँचे की ग्रैफ़ाइट लगी सतह और तश्तरी

में बिजली आने जानेके लिए अच्छा कनेक्शन हो जाय। तश्तरीकी पीठपर और किनारों पर स्वच्छ (बिना ग्रैफ़ाइट पड़ा) मोम पोत दिया जाता है कि उस पर ताँबा न चढ़ने पाये। सामनेकी ओर भी उन स्थानों पर मोम पोत दिया जाता है जहाँ ताँबा चढ़ाने की आवश्यकता नहीं रहती। इन स्थानों पर मोम न पोता जायगा तो बेकार बहुत-सी बिजली और बहुत-सा ताँबा खर्च होगा।

फिर साँचेके उन भागोंमें जहाँ ताँबा चढ़ाना रहता है सूक्ष्म जाँच की जाती है और आवश्यकता प्रतीत होने पर ग्रैफ़ाइट पोत दिया जाता है, परंतु इस काम में साँचे के ब्योरे न मिटने पायें। अब साँचेको ठंढे पानीसे धो डालते हैं जिसमें ग्रैफ़ाइटके वे कण जो मोममें चिपके नहीं रहते बह जायँ।

अंतमें साँचेको कलई करने वाली टंकीमें लटकाकर ताँबेकी कलई करते हैं। इस काममें समय लगता है। साधारणतः ८ घंटे प्रतिदिन कलई करते रहनेसे काम २०-२५ दिन में समाप्त होता है।

ताँबेकी चादर और मोमके साँचेके बीच साधारणतः ३या ४इंच स्थान रहता है। साँचेके प्रति वर्ग फुटके लिए १०से १५ ऐमपियर विद्युत चाहिए, परंतु आरंभ में जब तक सर्वत्र ताँबा न चढ़ जाय, इससे बहुत कम विद्युतसे काम करना चाहिए। इतने विद्युतके लिए १से २ वोल्ट तककी आवश्यकता पड़ेगी। यदि टंकीके घोलको बराबर चलाते रहनेका कोई प्रबंध हो और इसका तापक्रम बढ़ा दिया जाय तो अधिक ऐमपियरका प्रयोग किया जा सकता है। ९०से १०० डिगरी (फारनहाइट) के तापक्रम पर घोल को बराबर चलाते रहने पर १४४ ऐमपियर प्रति वर्ग फुट तक प्रयोग किया जा सकता है। इतनी विद्युतसे १२ घंटेमें $\frac{1}{10}$ ईंच मोटी तह ताँबेकी चढ़ जाती है। घोल को बराबर चलाते रहने के लिए बड़े कारखानों में विशेष प्रबंध रहता है। जिससे घोलमें वायुकी धारा बराबर आती रहती है, परंतु छोटे कारखानोंमें घोलको लेलुलायडसे चलाते रहना काफी होगा। कभी भी तापक्रम इतना न हो जाय कि साँचेका मोम पिघल जाय।

टंकी में निम्न घोल ठीक होगा :—

विशुद्ध तूतिया	३४ आउंस
फिटकरी (पोटैश ऐलम)	२ आउंस
विशुद्ध सलफ़्यूरिक ऐसिड	५ (तरल) आउंस
पानी	१ गैलन

[सलफ़्यूरिक ऐसिड (गंधकके तेज़ाब) को घोलमें धीरे-धीरे डालना चाहिए और घोलको बराबर चलाते रहना चाहिए। तेज़ाबमें पानी न छोड़ना चाहिए अन्यथा तेज़ाब छटक पड़ेगा।]

जब ताँबेकी तह काफ़ी मोटी हो जाय तब उसे सँभालकर उखाड़ लेते हैं, अच्छी तरह धो लेते हैं, पीठ पर हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड लगा कर राँगे की पत्ती चिपका देते हैं और लोहेके साँचे (छिछले बक्स) में रखकर उस पर पिघला टाइप मेटल (वह धातु जिससे छापेखाने का टाइप ढलता है) डाल देते हैं। इससे राँगेकी पत्ती गल जाती है और टाइप मेटल ताँबे को अच्छी तरह पकड़ लेता है। फिर टाइप मेटलको काट और छील कर (रंदा करके) ठप्पे को उचित नाप और ऊँचाईका कर लेते हैं। ठप्पेकी पीठ पर लगाने योग्य टाइप मेटलका नुसखा यह है—

ऐंटिमनी	४ या ५ भाग
सीसा (धातु)	९० भाग
राँगा	६ या ५ भाग

मोमके बदले निम्न मिश्रणको भी साँचे के लिए काम में ला सकते हैं। तगमे, सिक्के आदिकी नकल उतारनेके लिए यह विशेष उपयोगी है :—

गटा पर्चा (बढ़िया)	२ पाउंड
चर्बी	१ पाउंड
तीसीका तेल	$\frac{1}{2}$ आउंस

पिघलाओ और अच्छी तरह मिलाओ।

टाइपसे मैट्रिक्स—टाइपसे मैट्रिक्स (साँचा) बनाने के लिए टाइप पर ही ताँबा चढ़ाते हैं। जब ताँबेकी तह काफी मोटी हो जाती है तो पिघलाकर टाइपको दूर कर देते हैं। टाइपको स्पिरिटसे साफ़ करके पोटैशियम या सोडियम बाइक्रोमेटके घोलसे साफ़ करना चाहिए। निम्न घोल उचित होगा—

पोटैसियम बाइक्रोमेट	२५ ग्रेन
पानी	२ गैलन

पीतल की कलई—पीतल की कलई कराना (पीतल चढ़ाना) ताँबे, निकेल, सोने, चाँदी आदिकी कलईसे अधिक कठिन है क्योंकि पीतल ताँबा और जस्ताका संकर धातु है। कलई करने वाले घोलमें ताँबा और जस्ता दोनों साइनाइड रहते हैं। बने-बनाये चूर्ण बिकते हैं जिनको केवल घोल लेने से काम चल जाता है, परंतु निम्न घोल भी अच्छा है।

पोटैसियम साइनाइड	१६ आउंस
कॉपर साइनाइड	६ आउंस
ज़िंक साइनाइड	३ आउंस
सोडियम बाइसलफ़ाइड	३ आउंस
अमोनियम क्लोराइड (विशुद्ध नौसादर)	२ आउंस
पानी	एक गैलन

ताँबेके लिए कम वोल्ट और जस्तेके लिए अधिक वोल्ट की आवश्यकता होती है। इसलिए अधिक वोल्टके लगानेसे पीतल हलके रंग का चढ़ता है (जस्ता अधिक रहता है) और कम वोल्ट लगानेसे पीतल लाल रंगका चढ़ता है (ताँबा अधिक रहता है)। साधारणतः ठंढे घोलोंके लिए ३से ४ वोल्ट और गरम घोलोंके लिए (तापक्रम १२० डिगरी फारनहाइट) २½से ३ वोल्टकी आवश्यकता पड़ती है प्रति वर्ग फुट २½से ४ ऐमपियर विद्युतकी आवश्यकता पड़ती है। डायनामो के धन (+) संबंधित पीतल की जो चादर घोलमें लटकायी जाय उसकी बनावट निम्न नुसखेके अनुसार हो तो अच्छा रहेगा—

ताँबा	६० भाग
जस्ता	४० भाग

कैडमियम की कलई—कैडमियम का रंग राँगे और चाँदी के बीच होता है। कैडमियम की कलई पर पीतल के तार के बुरुश से रगड़ने पर जो अर्धचमक आती है वह कुछ लोगोंको बहुत पसंद आती है। यह चमक टिकाऊ होती है और धातु शीघ्र काली नहीं पड़ती। परंतु ऐसे बरतनोंमें कैडमियमकी कलई न करनी चाहिए जिसमें खटाई या भोजन रखना हो। लोहे पर कैडमियम की कलई करनेसे लोहे पर मुरचा नहीं लगता। कैडमियम पर क्षारोंका (सोडा आदि का) कुछ असर नहीं पड़ता।

लोहेको छोड़ अन्य धातुओं पर, विशेष कर पीतलपर कैडमियमकी कलई टिकाऊ नहीं होती।

कैडमियकी कलई करना बहुत सरल है। जिस टंकी में कलई करने वाला घोल रक्खा जाय वह लोहेका हो। सीसेकी टंकियोंसे घोल खराब हो जाता है। कैडमियम-पोटैसियम डबल साइनाइडके घोलके प्रयोगसे कलई होती है, परन्तु बने-बनाये विशेष लवणोंको ही खरीदना सुविधाजनक होगा। ये कलई करनेके सामान बेचने वालोंसे मिलते हैं। इसमें पानी इतना मिलाना चाहिए कि घोलका घनत्व ट्वैडल हाइड्रोमीटरसे नापने पर १० या ११ डिगरी उतरे। घोलका तापक्रम ६२ डिगरी फारुहाइटसे कम न रहे। डायनामो के धन (+) सिरेसे संबंधित कैडमियमके पत्र रक्खे जाते हैं, इसको प्रत्येकबार साफ करके काममें लाना चाहिए। १० से १५ ऐमपियर प्रति वर्ग फुट विद्युत धारा की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए २ से २॥ वोल्टकी आवश्यकता होगी।

जस्ते की क़लई—सस्ते कामोंमें जस्तेकी कलई करनेकी रीति यह है कि पिघले जस्तेमें स्वच्छ की गयी वस्तु को डुबा दिया जाय। चादरों पर जिनसे बाल्टी बनती है इसी प्रकार जस्तेकी क़लई की जाती है। लोहेके बाल्टू और ढिबरियों पर भी साधारणतः इसी तरहकी क़लई रहती है। परन्तु बारीक कामोंमें ऐसी क़लई नहीं की जा सकती, क्योंकि जस्ता सब जगह बराबर नहीं लिपटता और वस्तुकी आकृति कुछ बदल जाती है। इस्पातसे बनी वस्तुओंमें भी पूर्वोक्त रीतिसे क़लई नहीं की जा सकती क्योंकि ऐसा करनेसे उनका पानी उतर जाता है (अर्थात उनकी कड़ाई चली जाती है— वे नरम हो जाते हैं)

जस्तेकी कलई बिजली द्वारा करनेके लिए ज़िंक सलफ़ेट और अमोनियम सलफेट, या ज़िंक क्लोराइड और अमोनियम क्लोराइडके घोलोंके मिश्रणसे काम चल सकता है, परन्तु पोटैसियम साइनाइडके घोलमें ज़िंक ऑक्साइड या ज़िंक कारबोनेट घोलकर बनाये गये घोल अधिक अच्छे होते हैं। बिजलीसे कलई करनेका सामान बेचने वालोंके यहाँ इस कामके लिए बने बनाये लवण

बिकते हैं जिन्हें केवल पानीमें घोलना रहता है और उन्हीं के खरीदनेमें सुविधा होती है। निम्न घोलसे भी अच्छा काम हो सकता है:—

जिंक साइनाइड ४०%	१६ आउंस
सोडियम हाइड्रेट (कास्टिक सोडा)	२४ आउंस
जिंसाइट	२ आउंस
पानी	१ गैलन

पहले कास्टिक सोडाको घोलकर उसमें ज़िंक साइनाइड धीरे धीरे घुलाना चाहिये; अंत में ज़िंसाइट (zincite)। यह घोल ६० डिगरी फारनहाइट पर अच्छा काम करता है।

डायनामोके धन (+) सिरे का संबंध विशुद्ध जस्ते की चादरसे करना चाहिये। जब कलई न होती हो तो इस चादरको बाहर खींच लेना चाहिए। प्रति वर्ग फुट १० ऐमपियर विद्युत चाहिये और इसके लिए २ से २॥ वोल्टकी आवश्यकता पड़ेगी।

राँगेकी क़लई—पिघले राँगेकी क़लईका प्रचार इतना है कि सभीने राँगेकी कलई वाले बरतनोंको देखा होगा। परंतु बिजलीसे भी राँगेकी क़लई हो सकती है। तब निम्न घोल का प्रयोग किया जा सकता है—

सोडियम स्टैनेट	१२ आउंस
कास्टिक सोडा	१ आउंस
सोडियम ऐसिटेट	२ आउंस
हाइड्रोजन पेरॉक्साइड	$\frac{1}{10}$ आउंस
पानी	१ गैलन

विद्युत प्रति वर्ग फुट २० से ३० ऐमपियर रहे। इसके लिए ४ से ६ वोल्ट की आवश्यकता पड़ेगी। तापक्रम १६० से १७० डिगरी फारनहाइट रहे। डायनामोके धन (+) सिरेसे संबंधित पत्र विशुद्ध राँगेका रहे और उसका क्षेत्रफल कलई की जाने वाली वस्तुके क्षेत्रफलका तिगुना रहे। लगभग ३० मिनटमें कलई काफी चढ़ जायगी।

सीसेकी क़लई—सीसा गंधकके तेजाबसे नहीं कटता। इसलिये जहाँ तेज़ाब या तेज़ाबके धुंएके लगनेकी संभावना रहती है वहाँ जस्तेके बदले सीसेकी कलई की जाती है।। पीतल, लोहा, ताँबा आदि पर सीसेकी क़लई चढ़ सकती है। सीसेकी कलई उन वस्तुओं पर न करनी चाहिए जो नाइट्रिक ऐसिड(शोरेके तेजाब) या क्षार (कास्टिक सोडा, कास्टिक पोटेश आदि) के संपर्क में आयेंगे।

लेड फ्लुओबोरेटके घोलसे सीसेकी कलई होती है, परंतु इसे कड़े रबड़के बरतनोंमें बनाना और रखना पड़ता है। धातुके बरतनोंमें यह तुरंत खराब हो जायगा। कलई करनेके सामान बेचने वालोंसे बना-बनाया मिश्रण खरीदना अधिक उत्तम होगा। प्रति वर्ग फुट के लिए १८ ऐमपियर चाहिए। इसमें लगभग २ वोल्टकी आवश्यकता होगी। तापक्रम लगभग ६० डिगरी फारनहाइट हो। अधिक तापक्रम पर घोल अच्छा काम नहीं करता।

लेड फ्लुओबोरेटके बदले अन्य लवणोंसे भी काम चल सकता है, परंतु उसमें विद्युतको प्रति वर्ग फुट ४ ऐमपियर ही रखना पड़ता है और सीसा धीरे-धीरे चढ़ता है।

डायनामों के धन (+) सिरेसे संबंधित विशुद्ध सीसेके पत्रोंको टंकी में लटकाना चाहिए।

प्लैटिनमकी क़लई—प्लैटिनम देखनेमें चाँदीकी तरह (कुछ लोहेकी तरह कालिमा लिए) होता है। एकबार चमका देने पर प्रायः सदा ही चमकता रहता है। यह बहुमूल्य धातु है। साधारणतः यह सोनेसे भी मंहगा बिकता है।

टंकीमें निम्न घोल देना चाहिए—

प्लैटिनम अमोनियम क्लोराइड	२$\frac{1}{2}$ आउंस
अमोनियम क्लोराइड	१ आउंस
सोडियम साइट्रेट	२० आउंस
पानी	१ गैलन

घोलको गरम करके (१८० फारनहाइट पर) प्रयोग करना चाहिए। डायनामोके धन (+) सिरेसे संबंध रखने वाला पत्र चाहे प्लैटिनम का हो, चाहे कारबन का। प्लैटिनमके पत्रके रहने पर कलईका प्लैटिनम वस्तुतः घोलमें से ही निकलता है; प्लैटिनमका पत्र नहीं घुलता।

५ या ६ वोल्टकी आवश्यकता होगी। वस्तु प्लैटिनम या कारबनके पास ही रहे जिससे विद्युत धारा काफी मात्रामें बह सके। घोलमें समय समय पर प्लैटिनम क्लोराइड छोड़नेकी आवश्यकता होती है जिसमें घोल फीका न पड़ने पावे।

लोहेकी वस्तुओं पर प्लैटिनम की क़लई करनेके लिए पहले उनपर ताँबेकी क़लई करना आवश्यक है।

बिना बिजली की क़लई

तांबेकी कलई—

तूतिया	३$\frac{1}{2}$ आउंस
सलफ्यूरिक ऐसिड	३$\frac{1}{2}$ आउंस
पानी	१ से २ गैलन तक

इस घोलमें स्वच्छ किये लोहेकी वस्तुको दो चार सेकंड तक रखनेसे ताँबेकी हलकी कलई चढ़ जाती है, परंतु यह कलई इतनी हलकी होती है कि लोहेकी कोई विशेष रक्षा नहीं होती, केवल रंग भर बदल जाता है। यदि पूर्वोक्त घोलमें वस्तुको अधिक देर तक रक्खा जायगा तो कलई भुसभुसी हो जायगी और रगड़नेसे छूट जायगी।

सोनेकी कलई—

(१) गोल्ड क्लोराइड	२० भाग
पोटैसियम साइनाइड	६० भाग
पोटैसियम बाइटारटरेट	५ भाग
प्रेसिपिटेटेड चॉक	१०० भाग
स्रवित जल (डिस्टिल्ड वाटर)	१०० भाग

गोल्ड क्लोराइडको थोड़ेसे जलमें अलग घोलना चाहिये, पोटैसियम साइनाइड और पोटैसियम बाइटारटरेट को शेष जलमें अलग। दोनों घोल को मिलाकर फिर प्रेसिपिटेटेड चॉक (खड़िया) को मिलाना चाहिए। जिस वस्तु पर क़लई करनी हो उसे पहलेसे स्वच्छ कर रखना चाहिये। उस पर अब पूर्वोक्त घोलको ऊनी चिथड़ेसे अच्छी तरह रगड़ देना चाहिये। इस घोलसे चांदी, पीतल और तांबे पर क़लई हो सकती है। क़लई चमकदार होती है, परंतु बहुत पतली।

(२) गोल्ड क्लोराइड	१$\frac{3}{4}$ भाग
कास्टिक पोटैश	१८० भाग
पोटैसियम कारबोनेट	२० भाग
पोटैसियम साइनाइड	६ भाग
पानी	१००० भाग

घोलकर खौलाओ। स्वच्छ की हुई वस्तुको इसमें छोड़नेसे सोनेकी हलकी कलई चढ़ जाती है।

रीति १ या रीति २ से बहुधा पीतलके आभूषण तथा बटन आदि पर सोनेकी हलकी क़लई कर दी जाती है।

(३) मुलम्मा करना—

सोना	१ भाग
पारा	८ भाग

घरियामें रखकर आग पर गरम करो। घुल जाने पर पानीमें डालो और अंगुलीसे मसलो। सोने और पारेका गाढ़ा मिश्रण अलग हो जायगा। जो पारा अलग हो जाय उसे कपड़ेसे छानकर अलग कर लो। इस पारेमें काफी सोना रहता है। इसलिये सुरक्षित रखना चाहिये और इसे फिर सोने और पारेका मिश्रण बनानेके काममें लाना चाहिये।

गाढ़े मिश्रणसे चांदी आदि पर सोना चढ़ानेके लिये मरक्यूरिक नाइट्रेटकी सहायता ली जाती है। इसके लिए १०० भाग पारेको ११० भाग नाइट्रिक ऐसिड (घनत्व १'३३) में घुलाया जा सकता है। पीतलके तारके बुरुशको मरक्यूरिक नाइट्रेटके घोलसे तर करके सोने और पारे के मिश्रण पर रगड़ना चाहिये और तब उसी बुरुशको उस वस्तु पर रगड़ना चाहिये जिस पर मुलम्मा करना हो। काफी सोना चढ़ जाने पर वस्तुको मन्द आंच पर गरम करना चाहिये। इससे पारा उड़ जाता है और सोनेकी बहुत पतली तह वस्तु पर रह जाती है। इस तहको स्वच्छ पीतलके बुरुश से रगड़कर मंद आंचमें तपानेसे सोनेका रंग बढ़िया हो जाता है। बिजलीसे कलई करनेके आविष्कारके पहले पारेकी सहायतासे ही सोनेकी क़लई की जाती थी।

[शेष फिर]

कमल

[जगदीश प्रसाद राजवंशी, एम० ए०]

कितने ही शांत सरोवरों तथा झीलोंमें सुन्दर कमल खिलकर अपनी पंखुड़ियोंसे इनकी शोभा बढ़ाते हैं। सूर्यकी किरणोंमें झिलमिल पानीकी सतहके ऊपर ढालके समान कमलके पत्ते फैले रहते हैं। उन्हींके बीचमें से निकले किसी डंठलमें खिले कमलसे सरोवर का सौंदर्य और भी अधिक बढ़ जाता है। इसी सौंदर्यके कारण हमारे पुराने काव्य ग्रंथोंमें कमलकी इतनी अधिक प्रशंसा की गई है। कोई भी काव्य ग्रंथ ऐसा न मिलेगा जिसमें सुंदर और सुकुमार अंगोंकी उपमा कमलसे न दी गई हो।

विभिन्न रंग और खिलने के समय

कमलके रंगों और खिलनेके समयके अनुसार संस्कृत ग्रंथोंमें इसके बहुतसे नाम और भेद कर दिये गये हैं। किन्तु इनमें दो भेद मुख्य हैं: (१) कमल, जो सूर्यके प्रकाशमें (दिनमें) खिलता है, तथा (२) कुमुदिनी अथवा कुईं वर्ग, जो चन्द्रमा के प्रकाश में (रात्रिमें) खिलती है।

किन्तु नवीन वर्गीकरणके अनुसार कमल और कुइयोंकी अनेक जातियाँ है। उनके फूलनेके समय भी भिन्न होते हैं। यदि एक सरोवरमें भिन्न-भिन्न प्रकारके १६-१७ भांतिके कमल लगे हों तो दिनके प्रायः प्रत्येक घंटेमें कोई-न-कोई फूल खिलता और दूसरा बंद होता रहेगा। प्रत्येक के खिलनेका समय भी प्रायः नियत ही रहता है। एक फूल २ दिनसे लेकर ४या ७दिन तक खिलता और बंद होता रहता है। अंतमें वह पानीमें डूब जाता है; या, यदि पानी छिछला हुआ तो फूल केवल नीचे झुक जाता है। तब बीज पकना प्रारम्भ होता है। फूल खिलनेके समयके विषय में एक बात और देखी जाती है; जिस समय पर कोई फूल पहले-पहल खिलता है, दूसरे दिन उससे एक घंटे पश्चात खिलता है और एक घंटे पहले बंद हो जाता है। प्रतिदिन इसी प्रकार समयमें भेद होता जाता है। फूलके डूबने या मुरझाने के लगभग ६से १० सप्ताहोंके पश्चात बीजकोष पूरा पक जाता है और फट जाता है। बीज उतरा कर पानीकी सतह पर आजाते हैं और कई घंटों तक हलके छिलकेकी सहायतासे तैरते रहते हैं। यह छिलका अंतमें सड़ जाता है और बीज डूब जाता है, परंतु तब तक वह पौधेसे दूर कहीं पहुँच जाता है। इस प्रकार पुराने स्थान से दूर नये कमल उत्पन्न हो सकते हैं। यदि कोई बीजों को निकालना चाहे तो जिस समय ये तैरते रहते हैं उस समय चलनी या बारीक जालकी सहायतासे इन्हें निकाल सकता है।

कुईं कई रंगोंकी होती हैं। सफेद, लाल, नीला और पीला रंग अकसर देखनेमें आता है परंतु इन रंगोंमें भी हलका और गाढ़ा कई प्रकारका भेद होता है। भारतवर्षमें अधिकतर सफेद कमल होता है, अमरीकामें अधिकतर पीला कमल होता है।

भारतवर्षमें कमलको शुभ मंगलका चिन्ह माना है। इसके अतिरिक्त अनेक पौराणिक कथाओंसे इसका संबंध होनेके कारण भी इसकी महिमा बढ़ गई है। मंदिरों के पास सरोवरमें कमलको अकसर लगाते हैं। अनेक प्राचीन मंदिरके पास वाले सरोवरोंमें अबभी कमल खिलते हुए मिलते हैं।

बाग़-बगीचों में

साधारण ताल-तलैयोंमें कमल और कुईं खिलते देख कर बहुतसे लोग सोचने लगते हैं कि कमलके लिये केवल जलकी आवश्यकता है और वह कहीं भी उत्पन्न किया जा सकता है। इसी भ्रांतिके कारण उन्होंने अपने घरोंमें कमल उत्पन्न करने का प्रयत्न किया होगा, किन्तु वे इस प्रयासमें सफल न हो सके होंगे। कमलके लिये जिन प्राकृतिक वस्तुओंकी आवश्यकता है वे जब तक सब एकत्रित नहीं की जायँगी तब तक कमल उत्पन्न नहीं हो सकता। ये आवश्यक वस्तुयें हैं जल, प्रचुर मात्रा में उपजाऊ मिट्टी और खाद, तथा सूर्यका प्रकाश। जहाँ प्राकृतिक सरोवर या झील होते हैं वहाँ तो ये सब वस्तुयें प्राकृतिक रूपमें ही एकत्रित हो जाती हैं किन्तु जहाँ मनुष्य इन्हें पैदा करना चाहते हैं वहाँ सब वस्तुओंके होते हुए भी बहुधा प्रकाशका अभाव रहता है। प्रायः लोग वृक्षोंकी छायामें ही इसे उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया करते हैं।

हौज़

यदि कोई घरमें ही हौज़ (कुंड) खोद कर कमलके फूल लगाना चाहे तो उसे उपर्युक्त बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

गड्ढा जितना बड़ा बनाया जा सके बनाना चाहिये। गड्ढेकी दीवारें सीमेंट कंकरीटकी या सीमेंट और ईंटकी बनाई जा सकती हैं। गड्ढेकी तलीमें पानीकी निकासीके लिए छेद बना देना अच्छा है। साधारणतया इसे बंद रक्खा जाता है। यदि हौज़ का तल पक्का बनाया गया है तो उस पर ६ इंचसे १२ इंच तक कुछ खाद मिली मिट्टी की एक तह बिछा देनी चाहिये। जो लोग शौकके लिये कमल लगाते हैं वे अवश्य ही सुरुचिके अनुरूप सारी बातें उपस्थित करनेका प्रयत्न करते हैं और हौज़ को साफ-सुथरा रखना चाहते हैं। हौज़ में कोई कमल का पत्ता सूख गया है तो वे उसे अलग करना चाहेंगे। हौज़ के बड़ा रहनेके कारण अकसर इसको किनारे परसे नहीं निकाला जा सकता; इसलिये नौकर या माली अवश्य पानीमें घुसेगा और पत्ते तक पहुँचकर उसे अलग करेगा। पत्ते तक पहुँचनेमें वह बहुत सी जड़ों को अपने पैरसे तोड़ देगा जिसके कारण कमल को नुकसान पहुँचेगा। इसके अतिरिक्त पानी भी गँदला हो जाता है और पीछे पानीमें मिली मिट्टी पत्तियों पर बैठ जाती हैं, इसलिये एक दूसरी विधिका उपयोग अच्छा होता है। हौज़ के तल पर मिट्टी बिछानेके बदले ३ या ४ फ़ुट नापके चौकोर लकड़ीके बक्स बनाये जा सकते हैं और उनमें मिट्टी भर कर कुछ दूर-दूर पर उन्हें रक्खा जा सकता है। कमल का पौदा इन्हीं बक्सोंमें लगाया जाय। इस प्रकार कमलके पौधों को लगाने पर हौज़के तल पर चलने फिरनेसे कोई हानि नहीं होगी। हौज़में पानीकी गहराई दो-ढाई फ़ुटके लगभग होनी चाहिये। मिट्टी किसी चरागाहसे लाई जाय या इसमें एक तिहाई गोबर का खाद मिला लिया जाय। इस मिट्टी को बिछाकर, अथवा बक्सोंमें भर कर, उस पर रेत (बालू की एक तह) जमा देनी चाहिये। यह लगभग १इंच मोटी हो। पानी चाहे आप मेंह का भरें, चाहे कुएँ का भरें, इससे कोई भेद नहीं होगा। सीमेंट के बने नये हौज़ अथवा तालाबमें पौदे नहीं बोना चाहिये, क्योंकि सीमेंटमें क्षार पदार्थ रहता है। क्षार पदार्थ कमलके लिये हानिकारक होता है। इसलिये पहले नये बने हौज़ को साफ़ पानी से कुछ दिन भरा रख कर पानी बहा देना चाहिए और हौज़ को साफ़ कर लेना चाहिये। इसके पश्चात् कमल बोनेके लिये पानी भरना चाहिये।

कुछ लोग टबमें भी कमल बोते हैं, किन्तु इसमें सफ़लता प्राप्त नहीं हो सकती। जितनी खुराक टब में रक्खी जाती है वह कुछ ही समयमें समाप्त हो जाती है और फिर पौधा धीरे-धीरे सूख जाता है।

बोनेकी रीति

कमलके पौधोंके लिये बहुत अधिक खुराककी आवश्यकता होती है। इसीलिये इस बातका डर नहीं रहता कि खादके अधिक मात्रामें डालनेसे पौधोंको हानि होगी। मिट्टीके लिये किसी प्राकृतिक तालाब या झील पर जानेकी आवश्यकता नहीं। किसी भी मिट्टीमें, जिसमें अन्य वनस्पति अच्छी तरह उत्पन्न हो सकती हैं, खाद मिलाकर काम चलाया जा सकता है। इसके लिये दोभाग मिट्टी, एक भाग सड़े गोबरका खाद और थोड़ासा हड्डीका बुरादा मिलाकर मिट्टीको तैयार करना चाहिये। साधारण मिट्टीसे करैली 'चिकनी' मिट्टी इसके लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

पहली बार कमल लगानेके लिए कमलकी जड़ (कंद) तालाबके किनारे उथले पानीमें लगाई जा सकती है। लगानेके स्थान की मिट्टीको खोदकर उसमें कंदको गाड़ देना चाहिये; जड़ बेड़ी स्थिति में रहे। कंदके ऊपर ३ इंच मिट्टी रहे। कंदको मिट्टीमें अपने स्थान पर पड़े रहनेके लिये कोई उपाय कर देना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो जिस स्थान पर कंद गड़ा हो वहाँ ईंट या पत्थर भी रक्खा जा सकता है।

कृत्रिम तालाबोंमें पहले बतलाई गई रीतिसे मिट्टीसे भरे बक्सोंका इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके बदले जड़ोंको एक नियत दायरेमें रखनेके लिये कंद या जड़ोंके बोनेके स्थानकी चारों ओर एक दीवार भी बनाई जा सकती है। इस दीवारमें तीखे कोने नहीं रहने देना चाहिये, जहाँ कोने पड़ें वहाँ दीवार कुछ गोल कर देना चाहिये; नहीं तो जड़ें कोनेमें जाकर एक गुच्छा सा बना लेंगी।

जब किसी प्राकृतिक तालाबके किनारे इतने खड़े होते हैं कि गहरा पानी प्रायः तट तक रहता है और गड्ढा खोदकर जड़ बोनेमें कठिनाई पड़ती है तब अलगसे मिट्टी सानकर और उसमें जड़ रख कर मिट्टी धीरेसे पानीकी तलीमें छोड़ दी जाती है, परंतु बहुत गहरे पानीमें कमल हो नहीं पायेगा।

यदि कमलकी जड़ (अर्थात कंद) न मिल सके तो बीजको छिलके पानीकी तलीमें गाड़ देनेसे भी कमल तैयार किया जा सकता है, परन्तु तब पौधेके तैयार होनेमें बहुत समय लगता है। कुछ बीजोंसे पौधे उत्पन्न नहीं हो पाते, इसलिये कई-एक बीज बोना उचित होगा।

कमल और कुईं में भेद

ऊपर बतलाई गई रीतियाँ कमल और कुईं (कोईं) दोनों के लिए लागू हैं। परंतु कमलका पौधा कुईं के पौधेसे बहुत बड़ा होता है, इसलिए इसके लिए कम से-कम ढाई फुट गहरा और पाँच या छः फुट व्यास का हौज़ चाहिए। कमलका फूल कुईंके फूलसे बहुत बड़ा होता है, इसकी पत्तियाँभी बड़ी होती हैं। कमलकी जड़की तरकारी बनती है और कुछ लोग इसे कच्चा ही खाना भी पसंद करते हैं। कमलके बीज नरम रहने पर कमलगट्टाके नामसे बिकते हैं। इसका भीतरी सफेद हिस्सा सिंघाड़ेकी तरह स्वादिष्ट होता है। पकने पर ये बीज सूखी अवस्थामें बनियों के यहाँ बिकते हैं। इसका हलुआ बहुत पौष्टिक और स्वादिष्ट भी होता है।

रोग और कीड़े

बागमें लगाये कमल या कुईंमें अकसर कीड़े लग जाते हैं। प्राकृतिक अवस्थामें लगे पौधोंकी भी कभी-कभी यही दशा होती है, परंतु वहाँ इसकी कौन परवाह करता है। तब सुरती (अर्थात तंबाकूके पौदेकी पत्तियों) से बना काढ़ा कीड़े लगे स्थानों पर छिड़कना चाहिए। कुछ कीड़े ऐसे होते हैं जो रस चूसने के बदले पत्तियों और तनों को काट देते हैं। इनके मारनेके लिए 'पेरिस ग्रीन' नामक बुकनी का इस्तेमाल किया जा सकता है (इसमें संखिया रहती है)। एक कीड़ा ऐसा होता है जो पत्तियोंके भीतर घुस कर रहता है। उसके बनाए पत्तीके भीतरके सुरंग बाहरसे भी झलकते हैं। ऐसे कीड़ोंके कारण पत्तियाँ मर जाती हैं, और कभी तो इतनी पत्तियाँ मर जाती हैं कि फूल लगने नहीं पाता। कीड़े वाली पत्तियोंको तोड़कर आगमें डाल देना चाहिए या अन्य प्रकारसे नष्ट कर देना चाहिए। संभवतः नई पत्तियाँ जो निकलेंगी उनमें कीड़े न लगेंगे। यदि आरंभमें ही 'किरोसिन इमलशन' छिड़का जाय तो ये कीड़े मर जायँगे। कभी-कभी भुकड़ी (फफूँद) सी कोई वस्तु पत्तियोंमें लग जाती है और पत्तियाँ रोग-ग्रस्त हो जाती हैं। इसके लिए उन पर "बोर्डो मिक्स्चर", जिसमें तूतिया पड़ा रहता है, छिड़का जा सकता है। जाड़े में यदि रातमें पाला पड़ने का डर हो तो हौज़ को टाट या काठके पटरोंसे ढक देना चाहिए।

वैज्ञानिक वर्गीकरण

कमल और कुईंयोंके वैज्ञानिक वर्गीकरणको जन-साधारणका समझना कठिन है। विज्ञान-संसारमें भी इस विषय में काफ़ी गड़बड़ी रही है और आधुनिक वर्गीकरण पुराने वर्गीकरणसे भिन्न है। आधुनिक वर्गीकरणके अनु-सार नीलंबो (Nelumbo) या नीलंबियम (Nelumbium) एक वर्ग है और नींफ़िया (Nymphaea) दूसरा वर्ग। इनके फूल और पत्तियों की बनावटमें विभिन्नता है। नीलंबो वास्तवमें सिंघल द्वीपी (सीलोन का) शब्द है। आधुनिक वैज्ञानिक नीलंबो वर्गमें भारतवर्षके सफेद कमल (Nelumbo indica या Nelumbo nucifera) को रखते हैं। नील कमल (Nymphaea steuata), लाल कमल (Nymphaea rubra) और सफेद कुईं (Nympha lotus) को निंफ़िया वर्गमें रखते हैं. यद्यपि इनमें से नील कमल दिनमें ८ बजे सवेरेसे २ बजे दिन तक खिलता है और सफेद कुईं साढ़े सात बजे शाम से दस बजे सवेरे तक खिलती है। कारण यह है कि वैज्ञानिक फूलोंके खिलनेके समय या उनकी नाप पर ध्यान न देकर उनकी बनावटके भरोसे ही वर्गीकरण करते हैं। निंफ़िया वर्गमें लगभग चालीस स्पष्ट जातियाँ हैं जिनमेंसे कुछके फूल तो चौदह-पंद्रह इंच व्यास के होते हैं।

लहसुन

ऐतिहासिक विवेचन

(ले०—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, बादामी बाग, लाहौर)

लहसुन एशियामें पैदा होनेवाला पौदा है। इसकी कृषि कब प्रारम्भ हुई, इस सम्बन्धमें कोई ऐतिहासिक उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। कुछ लेखकोंने लिखा है कि सिसिली और फ्रांसके दक्षिणमें यह प्राकृत रूपमें उगता है और जुलाईमें फूलता है।

लीनियस ने अपने 'स्पिसीज़ प्लाण्टेरम' में लहसुन का आदि घर सिसिली बताया है परन्तु 'हार्टस क्लिफॉर्टिएनस' में, जहाँ पर वह अधिक सूक्ष्मदर्शी है, वह इसका उद्‌भव नहीं देता। सिसिली, इटली, यूनान, फ्रांस, स्पेन और अल्जेरियाकी वनस्पति-शास्त्रकी स । आधुनिक पुस्तकोंमें लहसुन इन स्थानोंकी प्राकृतिक उपज नहीं माना गया है।

कुन्थने लिखा है कि यह मिश्रमें प्राकृतिक मिलता है, लेकिन मिश्रके पौदोंका वर्णन करने वाले अधिक सच्चे लेखकों ने इसे वहाँ केवल खेती किया जाता हुआ ही पाया है। बोयस्सीर (Boissier) के वनस्पति संग्रह (हर्वेरियम) में पूर्वीय पौदे बड़ी संख्यामें और विविध किस्मोंके संगृहीत हैं। उसमें इसका कोई जंगली नमूना नहीं है। डि कैण्डोले[1] केवल एक ही प्रदेश ऐसा समझते हैं जहाँ लहसुन निश्चित रूपसे अपने आप पैदा होता है। वह प्रदेश सुंगारी (Sungari) के किरगिस (Kirghis) का रेगिस्तान है। यहाँ से कन्द लाकर दोरपत[2] (Dorpat) में बोये गये थे।

फ्रेडरिक पोर्टर स्मिथकी सम्मतिमें लहसुनका 'अरबी नाम सोयन, चीनी शब्द स्वान या सानके सदृश है और इस पौदेके स्रोतकी सूचना देता है।' स्मिथ महोदय ने अरबी नाम थोम या फोम को सोयन (Soin) समझने की भूल की है। चीन में 'स्वान' के नामसे इसकी खेती बहुत दिनसे हो रही है।[3] जापानकी वनस्पतियों पर लिखे ग्रंथोंमें इसका वर्णन नहीं मिलता।[4] इससे पता चलता है कि यह पूर्वीय साइबेरिया और डहुरिया (Dahuria) का प्राकृतिक पौदा नहीं है। कहा जाता है कि मंगोल इसे चीनमें ले गये थे।

(Herodotus) के अनुसार पुराने मिश्रवासी इसका बहुत उपयोग करते थे। परन्तु पुरातन वस्तुओंकी खोज करने वालोंको पुराने स्मारकोंमें इस बातके प्रमाण नहीं मिले हैं। फिर भी यह बात सच हो सकती है क्योंकि पुरोहितों ने इसे अपवित्र समझ कर इसकी चर्चा न की होगी।[5] इसके विपरीत यह भी विश्वास किया जाता है कि मिश्र निवासी इसकी पूजा करते थे। रोमके लोग अपने मजदूरोंको शक्ति प्राप्त करानेके लिए और सिपाहियों को जोश दिलाने के लिए लहसुन खिलाते थे। उनके लड़ाकू मुर्गों को लड़नेसे पहले यह खिलाया जाता था। पर्सियस (Persius) की रचनासे मालूम होता है कि किसी समय देवोंको प्रसन्न करनेके लिए यह समर्पित किया जाता था।

'किरगिसके जंगलमें यह स्वयं उगा हुआ मिलता है। यदि प्राचीनकालमें भी यह केवल इसी भूभागमें अपने आप उगता रहा हो तो प्राचीन आर्य इसकी खेती करते रहे होंगे और यहाँ से वे इसे भारत और यूरोपमें ले गये होंगे। लेकिन, यदि भारतसे यह और देशोंमें फैला होता तो इसके केल्टिक (Keltic), स्लाव (Slav), ग्रीक और लैटिन आदिके वर्तमान नामोंसे संस्कृत नामोंका कुछ सादृश्य होता। परन्तु इनमें बड़ी भिन्नता है। संस्कृत नाम लशुन या रशून हिब्रू के शूम (schoum) या शूमिन (schumin) नामसे सम्बन्धित प्रतीत होते हैं और इसीसे अरबी नाम थोम

१ ओरिजिन ऑफ़ कल्टिवेटेड प्लाण्ट्स (१८८४)

२ लेडेबॉरे; फ्लोरा एल्टायका, भाग २ पृ० ४: और फ्लोरा रौसिका, भाग ४, पृ० १६२।

३ मैटीरिया मेडिका एण्ड नेचुरल हिस्ट्री।

४ (क) थनबर्ग; फ्लोरा जैपेनिका।

(ख) फ्रान्शेट और सावाटीयर; एन्युमरेशियो (१८७६)।

५ Unger, Pflanzen des Alten Ægyptens, p. 42।

निकला।

डि कैण्डोलेकी इस विचारधाराके साथ यह तथ्य भी अवश्य महत्वपूर्ण होना चाहिये कि भारतमें यह ईस्वीपूर्व दूसरी सदीसे निश्चित रूपसे विद्यमान है। अग्निवेश और उनके समकालीन लेखकोंकी संहिताओंके आधार पर हम कह सकते हैं कि यह साधारण उपयोगमें आने वाली चीजोंमें था। मालूम होता है कि यहाँसे यह अधिक पूर्वकी ओर फैल गया।

रीगल (Regel) ने वालिच (Wallich) द्वारा संगृहीत वह नमूना देखा था जिसे उसने बृटिश भारतसे जंगली अवस्थामें उगा हुआ प्राप्त किया था। लेकिन बेकर (१८७४) ने 'भारत, चीन और जापानके एलियम्स' में इसके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा। 'लहसुन भारतमें सब जगह साधारण रूपसे पाया जाता है। यह न केवल अपने आप उगता है, वरन् मसालोंमें उपयोगी होनेके कारण बहुत अधिक बोया जाता है।[1] कर्नल चोपड़ाके उपर्युक्त कथनसे इसका आदि घर भारत ही प्रतीत होता है।

वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों तथा अन्यान्य भारतीय धर्मग्रंथोंमें लहसुनका वर्णन नहीं मिलता।[2]

ग्रेट ब्रिटेनमें यह कब बोया जाने लगा, इस संबंधमें विद्वानोंकी भिन्न सम्मतियाँ हैं। १५४८[3] या इससे कुछ काल पहलेसे बृटेनमें इसके बोये जानेका मत ठीक नहीं प्रतीत होता। वहाँ यह छठी सदी[4] से बोया जारहा होगा।

मिश्र और भारतकी तरह कुछ दूसरे देशोंमें भी यह पहले अच्छी दृष्टिसे नहीं देखा जाता था। बहुत सी जातियोंमें यह हेय पदार्थ समझा जाता था। युनानमें लहसुन खा लेने वाले को भ्रष्ट समझते थे। चीनमें रोगी और पुरोहित का काम करने वालेके लिए यह निषिद्ध गिना जाता था।[1] कुरानमें लहसुन और प्याज़ दोनोंही निकम्मे पदार्थ समझे गये हैं। यहूदी (इसराइल) लोग जब मिश्रसे अपने देश पेलेस्टाइन (फ़िलस्तीन) में वापिस आ गये तो उन्होने दैवीय भोजन 'मन्नो सुलवा' को खाने से इन्कार किया और अपने पैगम्बर मूसा से कहने लगे कि ऐ मूसा हम लोगोंसे तो एक ही भोजन पर नहीं रहा जाता। आप हमारे लिए अपने पालक ईश्वर से वरदान मांगिये कि धरतीसे जो चीज़ें उगती हैं, अर्थात् ककड़ी, गेहूँ, लहसुन, मसूर और प्याज़ आदि साग सब्ज़ियाँ, वे हमारे लिए 'मन्नो सलवा' की जगह पैदा करे। मूसाने उन्हें इस घटिया सौदेको न मांगनेके लिए समझाया। फिर भी वे अपने आग्रह पर स्थिर रहे। तब मूसाने उन्हे ये पदार्थ दिये लेकिन उन पर ज़िल्लत और मोहताजी डाल दी गई जिसके कारण वे लोग ईश्वरके क्रोधका पात्र बने।[2]

संस्कृत साहित्यमें इसके उद्भवके सम्बन्धमें जो आख्यायिकाएं उपलब्ध होती हैं उनमें भी इसे उच्चवर्गके लोगों के लिए वर्जित पदार्थ कहा गया है। एक आख्यायिका इस प्रकार है—अमृत पान करते हुए राहुके गले को विष्णु भगवान्के चक्र द्वारा काटे जाने पर उसमेंसे भूमि पर गिरी हुई अमृतकी बूंदोंसे लहसुनकी उत्पत्ति हुई और क्योंकि राहु राक्षस था इसलिए उसके गलेमें से गिरा हुआ अमृत भी उच्छिष्ट समझा गया और इससे उत्पन्न लहसुन भी दुर्गन्धित बन गया। साक्षात् 'अमृतसे उत्पन्न होने पर भी दैत्य देहसे गिरा होनेके कारण लहशुन ग्राम्य रसायन समझा जाता है। इसे उच्च जातिके वैष्णव, ब्राह्मण, शैव आदि नहीं खाते।[3]

१ आर० एन० चोपड़ा; इण्डिजीनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया (१९३३), पृ० २७३।

२ मनुस्मृतिमें है (५-५, ५-१९) —सम्पादक विज्ञान।

३ जोहन स्टीफन्सन और जेम्स मॉर्स चर्चिल; मेडिकल बॉटनी।

४ वाल्टर पी० राइट; डिक्शनरी ऑफ प्रेक्टिकल गार्डनिंग।

१ फ्रेडरिक पोर्टर स्मिथ, मैटीरिया मेडिका एण्ड नेचुरल हिस्ट्री।

२ कुरान, अध्याय १, आयत ६१।

३ राहोरच्युत चक्रेण लूनाधे पतिता गलात्।
अमृतस्य कणा भूमौ ते रसोनत्वमागताः॥
द्विजा नाश्नन्ति तमतो दैत्यदेह समुद्भवम्।
साक्षात्वमृतसम्भूतं ग्रामीणक रसायनम्॥
ग. नि. भाग २ औषधि कल्पानीक, २१२-२१३।

व्यावहारिक-मनोविज्ञान

उद्देश्य, उत्साह और रुचि

(राजेन्द्रबिहारी लाल, एम० एस० सी०, इण्डियन स्टेट रेलज़वे)

उद्देश्य की आवश्यकता

हर मनुष्यको एक निश्चित उद्देश्य, एक सचेत अकांक्षा की आवश्यकता रहती है। हर जहाज़को एक दिशासूचक यन्त्र और हर देशाटन करने वालेको एक नक़शा रखना पड़ता है। इनके बिना शायद दोनोंही इधर उधर भटकें और बहुत सा समय खो देनेके बाद फिर उसी जगह जा पहुँचे। जहाँ भी प्रगतिका सवाल है वहाँ एक लक्ष्यका होना अनिवार्य है।

ऐसी मनोकामना जिसे कृतार्थ करनेके लिये एक योजना बना ली जाय, जीवनको एक दिशा में लगाती है और दिमाग़ी ताक़तोंको बेकार खर्च करनेकी जगह उम्दगी और किफ़ायत से इस्तेमाल करनेमें मदद देती है। इसकी प्रेरणाके कारण हम ऐसी कठिनाई के मौकों पर भी प्रयत्न में डटे रहते हैं जब कि हम किसी उद्देश्य या योजनाके न होने की दशामें निस्सन्देह ही कन्धा डालकर बैठ जाते हैं। समय समय पर मीलके पत्थरोंको पीछे छूटते हुए देखनेसे पथिकको अपनी प्रगतिका अनुमान हो जाता है जिससे उसका उत्साह बढ़ जाता है। उनको बिना देख हुये कभी कभी उसे ऐसा जान पड़ता है कि वह काफ़ी तेजीसे आगे नहीं बढ़ रहा है। एक कहावत है—जो नाविक अपनी यात्राके अन्तिम बन्दरगाहको नहीं जानता उसके अनुकूल हवा कभी नहीं बहती।

जब आपको यही पता नहीं कि आप क्या चाहते हैं तो आप उसके लिए प्रयत्न ही क्या करेंगे और उस अज्ञात वस्तुको भला प्राप्त कैसे कर सकते हैं?

'मनोभावोंका प्रभाव'

एक बड़े महत्व की, जानने योग्य बात यह है कि दृश्य संसारमें प्रकट होनेसे पहले हर चीज़ अदृश्य अथवा मानसिक संसारमें प्रकट होती है। यदि हम किसी पदार्थको अपनी मानसिक सृष्टिमें अच्छी तरह निर्माण कर लेते हैं तो प्रत्यक्ष जगतमें भी हम उसे अच्छी तरह बना सकेंगे। दृश्य संसारमें कोई चीज़ तभी बन सकती है जब पहले उसकी सृष्टि मानसिक संसारमें कर ली जावे। कल्पना जगतमें उत्पन्न होने के उपरान्त, बल्कि उसके कारण और उसकी सहायतासे ही नये पदार्थोंका प्रादुर्भाव बाह्य जगत में होता है। मनमें एक निश्चित ध्येय निर्दिष्ट कर लेनेसे उसकी प्राप्तिमें एक और प्रकारसे भी बड़ी सहायता मिलती है। ज्यों ही आप अपने मनमें एक स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित कर लेते हैं और उसकी पूर्तिके लिये हृदय से कामना और आशा करने लगते हैं, त्यों हीं आप अपने इष्टके साथ एक परोक्ष पर प्रबल सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। आपके मनोभाव, आपके आशापूर्ण विचार आपकी महत्वाकांक्षायें एक चुम्बकका काम करती हैं और अपने समान पदार्थोंको आकर्षित करती हैं—वे आपके उद्देश्यकी सिद्धि और सफलताको अपनी ओर खींच लाती हैं। मनुष्यका

लहसुन

भाव मिश्र का वर्णन उपर्युक्त आख्यायिकासे भिन्न है। वह लिखता है कि इन्द्रसे जब गरुड़ने अमृत छीन लिया तो जो अमृत बिन्दु गिरे वे पृथ्वी पर लहसुन बन कर उग आये।[1]

महर्षि मारीच कश्यप[2] की कथा इस प्रकार है: सौ साल तक जब इन्द्राणी को गर्भ न हुआ तब इन्द्रने लजाती हुई पत्नी को अपनी सुन्दर बांयी भुजामें लेकर सान्त्वना देते हुए प्यारसे उसे अमृत पिलाया। नाज़ुक तबियत होनेसे, पतिके पास होनेसे लज्जा। अनुभव होनेके कारण तथा अमृत का सार होनेसे जब उसे डकार आया तो दैववश वह ज़मीन पर किसी गन्दे स्थान में आ गिरा। तब इन्द्र ने इन्द्राणी को कहा कि तू बहुत पुत्रों वाली होगी और यह अमृत भूलोकमें रसायन बन जायगा, गन्दी जगह के कारण इसमें दुर्गन्ध आयगी जिससे ब्राह्मण इसे नहीं खांयगे। भूमि पर रहने वाले लोग इस अमृत को लशुन कहा करेंगे।

---

१ यदाऽमृतं वैनतेयोजहार सुसत्तमात्।
तदा ततोऽपतद् बिन्दुःस रसोनोऽभवद् भुविः॥
अ० प्र०, पू० ख, हरीत; २१८।

२ देखें : काश्यप संहिता, लशुन कल्प; ६-१२।

भाग्य उसके मानस ही में छिपा रहता है।

आप जो भी उद्देश्य निर्दिष्ट करें उस पर अपनी कामना, अपने विचार, अपने मनोभाव और अपने उद्योग को केन्द्रित कीजिए जिससे वह एक सबल चुम्बककी तरह उन तमाम पदार्थोंका ध्रुवीकरण कर दे जिनसे आपका व्यवहार रहता है।

विचारोंका ध्रुवीकरण
(Polarisation of Thought)

विद्यार्थियोंके उस प्रयोगसे प्रायः सभी परिचित होंगे जिसमें एक परखनलीको लोहे के बुरादेसे भरकर चुम्बक बनाते हैं। नलीके मुखको कागसे बन्द करके उसे मेज के ऊपर लिटा देते है। जब उसके ऊपर एक चुम्बकको धीरे धीरे फेरते हैं, तो लोहेके कण सब उठकर एक दिशामें हो जाते हैं जिससे वह सबके सब एक साथ काम करने वाले छोटे छोटे चुम्बक बन जाते हैं। तब प्रयोग करनेसे पता चलता है कि कुल परखनली स्वयं एक चुम्बक बन गई है। पहले सब टुकड़े तितर-बितर पड़े थे; उस अवस्थामें यदि वे सब चुम्बक भी होते तो भिन्न दिशाओंमें होनेके कारण, एक दूसरेको मिटा डालते हैं; पर बादमें जब सब एक दिशामें स्थित हो जाते हैं तब वे एक प्रबल चुम्बकका काम करने लगते हैं और उनके समीप यदि कोई नरम लोहेका टुकड़ा लाया जाता है तो उस पर भी प्रभाव डालकर उसे चुम्बक बना देते हैं। ठीक इसी प्रकार यदि हमारे विचार मस्तिष्कमें यत्र तत्र बिखरे पड़े हों और उनका झुकाव अलग अलग दिशाओंमें हों तो वे एक दूसरेके प्रभाव को नष्ट कर देंगे।

इसलिये यदि आप अपने जीवनमें, अपनी ईश्वर प्रदत्त शक्तियोंसे, पूरा पूरा फ़ायदा उठाना चाहते हों तो मानवीय उद्योगके किसी रोचक क्षेत्रको चुन लें, उसमें सिद्धि और सफलता प्राप्त करनेकी महत्वाकांक्षाका एक स्थायी भाव अपने मनमें स्थापित कर लें और उसीके अनुकूल अपने समस्त जीवनका—अपने कर्म, विचार और भावना का—ध्रुवीकरण कर लें। वह क्षेत्र कला, विज्ञान, ईश्वर भक्ति, दर्शन या किसी और विषय सम्बन्धी हो सकता है या वह भाव एक कलाकार, वैज्ञानिक, इंजीनियर, कवि या दार्शिनक का हो सकता है — यह चुनाव करना बिल्कुल आप ही पर निर्भर है। पर आपको कोई न कोई प्रिय उद्देश्य अवश्य ही चुन लेना चाहिये और उसीके अनुरूप अपने समस्त जीवन का ध्रुवी करण करना चाहिए।

इसका यह अर्थ नहीं कि आपके विचार या कार्यकी तेज़ी कम हो जायगी या उसका स्वतंत्र प्रवाह धीमा पड़ जायगा। इसका यह भी मतलब नहीं कि आप किसी बन या गुफ़ामें जाकर एकान्त बास करने लगेंगे और मानवीय सहानुभूति एवम् अनुरागका परित्याग कर देंगे। और न इसका यह अर्थ है कि आप जीवनके प्रति उदासीनहो जायँ और गर्मियोंमें मरुस्थलकी सूखी सरिताकी भाँति आपकी धमनियोंमें उष्ण रक्तका संचार बन्द हो जाय। हाँ, इसका यह अर्थ अवश्य है कि आपका सारा जीवन एक उद्देश्य से उद्भासित हो जाता है, आपकी सोती हुई शक्तियाँ जाग जाती हैं, और जो शक्तियाँ पहले बिखरी हुई पड़ी थीं वह एकत्र होकर परस्पर सहयोगसे काम करने लगती है। इसका अर्थ है परिवर्द्धित विचार और उद्योग, पहलेसे अधिक विस्तृत सहानुभूति; क्योंकि तब आप सदा इस खोजमें रहेंगे कि हर चीज़ और हर अनुभवको अपने महान् उद्देश्य के लिए प्रयोग करें।

बड़े आश्चर्यकी बात है कि कितने लोग ऐसे हैं जो कोई निश्चित उद्देश्य या आकांक्षा नहीं रखते, बल्कि अपनी जिन्दगीके दिन बिना किसी योजनाके व्यतीत करते रहते हैं। अपने चारों ओर हम ऐसे युवक और युवतियोंको देखते हैं जो निरुद्देश्य होकर, बिना पतवार या बन्दरगाहके जीवनके समुद्र पर इधर-उधर बहते रहते हैं और अपने समयको व्यर्थ खोते रहते हैं, क्योंकि जो कुछ भी वे कहते हैं उसमें न कोई गम्भीर प्रयोजन रहता है न कोई नियम। वे तो केवल ज्वार भाटेके संग इधर उधर बहते रहते हैं। यदि उनमेंसे किसीसे पूछा जाय कि तुम्हारा या करनेका इरादा हैं, तुम्हारी क्या महत्वाकांक्षा है, तो यही उत्तर मिलेगा कि हमें ठीक ठीक पता नहीं, हम तो केवल इस अवसर की प्रतीक्षा में हैं कि कोई काम शुरू करें।

उद्देश्यके तीन तत्व

इंजीनियरिंग जगतमें जो स्थान यांत्रिक शक्तिका है

वही स्थान मानसिक विचार और कार्यके क्षेत्रमें उस संवेग जनित उकसावका है जो एक प्रबल उद्देश्य, अभिरुचि या महत्त्वाकाँक्षासे उत्पन्न होता है। जिस प्रकार भाप, जलशक्ति या विद्युत शक्ति रेलगाड़ियाँ खींचती हैं और ऐसे ही अनेक उपयोगी कार्य करती है, उसी प्रकार निश्चित उद्देश्योंकी ओर लगाई हुई महत्त्वाकाँक्षा ही मनुष्यके सब प्रयासकी मूल शक्ति है। इस उपमाको हम एक कदम और भी आगे बढ़ा सकते हैं। यांत्रिक शक्ति को अभिव्यक्त करने वाले तीन मुख्य तत्व हैं—उसका परिमाण, वह समय जितनी देर तक वह व्यवहारमें लाई जाती है और वह दिशा जिस ओर वह लगाई गई है। इसी प्रकार उद्देश्य या रुचिके भी तीन मुख्य अंश हैं—उसकी तीव्रता, अवधि और दिशा या लक्ष्य। यदि यह तीनों अंश एक दूसरेके अनुकूल न हों तो उद्देश्य निष्फल हो जायगा। अगर एक उद्देश्य या अभिलाषाकी तेज़ी दुर्बल या मन्द है तो उसका होना न होना बराबर है—ऐसा मनुष्य तो आकांक्षाहीन, सुस्त और निरुत्साह होगा। इसी तरह यदि एक उद्देश्यमें हमारा अनुराग प्रबल किन्तु क्षणिक या अस्थायी हो तो भी हम उससे विशेष लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि उदासीनताके वायुमंडलमें उठने वाले, अल्पकालीन उत्साहके बलवान झोकों में भला कितनी उन्नति हो सकती है? एक आवेगशील अस्थिर मनवाला व्यक्ति बहुत ही सरल या साधारण कार्योंको तो शायद सफलतासे कर सके, पर ज़रा भी कठिनाईवाले कामको पूरा करनेकी उससे शायद ही कोई आशा की जा सकती है, क्योंकि साधारणतः अध्यवसाय सफलताकी एक आवश्यक शर्त है। उद्देश्योंको बार बार बदलते रहने से भी शक्तिका ह्रास होता है। क्योंकि ऐसा करनेसे किसी उद्देश्यमें भी सफलता या दक्षता प्राप्त नहीं हो सकती।

उद्देश्यका तीसरा अंश अथवा लक्ष्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। एक ऐसा मनुष्य भी जिसकी रुचि सबल और स्थायी पर सर्वतोन्मुखी है, कुछ नहीं कर सकता। सफलताके लिए तो रुचिका विशेषोन्मुख होना और किसी विशिष्ट दिशामें लक्षित होना आवश्यक है। बहुतसे उद्देश्य रखनेसे शक्तिका उतना ही ह्रास होता है जितना उद्देश्य को बार बार बदलते रहनेसे। उन्नति तो तभी हो सकती है जब रुचिसे उद्भूत शक्तियोंको हम सावधानी से चुने हुए थोड़ेसे लक्ष्यों पर केन्द्रित करें और उन्हीं पर उस समय तक जमाये रक्खें जब तक सफलता न मिल जाय।

अपनी शक्तियोंका अधिकसे अधिक उपयोग करनेके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने जीवनका एक उद्देश्य निर्धारित करलें, परन्तु यह उद्देश्य सामान्य नहीं वरन विशिष्ट होना चाहिए। हर काममें सफल होनेकी अभिलाषाको, यद्यपि ऐसी अभिलाषा अत्यन्त ही सराहनीय है, उद्देश्य नहीं कह सकते, बल्कि किसी विशेष इष्ट को प्राप्त करनेके इरादेको। इच्छामात्रको उद्देश्य न समझना चाहिए। उद्देश्यमें एक विशेष लक्ष्य का होना आवश्यक है।

एक उद्देश्यका अर्थ है कि आप एक विशेष अभिलाषा या उमंगसे प्रेरित हैं। आपका उद्देश्य कुछ भी हो सकता है—एक उपयोगी आविष्कार करना, उत्कृष्ट कविता लिखना, नामी कलाकार बनना या अपने कारोबार में ही ऊँचा पद प्राप्त करना। यह आवश्यक नहीं कि आपका उद्देश्य बहुत ऊँचा हो या सर्व साधारणकी पहुँचके बाहर हो—पर उद्देश्य स्पष्ट और निश्चित होना चाहिए।

अवकाशके समय का सदुपयोग कीजिये

दुनियामें अधिकांश मनुष्योंको जीविकोपार्जनके लिए कुछ न कुछ काम धन्धा करना पड़ता है। पर ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति शायद थोड़े ही होंगे जो अपना कारोबार स्वतंत्रतापूर्वक अपनी रुचिके अनुसार निर्धारित कर सकें। अधिकांश लोगोंको परिस्थितियोंसे विवश होकर रोज़ी कमाने के लिए ऐसा काम करना पड़ता है जिसमें उनकी रुचि नहीं है। इसमें उनकी शक्तियाँ पूर्ण रूपसे प्रयत्नशील नहीं होती और न कोई उन्नति ही कर पाती हैं। दूसरे लोग हैं जिनका धन्धा स्वयं रुचिकर है या उद्योग करते रहनेसे और समय बीत जानेसे रुचिकर हो गया है, ऐसे लोगों की कुछ शक्तियाँ उनके काममें पूर्णतः क्रियाशील हो जाती हैं। फिर भी इस मुख्य व्यवसायका काम ऐसे ढर्रे पर पड़ जाता है कि उसमें व्यक्तिकी बहुत थोड़ीसी ही शक्तियाँ प्रयोगमें आती हैं, उनका अधिकांश भाग निकम्मा व सुसुप्त पड़ा रहता है। अपने जीवनको सार्थक बनानेके

लिए ईश्वर की दी हुई शक्तियोंको अधिकसे अधिक उपयोगमें लानेके लिए और उनको विकसित करनेके लिए यह आवश्यक है कि हर मनुष्य अपने लिए अपनी स्वेच्छा से एक रोचक उद्देश्य चुन ले और उसकी प्राप्तिके लिए अवकाशकी घड़ियोंका उपयोग तत्परतासे करे। अगर आप ग़ौर से सोचेंगे तो देखेंगे कि फ़ुरसतका समय ही आपके जीवनका सबसे मूल्यवान भाग है--यही वह भाग है जो आपके वशमें है, जिसे आप अपना कह सकते हैं, इसे आप धन, विद्वत्ता, लोकसेवा अथवा कीर्तिमें जैसी आपकी कामना हो परिवर्तित कर सकते हैं। महापुरुषोंकी जीवनियाँ इस बातके उज्ज्वल उदाहरण हैं। गैलीलियो डाक्टरी करता था पर हम उसे डाक्टर की हैसियतसे याद नहीं करते बल्कि उन आविष्कारोंके लिए जो उसने बचे हुए क्षणोंका उपयोग करके किए थे। माइकल फ़ैरेडे किताबोंकी जिल्द बाँधा करता था। साथ ही अपने बचत के समय को वैज्ञानिक प्रयोग करने में लगाया करता था। ग्लेडस्टन सरीखा प्रतिभाशाली मनुष्य अपनी जेबमें एक छोटी सी पुस्तक हमेशा लेकर निकलता था कि कहीं कोई क्षण व्यर्थ न चला जाय।

हर एक नवयुवकको अपने फ़ुरसतके समयको किसी अच्छे काममें लगाना चाहिए। ऐसा करनेसे न केवल उनका जीवन अधिक सुखी और आनन्दमय हो जायगा बल्कि उनकी शक्तियाँ भी काममें लाये जानेके कारण उत्तरोत्तर बढ़ती जायँगी। भिन्न भिन्न मनुष्य अपने लिए भिन्न भिन्न उद्देश्य चुनेंगे। इसमें समता या सादृश्यका होना न तो आवश्यक है और न हितकर। यहाँ पर हम आपके उद्देश्यको निर्धारित नहीं कर रहे हैं; हम तो केवल यह सम्मति दे रहे हैं कि आप अपनी परिस्थिति, अवकाश, नैसर्गिक बुद्धि और तबीयतके झुकावका सावधानीसे विचार कर अपने लिए एक उद्देश्य--अपने अवकाशके समयके लिए एक प्रिय काम—चुन लें, और उसमें प्रवीणता, उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करनेके लिए भरसक प्रयत्न करें। ऐसा करनेसे व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण है।

उद्देश्य-पूर्तिके लिए योजना आवश्यक है

केवल कल्पना और धुन पर ही कार्य करना कभी अच्छा नहीं होता। जो कुछ करना हो उसका मसविदा तैयार कर लेना चाहिए। फिर उसीके अनुसार अपने क़दमोंको साहस और स्थिरतासे बढ़ाते जाना चाहिए।

उद्देश्य और योजनाके अर्थको और अधिक स्पष्ट करनेके लिए हम यहाँ पर एक उदाहरण देते हैं। एक युवक विश्वविद्यालयमें शिक्षा समाप्त कर एक अच्छे रोज़गारमें लग गया जिससे उसके दिन सुखपूर्वक कटने लगे। वह अपने काम को बड़ी तत्परतासे करता है और उस ओरसे उसे पूरा सन्तोष है। वह अपने समय का सदुपयोग करता है। अपने व्यवसाय और आवश्यक मनोरंजन और स्वास्थ्य रक्षाके कामोंसे जो समय बचता है उसे आत्म-विकासके हेतु सत्संग, स्वाध्याय तथा इसी प्रकारके दूसरे अच्छे कामों में व्यतीत करता है। समाज का वह उपयोगी सदस्य है और थोड़ी बहुत व्यक्तिगत उन्नति भी वह अवश्य ही कर लेगा—पर उसके आगे और कुछ नहीं, क्योंकि उसने अपना कोई उद्देश्य निर्धारित नहीं किया। दुनियामें अधिकांश मनुष्य इसी वर्गके होते हैं जिनकी ज़िन्दगीके साल बीत जाते हैं पर वे यह नहीं जानते कि विधाता ने उन्हें क्यों पैदा किया और उनके जीवन का कोई उद्देश्य है भी कि नहीं।

एक दूसरा युवक है जो और बातोंमें पहले हीके समान है पर अपने लिए एक उद्देश्य निर्धारित कर लेता है—ज्ञान का उपार्जन। फ़ुर्सतकी हर घड़ीमें वह स्वाध्याय करता रहता है। पुस्तकालयमें जाकर नई-नई किताबें ढूँढ़ता है। जो किताब चित्ताकर्षक हुई उसे ले आता है और पढ़ने लगता है, यदि तबीयत लगी तो अन्त तक पढ़ डाला, नहीं तो उसे छोड़ कर कोई दूसरी पुस्तक पढ़नी शुरू कर दी। विविध विषयों पर उत्तम उत्तम ग्रंथ पढ़ते रहनेसे निस्सन्देह उसकी जानकारीके भण्डारमें वृद्धि और उसकी मानसिक शक्तियोंमें उन्नतिकी आशा हो सकती है। वह उस पहले युवककी अपेक्षा अवश्य ही अधिक प्रगतिशील है जो कला, व्यवसाय, इंजीनियरिंग, विज्ञान, साहित्य, ब्रिज तथा दुनिया की अधिकांश अच्छी अच्छी बातें सभीमें थोड़ी बहुत दिलचस्पी रखता है। लेकिन यह दूसरा युवक भी अपनी शक्तियों का पूरा पूरा उपयोग नहीं कर रहा है क्योंकि यद्यपि उसने ज्ञानोपार्जन

और पुस्तकावलोकनको अपना जीवनोद्देश्य निश्चित किया है, पर उसका लक्ष्य सामान्य है, न कि विशिष्ट, क्योंकि उसने विद्याके किसी ख़ास विषयको तो अपनाया नहीं बल्कि एक विषयसे दूसरे विषय पर और एक पुस्तकसे दूसरी पुस्तक पर भटकता रहता है।

एक तीसरा युवक है। उसे भी अपने समयके सदुपयोग, अपनी शक्तियोंके विकास और समाज सेवा की कामना है। वह भी अपने लिए एक उद्देश्य नियत कर लेता है, और चूँकि वह भी अपने ज्ञान भाण्डारको बढ़ानेके लिए उत्सुक है, वह भी यही उद्देश्य चुन लेता है। पर अपने उद्देश्यको ठीक ठीक निश्चित करनेके लिए वह उसे एक विशेष विषय तक सीमित कर लेता है। वह यह तै करता है कि अगले पाँच वर्षोंमें वह भारतवर्षका इतिहास या अर्थशास्त्र या मनोविज्ञान या शेक्सपियर की तमाम पुस्तकोंका गहरा अध्ययन करके उसमें निपुणता और विशिष्टता प्राप्त करेगा। इतना ही नहीं बल्कि वह अपने उद्देश्यको और भी छोटे छोटे टुकड़ोंमें विभाजित कर लेता है। वह अगले तीन महीनोंके लिए अध्ययनका एक प्रोग्राम या योजना बना लेता है। वह यह तै कर लेता है कि उन तीन महीनोंमें वह अपने चुने हुए विषयकी कौन कौन सी पुस्तकें पढ़ेगा। तीन मास बीतने पर वह अगले तीन या छ महीनेके लिए भी उसी तरहकी एक योजना तैयार कर लेता है और उसीके अनुसार अपने अध्ययनको नियंत्रित करता है। धीरे धीरे वह अपने चुने विषयका छोटा मोटा विशेषज्ञ बन जाता है उसकी सोई शक्तियाँ जाग उठती हैं, उसके मनकी उर्वरता बढ़ती है और वह मानवीय ज्ञानकी सीमाओंके प्रसार करनेकी योग्यता भी प्राप्त कर लेता है।

उद्देश्य चुननेके नियम

कोई दूसरा व्यक्ति आपके लिए एक उद्देश्य निर्धारित करनेमें असमर्थ है पर इस सम्बन्धमें कुछ सामान्य बातें अवश्य बतायी जा सकती हैं जिनकी कसौटी पर आप अपने उद्देश्यको जाँच सकते हैं। पहली बात यह कि आप ऐसा ही उद्देश्य चुनें जिसमें आपको अनुराग हो। अपनी रुचिके विरुद्ध आप अधिक समय तक युद्ध नहीं कर सकते—ऐसा करना समय और बलको व्यर्थ खोना है। जिस काममें आपकी रुचि नहीं उसे आप पूर्णतासे नहीं कर सकते और न उसमें सफलता ही प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी बात जो उद्देश्यका चुनाव करते समय ध्यानमें रखनी चाहिये वह यह है कि उद्देश्य ऐसा हो जिसमें आप अपनी प्राकृतिक शक्तियोंको अधिकसे अधिक परिमाणमें इस्तेमाल कर सकें—जिससे उनका विकास और वृद्धि हो। अगर एक व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का विशेष झुकाव कला की ओर है तो उन्हें विज्ञान या इतिहासमें लगाना उचित नहीं। अगर किसीका दिमाग़ गणितके योग्य नहीं तो उसे जबर्दस्ती गणितमें लगानेसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। तीसरी कसौटी जिस पर अपने उद्देश्यकी जाँच करनी चाहिये वह यह है कि आपका उद्देश्य ऐसा हो जिससे मानव जाति और संसार का कल्याण हो। जिस उद्देश्यसे दूसरोंको ज़रा भी हानि पहुँचती हो, जिसमें औरोंकी हानि करके अपना भला होता हो वह सर्वथा त्याज्य और निन्दनीय है। जिस उद्देश्यके बारेमें आपको ज़रा भी सन्देह है, जिसके न्याययुक्त और अच्छे होनेमें ज़रा भी शक है, उसे एकदम छोड़ देना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस उद्देश्यमें दुराचारका एक भी कीटाणु होगा वह अवश्य ही आपको उन्नतिकी ओर ले जानेकी जगह पतन की ओर ले जायगा।

उद्देश्यका चुनाव करते समय अपने हृदयसे केवल इतना ही न पूछिये कि कौन सा काम करके आप प्रसिद्धि पा सकेंगे या धन कमा सकेंगे। परन्तु उसी उद्देश्यको चुनिये जिसमें आप अपनी मनुष्यताकी सब शक्तियोंको लगा सकते हों और अपनेको और ऊँचा उठा सकते हों। समृद्धि और कीर्तिकी लालसा बुरी नहीं—इससे दुनिया में बड़े बड़े काम होते हैं—पर मनुष्यत्व धन और कीर्तिसे अच्छा है। अपने लिए उद्देश्य ऐसा ही चुनना चाहिये जो दिलपसन्द हो, जिसके प्राप्त करनेके प्रयत्नसे आपको आनंद मिले और आपकी सोती हुई शक्तियाँ जाग्रत हों, जो आपके चरित्र और मनुष्यत्वका विकास कर सके और संसारके लिए हितकर हो।

मनुष्यकी महत्वाकांक्षाके लिए उचित लक्ष्य वही

उद्देश्य हो सकता है जिससे दुनियाके सम्बन्धमें मनुष्य का ज्ञान विस्तृत हो, जो अपने पड़ोसियोंको और भली भाँति समझनेमें या उनके स्वास्थ्य, सुख, समृद्धि, आनंद आदिको बढ़ानेके उद्योगमें सहायक हो।

महत्वाकांक्षा या उत्साह उद्देश्यका प्राण है

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं उद्देश्यका एक महत्त्वपूर्ण अंश उसकी तीव्रता या प्रबलता है। महत्त्वाकांक्षा, उत्साह और रुचि इसी के दूसरे नाम हैं। मनोविज्ञानके अनुसार महत्त्वाकांक्षा मनुष्यमें शक्तिकी खान है। मनुष्य बचपनसे अपने निस्सहाय और दुर्बल होने का अनुभव करता रहता है जिसकी वजहसे उसमें स्वभावतः यह कामना उत्पन्न हो जाती है कि अपनी हीनता के भावको श्रेष्ठतासे ढककर अपनी मित्र मण्डली अपने समाज और संसारमें ख्याति प्राप्त करे। श्रेष्ठता, नामवरी और वाहवाही प्राप्त करनेकी यह अभिलाषा मानव संस्कृतिमें बड़े महत्त्वका स्थान रखती है। यही मनुष्यमें शक्तिका भाण्डार है। यह बड़े बड़े कठिन काम करवाती है। यही उसे कष्ट और बाधाओंको झेल कर भी आगे कदम बढ़ाये जानेके लिए प्रोत्साहित करती है।

ऊँचे हौसलेके बिना उत्थान नहीं हो सकता। सफलता पानेसे पहले महत्त्वाकांक्षाका होना परमावश्यक है। ज्यों-ज्यों सभ्यताकी उन्नति होती जाती है महत्त्वाकांक्षा भी ऊँची होती जाती है, और जितनी ऊँची महत्त्वाकांक्षा होगी उतनी ही श्रेष्ठ जनता होगी।

अपनी सफलतासे केवल वही मनुष्य सन्तुष्ट हो सकता है जिसकी वृद्धि, जिसका विकास बन्द हो गया है। बढ़ता हुआ मनुष्य सदा सम्पूर्णता का अभाव महसूस करता है। उसे अपनी हर चीज़ अधूरी जान पड़ती है क्योंकि वह बढ़ रही है। फैलता हुआ मनुष्य अपनी सिद्धिसे सदा असन्तुष्ट रहता है और आगे उन्नति करनेके लिए सदा प्रयत्न करता रहता है।

ऊँचा हौसला रखनेकी आदत जीवनमें एक बड़ी उत्थान करने वाली शक्ति होती है। यह कुल मानसिक शक्तियों का प्रसार करती है और नई शक्तियों और सम्भावनाओं का प्रादुर्भाव करती है। यह अन्तश्चेतनाकी उन शक्तियों को जगाती है जो साधारण अवस्थामें सदा सोई हुई रहती हैं और जिन तक हम अन्य और किसी साधनसे कदापि नहीं पहुँच सकते।

केवल उद्देश्य का चुन लेना ही काफी नहीं। उसके प्रति हृदयमें अटूट प्रेम या उत्साह का होना भी परमावश्यक है। उत्साह कार्यका प्राण होता है। उत्साहहीनतासे कोई काम नहीं किया जा सकता। उत्साह न रहनेसे समस्त मानसिक शक्तियाँ कार्यमें भाग नहीं लेतीं। मन कहीं काम करता है तो हाथ कहीं जाते हैं। थोड़ी देर तक इस तरह स्वयं ही शरीरके भागोंमें युद्ध होता रहता है। घंटेभर का काम कई घंटोंमें होता है, सो भी बुरी तरहसे। उत्साह एक अग्नि है जो हमारे कार्योंको चलानेके लिए भाप तैयार करती है।

पानी खौलानेके लिए दोसौ बारह दर्जेकी गर्मी चाहिए। दो सौ दर्जेकी गर्मीसे काम नहीं चलता। दोसौ दस दर्जेकी गर्मीसे भी भाप नहीं बनती। जब पानी खौलने लगता है तभी उसमें से इतनी भाप निकलती है कि उससे एंजिन या रेल चलाई जा सके। गुनगुने पानीसे किसी प्रकारकी गाड़ी नहीं चलाई जा सकती। परिश्रम व्यर्थ रहता है।

सफलताके लिए निरुत्साह और उदासीनता वैसे ही हैं जैसे एंजिनकी गतिके लिए गुनगुना पानी। बहुतसे मनुष्य अपने जीवन रूपी गाड़ीको गुनगुने पानीसे अथवा ऐसे पानीसे जिसके खौलनेमें कुछ कसर है, चलानेका प्रयत्न करते हैं और फिर वे आश्चर्य करते हैं कि उनकी गाड़ी क्यों नहीं चलती। वे अपने इंजनोंको दो सौ या दो सौ दस दर्जेकी गर्मीसे चलानेका प्रयत्न कर रहे हैं और फिर उनकी समझमें यह नहीं आता कि वे आगे क्यों नहीं बढ़ते।

उत्साहसे प्रफुल्लित व्यक्ति एक झूठी बात भी इस तरह से कहता है कि लोगोंको उसकी बात पर विश्वास होने लगता है। परन्तु सच्ची बातको रोनी सूरत लिए प्रकट करने वाला अपने परिश्रमको व्यर्थ जाते हुए देखता है। जो वक्ता अपनी बातोंको पूरे जोश और उत्साहके साथ जनताके सामने रखता है वही विजयी होता है। उसके वचनोंको सुनकर रोम रोम खड़े हो जाते हैं। उसके हृदय से निकली हुई आवाज़से सुनने वालोंका दिल हिल

जाता है।

अपने उत्साहको कभी मन्द न होने दीजिये। इस बातका बड़ी सावधानीसे ध्यान रखिये कि उसमें शिथिलता न आने पावे। उत्साह युवावस्था का प्रधान लक्षण है और यदि आप अपने उत्साहको कायम रख सकते हैं तो आपके शरीरके वृद्ध हो जाने पर भी आपकी मानसिक शक्तियोंकी युवावस्था बनी रहेगी। जब तक उत्साह है तब तक जीवनसे आपका सम्बन्ध है। जब उत्साह मन्द होने लगता है तब जीवनसे आपका नाता भी ढीला पड़ने लगता है। अपने उत्साहकी सावधानीसे रक्षा करना हर विचारशील पुरुषका कर्त्तव्य है।

अगर आप चाहते हैं कि आपकी कुल मानसिक शक्तियाँ परस्पर सहयोग से काम करें और आप उनसे पूरा-पूरा लाभ उठावें, अगर आपकी इच्छा है कि उन शक्तियोंका विकास हो, अगर आप चाहते हैं कि थोड़ेसे थोड़े बलके व्ययसे अधिकसे अधिक फल मिले, तो आप को अपने मनके साथ अपने हृदय को, अपने विचारोंके साथ अपनी भावनाओं को, सहायक रूपमें मिलाना पड़ेगा। आपको जो भी दिमागी काम करना हो उसे पूरा दिल लगा कर कीजिये क्योंकि दिमागके एंजिनका संचालन शौक या उत्साहकी गर्म भापके बिना नहीं हो सकता।

मानसिक क्रियाओंमें सबसे महत्वका स्थान भाव या उमंग का है। यही वह संचालिनी शक्ति है जो बुद्धिको उत्तेजित करती है और इच्छा शक्तिको कार्यकी ओर प्रेरित करती है। जीवनके हर ढाँचेका मूलाधार निपुणता, सिद्धि, विजय प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा ही है। वह कौन सा भाव है जो जीवनके उद्देश्यकी जान है? वह चित्तवृत्ति या रुचि है। प्रगतिशील पुरुषोंको यही रुचिकी ही आन्तरिक प्रेरणा आगे बढ़नेको उकसाती रहती है। किसी काममें रुचि होनेका मतलब है उससे प्रेम होना।

रुचि या शौकके लाभ

१—मनकी समस्त शक्तियोंको एक ओर लगाना।
२—अवधानको बढ़ाना।
३—स्मरण शक्तिको सहायता पहुँचाना।
४—मनकी उर्वर शक्तिकी वृद्धि करना।
५—व्यवसाय या इच्छा-शक्तिको दृढ़ करना

रुचि और मानसिक संश्लेषण

रुचि और उद्देश्य मनको कार्यकी एकता प्रदान करते हैं, उनके द्वारा मनकी समस्त शक्तियोंका ध्रुवीकरण हो जाता है। बिना उद्देश्यके मनका कोई केन्द्र नहीं होता और वह इधर उधर भटकता रहता है। ज्यों ही एक उद्देश्य मिल जाता है मनुष्यकी स्मरण-शक्ति, कल्पना, न्याय बुद्धि, व्यवसाय-उसके मनकी कुल क्रियायें एक साथ मिलकर उस लक्ष्यकी दिशामें उद्योग करने लगती हैं।

अगर कोई उद्देश्य न हो तो मनुष्य जीवनके धारा प्रवाहके साथ ही बहता रहे, जीवनका कोई केन्द्र न हो? न कोई कामका ढाँचा हो, न कोई नियम। इसका परिणाम यही होगा कि हमारी योग्यतायें शिथिल पड़ जायँगी और एक दिन ऐसा आयेगा जब हमें पता चलेगा कि अब हम वह नहीं रहे जो कभी पहले थे। इसके विपरीत, जो अपने सामने सदा काम करनेका हौसला, कोई नई बात सीखनेका शौक, आगे बढ़नेकी आकांक्षा या किसी और प्रकारका उद्देश्य रखता है, उसकी शक्तियाँ सदा सजीव रहती हैं बल्कि उत्तरोत्तर उनका विकास होता जाता है।

रुचि और एकाग्रता

किसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उद्योग करनेसे मन को एकाग्र करनेकी आदत पड़ती है। देखा गया है कि निरुद्देश्य होनेसे ही ज़्यादातर लोगों के ध्यानके भटकनेकी आदत हो जाती है। ऐसे मन भटकने का इलाज भी यही है कि जीवनको किसी निश्चित उद्देश्यकी सेवामें लगा दिया जाय।

निरुद्देश होनेसे मनुष्यका मन इधर उधर भटकता रहता है। बहुतसे उद्देश्य रखनेसे शक्ति छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाती है।

रुचि और अवधानमें घनिष्ट सम्बन्ध है। किसी वस्तुमें जितनी अधिक आपकी रुचि होगी, वह जितनी चित्ताकर्षक होगी, उतना ही गहरा ध्यान उसमें लग सकेगा। और क्योंकि ध्यान अधिक या कम लगनेसे ही कार्य-फलके बड़े या छोटे होने का अन्तर पड़ जाता है; इसलिए

रुचिका मूल्य स्पष्ट हो जाता है। रुचिसे लक्ष्य और लक्ष्य से एकाग्रता की उत्पत्ति होती है।

रुचि और स्मृति

किसी उद्देशके लिए उद्योग करनेसे स्मरण-शक्ति बढ़ती है। अगर एक आदमीको किसी मज़मूनमें दिलचस्पी है तो वह उसका अध्ययन बड़े चावसे करता है, उसमें निपुणता प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है और समझने तथा याद करनेकी कठिनाइयाँ शीघ्रतासे मिटने लगती हैं। इसके विपरीत, यदि उसको उस विषयसे अनुराग न हो तो वह अपनी पुस्तकोंको अस्थिर मनसे पढ़ेगा, उसका अवधान दुर्बल होगा और इस कारणसे स्मृतिभी धुँधली, मन्द और अविश्वसनीय ही होगी।

जहाँ तुम्हारा हृदय होगा वहीं तुम्हारी स्मृति भी होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस अध्ययन, धन्धे या उद्योगकी बारीक बातें जिसमें हमें शौक़ होता हैं उन बारीक बातोंकी अपेक्षा कहीं सहजमें याद हो जाती हैं जिनकी ओर हमारा या तो उदासीनता या शत्रुताका भाव होता है।

डाक्टर जान्सनका कहना है कि स्मृतिकी जननी अवधान है और अवधानकी माता रुचि है। स्मृति प्राप्त करनेके लिए उसकी माँ और नानी दोनों को पाने की कोशिश करनी चाहिए।

रुचि और नये विचारों की उत्पत्ति

रुचिसे विचारोंके उपजाऊपनकी वृद्धि होती है। खोज करनेसे पता चलता है कि महापुरुषोंकी मौलिकताओं, उनके अनुसन्धान और आविष्कारों का कारण प्राय: यही आवेग, भावना या अन्त:क्षोभ होता है जो सहज में ही रुचि या शौक़ की दशासे बढ़कर कार्यक्रमके रूपमें परिणत हो जाता है।

ध्यान, मनन और मानसिक उद्योग मनको अनुसन्धान के लिए तैयार करते हैं। पर इन सबकी संचालिनी शक्ति रुचि या शौक़से ही उत्पन्न होती है। एक प्रबल उद्देश्य या आकांक्षा की उत्तेजना ही मनकी शक्तियोंका ध्रुवीकरण करके समस्त मनको एक चुम्बक बना देती है जिससे वह इच्छित नये नये विचारोंको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है या विचार समूहमें से चुन लेता है। यही उत्तेजन है जो अन्तश्चेतनाको जाग्रत करना है जिससे वह नये नये विचारोंका प्रादुर्भाव करके उन्हें बाह्य चेतनामें प्रकाशित कर देती है। नये विचार पैदा होनेके लिए रुचिकी शक्तियोंका पूरे ज़ोरसे काम करना आवश्यक है। अगर आपकी रुचिकी शक्तियाँ ज़ोरके साथ काम करती रहें तो आपके विचार संख्या और गुणोंमें बढ़ते जायँगे।

जब रुचिकी अग्नि मन्द पड़ जाती है तब अवधान और मनकी अन्य शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं और नये विचारोंका बनना भी कम हो जाता है। इसका इलाज आसान है। मनके उत्तेजनको तीव्र करो और नये विचार फिर बनने लगेंगे।

रुचि और इच्छाशक्ति

शौक़ या अनुराग हमारी इच्छा-शक्तिको बढ़ाता है। जिस काममें आपकी रुचि है, जिसे आप पूरे हृदयसे करना चाहते हैं उसके करनेमें आपको किसी कठिनाईका अनुभव नहीं होगा और आपको अपनी इच्छा-शक्तिका व्यय न करना पड़ेगा। आपका उत्साह सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेगा—उसके कारण, चाहे आपको रात-दिन कड़ा परिश्रम ही क्यों न करना पड़े, पर आप काम पर डटे रहेंगे।

यद्यपि यह तथ्य हमारे मानसिक जीवनके सरल सत्योंमें से है परन्तु बहुत कम लोग इसके महत्वको समझते हैं। वे लोग जो अपनेको सुस्त, दुर्बल, उदासीन या अकर्मण्य पाते हैं, वह ज्यादातर इसी वजहसे कि उनमें शौक़ या रुचिका अभाव रहता है अथवा उनके पास न कोई उद्देश्य होता है, न एकाग्रता, न इच्छा-शक्ति।

रुचि या उत्साहकी भावनामें ही इच्छा-शक्तिका प्रथम प्रादुर्भाव होता है और वहीं उसका पोषण भी होता है, जिससे समय बीतने पर इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना हमारे स्वभाव का अंग बन जाता है।

यह न समझना चाहिए कि एक प्रिय उद्देश्य या महत्त्वाकांक्षा का प्रभाव केवल मानसिक शक्तियों परही पड़ता है। उससे तो मनुष्य का चरित्र, उसका समस्त जीवन प्रकाशित हो उठता है। जिस प्रकार प्रेम आलसी और निकम्मे मनुष्योंको भी सुधार देता है, उसी तरह

चमड़ा

[ले० सहदेव प्रसाद पाठक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]

चमड़ा क्या है और इससे क्या समझा जाता है? चमड़ा कभी कभी या अधिकतर खालके अर्थमें उपयुक्त होता है। प्रायः सब जातिके जानवरोंकी खाल चमड़ा बनानेके काममें आती है परन्तु सब खालोंको खाल कहना उपयुक्त न होगा। बड़े जानवरों (गाय, भैंस, घोड़ा इत्यादि) की खालको खाल (Hide) और छोटे जानवरों (भेड़, बकरी आदि) की खालको खलरी (Skin) कहना ठीक होगा। खाल या खलरी यदि स्वाभाविक दशामें छोड़ दिये जाँय तो सड़कर खराब हो जाँय। अतः कुछ न कुछ संस्कार आवश्यक है जिससे इनका सड़ना रुके और ये उपयोगी हो जाँय। खाल या खलरी के उस परिवर्तित रूपको जिससे वह सड़ न सके और उपयोगी हो जाय चमड़ा (Leather) कहते हैं।

चमड़ा बनाना भारतवर्षका एक प्राचीन व्यवसाय है। पुराणोंमें इसका वर्णन है। बहुत प्राचीन कालसे इस देशमें चमड़ा बनानेका काम होता रहा है। इस बातका पता हमारे देशकी चमार जातिसे चलता है जो हज़ारों वर्ष पूर्वसे इस भूमि पर पाये जाते हैं। इसीसे स्पष्ट है कि चमड़ा बहुत पहलेसे बनता रहा है। बाइबिलमें भी चमड़ेका उल्लेख है। अतः मानना पड़ता है कि इस देशमें ही नहीं वरन् समस्त भूमंडलमें चमड़ा बनानेकी कला लोगोंको मालूम थी। जानवरोंके मर जाने अथवा मारे जाने पर उनकी खाल चमड़ा बनानेके काममें आती थी। ज्यों ज्यों मानव जातिका विकास होता गया, पशु जाति पर आफत आती गई और मारे जाने वाले पशुओंकी संख्या बढ़ती गई यहाँ तक कि आज कल ९९ प्रतिशत खाल मारे हुये जानवरों की ही मिलती है। मारे हुए जानवरोंमें से लगभग समस्त खानेके लिए ही मारे जाते हैं। बहुत थोड़ेसे जानवर शिकारियों द्वारा भी मारे जाते हैं जैसे हिरन, सिंह, रीछ और नीलगाय इत्यादि। उनकी भी खाल चमड़ा बनानेके काममें आती है। मगर, घड़ियाल, मछली और साँपकी खालोंका भी चमड़ा बनता है जिससे सुन्दर और हल्की वस्तुएँ बनायी जाती हैं। यह सब खालें स्वाभाविक दशा में सड़नशील होती है। इनको सड़नेसे रोकने और काममें लानेके उपयुक्त बनानेकी विधियोंको चमड़ा कमाना (Leather Tanning) कहते हैं।

खाल भारी और बड़ी होती है और खलरी हलकी और छोटी। यही भेद खाल और खलरीमें होता है। एक जातिके पशुकी खालको खाल और खलरी दोनों कह सकते हैं। जैसे गायकी खालको खाल और उसके बछड़ेकी खाल को खलरी कहते हैं। समस्त स्तनपोषी जानवरों (mammals) की खालोंकी बनावट समान होती है। जाति भेदके कारण कुछ अन्तर अवश्य पड़ जाता है। इसी भेदके कारण उनके व्यवहारमें भी भेद पड़ जाता है। जैसे गायकी खालका चमड़ा जूतोंके उपल्ले और तले दोनोंके काममें आ सकता है परन्तु भैंस की खालका चमड़ा उपल्लेके कामका नहीं होता। भेड़ की खालका चमड़ा अधिकतर अस्तरके काममें लाया जाता है और बकरीकी खालका उपयोग उपल्लेमें होता है।

चमड़ा बनानेके पहले, खाल पर दो तीन उपचार करने पड़ते हैं। कारण यह है कि खाल कारखानेमें ताजा नमक लगी हुई (Green Salted), सूखी नमक लगी हुई (Dry Salted) और सूखी (Dry) दशामें आती है। अतः उसको पहले भिगोते हैं जिससे खाल उस अवस्थामें आ जाय जिसमें वह पशुके तन पर से उतारनेके बाद थी। इसके बाद खालको चूनेके घोलमें रखते हैं जिससे बाल और ऊपरी खालकी तह निकल जाय। फिर उसकी ऊपरी तह बालके साथ एक कुंद चाकू से निकालकर खालमें लगे हुए चूनेको रसायन द्वारा अलग कर देते हैं। इन तमाम उपचारोंके बाद खालको छील

व्यावहारिक मनो-विज्ञान

एक चित्ताकर्षक उद्देश्य जीवनमें महान् परिवर्तन कर देता है और चरित्रकी दुर्बलताओं को इस तरह दूर कर देता है मानो किसी दैवीशक्तिने जीवनमें प्रवेश कर लिया हो। एक दृढ़ उद्देश्य चुन लेनेमें ऐसा चमत्कार है कि कुरूपता और अव्यवस्था को हटाकर उनके स्थानमें सौन्दर्य और सुव्यवस्थाको स्थापित कर देता है और अकर्मण्य मनुष्य भी कर्मठ बन जाता है।

कर चमड़ा कमाने (Tanning) के लायक बना कर उसकी कमाई (Tanning) करते हैं।

गुणके साथ चमड़ा बनानेकी विधि भी बदल जाती है। चमड़ा बनानेकी विधियाँ अनेक हैं और अनेक भाँति के चमड़े भी आजकल बाजारमें मिलते हैं। परन्तु वस्तुतः दो ही रीतियाँ अधिकतर काममें लाई जाती हैं। पहलीमें वनस्पतियोंसे चमड़ा कमाया जाता है और दूसरीमें रासायनिक पदार्थों विशेषतः क्रोम द्वारा, वनस्पति (Vegetable) पदार्थोंसे प्राचीन कालमें और आजकल भी बहुतायतसे चमड़ा बनाया जाता है। वनस्पति पदार्थोंमें पेड़ोंकी छाल; पत्ती और फल काममें लाये जाते हैं। इनमें एक प्रकार का कसैला पदार्थ होता है जिसे टैनिन (Tannins) कहते हैं जो पानी द्वारा क्वाथके रूपमें अलग कर ली जाती है। और यह क्वाथ ही चमड़ा बनानेके काम में आता। इस रीतिसे बना हुआ चमड़ा बहुत कामका होता है। यही नहीं वरन् कुछ कामोंके लिए इसी रीति से बना हुआ चमड़ा काममें लाया जा सकता है। दूसरी मुख्य विधि क्रोमियम (Chromium) से चमड़ा कमाने की है। सोडियम या पोटासियम बाईक्रोमेट (Sodium or Potassium-di chromate) से चमड़ा बनानेकी विधिको क्रोमसे चमड़ा कमाना (chrome tanning) कहते हैं। जूता खरीदते वक्त बहुधा यह सुननेमें आता है कि यह 'क्रोम' चमड़ा (chrome Leather) है। यह वही चमड़ा है जो सोडियम या पोटासियम बाई क्रोमेट से बनता है। इस विधिसे किसी भी जातिकी खाल या खलरी कमाई जा सकती है। परन्तु हर तरहकी खाल इस विधिसे कमाई नहीं जाती, क्योंकि हर जातिके चमड़ेका अलग-अलग उपयोग होता है और लागतका भी प्रश्न रहता है। क्रोम का चमड़ा मँहगा होता है अतः जहाँ सस्तेसे काम चल जाय वहाँ मँहगा उपयोग करना भूल ही है। तात्पर्य यह है कि क्रोमका चमड़ा विशेषतः जूतोंके उपल्ले और अन्य सुन्दर वस्तुओंके बनानेमें लगता है।

उपरोक्त दो विधियोंके अतिरिक्त और भी चमड़ा कमाने की विधियाँ हैं जैसे तेलसे चमड़ा कमाना (Oil Tanning)। प्राचीन समयमें खाल पर उसी पशुकी खोपड़ी की गूदी या चर्बी लगाकर चमड़ा बनाते थे। आधुनिक समयमें तेलसे चमड़ा कमाना (Oil Tanning) उसी क्रियाका सुधरा हुआ रूप है। शेमाय चमड़ा (chamois Leather) इसी रीतिसे बने हुए चमड़ेका एक उदाहरण है। बाल सहित चमड़े भी इसी रीतिसे बनते हैं जैसे हिरन, रीछ तथा सिंह की खालका चमड़ा।

फिटकरीसे भी चमड़ा कमाया जाता है। इसको टाइंग (Tawing) भी कहते हैं। इसमें आमतौर पर जो फिटकरीमें एक तत्व अलूमिनियम (Aluminium) होता है वही क्रोमकी तरह खालके रेशेमें घुस जाता है और रेशोंको लगभग अघुल बना कर सड़नेसे रोकता है और इस तरह चमड़ा बन जाता है। हिरन, चीता, लोमड़ी आदिकी खाल जिनमें बालका रखना मुख्य ध्येय है इस विधिसे ही अधिकतर बनाई जाती है।

फार्मल्डीहाइड (Formaldihyde) से भी चमड़ा बनाया जाता है। १ से २॥ प्रतिशत फार्मल्डीहाइड के घोलमें खाल पकानेसे बिलकुल तेलसे पके हुए चमड़े के सदृश चमड़ा बन जाता है। बफ चमड़ा (Buff Leather) इस रीतिसे भी बनता है जो श्वेत रंगका होता है। इस तरह उपरोक्त तमाम विधियोंसे चमड़ा कमाया जाता है जिनका पूरा वर्णन आगे किया जायगा। इतना और लिखना आवश्यक है कि चमड़ा बन जानेके बाद उसका अन्तिम उपचार (Finishing Processes) जो चमड़ा कमानेका एक आवश्यक अंग है, किया जाता है। इसका संक्षिप्त वर्णन यह है कि वनस्पतिसे या क्रोम से बनाये चमड़ेको छीलकर उसकी मोटाई ठीक करके (यदि क्रोम चमड़ा हो तो उसका अम्ल दूर करके) यदि रंगाई करनी हो तो रंगनेके बाद उसमें तेल लगाते (Fat liquoring) है उसके बाद उसकी घोटाई करके नाप कर या तौल कर बाजारमें भेज देते हैं।

इस देशमें आज कल भी चमड़ेके व्यवसायके लिये बहुत बड़ा क्षेत्र है, आयात (Import) और निर्यात (Export) की नीचे दी हुई सारिणीसे पता चलता है कि कितने रुपयेकी कच्ची खाल हमारे देशसे बाहर जाती है और कितने रुपयेकी कमाई हुई खाल (चमड़ा) अन्य

देशोंसे इस देशमें आती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि खाल और चमड़ेके मूल्यमें कितना अन्तर होता है। यही नहीं, इस व्यवसायमें खाल या चमड़ेका जो हिस्सा बेकार समझा जाता है और बिना मूल्यका होता है वह सरेस बनानेके लिये बहुत उपयोगी होता हैं। सरेस भी बहुत कामकी चीज़ है।

सारणी (Table)

ईस्वी सन	खाल कच्चा माल खास कर बिना कमाया हुआ	आयात (रुपयों में)	निर्यात (रुपयों में)	चमड़ा वस्तुयें पूरी तौर से या खास तौर से कमाई हुई	आयात (रुपयोंमें)	निर्यात (रुपयोंमें)
३४–३५	खाल व खलरी कच्ची या बिना संवारी Hides and Skins raw or undresed.	१०,३७,०३५	३,१३,०६,७४३	खाल या खलरी कमाई हुई या संवारी हुई या चमड़ा (Hides & Skins tanned or dressed or leather)	४५,१९,१८२	५,४७,२२,३२२
३५–३६		१०,६०,३६१	४,१३,०९,५६८		५५,१३,५१५	५,६२,८९,२६६
३६–३७		१२,०३,३४५	४,४३,४०,०१५		५१,१०,०१९	७,३६,३७,२२२
३९		१२,२३,२१९	३,९९,४५,६७३		४७,७१,१५२	६,५५,७८,५१२
४०		१७,०७,५७९	३,५०,७२,४०५		५९,४२,५३०	७,९१,४१,४२६
४१		३०,४२,४२७	४,१३,४२,५०५		५४,११,९१९	५,०५,४९,४५६

ऊपर दी हुई सारिणी को देखनेसे पता चलता है कि अपने देशमें कितनी गुंजाइश इस व्यवसायकी है। उदाहरणार्थ सन् १९४० के अंक लीजिये। लगभग १७ लाख का कच्चा माल आया परन्तु उसके बीस गुने से अधिकका कच्चा माल बाहर गया। इसी तरह लगभग ६० लाख रुपया का कमाया हुआ माल देशमें आया। पर उसके १३ गुनेसे भी अधिक का कमाया हुआ माल बाहर गया। इसका अर्थ केवल यही है कि यदि हमारे देशसे ३। करोड़ का कच्चा माल बाहर न जाता तो ६० लाखका माल हमारे देशमें मँगानेकी आवश्यकता न पड़ती और इतना धन हमारे देशमें ही में रह जाता जिससे कितने बेकार आदमियोंको काम मिलता और पूँजीपतियों को धन। हम केवल यही व्यक्त करना चाहते हैं कि आज भी इस देशमें चमड़ेके व्यवसाय का बहुत बड़ा क्षेत्र है जिसका लाभ हम लोगों को उठाना चाहिये।

(लेखक की अप्रकाशित पुस्तक 'चमड़ा' की भूमिका से)

फुलवारीकी घासपातसे खाद

शहरोंमें जो लोग फुलवारी लगा सकते हैं या साग-भाजीकी खेती कर सकते हैं उन्हें खादकी भी जरूरत पड़ती है। यह भी देखा जाता है कि फुलवारीकी घास-पात प्रायः फेंक दी जाती है। इससे बड़ी हानि होती है। यदि ये चीज़ें फेंकी न जाकर कायदेसे रखी जायँ तो तीन चार महीनेमें अच्छी खाद तैयार हो सकती है। इसमें कोई मिहनत भी नहीं है, बस कायदेसे काम करनेकी जरूरत है। तरकीब नीचे दी जाती है—

फुलवारीकी घासपातको दो हिस्सोंमें बांट लें। सूखी घास या पौदोंके डंठल, झाड़ीके काटन, आदि, अलग करलें और गोभी, शलजम, केना आदिकी हरी पत्तियाँ अलग रख लें। हातेके एक कोनेमें दस या बारह फुट लम्बी और पाँच या छः फुट चौड़ी ज़मीन ठीक करके उसमें पहले सूखी घास और डंठलकी चार पाँच इंच गहरी तह बिछा दें और उसपर गोबर, लीद और लकड़ी या कंडेकी राखका पानी तीन चार बालटी छिड़ककर उसपर हरी पत्तियोंकी पतली तह फैला दें जिनसे सूखी घासपातकी तह अच्छी तरह ढक जाय। गोबर, लीद और राखका पानी इस तरह तैयार करें—एक हौदेमें गाय, भैंसका गोबर, घोड़ेकी लीद या भेड़ बकरीकी लेंड़ी रखकर उसमें लकड़ी या कंडेकी राख जो चूल्हेसे निकलती है मिला दें और दो तीन बालटी पानी डालकर सबका घोल तैयार करलें। बस इसीको सूखी घासकी तहपर छिड़क देना चाहिए। हरी पत्तियोंकी तह बिछानेके बाद उसपर चार पाँच इंच सूखी पत्तियों और डंठलोंकी तह फिर बिछाकर उसपर वैसे ही गोबर और राखका पानी छिड़ककर हरी पत्तियाँ फिर बिछा दी जायँ। यह क्रिया इतनी बार करनी चाहिए कि चार पाँच फुट ऊँची ढेर लग जाय। अब इसे दस दिन तक छोड़ देना चाहिए। दस दिनके बाद कुल ढेरको इस तरह उलट पलट देना चाहिए कि सूखी और हरी पत्तियोंकी तहें खूब मिल जायँ। इसके बाद कुलपर पानी अच्छी तरह छिड़क देना चाहिए। ऐसा करनेसे सब चीज़ें अच्छी तरह सड़ने लगती हैं। दस दस दिनपर इस ढेरको बराबर उलटते-पुलटते रहना चाहिए और पानी छिड़कना चाहिए। तीन महीनेमें अच्छी खाद तैयार हो जायगी। आवश्यकतानुसार ऐसे कई ढेर लगाकर खाद तैयार की जा सकती है।

श्रीकृष्ण श्रीवास्तव

समालोचना

हिन्दी 'उद्यम'—नमूना अंक, नम्बर १९४४, वार्षिक मूल्य ४॥), सम्पादक वि० ना० वाडेगाँवकर धर्मपेठ, नागपुर सी० पी०।

हिन्दी की पत्रिकाओं में उद्योग-धन्धे संबंधी लेख प्रायः निकलते तो रहे हैं किन्तु अभी तक कोई ऐसी पत्रिका नहीं थी जिसमें केवल इसी विषयके लेख रहते रहे हों। "उद्यम" ने इस कमी को पूरा किया है। इस पत्रिकासे व्यवसाय जगतकी बड़ी सेवा होगी। इस अंक में छपे लेखों में "गेहूँ की निगरानी तथा उसके रोगों पर प्रतिबन्ध", "हमेशा के लिए साग सब्ज़ी", "कास्टिक सोडा कैसे बनता है" आदि लेख अच्छे तथा उपयोगी हैं। जिस देशकी लगभग तीन चौथाई जनता खेती पर ही निर्भर करती हो वहाँ के लिए ऐसी पत्रिकाओंकी वास्तविक उपयोगिता है। साधारण पढ़े लिखे लोग इस प्रकारके लेखोंको पढ़कर छोटा-मोटा व्यवसाय खोलनेमें भी समर्थ हो सकते हैं। इस नमूनेके अंकको देख कर मुझे आशा है कि 'उद्यम' भविष्य में सफलतापूर्वक निकलेगा।

वैद्य—सम्पादक वैद्य विष्णुकान्त जैन, प्रकाशक वैद्य हरिशंकर, मुरादाबाद, वार्षिक मूल्य ३)।

यह वैद्यक सम्बन्धी पुरानी पत्रिका है। पिछले वर्षों से यह सफलतापूर्वक निकल रही है। जनवरी १९४५ के अंक में, जो मेरे सामने है, कई अच्छे स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख हैं। आजकलके ज़मानेमें अच्छे वैद्योंके अभावके कारण जब लोगों का विश्वास अपनी देशी दवाओंके ऊपरसे उठता सा जा रहा है ऐसी पत्रिकाकी बड़ी आवश्यकता है। इसके द्वारा लोगोंको अपनी देशी दवाओंके गुण दोषों तथा उनके उपयोग आदिकी जानकारी प्राप्त होती है जिससे वे आवश्यकता पड़ने पर लाभ उठा सकते हैं। मुझे विश्वास है कि इस पत्रिकाका प्रचार हिन्दी में बराबर बढ़ता जायगा।

—रानीटंडन, एम० एड०,

विज्ञान-परिषद्‌की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=),

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १।।),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १।।),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २॥),

२४—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १॥),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, १५० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; २८० पृष्ठ; ३)

२—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई०। इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

३—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं, २)

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

****************:********************

भाग ६१ | वृष, सम्वत् २००२ जून १९४५ | संख्या ३

**************:**********************

कुछ उपयोगी नुसखे

[डाक्टर गोरखप्रसाद]

निकेल की कलई—

क्रीम ऑफ़ टारटार	२० भाग
अमोनियम क्लोराइड	१० भाग
सोडियम क्लोराइड	५ भाग
टिन आक्सीक्लोर हाइड्रेट	२० भाग
निकेल सलफ़ेट सिंगल	३० भाग
निकेल सलफ़ेट डबल	५० भाग
पानी	१००० भाग

वस्तु को खूब स्वच्छ करके (माँजकर और पारी-पारी से सोडा और तेज़ाब से धोकर) इस घोल में दो-तीन मिनट तक रखना चाहिए। फिर निकाल कर उसे राख से माँजना चाहिए। लोहे पर निकेल चढ़ाने के पहले उस पर ताँबे की क़लई तूतिया और तेज़ाब में डुबाकर कर लेना चाहिए (ऊपर देखो)।

चाँदी की क़लई—

१—सिलवर क्लोराइड	३ भाग
नमक (सोडियम क्लोराइड)	३ भाग
प्रेसिपिटेटेड चाक	२ भाग
कॉस्टिक पोटाश	६ भाग

थोड़ा-सा जल मिला कर इस चूर्ण को कलई की जाने वाली वस्तु पर स्वच्छ नरम चमड़े से रगड़ना चाहिए। उस वस्तु को पहले से ही माँजकर और तेज़ाब आदि से धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिए।

सिलवर क्लोराइड प्रकाश से खराब हो जाता है। इसे बनाने के लिए सिलवर नाइट्रेट के घोल में नमक के घोल को मिलाना चाहिए। जो तलछट बने उसे सोखते (ब्लाटिंग पेपर) से अलग करके, धोकर, अँधेरे में सुखा लेना चाहिए।

२—सिलवर नाइट्रेट	१ भाग
पोटैसियम साइनाइड	३ भाग
जल	आवश्यकतानुसार

गाढ़ा लेप बनाओ। ऊनी चीथड़े से छूपे उस वस्तु पर रगड़ो जिस पर कलई करनी हो (वह वस्तु पहले से ही स्वच्छ कर ली गयी हो)। फिर धो डालो और चमड़े से रगड़ कर चमकीला कर डालो। पूर्वोक्त मिश्रण अत्यंत विषैला है, इसलिए उसे अँगुलियों से न छूना ही अच्छा है; यदि कहीं भी अँगुली की त्वचा कटी रहेगी तो विष भीतर घुस जायगा और रक्त में पहुँच कर भारी हानि करेगा। प्राण तक चला जा सकता है।

३—अंधेरेमें निम्न लेप बनाओ—

पानी	३ से ५ आउंस
सिलवर क्लोराइड	७ आउंस
पोटैसियम ऑक्ज़लेट	१० आउंस
साधारण नमक, स्वच्छ	१५ आउंस
नौसादार (अमोनियम क्लोराइड)	३ आउंस

ताँबेकी वस्तुओं पर इसे बुरुश या ऊनी चीथड़े से रगड़ने पर क़लई चढ़ जाती है जो इतनी चिमड़ी होती है कि तारके बुरुशसे रगड़ कर या इस्पात से घोंट कर खूब चमकाई जा सकती है। लैंपोंके पीछे लगने वाले रिफ्लेक्टरों पर इस लेपसे कलई करके उनकी चमक को फिरसे नया किया जा सकता है। पूर्वोक्त लेपके बदले निम्न से भी काम चल सकता है—

सिलवर क्लोराइड	३½ आउंस
क्रीम आफ् टारटार	७ आउंस
नमक	३½ आउंस
पानी	आवश्यकतानुसार

पानी इतना ही हो कि गाढ़ा लेप बने।

४—पारे में चाँदीको घोलकर भी वस्तुओं पर चाँदी चढ़ाई जा सकती है, परंतु इसकी प्रथा अब उठ-सी गई है।

५—निम्न घोलमें ताँबे, पीतल आदिकी वस्तुओंको

डालकर निकाल लेनेसे उन पर चाँदी की हलकी कलई चढ़ जाती है—

सिलवर नाइट्रेट	४½ भाग
हाइपो (फोटोग्राफी के काम में आने वाला)	१० भाग
अमोनियम क्लोराइड	६ भाग
प्रेसिपिटेटेड चॉक	१० भाग
पानी	१०० भाग

इसके बदले निम्न घोलका प्रयोग किया जा सकता है, परंतु यह तीव्र विष है--

सिलवर नाइट्रेट	११ भाग
पोटैसियम साइनाइड	६० भाग
पानी	७५० भाग
प्रेसिपिटेटेड चाक	११ भाग

इस घोलको गाढ़े भूरे रंगकी शीशीमें, या काला काग़ज़ लपेटी शीशीमें रखना चाहिए। काममें लानेके लिए इसमें दुगुना पानी (आकाशका जल या स्रवित जल—डिस्टिल्ड वाटर) मिला लेना चाहिये।

रांगेकी क़लई – (१) रांगेकी कलई साधारणतः पिघला हुआ रांगा पोत कर की जाती है। रीति बहुत सरल है। सभी इसमें सफलता प्रारंभसे ही पा सकते हैं। रांगेको पहले चूर कर लिया जाय तो अच्छा है। इसके लिए रांगेको लोहेके बरतनमें पिघला कर जमने दिया जाता है, परंतु ज्योंही जमने लगता है इसे कूट कर चूर-चूर कर दिया जाता है। यदि रांगा जमकर ठोस हो जाय तब कूटनेसे वह चूर न होगा।

कलई करनेके पहले बरतनको बालू और राखसे मांज कर खूब साफ कर लिया जाता है। राखमें कुछ सोडा रहता है, परंतु यदि कुछ साधारण सोडा (सोडियम कारबोनेट) इसमें छोड़ लिया जाय तो और अच्छा होगा। सोडासे चिकनाहट कटती है। इसके बाद बरतनको सलफ्यूरिक ऐसिड मिले जलसे धोया जाता है, परंतु यह विशेष आवश्यक नहीं है। फिर बरतनको कोयलेकी आंच पर इतना गरम किया जाता है कि उस पर रांगा छोड़नेसे रांगा पिघल जाय।

अब बरतन पर आवश्यकतानुसार रांगा (रांगाका चूर) छोड़ दिया जाता है। रांगा पिघलने लगता है। तब उसे नौसादार (अमोनियम क्लोराइड) लगे स्वच्छ चीथड़े या रुई की गद्दीसे रगड़ दिया जाता है। नौसादारके लगते ही रांगा बरतन पकड़ लेता है। अब उसी रुई या चीथड़ेसे रांगेको सर्वत्र पोत दिया जाता है। रांगा कुल इतना ही रहे कि सब जगह पतली कलई हो जाय। बहुत मोटी कलई चिकनी नहीं हो पाती। क़लई करनेके बाद बरतनको अच्छी तरह धो डालना चाहिए जिसमें नौसादार लगा न रह जाय। इस रीतिसे पीतल और तांबे पर बड़ी सुगमतासे कलईकी जा सकती है, परंतु लोहे पर भी कलई हो सकती है।

नौसादार के बदले लोबान या रजन (रोज़िन) का प्रयोग भी किया जा सकता है, परंतु तब यह आवश्यक है कि बरतनको मांजनेके बाद उसे तेजाबके पानीसे धोकर स्वच्छ कर लिया जाय।

(२) रांगा पारेमें घुलनशील है। पारेमें रांगेको घोलकर फिर उस घोलको पीतल आदिके बरतन पर रगड़कर और अंतमें बरतनको गरम करके पारेको उड़ा देनेसे उस पर रांगे की क़लई हो जाती है। परंतु इस रीतिका प्रयोग अब प्राय: नहीं होता।

(३) निम्न घोलमें पीतल आदिकी वस्तुको डुबानेसे उस पर रांगे की हलकी कलई चढ़ जाती है :—

अमोनिया ऐलम	१७½ आउंस
खौलता पानी	१२½ आउंस
टिन प्रोटोक्लोराइड	१ आउंस

जब इसमें कलईके लिए बरतन डुबाये जांय तो घोल खूब गरम रहे।

जस्तेकी क़लई—जस्ते की कलई करनेको गैलवनाइज़ करना भी कहते हैं। बाज़ारमें जो गैलवनाइज़ आयरन बिकता है उस पर जस्ते की ही क़लई रहती है।

पहले वस्तुको बालू से खूब मांज डालना चाहिए। फिर

हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	१ भाग
पानी	२ भाग

के हिसाब से बनाये मिश्रणमें वस्तुको कुछ घंटे तक रख कर फिर मांजना चाहिये। अच्छी तरह धो डालनेके बाद

वस्तुको निम्न घोल में डालना चाहिए—

नौसादार (अमोनियम क्लोराइड)	½ पाइंट
पानी	१ गैलन

इसमेंसे निकाल कर वस्तुको आँच दिखाकर शीघ्र सुखाना चाहिए, परंतु आंच इतनी तेज़ न हो कि नौसादर उड़ जाय। सूख जाने पर वस्तु को पिघले जस्तेमें डुबा कर निकाल लेना चाहिये। यदि काम इतना अधिक न हो कि पिघले जस्तेमें वस्तुको डुबानेका प्रबंध किया जा सके तो बरतन पर जस्तेकी क़लई उसी रीतिसे करनी चाहिये जिसका वर्णन राँगेकी कलई के संबंधमें दिया जा चुका है।

जस्तेकी रवादार क़लई —साधारण क़लई करनेके बाद वस्तुको ज़िंक क्लोराइडके घोलसे या एक भाग नाइट्रिक ऐसिड एक भाग पानीमें धोनेसे जस्ते पर सुंदर रवेदार आकृतियां बन जाती हैं।

धातुओं की रँगाई

यहाँ धातुओं की रँगाई से तात्पर्य यह है कि उनका रंग किस प्रकार रासायनिक रीतियों से या आँच दिखा कर बदल दिया जाय कि वे अधिक सुंदर जँचने लगें। तैल-रंगों से रँगने की चर्चा यहाँ नहीं की जायगी।

धातुओं की रँगाई तभी संभव है जब वे पूर्णतया स्वच्छ हों। इसके लिए उसकी सफाई उसी प्रकार करनी चाहिए जैसे बिजली से कलई करने के पहले की जाती है। फिर, उन वस्तुओं पर जिन्हें रंग बदलने के बाद चमकीला रखना होता है पहले ही से पॉलिश करके चमक ला देनी चाहिए। अर्धचमक वाली वस्तुओं को बालू की धार (सैंड-ब्लास्ट) से, चूर्ण प्यूमिस पत्थर से घिस कर, तार के बुरुश से रगड़ कर, या उचित रासायनिक घोल में डुबा कर चमक को इच्छानुसार कर लेना चाहिए।

नीचे जहाँ पीतल, ताँबा, आदि धातुओं के रंग को बदलने की रीति दी गयी है वहाँ यह न समझना चाहिए कि सारी वस्तु उस धातु की बनी हो। वस्तु पर धातु की क़लई का रहना पर्याप्त है, परंतु कलई इतनी हलकी न हो कि रंग बदलने वाले घोलों में यह कट जाय।

एक ही घोल से कम या अधिक समय तक उसमें रखने से, न्यूनाधिक तापक्रम से, या घोल को गाढ़ा-फीका करके, या उसमें के विभिन्न रासायनिक पदार्थों को घटा-बढ़ा कर, विभिन्न रंग उत्पन्न किये जा सकते हैं। इन रंगों का सूक्ष्म वर्णन संभव नहीं है। केवल परीक्षा से ही पता चल सकता है कि किस प्रकार कौन-सा रंग आयेगा। रंग बदलने के बाद ऊपर से रंगीन लैकर पोतने से (आगे देखो) रंग कुछ और बदला जा सकता है। इस प्रकार असंख्य रंग उत्पन्न किये जा सकते हैं। परीक्षा और प्रयोग से ही उचित रंग उत्पन्न किया जा सकता है।

पुराना फूल—फूल नामक धातु के रंग को बदलने के लिए उनको गरम करना चाहिए। बरतन असली फूल का हो जिसका नुसखा यह है—

ताँबा	९० भाग
जस्ता	२ भाग
राँगा	८ भाग

लगभग ३५० डिगरी फारनहाइट तक तंदूर में गरम करो। गरम करने के पहले वस्तु पर इच्छानुसार पॉलिश कर लो। गरम करने से वस्तु पर कालिमा आ जाती है जिसे लोग बहुत पसंद करते हैं। इसे अँग्रेज़ी में ब्रॉन्ज़ मेटल ऐंटीक फिनिश कहते हैं।

नकाशी किये बरतनोंमें उभरे भागों को चमका देने से और गहरे भागों को पूर्वोक्त रीति से कालिमा-मय कर देने से विशेष सुंदरता आ सकती है।

ताँबा—(१) ताँबा को काला करने के लिए उसे गरम करके कॉपर नाइट्रेट के घोल में डुबाओ और फिर गरम करो।

२—बिसमथ क्लोराइड	२ भाग
कॉपर क्लोराइड	१ भाग
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	६ भाग
स्पिरिट	५ भाग
पानी	५० भाग

इस घोल में स्वच्छ की गई को डुबा कर निकाल लो और वस्तु पर लगे घोल को उसी पर सूख जाने दो। फिर वस्तु को खौलते पानी में रक्खो और आधे घंटे तक पानी को खौलाते रहे। तब वस्तु निकाल ली जा सकती है। यदि रंग काफी गाढ़ा न चढ़ा हो तो ऊपर की क्रिया को दोहराओ। रंग चढ़ जाय तो वस्तु पर तेल पोत कर

वस्तु को इतना गरम करो कि तेल धुओं के रूप में उड़ जाय। इस रीति से ताँबा काला हो जाता है।

(३) नीला करने के लिए वस्तु को निम्न घोल में डुबाओ—

पोटैसियम सलफाइड	२ आउंस
पोटैसियम क्लोरेट	२ आउंस
पानी	१००० आउंस

या निम्न घोल में--

पोटैसियम फ़ेरो साइनाइड	१ आउंस
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	१/२ आउंस
पानी	आवश्यकतानुसार

पानी की मात्रा यथासंभव कम रहे, परंतु इतना अवश्य हो कि कुल फेरोसाइनाइड घुल जाय।

(४) गाढ़ा कत्थई रंग--

तूतिया	१ आउंस
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	१/४ आउंस
हाइपो (फ़ोटोग्राफी मे काम आने वाला)	१ आउंस

इसमें वस्तु को डुबाकर निकाल लो और सूखने दो। फिर धो डालो।

या वस्तु को गरम करके उस पर निम्न घोल पोतो-

कॉपर ऐसिटेट	५ भाग
अमोनियम क्लोराइड	७ भाग
ऐसेटिक ऐसिड	१ भाग
पानी	८७ भाग

सूखने पर धो डालो। अंत में १ भाग मोम, ४ भाग तारपीन का घोल पोत दो।

(५) ताँबे को हरा करने के लिए

नमक	३ भाग
लिकर अमोनिया	६ भाग
नौसादर	३ भाग
ऐसेटिक ऐसिड	१०० भाग
पानी	२०० भाग

रुई से लगाओ। एक बार में काफी रंग न बदले तो बार-बार लगाया जा सकता है।

या निम्न घोल का प्रयोग करो--

ऑक्ज़ैलिक ऐसिड	५ भाग
नौसादर	१० भाग
ऐसेटिक ऐसिड (३० प्रतिशत)	५०० भाग

(६) ताँबे को खूब लाल करने के लिए--

ऐंटिमनी सलफाइड	१ भाग
पोटैसियम कारबोनेट	४ भाग
पानी	१०० भाग

इसमें वस्तु को डुबाओ और फिर धो डालो।

पीतल का रंग बदलना

(१) काला करना--

कॉपर नाइट्रेट	१ भाग
पानी	५ भाग

वस्तु पर इसे पोत दो और सूखने दो फिर निम्न घोल में रक्खो--

पोटैसियम सलफाइड	२ भाग
हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड	१ भाग
पानी	२० भाग

इसमेंसे वस्तुको निकालकर इतना गरम करो कि वह काला हो जाय।

लेंज, दूरदर्शक, आदिके भीतरी भाग कालिखसे काला किये जाते हैं। इसके लिए फ्रेंच पॉलिश (जो मेथिलेटिड स्पिरिट में चपड़ा घोलनेसे बनता है) और कालिख मिला लिया जाता है यदि फ्रेंच पॉलिश अधिक न रहेगा तो सूखने पर काले रंगमें चमक आ जायगी जो अवांछनीय है। यदि फ्रेंच पॉलिश बहुत कम रहेगा तो कालिख धातुको ठीकसे पकड़ेगा नहीं। यदि फ्रेंच पॉलिश बहुत गाढ़ा हो तो पहले उसमें कुछ मेथिलेटिड स्पिरिट मिला लेना चाहिए।

(२) पीतलको नीला करना—

पोटैसियम सलफाइड	१ भाग
लिकर अमोनिया	१ भाग
पानी	२० भाग

इसमें वस्तुको कुछ समय तक रख छोड़नेसे अंतमें पीतल पर अच्छा नीला रंग आ जाता है। इस काममें घोलको काग लगी बोतलमें रक्खा जाय, अन्यथा घोल बहुत शीघ्र खराब हो जाता है।

(३) कत्थई रंगके लिए निम्न घोलका प्रयोग करना चाहिये —

पोटैसियम क्लोरेट	१५० ग्रेन
तूतिया	१५० ग्रेन
पानी	½ गैलन

(४) हरा करनेके लिए वस्तु को कॉपर नाइट्रेटके गाढ़े घोलमें उबालो; या फेरिक क्लोराइडके गाढ़े घोल में डुबाओ।

(५) हल्के हरे रंगके लिए —

तूतिया	८ भाग
नौसादार	२ भाग
पानी	१०० भाग

खौलते घोलमें वस्तुको तब तक रहने दो जब तक रंग काफ़ी गहरा न हो जाय।

(६) निम्न से सुंन्दर हरा रंग आता है—

०·८८० घनत्वकी आमोनिया	१ आउंस
नमक	२ आउंस
नौसादर	२ आउंस
अमोनिम ऐसिटेट	२ आउंस
पानी	१४ आउंस

दो-दो घंटे पर वस्तुको इस घोलसे रंगना चाहिए। दो-तीन बार रंगना काफी होगा। फिर एक दिन बाद तेज़ ऐसेटिक ऐसिड से रंगना चाहिए (यह हाथमें न लगे)।

(७) बैंगनी रंगके लिए वस्तुको ऐंटीमनी क्लोराइडके गरम घोलमें डुबा कर रुई से रगड़ो।

(८) खाकी रंगके लिए

बेरियम सलफाइड	२ पाउंड
पानी	१ गैलन

खौलते हुए घोलमें वस्तुको लटकाओ। जब इच्छानुसार रंग आ जाय तो निकाल लो।

चांदी—(१) काला करनेके लिए पोटैसियम सल्फाइड के घोल में डुबाओ।

(२) कत्थई करनेके लिए

नौसादार	१ भाग
तूतिया	१ भाग
ऐसेटिक ऐसिड	१ भाग
पानी	४ भाग

घोलो।

(३) चांदीको सफेद करनेके लिए निम्न घोलमें डुबाओ।

सलफ्यूरिक ऐसिड	१ भाग
पानी	२० भाग

(४) कालिमा उत्पन्न करनेके लिए नौसादरके घोलमें डुबाओ।

(५) लालिमा लानेके लिए कॉपर क्लोराइडके गरम गाढ़े घोलमें दो-चार सेकंड के लिए डुबाओ।

जस्ता—जस्ता को काला करनेके लिए निम्न घोल अच्छा है। खूब काला रंग आता है—

कॉपर नाइट्रेट	१ आउंस
नौसादर	१ आउंस
कॉपर क्लोराइड	१ आउंस
हाइड्रो क्लोरिक ऐसिड	१ आउंस
पानी	१ गैलन

एक सेकंड तक वस्तुको इसमें रक्खो। फिर धो डालो, सुखाओ, और चाहो तो मंद आंच पर २१२ डिगरी फारनहाइट तक गरम करो। इस गरम करनेसे रंग कुछ अधिक अच्छा हो जाता है।

इस्पात—(१) इस्पात पर कालिमायुक्त नीला रंग लानेके लिए निम्न घोल अच्छा है—

पोटैसियम नाइट्रेट (शोरा)	२० आउंस
कास्टिक सोडा	२० आउंस
पानी	२४ आउंस

मंद आँच पर इस घोलको खौलते रहने दो और खौलते हुए घोलमें वस्तु को छोड़ो, दो-चार मिनटमें रंग बदल जायगा। तब वस्तुको निकाल कर धो डालो, सुखालो, गरम तेलमें डुबाओ और पोंछ डालो।

(२) बंदूककी नालको नीला करनेके लिए निम्न घोलका उपयोग करो—

ऐलकोहल (या स्पिरिट)	४ आउंस
ईथर	४ आउंस
फेरिक क्लोराइड	४ आउंस
नाइट्रिक ऐसिड	३ आउंस

तूतिया	३ आउंस
मरक्यूरिक क्लोराइड	१ आउंस
पानी	१ गैलन

नाल को अच्छी तरह स्वच्छ करो। तेल आदि नाम मात्र भी न लगा रहे। इसके लिए कास्टिक सोडा से धोओ। फिर पानी से धोओ। फिर खौलते पानी से धोओ। तुरंत पूर्वोक्त घोल रुई से लगाओ। फिर नालको ऐसे तंदूर में रक्खो जिसके चारों ओर भाप की नालियाँ हों और इसलिए जिसका तापक्रम २१२ डिगरी फारन हाइट बना रहे। इसमें नाल को तीन घंटे रहने दो। फिर १० मिनट तक खौलते पानी में नाल को रक्खो।

फिर घोल लगाओ, तीन घंटे तक गरम रक्खो और धोओ। यदि आवश्यकता हो तो इस क्रिया को एक बार फिर दोहराओ।

तार के बुरुश से रगड़ो। अंत में गरम तेल लगाओ।

ऊपर की रीति के बदले निम्न सरल रीति का प्रयोग किया जा सकता है, परंतु इससे काम उतना बढ़िया नहीं उतरता—

फेरिक क्लोराइड	२ भाग
ऐंटीमनी क्लोराइड	२ भाग
गैलिक ऐसिड	१ भाग
पानी	६ भाग

नाल को खूब साफ करने के बाद इस घोल को रुई से लगाओ। सूख जाने दो। फिर घोल लगाओ और सूख जाने दो। दो-तीन बार घोल लगानेके बाद धो डालो और सूखने दो। फिर तीसी का तेल लगा कर कपड़े से रगड़ो।

(३) काला करने के लिए—

गंधक	१ भाग
तारपीन	१० भाग

गरम करके घोलो। वस्तु पर पतली तह गरमागरम ही लगाओ और फिर वस्तु को इतना गरम करो कि काला हो जाय।

(४) नीला रंग लानेकी एक रीति यह भी है—

क—	पोटैसियम फेरोसाइनाइड	१ भाग
	पानी	२०० भाग
ख	फ़ेरिक क्लोराइड	१ भाग
	पानी	२०० भाग

इन घोलों को अलग-अलग बना कर एक में मिलाओ। फिर स्वच्छ की वस्तु को इसमें डुबाओ।

(५) आँच में तपाने से भी लोहे पर नीला रंग चढ़ता है, परन्तु कड़ा किये गये इस्पात को गरम करनेसे वे नरम हो जाते हैं। इसलिए इस रीति का प्रयोग ऐसेही कामों के लिए किया जा सकता है जिसमें वस्तुकी कड़ाई आवश्यक नहीं है।

धातुओं पर लैकर करना

धातुओं पर चाहे कितनीभी पॉलिशकी जाय और चाहे उन्हे कितनी भी सावधानीसे उचित रंगका बनाया जाय वायुके आक्सिजन तथा अन्य अवयवोंके कारण वे कुछ समयमें काले पड़ जाते हैं या रंगमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। केवल थोड़ेसे ही धातु और थोड़ेसे ही रंग ऐसे हैं जिनमें विशेष परिवर्तन नहीं होता, जैसे प्लैटिनम, या काला किया हुआ ताँबा। धातुओं की चमक और रंग को सुरक्षित रखनेकी एक सुगम रीति यह है कि उन पर लैकर कर दिया जाय। लैकर सेलुलायड, चमड़ा, आदि की तरह की वस्तुओं को उड़नशील तरल पदार्थों में घोल कर बनता है। लैकर लगाने के बाद उड़नशील पदार्थ उड़ जाता है और सेलुलायड आदि की एक बहुत पतली पारदर्शक तह वस्तु पर रह जाती है। इस तह के कारण वायु उस वस्तु पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता और इसलिए चमक बहुत दिनों तक बनी रहती है।

लैकर करनेके लिए सामान—लैकर करनेके लिए एक कोठरी अलग ही चाहिए जिसमें फर्श आदि पक्के हों और गर्द उड़नेका डर न हो। लैकरमें शीघ्र आग लग सकती है। इसलिए मकान लकड़ी का न हो, और न उसमें बेकार की वस्तुएँ रखी जायँ।

गर्द से लैकर किये काम को बड़ी हानि पहुँचती है क्योंकि जब लैकर सूखता रहता है तो चिपचिपा रहता है और जितनी गर्द काम पर गिरती है सब उसी पर चिपक जाती है। इसलिए बड़े कारखानोंमें दरवाज़ों पर हवा को

छाननेके लिए विशेष यंत्र लगे रहते हैं। ऐसी अवस्थामें हवा को बलपूर्वक बिजली के पंखोंमें संचालित करके इन छननोंमें डाला जाता है। कोठरीकी दूसरी ओर हवा को चूस कर बाहर निकालनेके लिएभी पंखे लगे रहते हैं। कोठरीमें शीशा लगी बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ रहें जिसमें प्रकाश की कमी न हो।

लैकर करनेके लिए ऊँट के बालके बने नरम बुरुश अच्छे होते हैं। छोटे कामों पर लैकर करनेके लिए उनको अल्युमिनियमकी जाल.की बनी टोकरी या बाल्टीमें रखकर लैकरमें डुबा दिया जाता है। जाली जितनी खँखरी (दूर-दूर पर लगे तारसे बनी) हो उतनाही अच्छा, परन्तु इतनी खँखरीभी न हो कि वस्तु गिर सके। पीतलकी जालीसे भी काम चल सकता है, परन्तु तब जालीकी टोकरी को अधिक समय तक लैकर में न पड़े रहने देना चाहिए।

बुरुशसे पोतनेके बदले इन दिनों बड़े कामों पर अकसर स्प्रे-गन से लैकर चढ़ाया जाता है। स्प्रे-गन में से हवा की धार निकलती है। हवाके झोंकेमें पड़कर लैकर अत्यंत सूक्ष्म झींसीके रूप में निकलता है और वस्तु पर पहुँचकर बहुत शीघ्र सूखता है। स्प्रे-गनके साथ-साथ वायुको पंप करनेके लिए बिजलीकी मोटर या तैल-इंजन, पंप, रबड़की नली, इत्यादि भी चाहिए। हवाको छाननेके लिए प्रबंध चाहिए। इसके अतिरिक्त एक ऐसा बक्स चाहिए जो सामनेसे खुला हो और जिसके पीछे हवा चूसनेके लिए पंखा लगा हो। ऐसे बक्सके अभावमें लैकरका उड़नशील पदार्थ कार्यकर्त्ताके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। कामको शीघ्र सुखानेके लिए तंदूर मिलते हैं जिनको इच्छानुसार तापक्रम तक गरम किया जा सकता है। कुछ विशेष लैकर गरमागरम लगाये जाते हैं और उनके लिए वस्तुको गरम भी करना पड़ता है। ऐसे लैकरोंके लिए गरम मेज़ की भी आवश्यकता पड़ती है जिसको नीचेसे गरम करनेका प्रबंध रहता है।

लैकर करनेकी विधि—लैकर लगानेके पहले देख लेना चाहिए कि वस्तुएँ पूर्णतया स्वच्छ हैं। यदि वस्तुओं पर तेल आदि चिकनाहट वाली वस्तुओंकीसहायतासे पॉलिश किया गया हो तो वस्तुको चूनेके सूक्ष्म चूर्णसे रगड़कर चिकनाहटको पूर्णतया दूर कर लेना चाहिये। यदि ऐसा करना असंभव हो तो वस्तुको पेट्रोल या बेनज़ीनमें तर किये गये कपड़ेसे साफ कर लेना चाहिए। जिन वस्तुओं को लोगों ने अँगुलियोंसे छुआ हो उन्हें भी अवश्य इस प्रकार स्वच्छ कर लेना चाहिए। बहुत गंदी वस्तुओंको उसी प्रकार स्वच्छ करना चाहिए जिस प्रकार बिजलीसे कलई करनेके पहले उनको स्वच्छ किया जाता है (रीति पहले बतलायी जा चुकी है)।

पुराने काम पर फिरसे लैकर करना हो तो पहले पुराने लैकरको आवश्यकतानुसार स्पिरिट या ऐसिटोनसे, या कास्टिक सोडा, बालू आदिसे माँज कर साफ कर लेना चाहिए।

लैकरको बुरुशसे लगाते समय ध्यान रखना चाहिए कि तैल-रंगोंको लगाते समय जिस तरह रंगको रगड़-रगड़ कर लगाया जाता है उस तरह लैकर को नहीं लगाना चाहिए। लैकरको हलके हाथ पोत देना चाहिए, और इस कामको फुरतीके साथ करना चाहिए, क्योंकि लैकर शीघ्र सूखने लगता है। जब लैकर चिटचिटा हो जाय तो उस पर बुरुश नहीं फेरना चाहिए।

लैकरोंके नुसखे—लैकर का स्वयं बनाना सुगम नहीं है। दरजनों तरहके लैकर होते हैं, कुछमें चपड़ा, या वार्निशों में पड़ने वाले गोंद पड़ते हैं। कुछ वायुमें ही सूख जाते हैं, कुछ को सुखानेके लिए गरम करना पड़ता है। सेलुलोज़ से बने लैकर बहुत शीघ्र सूखते हैं। कुछ पारदर्शक होते हैं। कुछमें अपारदर्शक रंग पड़े रहते हैं। कुछ लैकर ऐसे होते हैं कि लगानेके बाद वस्तु को तंदूरमें काफ़ी गरम करना पड़ता है। इस गरमीसे लैकरमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है और तब बहुतही कड़ा, चिमड़ा और टिकाऊ परत वस्तु पर बन जाता है। बड़े कामों पर बुरुशसे लगानेके लिए जो लैकर बनाये जाते हैं वे जानबूझ कर इस प्रकार बनाये जाते हैं कि अपेक्षाकृत वे धीरे-धीरे सूखें। इस प्रकार उनके लगानेमें बहुत हड़बड़ी नहीं करनी पड़ती, कुछ लैकर विशेष रूपसे इस प्रकार बनाये जाते हैं कि गरम जल, तेज़ाब या समुद्रके पानीसे खराब न हों। कुछ लैकर पारदर्शक होते हुएभी रंगीन होते हैं।

मोटरकारोंके रँगनेके आधुनिक रंग एक प्रकारके लैकरही हैं।

नीचे कुछ लैकरोंके नुसखे दिये जाते हैं। लैकर शब्द हिंदुस्तानी लाख (लाह या चपड़ा) से निकला है। लाख या चपड़ा को अँग्रेज़ी में शेलैक या लैक कहते हैं। पहले अधिकांश लैकर चपड़ेसे ही बनते थे। लैकर लकड़ी आदि पर भी लगाया जाता है।

पीतल के लिए लैकर—

(क) रतनजोत	¼ आउंस
केसर	¼ आउंस
हलदी	१ आउंस
मेथिलेटेड स्पिरिट	५ आउंस
(ख) चपड़ा	३ आउंस
मेथिलेटेड स्पिरिट	१ बोतल

पहले रतनजोत, केसर, हल्दी को स्पिरिट में अलग रख दिया जाता है। यह केवल रंग लानेके लिए है। छानने के बाद इस रंग को स्पिरिट और चपड़ेके घोल में इच्छानुसारही मिलाना चाहिए। रंग लाने वाली विविध वस्तुओं की मात्राएँ इच्छानुसार न्यूनाधिक की जा सकती हैं। केसर के बदले अन्य वस्तुओं का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि केसर महँगा होता है। बहुत से बुकनी के रंग स्पिरिटमें घुलनशील होते हैं। उनका प्रयोग अब अधिकाधिक हो रहा है। पुरानी वस्तुओं में खून खराबा (ड्रैगन्स ब्लड) लाल रंग के लिए बहुत अच्छा है। वस्तुतः यदि खूनखराबा का घोल (स्पिरिट में) अलग और हलदी का घोल अलग बना लिया जाय तो इन दोनों को न्यूनाधिक मात्रामें मिलानेसे पीलेसे लेकर नारंगी और लाल सब रंग उत्पन्न किये जा सकते हैं।

सेलुलोज़ लैकर—सेलुलोज़ लैकर तथा अन्य नवीन ढंग के लैकरों को बना-बनायाही खरीदना उचित होगा क्योंकि वे पदार्थ जिनसे ये लैकर बनते हैं भारतवर्षमें आसानीसे मिलते नहीं हैं। नमूनेके लिए स्वच्छ (पारदर्शक) लैकर बनाने का नुसखा दिया जाता है।

नाइट्रो सेलुलोज़ (½ सेकंड वाला)	१४० आउंस
डामर गम (मोमरहित)	१२० आउंस
एस्टर गम (मोम रहित)	३० आउंस
डाई ब्यूटिल थैलेट	३० आउंस
पेट्रोल	४ गैलन
मेथिलेटेड स्पिरिट	४ गैलन
एथिल ऐसिटेट	१ गैलन
ब्यूटिल ऐसिटेट	२ गैलन
ब्यूटिल प्रोपियोनेट	½ गैलन

इसे बनानेके लिए पहले नाइट्रो सेलुलोज़ (गन कॉटन) को ब्यूटिल और एथिल ऐसिटेटोंमें घोलना चाहिए। इसमें डामर और एस्टर गमके घोलों को मिलाना चाहिए जिसके बनाने की रीति नीचे बतायी जायगी। फिर धीरे-धीरे स्पिरिट ब्यूटिल प्रोपियोनेट और अंतमें पेट्रोल मिलाना चाहिए। इन वस्तुओं को मिलाते समय यह आवश्यक है कि बहुत धीरे-धीरे इनको ढाला जाय और साथही मिश्रण को ज़ोरसे चलाते रहा जाय।

डामर के घोल के लिए लो

डामर गम	२½ पाउंड
बेंज़ोल	१½ पाइंट
एथिल ऐसिटेट	¼ पाइंट
ऐसिटोन	¼ पाइंट

जब सब घुल जाय तो १½ पाइंट मेथिलेटेड स्पिरिट मिला दो। इस प्रकार एक दूधिया मिश्रण बन जाता है। इसे कई दिन तक चुपचाप पड़ा रहने दो। तब दूधियापन नीचे बैठ जाता है। यह वस्तुतः डामरगमका मोम है। ऊपर से स्वच्छ घोल ले लो। इस स्वच्छ घोल के प्रत्येक गैलन में ३ पाउंड ठोस डामर रहता है। इसलिए जहाँ जहाँ पहले वाले नुसखे में १ पाउंड डामर हो वहाँ इस घोल का ⅓ गैलन लेना चाहिए। एस्टरगम के लिये लो।

एस्टर गम	२ पाउंड
टूलॉल	१½ पाइंड
ब्यूटिल ऐसिटेट	½ पाइंट

इस घोलमें गैलन पीछे ४ पाउंड एस्टर गम रहता है। जहाँ पहले वाले नुसखेमें १ पाउंड एस्टर गम की आवश्यकता पड़े वहाँ इस घोल का ¼ गैलन डालना चाहिए।

रंगीन अपारदर्शक लैकर स्वच्छ लैकरमें तरह-तरहके रंग डाल कर बनाये जाते हैं जैसे टाइटेनियम आक्साइड, टिन ऑक्साइड, कालिख, प्रशियन ब्लू, आदि।

रसायन विज्ञानके संस्थापक

(लेखक— डा० सन्तप्रसाद टंडन)

रसायन विज्ञान की वैज्ञानिक नींव पड़नेके पहले इस दिशामें जो लोग काम करते थे वे आलकीमी (Alchemists) कहलाते हैं। आलकीमियों का मुख्य उद्देश्य पारस पत्थरकी खोज करना तथा उस पदार्थ को मालूम करना था जिसको खानेसे मनुष्य अमर हो सके। अरबमें इस प्रकारके आलकीमी बहुत थे। ये लोग अपनी प्रयोगशाला तथा अपनी सारी बातें गुप्त रखते थे। इन आलकीमियों के हाथों में रसायन विज्ञान बहुत दिनों तक रहा। उन दिनों यद्यपि वैज्ञानिक रीतिसे रसायन का अध्ययन और इस विषय की खोज न हो सकी किन्तु फिर भी कई आकस्मिक खोजें इस प्रकार की हुईं जिनसे रसायन के ज्ञानकी वृद्धि हुई और उसी ज्ञान के द्वारा आगे चल कर रसायन को आलकीमियों के हाथ से छीन कर वैज्ञानिक रूप देने में रासायनिकों को सफलता प्राप्त हुई। रसायन विज्ञान की वैज्ञानिक स्थापना करने में तीन रासायनिकों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं:—जोज़ेफ ब्लैक, जोज़ेफ प्रस्टिले और लावारियेष्ट। इन तीनों ने अपनी विशेष खोजें १८वीं सदी के अन्तिम ५० वर्षों में कीं। इनके पहले रसायन विज्ञान के प्रति लोगों में बड़ा मूढ़ग्राह प्रचलित था। इनके अन्वेषणों और प्रयत्नों के फलस्वरूप रसायन विज्ञान इस मूढ़ ग्राह से निकल कर एक निश्चित विज्ञान के रूप में लोगों के सामने आया और लोगों को मालूम हुआ कि रसायन विज्ञान क्या है और इसके सिद्धान्त क्या हैं। यहाँ पर हम इन्हीं तीनों के जीवन तथा कार्यों का संक्षेपमें उल्लेख करेंगे जिनसे हमें यह मालूम होगा कि रसायन विज्ञान की नींव किस प्रकार पड़ी।

जोज़ेफ़ ब्लैक

जोज़ेफ ब्लैक का जन्म इंगलैंड के बोर्डो (Bordeaux) नामक स्थानमें सन् १७२८ ईसवीमें हुआ था। १२ वर्ष की अवस्था में ये बेलफास्ट (Belfast) के एक स्कूलमें पढ़नेके लिए भरती हुये। इस विद्यालयमें ६ वर्ष पढ़नेके बाद यह ग्लासगो के विश्वविद्यालय में ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिए सन् १७४६में भरती हुये। अपने अध्ययनमें यह सदा दत्तचित रहे। ग्लासगोमें इनकी रुचि प्राकृतिक विज्ञान की ओर हुई और इन्होंने डाक्टरी का अध्ययन डा० कूलेन के शिष्यत्व में प्रारम्भ किया। डा० कूलेन के रसायन सम्बन्धी विचार बहुत सुलझे हुये थे और वह इसे अपने शिष्यों को एक विज्ञानके रूपमें समझाया करते थे। डाक्टरी के लिए रसायन विज्ञान का कितना महत्व है यह बात ब्लैक ने डा० कूलेन के व्याख्यानोंसे जानी और तभीसे वह इस विषयके अध्ययन की ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुये।

ब्लैक के कार्य करने का ढंग बड़ा अच्छा था। वह जिस कार्य को शुरू करते थे उसे नियमपूर्वक करते थे और तब तक उसमें धैर्य तथा संलग्नता से लगे रहते थे जब तक वह पूरा नहीं हो जाता था। किसी रासायनिक खोज को प्रारम्भ करनेके बाद वह तब तक उसे नहीं छोड़ते थे जब तक उसका पूरा फल उन्हें नहीं ज्ञात हो जाता था। इसी विशेष गुणके कारण ब्लैक अपने जीवनमें अच्छी खोजें सफलतापूर्वक कर सके।

सन् १७५० में ब्लैक डाक्टरी का अध्ययन पूरा करने के लिए एडिनबरा विश्वविद्यालय में पहुँचे। यहाँ भी उनके गुरु एक ऐसे सज्जन थे जो विज्ञानके महत्व को समझते थे।

इन्हीं दिनों डाक्टरों का विशेष ध्यान चूना और चूने के पानीके उन गुणों की परीक्षामें लगा हुआ था जिसके कारण ये पदार्थ पथरी रोगमें लाभदायक सिद्ध होते थे। यह मालूम हुआ कि वे सारी दवायें जो पथरी रोगमें लाभदायक थीं क्षारीय (Alkaline) थीं और वे चूने तथा अन्य किसी पदार्थके सहयोगसे बनती थीं। उन दिनों लोगों का ऐसा विश्वास था कि जिस समय चूनेका पत्थर (Limstone) आग पर चूना बनानेके लिए फूँका जाता है उस समय चूना अग्निसे क्षारीय गुण प्राप्त करता है। जब चूना सोडियम कार्बोनेट या पौटेसियम कार्बोनेट के साथ गरम किया जाता है तब चूना इन दोनों पदार्थों को क्षारीय पदार्थोंमें बदल देता है। यह समझा जाता था कि चूना अग्निसे क्षारीय गुण प्राप्त करता है और उस

गुण को सोडियम कार्बोनेट और पोटैसियम कार्बोनेट को प्रदान कर उन्हें क्षारीय कर देता है। ब्लैकने इस 'ताप तत्व' के रूप का, जो चूने को अग्नि से प्राप्त होता है, पता लगाने का निश्चय किया। इस हेतु जब उन्होंने चूनेके पत्थर को फूँका तब उन्हें मालूम हुआ कि चूनेके पत्थर का भार चूना बनने पर घट जाता है। भारकी इस कमी को उन्होंने तोल कर मालूम किया। इसके बाद उन्होंने निश्चित तोलके चूनेके पत्थर को निश्चित भारके नमकके तेज़ाबमें घोला और रासायनिक क्रिया समाप्त होने के बाद सबको पुनः तोला। यहाँ भी तोलमें कमी हुई इस कमी को उस कमीसे जो चूनेके पत्थर को फूँकने से हुई थी मिलान किया और मालूम किया कि दोनों क्रियाओंमें समान भारके चूनेके पत्थर को लेनेसे भारमें सामान कमी होती है। इसी प्रकार मैगनीसियम कार्बोनेटके साथभी प्रयोग किये और पहले की भाँति ही फल प्राप्त हुये। इन फलोंके आधारपर ब्लैक ने चूनेके पत्थर तथा मैगनीसियम कार्बोनेट पर ताप का क्या प्रभाव पड़ता है पूरी तौर से मालूम किया।

सन् १७५५ में ब्लैक ने एक निबन्ध 'मैगनीसिया, चूना तथा अन्य क्षारीय पदार्थ' के नाम से अपनी एम० डी. की उपाधि प्राप्त करनेके लिए दिया। एम० डी. की उपाधि उन्हें मिल गई। इस निबन्धमें उन्होंने अपने प्रयोगों के जो फल दिये हैं वे रासायनिक प्रतिक्रिया के तोल कर फल मालूम करनेके सम्भवतः प्रथम प्रयोग हैं।

ब्लैक ने मैगनीसियम सलफेट और पोटैसियम कार्बोनेट के घोलों के सम्मिलनसे मैगनीसियम कार्बोनेट अपने प्रयोगों के लिए प्राप्त किया। उन्होंने यह दिखलाया कि जब मैगनीसियम कार्बोनेट गरम किया जाता है तो निम्न क्रियायें होती हैं:—

(१) मैगनीसियम कार्बोनेट का भार घट जाता है। १२ भाग गरम करने से ५ भाग रह जाता है।

(२) इस गरम किये हुये मैगनीसियम कार्बोनेट के घोल को चूनेके घोलमें डालनेसे चूने का अवक्षेप नहीं प्राप्त होता जैसा साधारण मैगनीसियम कार्बोनेट से होता है।

इन प्रयोगोंसे ब्लैक ने यह निष्कर्ष निकाला कि मैगनीसियम कार्बोनेटको गरम करनेसे इसमें से एक गैस निकलती है जिसके कारण भारमें कमी आजाती है। मैगनीसियम कार्बोनेटको किसी अम्लके सम्पर्कमें लानेसे भी यही क्रिया होती है और गैस निकलती है। ब्लैक ने अनुमान किया कि सम्भवतः ये दोनों गैसें जो मैगनीसियम कार्बोनेटको गरम करनेसे तथा उसे किसी अम्लमें घोलनेसे प्राप्त होती हैं एक ही हैं। इस अनुमानकी पुष्टिके लिए उन्होंने निम्न प्रयोग किया। १२० ग्रेन मैगनीसियम कार्बोनेटको खूब गरम किया। जब सारी गैस निकल गई तब बचे हुए पदार्थकी तोल की। यह ७० ग्रेन था। इसे गन्धकके तेज़ाबके हल्के घोलमें घोल दिया और फिर इस घोलमें पोटैसियम कार्बोनेटका घोल मिलाया। जो अवक्षेप आया उसे छान कर और सुखाकर तोला। इसका भार लगभग १२० ग्रेन था। इसके गुणोंकी परीक्षा करने पर यह मालूम हुआ कि यह अवक्षेप शुद्ध मैगनीसियम कार्बोनेट था। इस प्रयोगसे ब्लैकके उस विचारकी, कि मैगनीसियम कार्बोनेटको गरम करने या किसी अम्लमें घोलनेसे एक ही प्रकारकी गैस निकलती है, पुष्टि हुई क्योंकि इस विचारके आधार पर ऊपरके प्रयोगमें जो निष्कर्ष आने चाहिए वे ही आये।

बादमें ब्लैक ने मैगनीसियम कार्बोनेटको गरम कर इस गैसको एकत्र भी किया और इसके गुणोंकी परीक्षा की। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि जो गैस हम अपनी साँससे बाहर निकालते हैं तथा जो अंगूर से शराब बनाते समय बाहर निकालती है वह मैगनीसियम कार्बोनेट वाली ही गैस है। ब्लैक ने पुनः यह सिद्ध किया कि चूनेके पत्थरको गरम करनेसे जो गैस निकलती है वह भी यही गैस है और इस क्रियामें जो रासायनिक परिवर्तन होता है वह भी वही है जो मैगनीसियम कार्बोनेटको गरम करने से होता है।

आलकीमियोंकी भाँति ब्लैक ने भी यह स्वीकार किया कि प्रकृतिमें बराबर परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु साथ ही ब्लैक ने बड़े महत्वकी बात यह बतलाई कि प्रकृतिमें होने वाले परिवर्तन सदा किसी नियमके अनुसार होते हैं और ठीक प्रयोगों द्वारा इन नियमोंकी जानकारी मनुष्य कर सकता है।

ब्लैकका ऊपर बतलाया हुआ कार्य इस बातका नमूना है कि वैज्ञानिक खोजें किस भाँति करनी चाहिए। उनकी प्रणाली इस प्रकार थी। कोई वैज्ञानिक निरीक्षण उन्होंने किया। फिर उस निरीक्षणके स्वरूपका ज्ञान उन्होंने प्रयोगों द्वारा प्राप्त किया। इस प्रकार जो निष्कर्ष निकला उसके आधार पर एक सिद्धान्त रखा जिसकी सत्यता की जाँच उन्होंने बाद में अन्य प्रयोगों द्वारा भी मालूम की। यही वास्तवमें खोज करनेकी वैज्ञानिक प्रणाली है। इसी रीतिका अनुकरण करनेके कारण ब्लैक ने अपनी खोजोंके द्वारा रसायन विद्याको एक विज्ञानका स्वरूप प्रदान किया।

मैगनीसिया और चूने पर ब्लैकके निबन्धके छपनेके थोड़े दिनों उपरान्त ग्लासगो विश्वविद्यालयमें एक रसायन के अध्यापकका स्थान रिक्त हुआ और ब्लैक वहाँ नियुक्त हुये। ब्लैक रसायन तथा डाक्टरी विषय पर वहाँ व्याख्यान देते थे। ब्लैक अपने विद्यार्थियोंको बड़े मनसे पढ़ाते थे। उन्होंने अपने विद्यार्थियोंको रसायनकी नवीन बातें तथा खोज करनेकी नवीन वैज्ञानिक विधियाँ बतला कर उनकी रुचि रसायन विज्ञानकी ओर आकर्षित कर रसायन की बड़ी सेवाकी। अध्यापनके कार्यमें अधिक संलग्न रहनेके कारण उनका खोज सम्बन्धी कार्य इन दिनों अधिक नहीं हो सका।

सन् १६५९ से १७६३ तक ब्लैक 'ताप और शीत' पर अपने प्रयोग करते रहे। इन प्रयोगोंके आधार पर उन्होंने ठोसके द्रवित होने तथा तरल पदार्थोंके वाष्पीकरण होनेमें ताप सम्बन्धी जो परिवर्तन होते हैं उन्हें मालूम किया। यदि एक टुकड़ा लकड़ीका, एक काँचका और एक बरफका एक ही सन्दूकमें रख कर ठंढा किया जाय तो हाथमें उठाने पर काँच लकड़ीसे अधिक ठंढा मालूम होगा बरफ काँच तथा लकड़ी दोनोंसे अधिक। ब्लैक के पहले इसकी व्याख्या इस प्रकार की जाती थी कि लकड़ीसे हाथको थोड़ी ठंढक मिलती है, काँचसे कुछ अधिक और बरफसे इन दोनोंसे अधिक। ब्लैक ने इसका वैज्ञानिक कारण मालूम किया। उन्होंने बतलाया कि वास्तवमें ये पदार्थ हाथसे गरमी खींचते हैं जिसके कारण हाथ ठंढा हो जाता है। लकड़ी हाथसे कम गरमी लेती है, काँच उससे अधिक और बरफ इन दोनों से अधिक।

ब्लैक ने अनुमान किया कि जो ताप बरफको द्रवित करनेमें खर्च होता है वह उस बरफसे प्राप्त हुए पानीमें अवश्य मौजूद रहता होगा। उन्होंने प्रयोग द्वारा यह मालूम किया कि एक पौंड बरफको केवल द्रवित करनेमें (जिसमें तापक्रम बिल्कुल न बढ़े) जितना ताप लगता है वह उतने ताप के बराबर है जो एक पौंड पानीको १४०° फ तक गरम करने में खर्च होता है। इस ताप को जो पदार्थ को केवल द्रवित करनेमें लगता है और जिससे तापक्रम में कोई अन्तर नहीं आता, ब्लैक ने गुप्त ताप, (Latent heat) नाम दिया। 'गुप्त ताप (Latent heat) सम्बन्धी अपने प्रयोगोंका पूरा विवरण उन्होंने सन् १७६२ में ग्लासगो विश्वविद्यालय की अंतरंग सभा के सामने व्याख्यान के रूप में दिया था। कुछ दिनोंके बाद अपने शिष्य जेम्स वाट (James Watt) के साथ मिल कर ब्लैक ने वाष्पीकरणका गुप्त ताप भी मालूम किया। ब्लैक ने इन प्रयोगोंके आधार पर लोगोंको बतलाया कि वायुमंडलका तापक्रम नियंत्रित रखनेमें पानीके गुप्त तापका एक विशेष स्थान है।

सन् १७६६में ब्लैक एडिनबरा विश्वविद्यालय में रसायनके प्रोफेसर हुये और मृत्यु, पर्यन्त वह यहीं रहे। यहाँ उन्होंने प्रधानतया अपना ध्यान विद्यार्थियोंको पढ़ाने तथा रसायनमें उन्हें रुचि दिलानेमें लगाया। ब्लैक अपने व्याख्यानको तैयार करनेमें विशेष परिश्रम करते थे जिससे उनके विद्यार्थी रसायन विज्ञानके सिद्धान्तोंको भली भाँति समझ लें।

ब्लैक आजीवन ब्रह्मचारी रहे; उन्होंने अपना विवाह नहीं किया। शरीरसे यह कभी बहुत स्वस्थ नहीं रहे। अपने स्वास्थ्यको ठीक रखनेके लिए अन्त तक वह प्रतिदिन नियमपूर्वक थोड़ा व्यायाम करते रहे। भोजन भी उनका सदा सादा रहा। इसी कारण स्वास्थ्य बहुत अच्छा न रहने पर भी वह काफ़ी आयु तक जीवित रहे।

ब्लैककी मृत्यु २६ नवम्बर सन् १७९९में शान्ति पूर्वक हुई मृत्युके समय वह मेज़के सामने भोजनके लिए बैठे

हुये थे। जिस समय मृत्यु हुई न तो उनके मुँहसे फेन आदि निकला और न मुँह पर कष्टके कोई चिन्ह प्रकट हुये। बड़ी शान्तिपूर्वक वह मृत्युकी गोदमें सो गये।

ब्लैक गंभीर और सहिष्णु स्वभावके थे। दूसरोंके विचारों के लिए उनके हृदय में सदा स्थान रहता था। प्रत्येक प्रकारके लोगोंके बीचमें वह आसानीसे अपनेको मिला लेते थे। गंभीर होते हुये भी वह अपने मित्रोंके साथ हँसी मज़ाकमें पूरा हिस्सा लेते थे; अन्य वैज्ञानिकों की भाँति वह शुष्क नहीं थे। प्रयोगशालासे निकलनेके बाद वह अपने मित्रोंके साथ भिन्न भिन्न विषयोंकी बातें कर मन बहलाव करते थे। उनके मित्रोंमें सभी विषयोंके विद्वान थे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ ऐडम स्मिथ (Adam Smith) और विद्वान दार्शनिक डेविड ह्यूम David Hume) ब्लैकके ख़ास मित्रोंमें से थे। अपने इन मित्रोंके साथ ब्लैक का जीवन सदा सुखमय रहा।

ब्लैक एक आदर्श अध्यापक थे। अपने आदर्श जीवन तथा अपने व्याख्यानों से उन्होंने अपने शिष्योंको बड़ा प्रभावित किया। उनके विद्यार्थी उन्हें अपना सच्चा अभिभावक मानते थे और उनसे बड़ा प्रेम करते थे। व्यावहारिक जीवनके अतिरिक्त विज्ञानके क्षेत्रमें भी अपने समयमें उनका बहुत ऊँचा स्थान था। विज्ञान सम्बन्धी परामर्श करने वैज्ञानिक उनके पास आया करते थे।

अध्यापनकी दृष्टिसे भी ब्लैक एक सफल अध्यापक रहे। अपने व्याख्यानोंको प्रयोगों द्वारा वह अच्छी प्रकार अपने विद्यार्थियोंको समझाते थे।

वह सदा इस बातका ध्यान रखते थे कि जो बात वह कहना चाहते हैं क्रम के अनुसार आये और उसे समझनेमें विद्यार्थियोंको कोई कठिनाई न अनुभव हो। व्यर्थकी बात उनके व्याख्यानोंमें कभी नहीं आने पाती थी।

ब्लैकके पहले लोगोंका खोज करनेका तरीका बिल्कुल गलत था जिसके कारण वे गलत तथ्य पर पहुँचते थे। वे लोग कोई गलत बात लेकर उसके अनुसार कोई गलत सिद्धान्त निर्धारित करते थे और फिर उसे सत्य सिद्ध करनेके लिए बेढंगे तौरसे प्रयोग कर निष्कर्षोंका उलटा अर्थ लगाया करते थे। इस प्रकारके कार्यसे लाभ होनेके बजाय हानि ही अधिक हुई। ब्लैक ने अपने कार्य द्वारा लोगोंको खोज करनेकी वैज्ञानिक रीति बतलाई। उन्होंने बतलाया कि पहले प्रयोग द्वारा किसी सत्य निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए और फिर उसीके आधार पर कोई सिद्धान्त रखना चाहिए। पुन: अन्य प्रयोगों द्वारा उस सिद्धान्तकी सत्यताकी जाँच करनी चाहिए। और यदि वह ठीक निकले तभी मानना चाहिए। ब्लैक ने सदा इस बात पर ज़ोर दिया कि कोई भी सिद्धान्त तब तक सत्य न समझना चाहिए जब तक वह प्रयोगों द्वारा ठीक न सिद्ध किया जा सके। खोज करनेकी इस वैज्ञानिक विधिका अनुसरण करनेके कारण ही उन्होंने स्वयं तथा उनके अनुगामियों ने रसायनके ज्ञानकी बड़ी वृद्धि की।

पदार्थोंके जलने (Combustion) के सम्बन्ध में ब्लैक ने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे मालूम होता है कि उनके ये विचार कितने ठीक और सत्य थे। ब्लैकमें एक और अच्छा गुण था। यदि उन्हें कोई नया विचार अधिक सत्य समझ पड़ता था। तो अपने पुराने विचारको छोड़ कर उस नये विचारको माननेमें उन्हें कोई हिचक नहीं होती थी। लावाशियेकी खोजोंके बाद जब फ्लोजिस्टन (Phlojistion) सिद्धान्तकी सत्यतामें लोग सन्देह करने लगे तब ब्लैक ने इस विषयकी पूरी छान बीनकी और जब उन्हें यह विश्वास होगया कि अधिक बातें फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके बिरुद्ध हैं तथा लावाशियेके विचारों के पक्षमें हैं तो उन्हें फ्लोजिस्टन सिद्धान्तको छोड़ कर लावाशियेके मतको माननेमें देर नहीं लगी।

ब्लैक यद्यपि कोई बहुत बड़े आविष्कारक नहीं थे फिर भी वह एक सफल कार्य करने वाले थे। उन्होंने जो कुछ भी किया उसे सफलतापूर्वक किया। उनके रसायन सम्बन्धी बहुतसे कार्य भविष्यमें आने वाले रासायनिकोंके लिये आधार स्वरूप हुये और वे लोग अधिक महत्वकी खोजें कर सके। इस दृष्टिसे ब्लैकके कार्यकी महत्ता प्रत्येक रासायनिकको स्वीकार करनी पड़ती है। उनकी खोजोंने रसायनको एक वैज्ञानिक नींव प्रदानकी जिसपर भविष्यमें रसायनकी एक सुदृढ़ इमारत खड़ी करनेमें वैज्ञानिकोंको सफलता प्राप्त हुई।

(अपूर्ण)

पेनीसिलिन

लेखक—श्री० हरीप्रसाद शर्मा, एम० एस-सी०

इस युद्ध की संभवतः सबसे आश्चर्यजनक चिकित्सा संबंधी खोज पेनीसिलिन है। वैसे तो इसकी खोज का श्रेय लंदन के एक वैज्ञानिक फ्लेमिंग (Fleming) को है जिसने सबसे प्रथम १९२९ ई०में इस पदार्थ की घोषणा की, परन्तु पेनीसिलिन को व्यावहारिक रूपमें लानेका श्रेय आक्सफोर्डके फ्लोरी (Florey) एवं उनके सहायक वैज्ञानिकों को है जिन्होंने १९४० में इस महत्वपूर्ण कार्य को पूर्ण किया। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि जीवाणु (Bacteria) जहाँ अनेक रोगों का प्रसार करते हैं वहाँ मानवसमाज की सेवा में भी उनका हाथ कम नहीं होता। पेनीसिलिनभी एक प्रकारसे उन्हीं की देन है।

पेनीसिलिनकी प्रथम तय्यारी में शुद्ध वस्तु का परिमाण १-२ प्रतिशतसे अधिक नहीं था। आक्सफोर्ड के वैज्ञानिकोंने इस औषधिके परिमाण बढ़ाने और शुद्धि करने के नवीन उपाय निकाले। अटलांटिक महासागर के दूसरी ओर अमेरिका में भी इस खोज की प्रगति धीमी नहीं रही और प्रचुर मात्रा में उत्पादन करने के उपाय वहींसे निकले। प्रारम्भमें ख़रगोशके साथ प्रयोग करने पर तापवृद्धि और मनुष्य शरीरमें इंजेक्शन देने पर उल्टी, सर दर्द, तथा अन्य ऐसेही लक्षण दिखाई पड़े, यद्यपि बाद की रिपोर्ट इसकी विरोधक हैं।

पेनीसिलिन एक तेज अम्ल है। ईथर (ether) एसीटोन (acetone), जल इत्यादिमें यह घुलता है। यह अम्ल जल शोषक है और जल की न्यूनतम मात्राभी इसका प्रभाव अति क्षीण कर देती है। पूर्णतया शुष्क होने परही यह ठहर सकता है। कैलसियम (Calcium) और सोडियम (Sodium) के लवणके रूपमें इसका व्यवहार होता है। इसके सूत्र (Formula) के बारे में मतभेद हैं। कुछ इसे $C_{14}H_{19}NO_6$ (अथवा $C_{14}H_{17}NO_5,H_2O$) और कुछ $C_6H_{11}O_4N$ (अथवा $C_6H_9O_3N,H_2O$) ठीक मानते हैं।

सलफोनामाइड औषधियोंकी तुलनामें इसका एक ख़ास गुण यह है कि इसका प्रयोग मवाद, रक्त और सिरम (Serum) की उपस्थितिमें चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है जहाँ अन्य औषधियाँ बेकार साबित हो जाती हैं। उत्तरी अफरीका तथा इटालियन रणक्षेत्रोंमें इसके प्रयोगसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु इसका प्रयोग मुख द्वारा न किये जा सकनेके कारण कुछ अड़चन उपस्थित होती है। सलफेथायोजोल (Sulphathiozole) इत्यादि औषधियों से यह कहीं लाभदायक है। परन्तु दुर्भाग्यवश क्षय, प्लेग, इन्फ्लूएँज़ा में इसका प्रयोग सफल नहीं प्रतीत होता।

इसका प्रभाव अन्य औषधियोंसे कहीं स्थायी होता है। रोगाणुओं पर इसका दोहरा प्रभाव पड़ता है। प्रथम तो उनकी वृद्धि में रोक द्वितीय स्वयं उन पर घातक प्रभाव। शरीर में ठीक इसका प्रभाव क्या होता है यह निश्चित नहीं है।

सुज़ाक में इसके प्रयोगसे गहरी सफलता पाई गई है। यद्यपि गर्मी (Syphilis) में इसका प्रभाव पूर्ण रूप से जाँचा न जा सका तो भी इसमें सन्देह नहीं कि पेनीसिलिन का मानव समाजके इन वीभत्स रोगों को दूर करने में एक बड़ा हाथ रहेगा। कुनैन और पेनीसिलिन अभी तक हमें प्रकृति द्वारा ही प्राप्त होते रहे हैं परन्तु वह समय दूर नहीं जब दोनोंही वैज्ञानिक की रसायनशालामें बनाये जा सकेंगे। कुनैन के बननेकी ख़बरें तो अमेरिका से आही चुकी हैं।

भारतमें इसके प्रयोग की सबसे बड़ी अड़चन इसको रेफरीजरेटरमें रखने की है और जब तक इसका कोइ अन्य हल नहीं मिलता तब तक गाँव इत्यादि में इसके लाभसे वंचित रहना पड़ेगा। प्रयोग करनेके प्रायः २४ घंटे पहले यह तय्यार की जाती है, परन्तु कुछ डाक्टरों का कहना है कि बर्फ के बक्सों में यह एक मास तक सुरक्षित रखी जा सकती है।

पेनीसिलिन अभी तो मँहगी है। परन्तु इसके स्थान पर हाइफोलिन (Hypholin), वीवीसिलिन (Vivicillin) इत्यादि तय्यार की जा रही हैं। प्रारम्भकालके दो वर्षों में इसका उत्पादन शून्यसे १२००

पौं० पहुँच गया है और अब तो इस संख्या का भी कई गुना योग पहुँचता है।

यद्यपि इसकी उत्पादन कला मित्र राष्ट्रोंने गुप्त रखने की चेष्टा की परन्तु यदि रिपोर्ट सत्य हैं तो जर्मनीमें भी इसके प्रयोग होनेके समाचार हैं। तीन चार वर्षों में ही इसकी इतनी विख्याति का फैल जाना इसके गुणों को देखते कुछ आश्चर्यजनक नहीं है।

पेनीसिलिनका अधिक मात्रामें उत्पादन

चिकित्सा सम्बन्धी अन्वेषण कार्पोरेशनकी सफलता

लन्दन, १७ मई। १९४२ में बृटेन की सबसे अधिक आवश्यक पांच रासायनिक कंपनियोंने अपने वैज्ञानिक अन्वेषण विभागों को संगठित किया जिसका नाम चिकित्सा संबंधी अन्वेषण कार्पोरेशन रखा गया है। यह कार्पोरेशन, औषध सम्बन्धी अन्वेषण कौंसिल की मार्फत इम्पीरियल कालेज आफ साइन्स एंड टेक्नालोजीके वैज्ञानिक कार्यकर्त्तादलके साथ कार्य करता है तथा बृटेन और संयुक्त राष्ट्रके वैज्ञानिकोंसे भी निकट संबंध रखता है।

यह कार्य, सर्वप्रथम बड़े पैमाने पर पेनीसिलिन का उत्पादन करनेके लिये किया गया था और उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। पिछले वर्षकी अपेक्षा पेनीसिलिनकी उत्पत्ति कई गुना अधिक बढ़ गयी है तथा अब यह सम्भव हो गया है कि इसको नागरिक केन्द्रोंमें वितरण करनेके लिए तथा अस्पतालोंकी मार्फत बांटनेके लिए स्वास्थ्य-विभाग को दिया जा सके।

पेनीसिलिन की अधिक मात्रा अब भी युद्ध कार्यकर्त्ताओंके लिए रखी गयी है परन्तु आशा की जाती है कि वह समय शीघ्र ही आ रहा है जब पेनीसिलिन स्वतंत्रतापूर्वक सब स्थानों पर प्राप्त हो सकेगी। १९४४ में पेनीसिलिन की ९० प्रतिशत उत्पत्ति, बृटेनमें चिकित्सा संबंधी अन्वेषण कार्पोरेशनकी सदस्य कम्पनियों द्वाराही की गयी।

पत्थरमें पाये गये जीवोंके अवशेष

[श्री० मदनलाल जायसवाल, बी० एस-सी०]

भूमिके भीतर पत्थरोंकी परतों में दबी हुई वस्तुएँ पाई गई हैं जो देखने में पेड़-पौधे या जानवरों की हड्डियों से मिलती-जुलती हैं। ये पुरातन कालके जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधोंके अवशेष हैं, जो भूमि में दब गये थे। इन्हींको शिलाजात (Fossil) कहते हैं। इन जीव-जन्तुके अवशेषोंके मिलनेसे भूगर्भशास्त्र की विशेष उन्नति हुई है। इन अवशेषों की उपस्थिति तो मनुष्यको बहुत पहले ही ज्ञात हो गई थी, परन्तु इनका वास्तविक अर्थ बहुत काल पीछे ज्ञात हुआ।

आरम्भ में लोग यह नहीं जानते थे कि शिलाजात पुरातन कालके जीव-जन्तुओंके अवशेष हैं। उनका यह विश्वास था कि यह सब प्रकृति देविके खेल हैं जो कि छोटे-से-छोटे पत्थरोंके बनानेमें भी अपनी कार्य-कुशलता दिखलाती है। जब लोगोंको इस बातका आभास मिला कि ये जीवोंके अवशेष हैं तब बहुत वाद-विवाद हुआ और इसी वाद-विवादसे भूगर्भ-शास्त्र की नींव पड़ी।

शिलाजात जीवों के अवशेष हैं

शिलाजात और जानवरोंके विभिन्न भागकी हड्डियों में समानता बहुतों ने देखी, परन्तु किसीको पूर्ण रूपसे यह विश्वास करने का साहस नहीं हुआ कि शिलाजात वस्तुतः प्राचीन हड्डियाँ ही हैं। इस समय जो शिलाजात मिले थे वे छोटे और टूटे-फूटे थे। यह होते हुए भी पूर्वोक्त वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ कि शिलाजात प्रकृतिके खिलवाड़ हैं अथवा जन्तुओंके अवशेष? स्टेनो (१६६९), जिसने ही भूगर्भ शास्त्रकी नींव डाली, शिलाजातों को वास्तविक जन्तुओंका अवशेष मानता था। उसने शार्क मछलीका जबड़ा देखा था और उसके दाँतों का विशेष रूपसे अध्ययन किया था। उसका कहना था कि ये प्रकृतिके सबसे तीक्ष्ण शस्त्र हैं। बादमें जब समुद्रसे दूर पत्थरमें पायी गयी दर्जनों दंत-पंक्तियाँ उसे मिलीं तब उसे कोई संदेह नहीं रहा कि ये शार्कके दाँत हैं। ये तेज, तिकोनी वस्तुएँ बिलकुल उन

दाँतोंसे मिलती थीं जिन्हें उसने शार्कके जबड़े में देखा था। उसने तर्क किया कि जैसे आदमी का हाथ बिना आदमीके नही हो सकता इसी प्रकार शार्क मछली के दाँत भी बिना शार्क मछलीके नहीं आ सकते।

इससे यह सिद्ध हो गया कि शिलाजात वस्तुतः जन्तुओंके अवशेष हैं। परन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण तो यह बात थी कि शिलाजात परत पड़े हुये चट्टानो में पाये जाते हैं। इन चट्टानों की बनावट ऐसी है कि देखने में जान पड़ता है कि पत्थर की परतें एकके ऊपर एक रक्खी हैं। जिन चट्टानों में शिलाजात पाये जाते हैं उनकी परतें अधिकतर समतल हैं। इससे स्टेनोको विश्वास हो गया कि ये चट्टानें पानीके अन्दर बनी होंगी और जब एक परत जम गयी होगी तब दूसरी परत उसके ऊपर बनी होगी। यह सीधी-सादी बात डेढ़ शताब्दि बाद भूगर्भ शास्त्रके मुख्य सिद्धान्तोंमें गिनी जाने लगी।

परन्तु प्रत्येक नये निर्णय पर नये प्रश्न उठ खड़े होते हैं। शिलाजात और परत पड़े हुए चट्टानों की बनावट की खोजके बाद यह प्रश्न उठा कि ये चट्टानें, जो इनके अन्दर पाये शिलाजातके अनुसार पानीके भीतर होनी चाहिये थीं, पानीसे बाहर इतनी ऊँचे पर कैसे पहुँचीं? दूसरे शब्दोंमें, शार्कके दाँत शार्क-मछलीके जबड़े में होते हैं, इसलिये इन्हें पानी में रहना चाहिये था न कि ऊँचे पहाड़ों की चट्टानों में।

इस प्रश्न के तीन उत्तर मिले। एक तो उनसे जो भूगर्भ के इस नये विज्ञान में बिलकुल विश्वास नहीं करते थे। उनका कहना था कि ऐसी असंभव बातों की खोजसे भला क्या परिणाम निकल सकता है। दूसरा उनसे जिन्हें यह प्रश्न बहुत सरल लगता था। उनका कहना था कि बाद में भूचालसे पानीके अन्दर की भूमि ऊपर आ गई होगी—यह मत आधुनिक भूगर्भ शास्त्रसे अधिक भिन्न नहीं है। तीसरा उत्तर था धर्म ग्रंथ।

बाढ़

बाइबिल में जो बाढ़की कल्पना की गई है उससे इन प्रश्नोंका उत्तर मिल जाता है। पृथ्वी पर इतने मरे हुए जानवरों की उपस्थिति और सूखी भूमि पर परतदार चट्टानों का होना, जो कि स्टेनोके अनुसार पानीके भीतर बनी होंगी, ये दोनों समस्याएँ बाढ़ की कल्पनासे हल हो जाती हैं, क्योंकि बाइबिल में लिखा है कि पानी ऊँचे पहाड़ोंसे भी ऊँचा बढ़ गया था और सब जानवर मर गये थे, केवल वही बचे जो हजरत नूह (नोआ) की नाव में थे।

यदि बाढ़ की कल्पना का समर्थन बाइबिल ने न भी किया होता तो भी कई भूगर्भ शास्त्रवेत्ता इसका पक्ष लेते। यही सब से स्पष्ट सिद्धांत था जो शिलाजातकी उपस्थिति का कारणभी बतलाता था और बड़े-बड़े भूचालों की कल्पना भी नहीं करता था। फिर धर्मग्रंथ होने के कारण बाइबिल के विषयमें तर्क नहीं किया जा सकता, इसलिये लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि इतनी बड़ी बाढ़का आना वस्तुतः असंभव है या नहीं।

एक के ऊपर एक पड़ी दो परतोंमें बड़ी विभिन्नता देख कर धीरे-धीरे लोगों का यह विचार हुआ कि एकही बाढ़के कारण सब परत न बने होंगे। ध्यान देने पर उन्हें यह मालूम हुआ कि एक बात पर तो उन्होंने एक शताब्दि से विचार ही नहीं किया था। प्रत्येक परत के जम जाने के बाद उसके ऊपर की परत जमी होगी, इसलिये उनका काल भिन्न-भिन्न है, और जब इन परतों की मोटाई बहुत अधिक हो जाती है, जैसे कालरेडो की घाटी में है, तब ऊपर और नीचे की परतों के बननेके समय में बहुत अंतर रहा होगा। इसके अतिरिक्त, यह भी देखा गया है कि परतें कभी मुड़ी हुई और कभी तिरछी या खड़ी रहती हैं और कभी-कभी ऊपर चल कर समतल चट्टानों तक पहुँच कर समाप्त हो जाती हैं।

पहले तो यह समझा गया कि यह मान लेने से कि पृथ्वी पर कई प्रलयकारी बाढ़ें आई होंगी, सब कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। परंतु आवश्यक बाढ़ों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती ही गई, और अंतमें पैंतालीसवें बाढ़के बाद लोगों ने समझ लिया कि यह संख्या छियालीस परभी जाकर नहीं रुकेगी। तब शिलाजात की समस्या पहले ही के समान रहस्यमयी हो गयी।

शिलाजात का महत्व

पूर्वोक्त समस्या का उत्तर अंतमें मिलही गया और साथमें हमें पृथ्वी के इतिहास का ज्ञान भी हुआ। यह

इतिहास हमें परतदार चट्टानोंमें मिला है। इन पत्थर की परतों का जो इतिहास है वही पृथ्वी का भी इतिहास है। आज हमारे सम्मुख यह इतिहास सुव्यवस्थित रूपमें रक्खा हुआ मिलता है परंतु डेढ़ शताब्दि पहले इन परतों के इतिहास के पन्ने तितर-बितर थे। अठारहवीं शताब्दि के भूगर्भ शास्त्र ज्ञाता इन पन्नों को सिलसिलेवार लगाने की चेष्टा कर रहे थे।

पृथ्वीके कुछ भागोंमें पत्थर की समतल परतें एक के ऊपर एक पाई गईं। स्टेनो के अनुसार जो परत जितनी अधिक गहराई पर होगी वह उतनी ही पहले बनी रही होगी; दूसरे शब्दों में, उसकी आयु उतनी ही अधिक होगी। केवल यही एक बात थी जिससे यह जाना जा सकता था कि कौन परत कितनी पुरानी है। भिन्न-भिन्न परतों की अच्छी तरह जाँच की गई और गहराई के अनुसार प्रत्येक काल निश्चित किया गया। इस प्रकार धीरे-धीरे अध्ययन से ऐसे सुव्यवस्थित परतों की संख्या बढ़ती गई जिनके प्रत्येक स्तर की सापेक्ष आयु ज्ञात थी। यह स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी की सब परतदार चट्टानों को उनकी आयु के हिसाब से क्रमानुसार लगाया जा सकता है। परंतु यद्यपि इस क्रमिक पद्धतिसे एक ही स्थलके विभिन्न स्तरों की आयुओं का अनुमान लग जाता था, तो भी विभिन्न प्रदेशों के प्रस्तरों की आयुओं को संबद्ध करने का कोई उपाय नहीं मिल सका।

यह आवश्यक था कि कोई ऐसा उपाय रहे जिससे दूर-दूरके परतों का मिलान हो सके। कोई ऐसा उपाय रहे जिससे किसी अज्ञात चट्टान की एक परतको देखकर बतलाया जा सके कि वह किस कालकी चट्टान है, और उसे परतोंकी क्रमिक पद्धतिमें किस स्थान पर रक्खा जाय। उसकी आयुके अनुमानके लिए लोग परतोंका ब्योरेवार अध्ययन करते थे। यह देखते थे कि परत कितनी मोटी है, किस रंगकी है, किन अवयवोंसे बनी है, कितनी कड़ी है आदि। ये बातें किसी दूरस्थ परतोंके अध्ययन करनेमें सहायक होती थीं। परन्तु फिर भी ये चिन्ह सर्वथा संतोषजनक न थे, क्योंकि परतें अक्सर या तो भिन्न प्रकारकी चट्टानोंमें परिवर्तित हो जाती थीं या एकाएक समाप्त हो जाती थीं।

इन सब खोजोंसे जिसके लिये कई वैज्ञानिकोंने अपना समस्त जीवन अर्पण कर दिया, हमें परतोंके इतिहासका कुछ कुछ ज्ञान हुआ। परन्तु हमें इस को सम्बद्ध करनेकी विधि नहीं मालूम हुई। अठारहवीं शताब्दिके अन्तमें इंगलैंडमें भूमिके अन्दरकी कई गुफाओं और सुरंगों की खुदाई हुई। भूगर्भ शास्त्रके लिए यह बड़ा सुन्दर सुयोग था। विलियम स्मिथ नामक एक वैज्ञानिकने इन खुदे हुए स्थानोंमें जाकर बहुत छान-बीन की और तब उसने एक आश्चर्यजनक सिद्धान्त भूगर्भ शास्त्रियोंके सामने रक्खा।

सरल भाषा में उसका सिद्धान्त यह है: "शिलाजात बहुत दिनोंसे इकट्ठा किये गये हैं और उनका अध्ययन भी हुआ है। अब तक वे एक आश्चर्यजनक वस्तु की तरह देखे गये हैं। परन्तु इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया कि प्रकृति ने इन्हें कितने क्रम और व्यवस्थासे रचा है और पत्थरकी प्रत्येक परत विशेष जातिके शिलाजात द्वारा पहचानी जा सकती है।" अर्थात्, प्रत्येक पत्थर की परत में भिन्न-भिन्न प्रकारके शिलाजात पाये जाते हैं, और विभिन्न स्तरोंका काल उनके अन्दर पाये गये शिलाजातोंसे लगाया जा सकता है।

इस सिद्धान्तकी व्यापकता निम्नलिखित ऐतिहासिक घटनासे स्पष्ट हो जायगी। एक अँगरेज़ भूगर्भ शास्त्र वेत्ता अमेरिकामें नियाग्रा जल-प्रपात देखने गया। वहाँकी चट्टानोंको देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे इंगलैण्डकी चट्टानोंसे बहुत मिलती थीं। परन्तु उन दोनों के बीचकी दूरी इतनी अधिक थी कि वह यह सोचही नहीं सकता था कि दोनों चट्टानें एक ही विधिसे बनी हैं। इसलिए उसने इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया। बादमें एक दूसरे भूगर्भशास्त्रवेत्ता ने उसी भूमिको देखा। स्मिथ के सिद्धांत ने उस पर बहुत प्रभाव डाला था, इसलिये उसने पत्थर की जाँच की, और जाँच करने पर उसे इस पत्थरमें वही सीप और घोंघे मिले जो इंग्लैण्डवाली चट्टान में मिले थे। यह चट्टान उसी पत्थर की बनी थी जिस पत्थर की इंगलैंड वाली चट्टान थी, और दोनोंके बननेका समय एक ही रहा होगा। इस प्रकार शिलाजात द्वारा दूर दूरके परतों की पहचान सुगम हो सकी और परतोंका इतिहास सुव्यवस्थित रूपमें रक्खा जा सका।

तारे क्या हैं*

[डाक्टर गोरखप्रसाद]

देहाती — जय राम जी को प्रोफेसर साहब !

प्रोफेसर — जय राम जी की, भाई, जय राम जी की !

दे०—आपने बड़ी कृपा की जो छुट्टी में गांव पर आ गये। आप तो यूनिवर्सिटी में ज्योतिष पढ़ाते हैं न।

प्रो०— हाँ, मैं ज्योतिष और गणित दोनों पढ़ाता हूँ।

दे०—क्यों प्रोफेसर साहब, क्या ज्योतिष की बातें हम लोग भी कुछ समझ सकते हैं ?

प्रो०—हाँ-हाँ, बहुत सी बातें ऐसी हैं जिन्हें सभी अच्छी तरह समझ सकते हैं।

दे०—अच्छा तो यह तो बताइये कि तारे क्या हैं ?

प्रो०—जैसे हमारा सूरज आग का गोला है वैसे ही तारे भी आगके गोले हैं।

दे०—सूरज से तो हमको बहुत गरमी मिलती है। रोशनी भी बहुत मिलती है। सूरज बड़ा सा भी दिखलाई देता है।

प्रो०—तारोंके छोटे और फीके दिखलाई पड़नेका कारण यह है कि वे हमसे बहुत दूर हैं।

दे०—तो क्या सूरज दूर नहीं है। एक स्कूली लड़का हमको एक दिन सुना रहा था कि अगर हम तेज हवाई जहाज पर चढ़कर चलें तो सूरज तक पहुँचनेमें कोई ५० वर्ष लग जाते हैं। "तो क्या सूरज बहुत दूर नहीं है।

प्रो०—यह सच है, कि सूरज हमसे बहुत दूर है। लेकिन तारे उससे कहीं अधिक दूर हैं। जैसे यहाँ से पड़ोस वाले गाँव की दूरी और कलकत्तेकी दूरीमें अन्तर है वैसे ही सूरज और तारों की दूरीमें अंतर है।

दे०—आखिर तारे कितनी दूर पर हैं ? क्या कुछ अंदाज नहीं कि वे कितने मील पर हैं।

प्रो०—तुलसीदास जी ने अधिक धन बतलाने के लिये कहा था "अरब अरब लो द्रव्य हैं" परन्तु यदि मीलों में तारोंकी दूरी नापी जाय तो अरब खरब मीलसे भी उनकी दूरी अधिक आती है। रोशनी एक सेकन्डमें लगभग २ लाख मील दूर तक चली जाती है। रोशनीसे तेज चलने वाली कोई चीज दुनियामें है ही नहीं तो भी पास वाले तारेसे आनेमें रोशनी को करीब ३ वर्ष लग जाते हैं। ध्रुवतारेको तो तुम पहचानते होगे। वहाँसे रोशनीके आनेमें १०० से भी अधिक वर्ष लगते हैं।

दे०—तब तो तारे सचमुच ही बहुत दूर हैं। अच्छा सूरज से रोशनी आनेमें कितना समय लगता है।

प्रो०—सूरज से रोशनी आनेमें कुल आठ मिनट लगता है।

दे०—बस-अच्छा तो हम यह समझ गये कि तारे सूरज से कई गुनी अधिक दूरी पर हैं और उसीसे वे छोटे और फीके जान पड़ते हैं लेकिन असलमें वे सूरज की तरह बड़े और उसी तरह खूब गरम हैं।

प्रो०—ठीक। सचमुच बहुतसे तारे तो सूरजसे भी बड़े हैं और उससे बहुत अधिक गरम भी हैं।

दे०—बड़े अचरजकी बात है।

प्रो०—हाँ आकाशमें ज्येष्ठा नामक तारा है जिसके रंगमें जरा सी लाली दिखलाई पड़ती है। यदि उस तारे को किसी तरह लाकर सूरजकी बगलमें खड़ा कर दिया जाता तो हमारा सूरज उसके आगे बौना सा जान पड़ता।

दे०—तो क्या सभी तारे हमारे सूरजसे बड़े हैं ?

प्रो०—नहीं, बात ऐसी नहीं। कुछ तारे बहुत ही बड़े होते हैं। सायंस वालों ने इनका नाम दैत्याकार तारा रक्खा है। अंग्रेजी में इन्हें giant कहते हैं। परन्तु बहुतसे तारे इनसे बहुत छोटे होते हैं। इनको अंग्रेजीमें dwarf कहते हैं और dwarf का अर्थ है "बौना"। तारोंकी असली चमकमें भी बहुत फर्क है। यदि सब तारे एक ही दूरी पर होते तो कोई तारे तो हमारे सूर्यसे बहुत ही अधिक चमकीले दिखलाई पड़ते, कोई बहुत कम। कुछ तारे तो

*ऑल इंडिया रेडियोकी सौजन्यतासे प्राप्त। यह सम्भाषण लखनऊ रेडियो से २४ मई १९४४ को ब्रॉडकास्ट किया गया था।

इतने कम चमकीले हैं कि वे बस दिखलाई भर ही जाते हैं।

दे०—ऐसा क्यों ?

प्रो०—बात ऐसी जान पड़ता है कि तारे काफी गरम नहीं हैं। शायद यह तारे धीरे धीरे ठंढे हो गये हैं और अब इनकी चमक मिटने ही वाली है।

दे०—इससे तो जान पड़ता है कि एक दिन हमारा सूरज भी ठंढा हो जायगा।

प्रो०—ऐसा हो तो कोई अचरजकी बात न होगी। लेकिन पिछले दो हजार वर्षोंमें सूरजकी गरमी या चमक कुछ घटी नहीं है।

दे०—इसका कोई सबूत भी है। या केवल अन्दाज ही अन्दाज है।

प्रो०—सबूत है क्यों नहीं। सायंस वाले बिना सबूतके कोई बात नहीं मानते। सबूत यह है। कुछ पेड़ों को काट कर देखनेसे पता चलता है कि हर साल पुरानी लकड़ी पर नयी लकड़ी की एक परत जम जानेसे पेड़का तना मोटा होता है। कुछ पेड़ोंमें ये परतें बहुत साफ दिखाई पड़ती है। इन परतोंके गिननेसे पता चलता है कि पेड़ कितनी उमरके हैं। कुछ पेड़ दो हजार वर्षकी उमरके मिले हैं और उनकी परतोंसे पता चलता है कि आजसे दो हजार साल पहले भी एक वर्षमें पेड़ उतना ही बढ़ते-मुटाते थे जितना इन दिनों। इससे साफ पता चलता है कि उस समय भी सूरजसे उतनी ही गरमी आती थी जितनी इस समय और उस जमानेमें भी पानी करीब उतना ही बरसता था जितना इस समय।

दे०—क्या खूब। पेड़ देख कर सूरजके दो हजार बरस पहलेका हाल मालूम हो गया। अच्छा यह तो कहिये कि आपने जो बतलाया कि ध्रुवतारेसे रोशनी हमारे पास तीस वर्षमें आती है वह भी नापी गई होगी कि केवल अन्दाज ही लगाया गया है।

प्रो०—अन्दाज नहीं लगाया गया है; दूरी नापी गयी है न।

दे०—कैसे ! इतनी दूर भला कैसे कोई पहुँच सकता है।

प्रो०—तारों की दूरी वहां जाकर नहीं नापी गई है। जैसे खेतों का सरवे याने नाप करने वाले बिना दूरके पेड़ तक गये ही उनकी दूरी नाप सकते हैं उसी तरह सायंस वाले भी तारोंकी दूरी नापते हैं। फर्क इतना ही है कि सरवे करने वाले की दुरबीन आठ दस इंच लम्बी होती है, ज्योतिषियोंकी तीस चालीस फुटकी। लेकिन तरीका बिलकुल एक-सा है। इनसे पास वाले तारोंकी दूरी नाप ली जाती है। तब चमक देखकर दूर वाले तारोंकी दूरीका भी हिसाब लगा लिया जाता है।

दे०—यह बात तो हम अब समझ गये कि तारे असल में बहुत गर्म और बहुत चमकीले हैं और वे बहुत दूर हैं लेकिन क्या तारोंका नाम भी रक्खा गया है ? वे तो अनगिनती जान पड़ते हैं।

प्रो०—अनगिनती क्यों, गिनती में तो तारे बहुत कम हैं। अगर तुम किसी तीन तारोंको चुन लो और उनसे बनी तिकोनी शकलके भीतरके तारोंको गिनो तो तुरन्त पता चलेगा कि तारे गिने जा सकते हैं। तारोंको एक साथ देखकर लोग हिम्मत हार जाते हैं और समझते हैं कि उनका गिनना मुमकिन नहीं है, लेकिन यदि एक सिलसिले से गिना जाय तो बहुत दिक्कत न होगी।

दे०—तो आखिर कितने तारे होंगे ?

प्रो०—जितने तारे आसमान में हमे दिखलाई पड़ते हैं गिनती में वे तीन हज़ारसे कुछ कम ही रहते हैं। लेकिन एक बार में हमें आधा आसमान ही दिखाई देता है। इसलिये अगर सब तारों की गिनती पूछी जाय तो कहना चाहिये कि आसमान में करीब ६ हज़ार तारे ऐसे हैं जो हमें दिखलाई पड़ सकते हैं।

दे०—तो क्या विश्व में कुल इतने ही तारे हैं ?

प्रो०—नहीं ६ हज़ार तारे इतने चमकीले हैं कि हमें दिखलाई पड़ सकते हैं, लेकिन करोड़ों तारे ऐसे हैं कि वे हमको यों नहीं दिखलाई पड़ते, दुरबीन लगाने पर ही दिखलाई पड़ते हैं।

दे०—तो फिर इन सब का नाम कैसे रक्खा गया है ?

प्रो०—नाम तो कुल सौ सवा सौ तारों का ही रक्खा गया है। बाक़ी सब के समूह का नाम और नंबर बता कर काम चलाया जाता है।

दे०—समूह क्या?

प्रो०—तारों को कई टोलियों या समूहों में बाँट दिया गया है। जैसे फौज में गढ़वाल राइफल्स या राजपूत रेजिमेंट या गोरखा रेजिमेंट आदि अलग अलग गरोह या समूह मान लिये गये हैं उसी तरह तारों को भी करीब अस्सी समूहों में बाँट दिया गया है। कुछ का नाम तो तुमने ज़रूर सुना होगा। मेष, वृष, मिथुन, कर्क आदि ये तारा समूह हैं।

दे०—समूह में किसी एक तारे को बतलाना हो तो क्या किया जायगा?

प्रो०—चमकीले तारों को अक्षरों से सूचित किया जाता है और फीके तारों को एक दो तीन वगैरह गिनती से। तारों की छपी सूची बिकती है जिसमें हर एक तारे का नम्बर, उसका स्थान और उसकी चमक का पूरा ब्योरा दिया रहता है।

दे०—तारों के नाम की बात तो समझ में आ गयी, लेकिन हमारे दिहात के पंडित लोग मेष, वृष आदि राशें गिनते हैं या अश्विनी भरणी आदि नक्षत्र गिनते हैं वह सब क्या है?

प्रो०—सूरज़ तारों के बीच चलता रहता है। एक चक्कर एक साल में वह पूरा करता है। उसके रास्ते में जो तारा समूह पड़ते हैं उन्हीं का नाम मेष, वृष आदि है।

दे०—और अश्विनी भरणी आदि नक्षत्र क्या हैं?

प्रो०—चंद्रमा भी तारों के बीच चलता है। वह तारों के हिसाब से एक चक्कर करीब २७ दिन में लगा लेता है। इसलिये पुराने ज्योतिषियों ने चन्द्रमा के रास्ते में पड़ने वाले तारों को २७ छोटे समूहों में बांट कर उनका अश्विनी, भरणी आदि नाम रख दिया था। वह प्रथा अब भी चली आ रही है। जब हमारे पंडित कहते हैं कि आज अश्विनी नक्षत्र है तब मतलब यह होता है कि चन्द्रमा उस तारा समूह में है जिसका नाम अश्विनी है। जब वे कहते हैं कि सूर्य मेष राशि में है तब उनका अर्थ यह होता है कि सूर्य उस तारा समूह में है जिसका नाम मेष है। जब पंडित कहते हैं कि बच्चा मेष लग्न में पैदा हुआ तो अभिप्राय यह होता है कि मेष नाम का तारा-समूह जब उदय हो रहा था, याने जमीन के नीचे से आसमान में आता दिखलाई पड़ रहा था, तब बच्चा पैदा हुआ।

दे०—तब तो लग्न, नक्षत्र और राशि से समय का ज्ञान होता है।

प्रो०—हाँ। यदि लग्न मालूम हो तो पता चलता है कि समय क्या था। नक्षत्र और राशि मालूम हो तो पता चलता है कि तिथि और महीना कौन से थे। सच्ची बात तो यह है कि अगर किसी की जन्मकुन्डली मालूम हो तो ज्योतिषी ठीक ठीक बतला सकता है कि वह किस सन्, किस महीने, किस दिन और किस घड़ी जन्मा था।

दे०—यह सब तो समझ लिया, लेकिन अब भी यह नहीं मालूम है कि विवाह आदिके समय क्यों राशि, नक्षत्र आदिका हिसाब लगाया जाता है।

प्रो०—बात यह है कि सनातन धर्मियोंका विश्वास है कि विवाह आदि उसी समय करना चाहिए जब सूर्य चन्द्रमा और ग्रह विशेष विशेष स्थानों में हों।

दे०—इस पर विज्ञान की क्या सम्मति है। शुभ अशुभ लग्न में विश्वास करना चाहिये या नहीं।

प्रो०—इस बारेमें कुछ कहना कठिन है। क्योंकि अधिकांश लोगों ने इसे धर्मका विषय बना रक्खा है। परन्तु वैज्ञानिक लोग शुभ अशुभका विचार नहीं मानते। हिन्दू धर्म वालोंको छोड़ कर अन्य धर्म वाले इसे प्रायः नहीं मानते। आर्यसमाजी लोग भी इसे नहीं मानते क्योंकि वेदोंके समयमें, जहाँ तक इतिहास से पता चलता है, आजकलकी तरह फलित ज्योतिष की बातों पर विचार नहीं होता था।

दे०—खैर इसे जाने दीजिये! यह तो बताइये कि ग्रह क्या हैं?

प्रो०—ग्रह हमारी पृथ्वीकी तरह सूर्यका चक्कर लगाया करते हैं। वे इतने गरम नहीं है कि अपनी चमकसे

[शेष ७० पृष्ठ पर]

युद्ध कालमें विज्ञानकी उन्नति*

युद्धकालमें आवश्यकताओंसे प्रेरित होकर लड़ने वाले देशों—विशेषकर जर्मनी, इंगलैण्ड और अमेरिका—के वैज्ञानिकोंने तरह तरह की उपयोगी खोजें की हैं। इन सब नई खोजोंका पूरा हाल तो अभी तक मालूम नहीं हो पाया है, किन्तु जो कुछ मालूम हुआ है उसका कुछ थोड़ा सा हाल ही यहाँ दिया जाता है। जापान की लड़ाई समाप्त होनेके बाद सम्भव है हमें इस युद्ध-कालमें हुई कुछ अन्य आश्चर्यजनक खोजों का हाल मालूम हो। इस युद्ध-कालमें कुछ ऐसी खोजें हुई हैं जिनको देखकर अब यह नही कहा जा सकता कि मनुष्यके लिए कोई भी चीज़ मालूम करना सम्भव नहीं है। जिन बातोंको पहले सोचकर ही लोग मनुष्योंके लिए असम्भव कह देते थे वे ही वैज्ञानिकोंने इस युद्ध में सम्भव कर दिखा दी हैं।

रेडार (Radar)

इस युद्धकी सम्भवत: सबसे बड़ी खोज रेडियो द्वारा शत्रुके उड़ते हुये हवाई जहाज तथा पानीके भीतर चलने वाली पनडुब्बीके स्थानोंकी ठीक-ठीक स्थिति मालूम करना है। इसके लिए जिस यंत्रका आविष्कार किया गया है उसे रेडार (Radar) नाम दिया गया है। जर्मनोंके हवाई हमले तथा बिना चालकके बममारोंके (Robot bombs) हमलोंसे अंगरेज़ इसी खोज की सहायताके कारण अपनी रक्षा कर सके थे।

प्लास्टिक पदार्थ (Plastics)

जिन दिनों अंग्रेज वैज्ञानिक रेडारके आविष्कारमें लगे हुये थे उन्हीं दिनों इंगलैण्ड की इम्पीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज (I. C. I.) के वैज्ञानिक एक नये प्लास्टिक पदार्थ को तैयार करने मे जुटे हुये थे जिसका नाम पालीथीन (Polythene) है। पालीथीन इथाइलीन (Ethylene) का एक संगठित यौगिक है (Polymer)। बहुत से इथाइलीन अणु—२०० या उससे भी अधिक—ऊँचे दबाव तथा ऊँचे तापक्रम पर किसी उत्प्रेरक (Catalyst) के वर्तमान रहने पर रासायनिक रूप से संगठित होकर पालीथीन बनाते हैं। इस पदार्थ की विशेषता उसके वैद्युतिक गुण, उसकी दृढ़ता, लचीलापन और साथही उसके हलकेपन और उसपर पानीका कोई असर न होने में है। इसका उपयोग टेलीफोन, टेलीग्राफ़ और केबिलमें और विशेषकर ऊँची झूलन संख्या (High frequency) के विद्युत यन्त्रों में बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। बिना इस पदार्थ को मालूम किये रेडार का बड़े पैमाने में उपयोग सफलतापूर्वक नहीं हो सकता था।

दूसरा प्लास्टिक पदार्थ, जो इस युद्धकाल में ही बना है और उपयोगी सिद्ध हुआ है, 'सिलीकोन' (Silicone) है। 'सिलीकोन' एक रेज़िन (Resin) है। रेज़िन बनाने के लिए साधारणतः इस्तेमाल होने वाले कुछ कार्बनिक पदार्थोंके कुछ कार्बन परमाणुओं के स्थान में सिलीकन के परमाणु रासायनिक रीति द्वारा कर देने से सिलीकोन बनता है। सिलीकोन प्रधानतया रोधन वार्निश (Insulating varnish) के कार्यों के लिए इस्तेमाल होता है और बहुत ही उत्तम रोधक (Insulator) है। इसके प्रयोग से विद्युत-सम्बन्धी कारोबारमें काफ़ी उन्नति होने की संभावना है। रुई, कागज, और काँच की सतह पर केवल सिलीकोन की वार्निश लगा देने से ही इन पदार्थों पर एक ऐसी पर्त आ जाती है जिस पर पानी का कोई असर नहीं होता और जो धोने व रगड़नेसे भी आसानीसे नहीं छूटती। हवाई जहाजों के रेडियोमें

* सर शान्ति स्वरूप भटनागरके अखिल भारतीय रेडियो, देहलीसे दिये गये एक भाषणके आधार पर।

पोर्सिलेन के बने रोधकों पर सिलीकोन की वार्निश कर देनेसे वह अधिक उपयोगी हो जाते हैं, क्योंकि इन पर जल-कण के इकट्ठा हो जाने पर भी यह विद्युत् चालक नहीं हो पाते। सिलीकोन को रबरके समान पदार्थों में भी बदल दिया जाता है। इस रूपमें यह सर्चलाइट आदिमें इस्तेमाल किया जाता है। सिलीकोन की एक विशेषता यह भी है कि इस पर ऊँचे ताप का शीघ्र असर नहीं होता। अतः सर्चलाइट आदि ऊँचे तापवाले यंत्रोंमें, जहाँ ताप की अधिकता के कारण अन्य रोधक नष्ट हो जाते हैं, सिलीकोनके रोधक बिना नष्ट हुए ठीक कार्य करते रहते हैं।

कृमि-संहारक पदार्थ (Insecticide)

जापानियों से उष्ण कटिबन्ध के घने जंगलोंमें युद्ध करनेके कारण अंग्रेजों को मच्छरों तथा चीलरों आदि रोग फैलानेवाले कीड़ोंसे अपने सिपाहियों की रक्षा करनेके लिए अच्छे कृमि-संहारक पदार्थों की आवश्यकता अनुभव हुई। इस आवश्यकता की पूर्तिके लिए प्रसिद्ध कृमि-संहारक डी. डी. टी. (D.D.T.) बड़े पैमाने पर सफलतापूर्वक तैयार किया गया। इसके अतिरिक्त अन्य कृमि-संहारक रासायनिक जैसे गैम्मेक्सेन (Gammexane) और फ़िनोज़िटॉल (Phenoxetol) भी इसी बीचमें तैयार किए गए।

डी. डी. टी. का इस लड़ाई में बड़े पैमाने पर व्यवहार प्रथम बार १६४३ में नेपेल्स में उस समय किया गया जब कि वहाँ की सारी आबादीके टाइफस द्वारा नष्ट होने का डर हो रहा था। १० फी सदी डी. डी. टी. को पाउडरके साथ मिला कर इस्तेमाल करनेसे तीन सप्ताहके भीतरही टाइफस फैलाने वाले चीलरों का विनाश हो गया और इस प्रकार यह रोग उस समय वशमें लाया गया। आजकल सिपाहियों को जो कमीजें वर्दीके लिए दी जाती हैं उनमें डी. डी. टी. भिदा रहता है। यह कमीज़ें दो-तीन बार धुलने परभी कमसे कम दो महीनों तक चीलरोंसे सिपाहियोंका बचाव कर सकती है। डी. डी. टी. को 'पिरीथ्रम' (Pyrithrym) के साथ मिलाकर तरलके रूपमें मच्छरों को मारने के लिए पिचकारी द्वारा इस्तेमाल किया जाता है। इसको पैराफिन तेलमें मिलाकर स्थिर पानी तथा कीचड़ के स्थानोंमें, जहाँ मच्छर के अंडे-बच्चे पलते हैं, डाला जाता है। इससे मच्छरोंके अंडे-बच्चे मर जाते हैं और मच्छर बढ़ने नहीं पाते। कुमारिन रेज़िन (Coumarin Resin) के साथ मिला कर डी. डी. टी. मक्खियों को मारने में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

गैम्मेक्सेन नामक कृमिसंहारक तो मार्च १६४५ में ही आई. सी. ई. द्वारा तैयार हुआ है। गैम्मेक्सेन के गुणों को देखकर यह आशा की जाती है कि यह डी. डी. टी की अपेक्षा अधिक तेज कृमिसंहारक सिद्ध होगा। यह बेनज़ीन-हेक्साक्लोराइड (Benzene hexachloride) का एक समरूप (Isomer) है। जनसाधारण में यह ६६६ के नाम से प्रसिद्ध है।

पेटेन्ट दवाइयाँ—

इस युद्ध की एक बड़ी खोज पेनीसिलिन (Penicilin) भी है। कुछ फफूँदियों में जीवाणुओं का आक्रमण होने पर उनको नष्ट करने के लिए फफूँदियोंसे एक रस स्रवित होता है। इसी रसमें पेनीसिलिन रहता है और उसी से तैयार किया जाता है। आजकल रासायनिक रीति से पेनीसिलिन तैयार करनेका भी यत्न किया जा रहा है। निमोनिया, रुधिर को विषैला बनाने वाले रोग, तथा स्टैफोलोकोकाइ (Staphaylococci) के रोगों

में पेनीसिलिन तुरंत लाभ पहुँचाता है। अन्य दवाओं की अपेक्षा इसमें एक विशेषता यह भी है कि इसका स्वयं का कोई विषैला हानिकारक प्रभाव खून पर नहीं पड़ता।

फिनोज़िटॉल भी जीवाणु नाशक दवा है जो इसी युद्धकाल में तैयार हुई है। पेनीसिलिन के साथ मिलाकर क्रीम के रूप में इसका उपयोग जीवाणु रोगों पर करने पर उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। हाल हीमें सिन्थीडीन (Sythidine) नामक पदार्थ तैयार किया गया है, जिसके बारेमें यह कहा जाता है कि जीवाणु रोगोंमें यह पेनीसिलिन से भी अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा।

इस लड़ाई में बहुतसे ऐसे शस्त्रभी आविष्कार किए गए हैं जो संहार के कार्य में बहुत घातक सिद्ध हुए हैं। ऐसे शस्त्रों में बिना चालक के हवाई जहाज़ हैं जिनका आविष्कार जर्मनी ने किया और जिनका प्रयोग सन् १९४४ के अन्त में उसने इंगलैंड के विरुद्ध किया। यह आशा की जा सकती है कि यही संहारकारी शस्त्र शान्ति-कालमें लाभदायक कार्यों के लिए उपयोग में लाए जा सकेंगे और उनसे मनुष्य समाज की सेवा हो सकेगी।

तारे क्या हैं

हमें दिखाई पड़ें। जब उन पर धूप पड़ती है तो वे हमें दिखाई पड़ते हैं।

दे०—उनकी पहचान क्या है ?

प्रो०—आसमानमें वे तारेसे ही दिखाई पड़ते हैं। परन्तु शुक्र और बृहस्पति ये दोनों ग्रह तारोंसे बहुत अधिक चमकीले हैं और इसलिये आसानीसे यह जाने जा सकते हैं। शुक्र केवल या तो सबेरे पूरब में या शामको पश्चिम में दिखाई पड़ता है और बृहस्पतिसे अधिक चमकीला है। मंगल लाल है और अकसर तारोंसे बहुत अधिक चमकीला होता है परन्तु उसकी चमक घटती-बढ़ती रहती है। शनि यानी सनीचर भी काफी चमकीला है लेकिन इतना नहीं कि देखते ही वह पहचाना जा सके। बुध हमेशा सूरजके पास रहता है और उसका देखना मुश्किल होता है। मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये ही पाँच बड़े ग्रह हैं। पुराने लोग सूरज और चन्द्रमाको भी ग्रह मानते थे लेकिन यूरपके ज्योतिषी उनको ग्रह नहीं मानते।

दे०—धन्यवाद प्रोफेसर साहब अभी तो बहुत सी बातें पूछनेकी इच्छा है लेकिन फिर कभी पूछूँगा। आज तारोंकी बात जानकर बड़ा आनन्द हुआ।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।॥=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६)। इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।॥),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥), द्वितीय भाग ।॥=),

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ; ॥),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस सी०; ।॥),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद्के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १॥),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १॥),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १॥),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २।।),

२४—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १।।।),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १।।),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २।।),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, ११० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशबेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३)

२—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई० इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

३—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं, २)

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक – विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

****

भाग ६१	वृष, सम्वत् २००२ जुलाई १९४५	संख्या ४

****

अणुजीवोंका प्रथम अन्वेषक ल्यूवेनहुक (Leeuwenhoek)

[श्रीमती रानी टंडन, एम० एड०,]

लगभग २५० वर्ष हुये एक मनुष्य ल्यूवेनहुकने सृष्टि के उस आश्चर्यजनक जगतमें प्रथम बार प्रवेश किया जहाँ तरह तरहके अणुजीव विद्यमान थे। इन जीवोंमें कुछ मनुष्योंके लिए घातक थे और कुछ उपयोगी ।

यद्यपि ल्यूवेनहुकने ही सर्वप्रथम अणुजीवोंकी जानकारी प्राप्त की, इस समय बहुत कम लोग ल्यूवेनहुक के नाम से परिचित हैं। ल्यूवेनहुकके बाद भी कितने ही जीव-वैज्ञानिक हुये जिन्होंने विभिन्न अणुजीवों को खोज निकालने में अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं की किन्तु इनमेंसे बहुतों का नाम आजकल स्मरणमें भी कभी ही आया करता है।

वर्तमान समयमें जब कि विज्ञानकी इतनी उन्नति हो गई है हमें इस बातकी कभी कल्पना भी नहीं हो सकती कि ल्यूवेनहुक के समयमें विज्ञान की खोज का काम करना कितना कठिन था । यदि आप तीन सौ वर्ष पहलेकी उस अवस्थाका ध्यान करें जब कि चारों ओर अन्धविश्वास का राज्य था और प्रकृति की छोटीसे छोटी घटना दैवी इच्छा का फल समझी जाती थी तब सम्भवतः आपको थोड़ा सा इस बात का अनुमान हो सके कि ऐसे वायुमंडलमें विज्ञान का कार्य करने वालों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा । उन दिनों किसी घटना को दैवी न मानना और उसका कारण ढूढ़ निकालना एक अक्षम्य अपराध था ।

ऐसे ही समयमें ल्यूवेनहुक ने अन्धविश्वासोंके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई । विज्ञानका यह वह युग था जब वैज्ञानिकों को सत्यकी खोजमें अपने जीवनकी बलि देनी पड़ती थी । यह वही युग था जिसमें सरवीटस (Survitus) को, केवल इस अपराध में कि उसने एक मरे हुये मनुष्यके शरीर को चीरकर मनुष्यके भीतरी अंगों की जानकारी प्राप्त करनी चाही थी, जीवित जला दिया गया था । इसी युग में गैलीलियो को, केवल इस बातके लिए कि उसने उन दिनों के प्रचलित विश्वासके विरुद्ध यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, जीवन पर्यन्त जेलमें बाँध दिया गया था ।

एनटोनी ल्यूवेनहुक (Antony Leeuwenhoek) का जन्म सन् १६६२ ई० में हालैंडके डेलफ्ट (Delft) नामक स्थानमें हुआ था । उनके कुटुम्बमें टोकरी बनाने तथा शराब खींचनेका व्यवसाय होता था । हालैंडमें उन दिनों शराब खींचना एक प्रतिष्ठित व्यवसाय समझा जाता था । ल्यूवेनहुकके पिताका देहान्त छोटी अवस्थामें ही हो गया था । ल्यूवेनहुक की माताने उन्हें स्कूल पढ़ने को भेजा । उनकी यह इच्छा थी कि ल्यूवेनहुक पढ़लिख कर कोई सरकारी अफ़सरी का पद ग्रहण करे । किन्तु ल्यूवेनहुक १६ वर्षकी अवस्थामें ही स्कूल छोड़कर एमस्टर्डम में एक कपड़े की दूकानमें सहायक हो गये । यहाँ उसने ६ वर्ष तक काम किया । २१ वर्षकी अवस्थामें वह डेलफ्ट वापस आये और अपनी एक स्वतन्त्र कपड़े की दूकान-खोल ली । इसी समय उन्होंने अपना विवाह भी किया । इसके बादसे २० वर्ष तक ल्यूवेनहुक के जीवन का कोई विशेष हाल नहीं मिलता । केवल इतना ही ज्ञात है कि उनके दो पत्नियाँ थीं जिनसे कई बच्चे थे । ल्यूवेनहुक के कई बच्चे छोटी अवस्थामें ही मर गए थे । इन्हीं दिनों डेलफ्टके 'टाउनहाल' में भी उन्होने कुछ काम करना आरंभ किया । यहीं पर उन्हें ताल (lenses) बनाने का शौक हुआ । उन्होंने यह सुन रखा था कि यदि एक साधारण काँच को घिस

कर एक छोटा लेन्स बनाया जाए तो उसके द्वारा चीजें अधिक बड़ी दिखलाई देती हैं। यद्यपि ल्यूवेनहुक के जीवन के २०से ४० वर्षकी अवस्थाकाल की अधिक बातें मालूम नहीं है किन्तु इतना अवश्य मालूम है कि उनकी गणना उस समयके पढ़े-लिखे लोगोंमें नहीं थी। वह केवल डच भाषा जानते थे जो उस समय सभ्य समाजमें एक देहाती भाषा समझी जाती थी। विद्वत् समाज में लेटिन भाषा का चलन था और ल्यूवेनहुक इस भाषासे बिलकुल अनभिज्ञ थे। एक दृष्टि से ल्यूवेनहुक का अनपढ़ होना अच्छा ही था, क्योंकि वह अन्य लोगोंकी लिखी बातोंसे प्रभावित न होकर प्रत्येक बात स्वयं विचारते थे और अपना स्वतंत्र निर्णय करते थे।

इस बात का परीक्षण करने के लिए कि ताल द्वारा चीजें बड़ी दिखलाई देती हैं ल्यूवेनहुक ने स्वयं ताल बनाने का निश्चय किया। ताल बनाने का कार्य उन्होंने चश्मा बनाने वालोंके पास जा जाकर उनसे सीखा। इसी बीच वह आलकीमियों (Alchemists) और अत्तारों के यहाँ भी दौड़े और उनसे कच्ची धातुओंमें से शुद्ध धातु प्राप्त करने की विधि मालूम की। ल्यूवेनहुक को इस बात का उत्साह था कि वह जो ताल बनायें वह बाज़ारके सब तालोंसे श्रेष्ठ हो। बहुत प्रयत्नके बाद ल्यूवेनहुक इस प्रकारके ताल बनानेमें सफल हुये। अपने तालों को स्वयं ही उन्होंने अपने द्वारा शुद्ध की गई ताँबे, चाँदी या सोनेकी धातुओंके फ्रेमों पर चढ़ाया। इन सब बातोंसे यह अनुमान किया जा सकता है कि ल्यूवेनहुक में काम करनेकी कितनी लगन थी और कितना धैर्य था।

ल्यूवेनहुक के पड़ोसी उसे सनकी समझते थे किन्तु ल्यूवेनहुक ने कभी जनमत की परवा न की और सदा अपनी लगनमें जुटे रहे। अपने कुटुम्ब तथा अपने मित्रों सब को भुला कर वह रात भर एकान्त में बैठ कर काम करते रहते थे। बहुत प्रयत्नके बाद ल्यूवेनहुक को $\frac{1}{?}$ इंच से भी कम व्यास (Diameter) का एक अच्छा ताल बनाने में सफलता प्राप्त हुई। इस तालसे सभी छोटी चीज़ें कई गुना बड़ी और बहुत साफ़ दिखलाई दीं।

इस प्रकार एक अच्छा ताल बना लेने के बाद ल्यूवेनहुक उसके द्वारा तरह तरह की चीज़ें अपने शौकके लिए निरीक्षण करने लगे। कसाई के यहाँ से बैल की आँख लाकर अपने ताल द्वारा उसका निरीक्षण किया। आँखके ताल को देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। छोटे पौधोंके पतले कटे सेक्शन का भी ताल द्वारा उन्होंने निरीक्षण किया। ल्यूवेनहुक अपने इन सब निरीक्षणों का चित्र बना कर रखते थे। किसी चीज़ का चित्र वह तब तक नहीं बनाते थे जब तक कि उसे बहुत बार देख कर उन्हें उसके आकार की सत्यता का निश्चय नहीं हो जाता था। ल्यूवेनहुक केवल अपने संतोष तथा सुख के लिए ही कार्य करते थे। उन्हें इस बात की परवा नहीं थी कि उनके कार्य को कोई दूसरा सुने व देखे और उनकी प्रशंसा करे। इस प्रकार वह २० वर्ष तक काम करते रहे और उनके काम की जानकारी किसी दूसरे को न हो पाई।

इन्हीं दिनों सत्रहवीं सदी के बीच में संसार में विचारों की क्रान्तियाँ आरम्भ हुईं। अरस्तू और पोपकी कही बातों पर अन्धविश्वास न करके लोग उन्हें तर्ककी कसौटी पर कसने लगे। ऐसेही विचारोंके कुछ लोगोंने मिल कर इंगलैंडमें एक संस्थाकी स्थापना की जिसका नाम उन्होंने 'अदृश्य कालेज' रखा। इस संस्था का सब कार्य गुप्त रखा जाता था जिससे उस समयके शासक, क्रॉमवेल, को इसका पता न चले और वह इस संस्थाके सदस्यों को उनके नवीन विचारोंके कारण दंड न दे सके। इस संस्थाके सदस्यों में न्यूटन, बॉयल (Boyle) ऐसे लोग थे। यही संस्था बादमें चार्ल्स द्वितीयके शासन कालमें रॉयल सोसाइटीके नामसे प्रकट रूपसे काम करने लगी। ल्यूवेनहुक ने अपने कार्यों की सर्वप्रथम चर्चा इसी संस्था में की।

डेल्फ्टमें रेग्नीर दि ग्रैफ़ (Regnir de graaf) ही एक सज्जन थे जो ल्यूवेनहुक के काम की हँसी नहीं उड़ाते थे। ग्रैफ़ स्त्रियोंकी शुक्र-ग्रंथियोंमें कुछ नई चीजें मालूम करने के कारण रायल सोसायटी के सदस्य बनाए गए थे। एक दिन ल्यूवेनहुक ने अपने ताल द्वारा अपनी चीजें ग्रैफ़ को दिखाईं, जिनको देखकर ग्रैफ़ को बड़ा आश्चर्य हुआ, और ल्यूवेनहुक के इस कार्यकी तुलनामें उन्हें अपना कार्य तुच्छ जान पड़ा। उन्होंने तुरंत रॉयल सोसायटी को लिखा कि वह ल्यूवेनहुक को पत्र लिख कर उसके कार्य का विवरण प्राप्त करे। रॉयल सोसायटीके पत्र

के उत्तरमें ल्यूवेनहुक ने अपने कार्य का एक लम्बा विवरण डच भाषामें लिखकर भेजा। इस विवरणमें ल्यूवेनहुक ने मक्खीके डंक, तथा कुछ फंफूदियों के संबंधके अपने निरीक्षणों का उल्लेख किया था। रॉयल सोसाइटी के सदस्यों को ल्यूवेनहुक के इस विवरणसे बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद सोसाइटी के प्रार्थना करने पर ल्यूवेनहुक बराबर पत्र लिख कर अपनी खोजों का हाल बताते रहे। इन पत्रोंमें बहुतसी निरर्थक बातें पड़ोसियों आदिके संबंधकी रहा करती थीं। किन्तु इन निरर्थक बातोंके बीचमें महत्वपूर्ण खोजों का वर्णन भी पढ़ने को मिलता था।

आज हमें यह जानकर हँसी सी आती है कि अणुजीवों को जो इतनी सरलतासे अनुवीक्षण यंत्रमें दिखलाई देते हैं, खोज निकालनेमें मनुष्य को इतनी देर लगी। ल्यूवेनहुक ने ऐसा कौन सा कठिन कार्य उन्हें ढूँढ निकालने में किया? जब हम ऐसा सोचते हैं तो हम इस बात को बिल्कुल भूल जाते हैं। कि किसी भी नयी चीज़का खोज निकालना कितना कठिन कार्य है। खोज हो जानेके बाद तो सभी चीज़ें सरल ही दिखलाई देती हैं। ल्यूवेनहुकके पहले अणुजीवोंकी खोज के न होने का एक कारण यह भी था कि उन दिनों जो ताल थे वे इतने अच्छे नहीं थे कि उनसे अणुजीव देखे जा सकते। ल्यूवेनहुक ने ही सबसे पहिले ऐसे अनुवीक्षणयंत्र बनाए जो इस योग्य थे कि उनके द्वारा अणुजीव दिखलाई पड़े। उन दिनोंके प्रचलित तालों को यदि ल्यूवेनहुक भी उपयोग में लाते तो जीवन पर्यन्त प्रयत्न करने पर उन्हें भी अणुजीव दिखलाई न पड़ते।

ल्यूवेनहुक के जीवन में वह दिन सबसे महत्वका था जब उसने वर्षाके जलको अपने अनुवीक्षण-यंत्रमें देखा। साधारण मनुष्यके मनमें तो कभी यह विचार भी नहीं उठ सकता कि वर्षाके जलमें जलके अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है। ल्यूवेनहुकको तो केवल यह धुन थी कि वह अपने अनुवीक्षण यंत्र द्वारा प्रत्येक पदार्थ को देखे। अपनी इसी धुनमें उसने एक दिन बागमें रखे हुये मिट्टीके बर्तनमें से, जिसमें वर्षाका पानी इकट्ठा हो रहा था, पानीकी एक बूँद स्लाइड पर रख कर अपने अनुवीक्षण यंत्रमें देखा। अणुवीक्षण यन्त्रमें उसने जो कुछ देखा उससे उसे इतना अधिक हर्ष हुआ कि वह जोरसे चिल्ला उठा और अपनी १९ सालकी पुत्री मेरिया को आवाज लगा कर कहा "शीघ्र यहाँ आओ और देखो इस वर्षा के जलमें छोटे जीव हैं जो तैर रहे हैं और आपस में खेल रहे हैं। ये आँखोंसे दिखलाई देने वाले जन्तुओं की अपेक्षा बहुत ही छोटे हैं।" अचानक इस प्रकारके जीवोंको पानीमें देखकर ल्यूवेनहुकके मन में क्या विचार उठे होंगे और उसे कितनी प्रसन्नता हुई होगी यह अनुभव करना हम लोगोंके लिए बड़ा कठिन है। ल्यूवेनहुककी यह प्रसन्नता कितने गुना बढ़ गई होती यदि उस समय उसे कहीं यह मालूम हो जाता कि उसने उस जीव-जगतमें प्रवेश किया था, जहाँ के जीव इतना छोटे होते हुये भी इतने शक्तिशाली और भयंकर है कि वे मनुष्योंकी पूरी की पूरी जातिको सरलतासे एकदम नष्ट कर सकते हैं। ल्यूवेनहुकको उस समय क्या पता था कि उसके यही अणुजीव आग उगलने वाले बड़े बड़े भयंकर टैंको और बमोंसे भी अधिक भयंकर है। यही अणुजीव कोमल बच्चों तथा बड़े बड़े शक्तिशाली नरेशोंके जीवनको क्षणमात्र में निर्दयता पूर्वक इस प्रकार समाप्त कर देते हैं कि किसी को कुछ पता ही नहीं लगता। उसकी यह खोज बड़े बड़े राज्योंके जीतने तथा नई दुनिया को खोज निकालनेसे भी कहीं अधिक महत्व की थी।

जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं ल्यूवेनहुक किसी बात पर शीघ्र विश्वास करने वाले मनुष्य नहीं थे। वर्षा के जलमें अणुजीवोंको देखकर ल्यूवेनहुक ने प्रारम्भमें यह संदेह किया कि संभवतः उसके निरीक्षणमें ही कोई त्रुटि है क्योंकि इतने छोटे और विचित्र जीवोंकी सृष्टि का अनुमान कोई कर ही नहीं सकता था। उसने बार-बार उसी वर्षा के पानीकी परीक्षाकी और घंटों अनुवीक्षण यंत्र में अपनी आंख गड़ाये निरीक्षण करता रहा। अंतमें उसे विश्वास हो गया कि अणुजीव सचमुच एक प्रकारके जीव हैं और उनकी भी एक सृष्टि है। अधिक ध्यानसे देखने पर उसने यह भी मालूम किया कि यह सब जीव एक ही प्रकारके नहीं है। एक दूसरेसे भिन्न प्रकारके कितने ही जीव उसने देखे। ल्यूवेनहुक ने स्वयं लिखा है कि इन जीवोंको फुर्ती और तेजीसे रेंगते और तैरते हुये देखनेमें उसे बहुत आनन्द प्राप्त होता था।

अपने सबसे छोटे जीव की तुलना उसने चीलर की आँख की लम्बाई से करते हुये यह बतलाया कि वह जीव आँखसे लगभग १००० गुणा छोटा था।

ल्यूवेनहुक ने सोचा कि ये जीव वर्षाके पानीमें कहाँसे आये। क्या वे आकाशसे वर्षाके जलके साथ गिरे या पृथ्वी से रेंग कर बर्तनमें पहुँच गये? क्या उनकी सृष्टि ईश्वर स्वतन्त्र रूपसे कर उन्हें आकाशसे पृथ्वी पर टपका देता है या उनको भी पैदा करनेवाले उन्हींके समान जीव हैं जो उनके माता-पिता हैं? सत्रहवीं सदीके अन्य डच लोगोंकी भाँति ल्यूवेनहुक को भी ईश्वर ऐसी दैवी शक्ति में विश्वास और श्रद्धा थी। ईश्वर पर विश्वास होते हुये भी वह यह मानता था कि संसार का प्रत्येक जीव किसी दूसरे जीवसे ही उत्पन्न होता है, अर्थात् प्रत्येक जीवका कोई माता-पिता होता है। सृष्टि की रचनाके सम्बन्धमें उसका यह दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर ने सारे जीवित पदार्थों को ६ दिन में उत्पन्न किया और उसके बाद वह निश्चिन्त होकर बैठ गया। अत: इस विश्वासके आधार पर उसने अपने मनसे यह धारणा निकाल दी कि इन अणुजीवों को ईश्वरने पुनः बनाकर आकाशसे टपकाया होगा। साथ ही उसने यह भी सोचा कि बिना किसी पितृजीव के आधार के उस बर्तनमें भी ये आपसे आप नहीं उत्पन्न हो सकते। अतः ये अणुजीव फिर कहाँ से और किस प्रकार बर्तनमें आये इस बात को खोज निकालने के लिए ल्यूवेनहुक ने प्रयोग शुरू किए। उसने एक छोटे काँचके गिलास को धोकर सुखाया और उसे पानीके बर्तनके मुँहके किनारे रख दिया जिससे केवल वर्षा का शुद्ध जल ही गिलासमें आसके। इस गिलासके पानी की परीक्षा करने पर इसमें भी जीव दिखलाई दिए। तब उसने सोचा संभव है यह जीव पानी इकट्ठा करने के बर्तनमें ही पहिले से रहे हों और वर्षाके पानी के साथ बह कर उसमें से गिलासमें चले आए हों। इस विचार का निर्णय करने के लिए उसने एक बड़ी चीनी की प्याली ली और एक ऊँची तिपाई के ऊपर रख कर बाहर वर्षा का जल एकत्र करने के लिए रख दिया। ऊँची तिपाई पर प्याली के रखने में उसका ध्येय यह था कि पृथ्वी पर गिरनेवाले पानी की छींटों द्वारा पृथ्वी का कोई पदार्थ प्याली में न पहुँच जाए। आरम्भ में जो पानी प्यालीमें एकत्रित हुआ उसे उसने फेंक दिया। इसके बाद जो पानी प्यालीमें एकत्रित हुआ उसकी परीक्षा उसने की। इस पानीमें एक भी जीव नहीं था। ल्यूवेनहुक ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि जीव आकाश से वर्षाके जलके साथ नहीं आते। वर्षा के इस स्वच्छ जल को उसने संभाल कर रख लिया और प्रतिदिन उसका निरीक्षण करता रहा। चौथे दिन उसने देखा कि उस जलमें धूलके कण तथा सूतके महीन टुकड़ों के साथ साथ अणुजीव भी पहुँच गए थे। वर्षा के जल में अणुजीव देखने के बाद ल्यूवेनहुक ने विभिन्न स्थानोंके पानीकी परीक्षा करनी आरम्भ की। हवामें रखे पानी, डेल्फ्ट की नहरके पानी और अपने बाग के कुयेंके पानी की परीक्षा उसने की। प्रत्येक पानी में उसे अणुजीव दिखलाई दिए। इन जीवों का बहुत छोटा आकार उसके लिए आश्चर्यकी बात थी। यह जीव इतने छोटे थे कि हज़ारों मिलकर भी बालू के एक कण के बराबर नहीं होते थे। पनीरमें पड़नेवाले कीड़ों (mite) के आकारसे इन अणुजीवोंके आकार की तुलना करने पर उसने यह बतलाया कि यह अणुजीव उस कीड़े के सामने वैसे ही हैं जैसे घोड़ेके सामने एक मक्खी।

ल्यूवेनहुक प्रत्येक बात का कारण जानने के लिए उत्सुक रहता था। अपने इसी स्वभावके कारण वह ऐसी खोजें कर सका जिनके संबंधमें उसने पहिलेसे कोई धारणा ही नहीं की थी। एक दिन उसके मनमें प्रश्न उठा कि कालीमिर्च क्यों इतनी कड़वी है। उसने सोचाकि काली मिर्च के कणों में संभवतः छोटे छोटे तेज़ नुकीले काँटे होंगे जो जीभ को काटते हों। अपने इस विचार का निर्णय करने के लिए उसने कालीमिर्च के पतले-पतले टुकड़े काट कर अणुवीक्षण यंत्रमें देखना चाहा। सूखी काली मिर्च से पतले टुकड़े जब न कट सके तो उसने उसे कई सप्ताह तक मुलायम होनेके लिए पानीमें भीगे रहने दिया। इसके बाद जब उसने कालीमिर्च के कण निकाल कर देखे तो उसे उसमें भी अणुजीव देखकर आश्चर्य हुआ।

अणुजीवों की विद्यमानताके बारे में जब ल्यूवेनहुक को पूर्णत: संतोष हो गया तब उसने इस संबंधमें रॉयल सोसाइटी को बहुत बादमें पत्र लिखा। इस पत्रमें उसने यह बतलाया कि बालूके एक कण की बराबरी करनेके

लिए लाखों अणुजीव एकत्र करने पड़ेंगे और कालीमिर्चके पानीकी एक बूंदमें २,००,००० से भी अधिक अणुजीव विद्यमान् रहते हैं।

ल्यूवेनहुक के पत्र का अंग्रेज़ी अनुवाद रॉयल सोसाइटीके सदस्यों के सम्मुख पढ़ा गया। बहुतसे सदस्यों को इन अणुजीवों की विद्यमानतामें विश्वास नहीं हुआ। वे लोग पनीर के कीड़े को ही ईश्वर की सृष्टि का सबसे छोटा जीव मानते थे। लेकिन कुछ सदस्यों ने ल्यूवेनहुक के पत्र की बातों को हँसी में नहीं टाला। वे यह देख चुके थे कि उस समय तक ल्यूवेनहुक ने जो कुछ रॉयल सोसाइटी को लिखा था वह सब ठीक निकला था। अतः उन्होंने सोचा कि अणुजीवों की उसकी खोजमें भी सत्यता हो सकती है। रॉयल सोसाइटी ने ल्यूवेनहुक को पत्र लिखकर यह बतलाने की प्रार्थना की कि वह अपने अनुवीक्षण यंत्र बनाने की विधि तथा उसके द्वारा निरीक्षण करने का ढंग सोसाइटी को लिखे। इस पत्रसे ल्यूवेनहुक को थोड़ा आश्चर्य हुआ। वह अभी तक रॉयल सोसाइटी के सदस्यों को सच्चा दार्शनिक समझता था। उसने सोचा कि क्या डेल्फ़्ट के साधारण लोगों की भाँति रॉयल सोसाइटी के सदस्य उसकी बात पर हँसते हैं? वह विचारने लगा कि क्या रॉयल सोसाइटी को पूरा ब्योरा लिखना उचित है या किसीसे कुछ संबंध न रखकर एकान्तमें अपना कार्य करना ठीक है। बहुत सोच-विचार के बाद उसने रॉयल सोसाइटी को उत्तर दिया और यह विश्वास दिलाया कि उसने किसी भी बातको बतलाने में अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया था। पत्रके अन्तमें उसने लिखा कि डेल्फ्ट के बहुतसे सज्जनों ने इन विचित्र नए जीवों को उसके अणुवीक्षण यंत्रमें देखा था। उसने इन अणुजीवों की संख्या तथा आकार का हिसाब लगाने का पूरा ब्योरा भी लिख दिया। सबसे अन्तमें उसने यह लिखा कि वह डेल्फ्टके प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा अपनी इस खोज की सत्यताका प्रमाणपत्र भी लिखाकर भेज सकता है किन्तु अपने अणुवीक्षण यंत्र बनानेकी विधि नहीं बतला सकता। ल्यूवेनहुक में कुछ सनक थी। वह लोगों को अपने अणुवीक्षण यंत्र में चीजें तो दिखला देता था किन्तु किसी को अपना अणुवीक्षण यंत्र छूने नहीं देता था।

रॉयल सोसायटी ने राबर्टहुक (Robert Hooke) नामक सज्जन के सुपुर्द यह काम किया कि वह एक अच्छा अणुवीक्षण यन्त्र बनायें और कालीमिर्च को पानीमें कई सप्ताह भिगाकर उसके पानीकी परीक्षा करें। १५ नवम्बर सन् १६७७ में हुक अपना अणुवीक्षण यन्त्र लिए हुये रॉयल सोसायटी की मीटिंग में पहुँचे और बतलाया कि ल्यूवेनहुक ने जिन विचित्र अणुजीवों की खोज की है वह सत्य है और वे अणुजीव यहाँ मौजूद हैं। सदस्यों को इन अणुजीवों को देखने की इतनी अधिक उत्सुकता हुई कि सबने हुकके अणुवीक्षण यन्त्रके चारों ओर भीड़ लगा ली। हुक के अणुवीक्षण यन्त्र में अणुजीवों को देखनेके बाद सब सदस्योंने एकमतसे स्वीकार किया कि ल्यूवेनहुक का निरीक्षण आश्चर्यजनक था और ल्यूवेनहुक का यह कार्य किसी जादूगरके कार्यसे कम नहीं था। इस कार्यके उपलक्षमें रॉयल सोसायटीने ल्यूवेनहुक को अपना सदस्य चुना और एक सुन्दर डिप्लोमा एक चाँदी के बक्समें रख कर उसके पास भेजा। इस सम्मान के लिए रॉयल सोसाइटी को धन्यवाद देते हुये ल्यूवेनहुक ने लिखा कि वह जीवनपर्यन्त सच्चाई के साथ सोसायटी की सेवा करता रहेगा। अपने इन शब्दों का उसने बराबर पालन किया। किन्तु अपना अणुवीक्षण यन्त्र सोसायटी को देनेसे उसने सदा इन्कार किया। उसने कहा कि वह अपने जीवित रहते ऐसा नहीं कर सकता। रॉयल सोसायटी ने डा० मॉलीन्यूक्स (Dr. Molydeux) को उसके पास उसके कार्योंकी रिपोर्ट लेने भेजा। मॉलीन्यूक्सने ल्यूवेनहुक को एक अणुवीक्षण यंत्र के लिए काफी धन देनेका भी प्रलोभन दिया किन्तु वह किसी भी शर्त पर अपना अणुवीक्षण यंत्र देने के लिए तैयार नहीं हुआ। यह बात नहीं थी कि उसके पास फालतू अणुवीक्षण यंत्र न रहे हों। उसके पास बहुतसे अणुवीक्षण यंत्र थे किन्तु वह देना ही नहीं चाहता था। उसने मॉलीन्यूक्स से कहा कि जो भी चीज़ वह देखना चाहे उसके अणुवीक्षण यंत्रमें देखले किन्तु वह अपना अणुवीक्षण यंत्र उसे दे नहीं सकता। डा० मालीन्यूक्कस को उसने अपने भिन्न-भिन्न नमूने

दिखलाये । जब तक मालीन्यूक्स उसके अणुवीक्षण यंत्रमें उसके नमूने देखता रहा ल्यूवेनहुक यह निगरानी करता रहा कि मॉलीन्यूक्स उसके यंत्र को छूकर उसके सम्बन्धमें कुछ मालूम तो नहीं कर रहा है । मॉलीन्यूक्स ने ल्यूवेनहुक से कहा "तुम्हारा यंत्र बहुत उत्तम है और इंगलैंडमें हम लोगोंके पास जो ताल हैं उनसे हज़ारों गुना अधिक साफ़ इससे चीजें दिखलाई देती हैं ।" ल्यूवेनहुक ने उत्तर दिया "मैं कितना चाहता हूँ कि मैं आपको अपना अनुवीक्षण यंत्र दिखाऊँ जिसे मैं स्वयं अपने कार्योंके लिए उपयोगमें लाता हूँ । किन्तु मैं अपने स्वभाव से लाचार हूँ और इसीसे मैं उसको कभी किसी को भी देखने नहीं देता—अपने कुटुम्बके लोगों को भी नहीं ।"

रॉयल सोसाइटी को ल्यूवेनहुक ने अपनी खोज का जो विवरण दिया उसमें उसने बतलाया कि अणुजीव प्रत्येक स्थानमें मौजूद रहते हैं । उसने यह बतलाया कि मुख ऐसा स्थान है जहाँ से बहुत आसानीसे अगणित अणुजीव गुच्छों के रूपमें प्राप्त किए जा सकते हैं । मुख में अणुजीव रहते हैं यह बात ल्यूवेनहुक को कैसे मालूम हुई इस संबंधमें उसने स्वयं रॉयल सोसाइटी को इस प्रकार लिखा था । "मेरे दाँत यद्यपि मैं ५० साल का हूँ बहुत अच्छे और मजबूत हैं । मैं अपने दाँतों की सफ़ाई की सदा फिक्र करता रहा हूँ । प्रतिदिन प्रातःकाल मैं अपने दाँतों को एक दातूनसे साफ़ करनेके बाद एक मोटे कपड़ेसे रगड़ कर पोंछ लेता हूँ । सफ़ाई का इतना ध्यान रखने पर भी मैंने एक दिन ताल शीशेसे अपना दांत देखने पर मालूम किया कि दांतों के बीचमें कुछ सफ़ेद पदार्थ लगा हुआ था ! इस सफ़ेद पदार्थको जांचनेके लिए मैंने इसे दांतसे खुर्च कर निकाला और शुद्ध पानीमें मिलाकर अणुवीक्षण यंत्र से देखा ! मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उसमें भिन्न-भिन्न प्रकारके अगणित अणुजीव इधर-उधर तैर रहे थे । उसमेंसे कुछ का आकार टेढ़े डंडे की तरह था और वे बहुत धीरे-धीरे चलते थे; कुछ चक्राकार आकारके थे जो गोलाईमें तेज़ीसे चक्कर काटते थे; कुछ ऐसे थे जो मछली की भाँति पानीमें उछाल मार रहे हैं, और कुछ कलाबाजी लेते हुए चल रहे थे । मेरा मुँह क्या है मानों इन अणुजीवों का एक जगत है ।"

अपने मुँहके अणुजीवों का बहुत देर निरीक्षण करनेसे थकावट आजानेके कारण वह एक दिन नहरके किनारे ऊँचे वृक्षों की छाया में भ्रमण करने निकला । यहां उसे एक वृद्ध मनुष्य मिला । ल्यूवेनहुक ने इसकी चर्चा रॉयल सोसाइटी को भेजे अपने पत्रमें इस प्रकार की है । "मैं इस वृद्ध मनुष्यसे बातें कर रहा था जिसने बड़ा संयमित जीवन बिताया था और जिसने अपने जीवनमें कभी तम्बाकू और शराब का प्रयोग नहीं किया था कि अचानक मेरी दृष्टि उसके दांतों पर पड़ी जो मुझे बहुत गंदे मालूम हुए । मैंने उससे पूछा कि उसने कितने दिनों से अपने दांतों को साफ़ नहीं किया था । उसने जवाब दिया कि उसने आजतक अपने जीवनमें कभी भी दांत साफ़ नहीं किये थे ।" तुरन्त ल्यूवेनहुकके मस्तिष्कसे सारी थकान दूर हो गई और उसने सोचा कि इस मनुष्यके मुँहमें तो अणुजीवोंकी एक बहुत बड़ी सृष्टि होगी । वह उस मनुष्यको अपनी प्रयोगशालामें लिवा लाया और उसके दाँतोंमें जमे पदार्थको खुर्च कर उसका निरीक्षण किया । ल्यूवेनहुकका विचार बिलकुल ठीक निकला । उस वृद्धके मुखमें करोड़ों अणुजीव विद्यमान थे । इन अणुजीवोंमें उसे एक नए प्रकारका अणुजीव दिखलाई दिया जो सांपकी तरह अपना शरीर टेढ़ा करता हुआ रेंग रहा था ।

ल्यूवेनहुक ने अपने विवरण में कहीं भी यह नहीं कहा है कि अणुजीव हानि पहुँचाते हैं । उसने अणुजीवों को पीनेके जलमें, मुखमें, मेढ़क और घोड़ोंकी अँतड़ियोंमें तथा स्वयं अपनी विष्ठामें देखा । उसने यह भी निरीक्षण किया कि जिस समय उसे पतले दस्तों की शिकायत हुई उस समय उसकी विष्ठामें अणुजीव बहुत अधिक संख्यामें विद्यमान थे । यह निरीक्षण करने पर भी उसे कभी इस बातका संदेह तक नहीं हुआ कि इन्हीं अणुजीवों के कारण उसे पेचिश हुई । वर्तमानकालके जीवाणु वैज्ञानिक यदि उसकी जगह होते तो तुरन्त यह कह बैठते कि अणुजीवोंके कारण ही विशेष रोग होते हैं । अधिकांश रोगोंके जीवाणु इसी प्रकार मालूम किये गये हैं । जब किसी रोगकी दशामें किसी विशेष प्रकारके

अणुजीव दिखलाई दिए तो वर्तमान कालके जीवाणु वैज्ञानिकों ने तुरंत उन्हें उस रोगको उत्पन्न करने वाला बतलाया और अधिकतर इस प्रकारका कथन ठीक भी निकला। किन्तु ल्यूवेनहुकके मस्तिष्कमें इतनी विचार शक्ति नहीं थी। वह केवल प्रयोग द्वारा नई वस्तुओंको जाननेमें ही संलग्न रहता था। उसकी सहज-बुद्धिको प्रत्येक वस्तु बहुत कठिन प्रतीत होती थी और इसीलिए वह कभी यह प्रयत्न नहीं करता था कि किसी बातका मूलकारण मालूम करे।

समयकी गतिके साथ ल्यूवेनहुक भी अपने निरीक्षण कार्यमें अधिकाधिक संलग्न होता गया। अपने इस परिश्रमके फल-स्वरूप उसने बहुत सी आश्चर्यजनक खोजें कीं। उसने प्रथम बार मछलीकी पूँछमें रक्तकेशिकाओं (blood Capillaries) के जालको देखा और यह मालूम किया कि इनके द्वारा धमनियोंसे शिराओं में रक्त जाता है। हार्वेकी शरीरके रक्तपरिभ्रमणकी खोज में उसने अपनी इस नई खोजसे पूर्णता ला दी। उसने मनुष्यके शुक्र-रसमें शुक्र-कीटोंकी भी खोज की। कुछ वर्ष बीतनेके बाद समस्त यूरुप ल्यूवनेहुकके नामसे परिचित हो गया। रूस का राजा पीटर उससे मिलने आया और उसके प्रति अपना आदरभाव प्रकट किया। इंगलैंडकी रानी डेल्फ्ट केवल इस लिए आई कि वह ल्यूवेनहुकके अणुवीक्षण यंत्र द्वारा उसकी खोजी हुई आश्चर्यजनक वस्तुओंको देखे।

ल्यूवेनहुक न्यूटन और बॉयलके बाद रॉयल सोसाइटी का सबसे प्रतिष्ठित सदस्य माना जाता था। प्रशंसायें उसके मस्तिष्क पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालती थीं। वह सदा नम्र बना रहा क्योंकि उसे उस ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा थी जो सारी सृष्टिका जनक और पालनकर्ता है। वह सदा सत्यका उपासक रहा।

उसका स्वास्थ्य प्रारम्भसे ही बहुत अच्छा था। ८० वर्षकी अवस्थामें भी अणुवीक्षण यंत्रसे कार्य करते समय उसका हाथ हिलता नहीं था। उसको संध्या समय थोड़ी शराब पीने की आदत शुरू से ही थी। वह डाक्टरोंके सदा विरुद्ध रहा। वह कहा करता था कि डाक्टर रोगोंके बारेमें क्या जान सकते हैं जबकि उन्हें शरीरकी आंतरिक रचनाके सम्बन्धमें इतना भी नहीं मालूम है जितना कि मुझे मालूम है। उसने अपने रक्त की भी परीक्षा की थी। उसने रक्तमें गोलकण देखे और यह मालूम किया कि ये कण धमनियोंसे शिराओंमें रक्त-कोशिकाओं द्वारा जाते हैं। एक दिन प्रात:काल उसे कुछ ज्वर आया। उसने विचार किया कि उसका रक्त कुछ गाढ़ा हो गया है और इस लिए इसका बहाव धमनियोंसे शिराओंमें ठीकसे नहीं हो रहा है। उसने सोचा कि रक्तको पतला करनेसे रोग दूर हो जायेगा। इस विचारसे उसने गर्म गर्म कहवा इतनी अधिक मात्रामें पिया कि उसे खूब पसीना निकलने लगा। रॉयल सोसाइटी को उसने पत्र में लिखा कि यदि इस विधिसे मेरा ज्वर दूर न हो सका तो अस्पतालों की सारी दवायें भी इसे दूर नहीं कर सकेंगी।

गर्म कहवा पीनेसे अणुजीवोंके बारेमें उसे एक नई बात मालूम हुई। एक दिन प्रातःकाल गर्म कहवा पीने के बाद तुरन्त ही उसने अपने सामनेके दांतोंमें जमे सफेद पदार्थका पुनः निरीक्षण किया। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक भी अणुजीव उसमें मौजूद नहीं था। उसने सोचा था कि यदि जीवित नहीं तो कमसे कम मरे हुये अणुजीव तो अवश्य ही उसे देखने को मिलेंगे। ल्यूवेनहुक ने इतना गर्म कहवा पिया था कि उसके मुखमें छाले पड़ गये थे। फिर उसने पीछेके दांतों में जमे पदार्थका निरीक्षण किया। उसे पुन: यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वहां पहिलेकी अपेक्षा बहुत अधिक संख्यामें अणुजीव एकत्रित हो गये थे—इतने अधिक कि वह सोच भी नहीं सकता था। उसने इसका कारण जाननेके लिये कुछ प्रयोग किये। उसने एक शीशेकी नलीमें पानीके साथ अणुजीवों को लेकर इतना गर्म किया कि नली हाथसे छुई न जा सके। इसके बाद उसने पानीको ठंडा किया। परीक्षा करने पर उसने देखा कि सब अणुजीव शिथिल और गतिहीन हो गये थे—अर्थात् वे मर गये थे। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि सामनेके दांतोंके बीचके अणुजीव गर्म कहवेके प्रभावसे मर गये थे, पीछे दांतों तक पहुँचनेमें कहवा कुछ ठंडा पड़ गया था अतः वहांके अणुजीव नहीं

मर सके थे—बल्कि अन्य स्थानोंके अणुजीव भी जो मरनेसे बचकर भाग सके थे वहाँ आकर एकत्रित हो गये थे। उसने अणुजीवोंके आन्तरिक अंगों को मालूम करने का प्रयत्न किया। उसका यह अनुमान था कि मनुष्यों की तरह इन छोटे जीवोंमें भी मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, यकृत आदि सब अंग हैं। यह धारणा उसके मनमें पिस्सुओंको अणुवीक्षण यंत्रसे देखने पर हुई थी। पिस्सू यद्यपि बहुत सरल जीव है फिर भी अणुवीक्षण यन्त्रमें देखने पर उसने ज्ञात किया कि उसके आंतरिक अंगोंका अच्छा सङ्गठन है। ल्यूवेनहुक ने सोचा कि सम्भत: इन्हीं की भांति अणुजीवोंमें भी आंतरिक अंगोंका सङ्गठन होगा जो उसे अपने अणुवीक्षण यन्त्रमें दिखलाई नहीं दे रहा है। यद्यपि ल्यूवेनहुक यह नहीं मालूम कर सका कि मनुष्योंके रोग इन्हीं अणुजीवोंके कारण होते हैं और इस प्रकार यह उनके संहारकर्त्ता है, उसने इतना अवश्य बतलाया कि अणुजीव अपनेसे भी बड़े जीवोंका भक्षण कर लेते हैं।

एक दिन वह नहरमें निकाले हुये सीपी जातिके जीवों (mussel) का निरीक्षण कर रहा था। उसने देखा कि बहुतोंके गर्भमें हजारोंकी संख्यामें भ्रूण थे। उसे आश्चर्य हुआ कि जब प्रत्येकके गर्भमें हजारों बच्चे विद्यमान थे तो क्या कारण था जो नहर इन जीवोंसे पट कर रुक नहीं गई। वह इन भ्रूणोंकी वृद्धिका प्रति दिन अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा निरीक्षण करता रहा। उसने देखा कि जीवके सीपीके खोल (shell) के भीतर यह भ्रूण धीरे धीरे कम होते जारहे थे। इसका कारण यह था कि इन भ्रूणोंको वे अणुजीव नष्ट करते जारहे थे जिन्होंने इन सीपीके कीड़ों पर आक्रमण कर रखा था। उसने कहा—"जीवन जीवन द्वारा ही पोषित हो यही ईश्वरकी इच्छा है। एक दृष्टिसे यह लाभदायक ही है क्योंकि यदि इन सीपीके कीड़ोंके बच्चोंको खानेवाले अणुजीव न हों तो धीरे-धीरे इनकी बड़ी संख्यासे सारी नहर ही भर जाये और उसका बहना रुक जाये।" इस प्रकार एक बच्चेकी भांति ल्यूवेनहुक ईश्वरकी सृष्टिकी प्रत्येक बातको नम्रतासे मानकर उसके अस्तित्वके लाभ को समझता था।

८० वर्षकी अवस्था हो जाने पर उसके दांत हिलने लगे। उसने तुरन्त अपना दाँत उखाड़कर अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे रखा। उसने देखा कि दांतके अन्दरका भाग बहुत खोखला हो गया था और उसमें बहुतसे अणुजीव विद्यमान थे।

८० वर्षकी अवस्थामें भी वह बड़ी मेहनत और लगनसे अपना कार्य करता था। इस अवस्थामें भी वह घंटों अणुवीक्षण यन्त्रके ऊपर अपनी आँखें गड़ाए निरीक्षण कार्य किया करता था। उसके मित्रों ने उसे समझाया कि अब उसे आराम करना चाहिये। उसने उत्तर दिया, "पतझड़में जो फल पकता है वह अधिक स्थायी होता है। उसके जीवनका भी यह पतझड़का समय है।"

ल्यूवेनहुक केवल अपनी खोजें दूसरों को दिखलाना और बतलाना ही जानता था। उसने किसीको अपनी विद्या पढ़ानेकी इच्छा नहीं की। वह कहता था कि यदि मैं एकको पढ़ाऊँगा तो बहुतोंको पढ़ाना पड़ेगा और यह एक दासताका कार्य है। वह सदा अपनेको स्वतन्त्र रखना चाहता था।

सन् १७२३ में ९१ वर्षकी अवस्थामें जब वह अपनी मृत्युशय्या पर था उसने अपने एक मित्रको अपने दो अन्तिम पत्र रॉयल सोसाइटी को भेजनेका काम सुपुर्द किया। इस प्रकार उसने रायल सोसाइटीको अंत तक अपने कार्योंका विवरण भेजकर ५० वर्ष पहिले दिये हुये अपने बचनका पालन किया।

यही उस ल्यूवेनहुकके जीवनकी कहानी है जिसने अणुजीवों की सृष्टिकी सबसे पहले खोज की। ल्यूवेनहुक के बाद कई अधिक प्रसिद्ध अणुजीव खोजक हुये जो ल्यूनवेनहुकसे अधिक योग्य थे और जिनका नाम इस समय तक भी उससे अधिक प्रसिद्ध है किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि उनमेंसे कोई भी ल्यूनवेनहुक की सचाई और लगनकी बराबरी नहीं कर सकता।

जैन प्रश्नशास्त्रका मूलाधार

ले०—पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, न्याय ज्योतिष तीर्थ, साहित्यरत्न, आरा

प्रश्नशास्त्र फलित ज्योतिषका महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें प्रश्नकर्ताके प्रश्नानुसार बिना जन्मकुण्डलीके फल बताया गया है। तात्कालिक फल बतलाने के लिये यह शास्त्र बड़े काम का है। जैन ज्योतिषके विभिन्न अंगोंमें यह एक अत्यन्त विकसित एवं विस्तृत अंग है। उपलब्ध जैन ज्योतिष ग्रन्थोंमें प्रश्न-ग्रन्थों की ही बहुलता है। इस शास्त्रमें जैनाचार्योंने जितनासूक्ष्म फलका विवेचन किया है उतना जैनेतर प्रश्न-ग्रन्थोंमें नहीं है। प्रश्नकर्ता के प्रश्नानुसार प्रश्नोंका उत्तर ज्योतिषमें तीन प्रकारसे दिया जाता है—

(१) प्रश्न कालको निकाल कर उसके अनुसार फल बतलाना। इस सिद्धान्तका मूलाधार समय का शुभाशुभत्व है—समयानुसार तात्कालिक प्रश्न कुंडली बनाकर उससे ग्रहोंके स्थान विशेष द्वारा फल कहा जाता है। इस सिद्धान्तमें मूलरूपसे फलादेश सम्बन्धी समस्त कार्रवाई समय पर ही अवलम्बित है।

(२) स्वर सम्बन्धी सिद्धान्त है। इसमें फल बतलाने वाला अपने स्वर (श्वास) के आगमन और निर्गमन से इष्टानिष्ट फलका प्रतिपादन करता है। इस सिद्धान्तका मूलाधार प्रश्नकर्ताका अदृष्ट है क्योंकि उसके अदृष्टका तत्स्थानीय वातावरणके ऊपर प्रभाव पड़ता है, इसीसे वायु भी प्रकम्पित होकर प्रश्नकर्ताके अदृष्टानुकूल बहने लगती है और चन्द्र एवं सूर्य स्वरके रूपमें परिवर्तित हो जाती है। यह सिद्धान्त मनोविज्ञानके निकट नहीं है। केवल अनुमान पर ही आश्रित है, अतः इसे अति प्राचीनकालका अविकसित सिद्धान्त कह सकते हैं।

(३) प्रश्नकर्त्ताके प्रश्नाक्षरोंसे फल बतलाना है। इस सिद्धान्तका मूलाधार मनोविज्ञान है क्योंकि विभिन्न मानसिक परिस्थितियों के अनुसार प्रश्नकर्त्ता भिन्न-भिन्न प्रश्नाक्षरों का उच्चारण करते हैं।

इन तीनों सिद्धान्तोंकी तुलना करने पर लग्न और स्वर वाले सिद्धान्त प्रश्नाक्षर वाले सिद्धान्तकी अपेक्षा स्थूल और अमनोवैज्ञानिक हैं तथा कभी कदाचित व्यभिचरित भी हो सकते हैं। जैसे उदाहरणके लिये मान लिया कि दस व्यक्ति एक साथ एक ही समयमें एक ही प्रश्नका उत्तर पूछनेके लिये आये; इस समयकी लग्न दसों व्यक्तियोंकी एक ही होगी तथा स्वर भी एकही होगा। अतः सबका फल सदृश ही आवेगा। हाँ, एक दो सेकिण्डका अन्तर पड़नेसे नवांश, द्वादशांशादिमें अन्तर भले ही पड़ जाय, पर इस अन्तरसे स्थूल फल में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इससे सभीके प्रश्नोंका फल हाँ या नाके रूपमें आयेगा। लेकिन यह संभव नहीं कि दसों व्यक्तियोंके फल एक सदृश हों, क्योंकि किसीका कार्य सिद्ध होगा किसी का नहीं भी। तीसरे सिद्धान्तके अनुसार दसों व्यक्तियोंके प्रश्नाक्षर एक नहीं होंगे, किन्तु भिन्न-भिन्न मानसिक परिस्थितियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न होंगे। इससे फल भी दसों व्यक्तियोंके अलग-अलग आयेंगे।

जैन प्रश्नशास्त्रमें प्रश्नाक्षरोंसे ही फलका प्रतिपादन किया गया है, इसमें लग्नादिका प्रपञ्च नहीं है। अतः इसका मूलाधार मनोविज्ञान है। बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों प्रकार की विभिन्न परिस्थितियोंके आधीन मानव मनकी भीतरी तहमें जैसी भावनायें छिपी रहती हैं वैसे ही प्रश्नाक्षर निकलते हैं। मनोविज्ञानके पण्डितों का कथन है कि शरीर यन्त्रके समान है जिसमें किसी भौतिक घटना या क्रियाका उत्तेजन पाकर प्रतिक्रिया होती है। यही प्रतिक्रिया मानवके आचरणमें प्रदर्शित हो जाती है। क्योंकि अबाधभावानुसङ्गसे हमारे मनके अनेक गुप्त भाव भावी शक्ति, अशक्तिके रूपमें प्रकट हो जाते हैं तथा उनसे समझदार व्यक्ति सहजमें ही मनकी धारा और उससे घटित होनेवाले फलको समझ लेता है।

आधुनिक मनोविज्ञानके सुप्रसिद्ध पण्डित फ्रायड के मतानुसार मनकी दो अवस्थायें हैं—सज्ञान और निर्ज्ञान। सज्ञान अवस्था अनेक प्रकारसे निर्ज्ञान अवस्था के द्वारा ही नियन्त्रित होती रहती है। प्रश्नों की छानबीन करने पर इस सिद्धान्तके अनुसार पूछे जाने पर मानव निर्ज्ञान अवस्था विशेषके कारण ही झट उत्तर देता है और उसका प्रतिबिम्ब सज्ञान मानसिक अवस्था

पर पड़ता है। अतएव प्रश्नके मूलमें प्रवेश करने पर संज्ञात इच्छा, असंज्ञात इच्छा, अन्तर्ज्ञात इच्छा और निर्ज्ञात इच्छा ये चार प्रकार की इच्छायें मिलती हैं। इन इच्छाओंमें से संज्ञात इच्छा बाधा पाने पर नाना प्रकार से व्यक्त होनेकी चेष्टा करती है तथा इसीके कारण रुद्ध या अवदमित इच्छा भी प्रकाश पाती है। यद्यपि हम संज्ञात इच्छाका प्रकाश कालमें रूपान्तर जान सकते हैं, किन्तु असंज्ञात या अज्ञात इच्छाके प्रकाशित होने पर भी हठात् कार्य देखनेसे उसे नहीं जान सकते। विशेषज्ञ प्रश्नाक्षरोंके विश्लेषणसे ही असंज्ञात इच्छाका पता लगा सकते हैं। फ्रायडने इसी विषयको स्पष्ट करते हुए बताया है कि मानवका संचालन प्रवृत्ति मूलक शक्तियों से होता है और ये प्रवृत्तियाँ मानवको सदैव प्रभावित करती रहती हैं। मनुष्यके व्यक्तित्वका अधिकांश भाग अचेतन मनके रूपमें है जिसे प्रवृत्तियोंका अशान्त समुद्र कह सकते हैं। इन प्रवृत्तियोंमें प्रधान रूपसे काम और गौण रूपसे अन्य इच्छाओंकी तरंगें उठती रहती हैं। मनुष्यका दूसरा अंश चेतन मनके रूपमें है, जो घात-प्रतिघात करने वाली कामनाओं से प्रादुर्भूत है और उन्हीं को प्रतिबिम्बित करता रहता है। बुद्धि मानवकी एक प्रतीक है। उसीके द्वारा वह अपनी इच्छाओंको चरितार्थ करता है। अतः सिद्ध है कि हमारे विचार, विश्वास, कार्य और आचरण जीवनमें स्थित वासनाओंके प्रति-च्छाया मात्र हैं। प्रश्नाक्षरोंके विश्लेषण द्वारा भूत और भविष्यत् रूपमें स्थित बुद्धिकी समस्त प्रवृत्ति मूलक क्रियाएँ प्रकट हो जाती हैं। सारांश यह है कि संज्ञात इच्छा प्रत्यक्षरूपसे प्रश्नाक्षरोंके रूपमें प्रकट होती है और इन प्रश्नाक्षरोंमें छिपी हुई असंज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओंको उनके विश्लेषणसे अवगत किया जाता है। जैनाचार्योंने प्रश्नशास्त्रमें उक्त असंज्ञात और निर्ज्ञात इच्छा सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया है।

कुछ मनोवैज्ञानिकोंने बतलाया है कि हमारे मस्तिष्क के मध्यस्थित कोषके आभ्यन्तरिक परिवर्तनके कारण मानसिक चिन्ताकी उत्पत्ति होती है। मस्तिष्क में विभिन्न ज्ञान कोष परस्पर संयुक्त हैं। जब हम किसी व्यक्ति से मानसिक चिन्ता सम्बन्धी प्रश्न पूछने जाते हैं तो उक्त ज्ञान कोषोंमें एक विचित्र प्रकारका प्रकम्पन होता है जिससे सारे ज्ञानतन्तु एक साथ हिल उठते हैं। इन तन्तुओंमें से कुछ तन्तुओंका प्रतिबिम्ब अज्ञात रहता है। प्रश्नशास्त्रके विभिन्न पहलुओं में—चर्या, चेष्टा आदि के द्वारा असंज्ञात या निर्ज्ञात इच्छा सम्बन्धी प्रतिबिम्ब का ज्ञान किया जाता है। यह स्वयं सिद्ध बात है कि जितना असंज्ञात इच्छा सम्बन्धी प्रतिबिम्बित अंश—जो छिपा हुआ है, केवल अनुमानगम्य है, स्वयं प्रश्नकर्ता भी जिसका अनुभव नहीं कर पाया है, प्रश्नकर्ताकी चर्या और चेष्टासे प्रकट हो जाता है। जो सफल गणक चर्या —प्रश्नकर्ताके उठने, बैठने, आसन, गमन आदिका ढंग एवं चेष्टा—बात-चीतका ढंग, अंग-स्पर्श, हाव-भाव, आकृति विशेष आदिका मर्मज्ञ होता है वह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा भूत और भविष्यत् काल सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर बड़े सुन्दर ढंगसे दे सकता है। आधुनिक पाश्चात्य ज्योतिषके सिद्धान्तोंके साथ प्रश्नाक्षर सम्बन्धी ज्योतिषकी बहुत कुछ समानता है। पाश्चात्य फलित ज्योतिषका प्रत्येक अंग मनोविज्ञानकी कसौटी पर कस कर रखा गया है, इसमें ग्रहोंके सम्बन्धसे जो फल बत-लाया है वह भी जातक और गणक दोनोंकी असंज्ञात और संज्ञात इच्छाओं का विश्लेषण ही हैं।

जैनाचार्योंने प्रश्नकर्ताके मनके अनेक रहस्य प्रकट करने वाले प्रश्नशास्त्रकी पृष्ठभूमि मनोविज्ञानको ही लिया है। उन्होंने प्रातःकालसे लेकर मध्यान्हकाल तक फलका नाम, मध्यान्हकालसे लेकर सन्ध्याकाल तक नदीका नाम और सन्ध्याकालसे लेकर रातके १०–११ बजे तक पहाड़का नाम पूछ कर प्रश्नका उत्तर दिया है। केवल ज्ञानप्रश्नचूड़ामणिमें प्रश्नकर्ताके प्रश्नके कथनानुसार अक्षरों से तथा अक्षर स्थापित कर उनका स्पर्श कराके प्रश्नोंका फल बताया है। फल अवगत करनेके लिये अ क च ट त प य श अक्षरोंका प्रथम वर्ग, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष अक्षरों का द्वितीय वर्ग, इ ओ ग ज ड द ब ल स अक्षरों का तृतीय वर्ग; ई औ घ झ ढ ध भ व ह, अक्षरोंका चतुर्थ वर्ग और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः अक्षरों का पंचम वर्गकी संज्ञा बताई है। इन पाँचों वर्गों को स्थापित करके आलि-

गित, असंयुक्तादि आठ भेदों द्वारा प्रश्नकर्ताके जीवन-मरण, हानि-लाभ१, संयोग-वियोग एवं सुख-दुःखका विवेचन करना चाहिये। सूक्ष्म फलका ज्ञान करनेके लिये अधरोत्तर और वर्गोत्तर वाला निम्न प्रकार बताया है—

अधरोत्तर, वर्गोत्तर और वर्ग संयुक्त अधरोत्तर इन वर्ग त्रयके संयोगी नौ भंगों—उत्तरोत्तर, उत्तराधर, अधरोत्तर, अधराधर, वर्गोत्तर, अक्षरोत्तर, स्वरोत्तर, गुणोत्तर और आदेशोत्तरके द्वारा अज्ञात और निर्ज्ञात इच्छाओंका विश्लेषण किया है।२

प्रश्नोंके प्रधानतः दो भेद बताये हैं—वाचिक और मानसिक। वाचिक प्रश्नोंके उत्तर उपर्युक्त अधरोत्तर, वर्गोत्तर आदि नियमोंसे दिये गये हैं और मानसिक प्रश्नों के उत्तर प्रश्नाक्षरों परसे जीव, धातु और मूल ये तीन प्रकारकी योनियाँ निकाल कर बताये हैं। अ आ इ ए ओ अः क ख ग घ च छ ज झ ट ठ ड ढ य श ह ये इक्कीस वर्ण जीवाक्षर; उ ऊ अं त थ द ध प फ ब भ व स ये तेरह वर्ण धात्वक्षर और ई ऐ औ ङ ञ ण न म ल र ष ये ग्यारह वर्ण मूलाक्षर संज्ञक कहे हैं। प्रश्नाक्षरों में जीवाक्षरों की अधिकता होने पर जीव सम्बन्धिनी, धात्वक्षरों की अधिकता होने पर धातु सम्बन्धिनी और मूलाक्षरों की अधिकता होने पर मूलाक्षर सम्बन्धिनी चिन्ता होती है। सूक्ष्मताके लिये जीवाक्षरोंके भी द्विपद, चतुष्पद, अपद और पादसंकुल ये चार भेद बताये हैं अर्थात् अ ए क च ट त प य श ये अक्षर द्विपद, आ ऐ ख छ ठ थ फ र ये चतुष्पद; इ ओ ग ज द ब ल स अपद और ई औ घ झ ढ ध भ व ह ये पाद संकुल संज्ञक होते हैं।

द्विपद योनिके देव, मनुष्य, पक्षी और राक्षस ये चार भेद अक्षर सहित बताये गये हैं। सूक्ष्मताके लिये देवों के चार भेद—अकारमें कल्पवासी, इकारमें भवन वासी, एकारमें व्यन्तर और ओकारमें ज्योतिषी देवों की चिन्ता बतायी है। मनुष्य योनिके पाँच भेदोंमें अ क च ट त प य श अक्षर ब्राह्मण योनि संज्ञक; आ ऐ ख छ ठ थ फ र ष क्षत्रिय योनि संज्ञक; इ ओ ग ज ड द ब ल स वैश्य योनि संज्ञक; ई औ घ झ ढ ध भ व ह शूद्र योनि संज्ञक और उ ऊ ङ ञ ण न म अं अः अन्त्यज योनि संज्ञक कहे गये हैं। प्रश्नमें जिस योनिके अक्षरों की अधिकता हो उसी योनि सम्बन्धी चिन्ता समझनी चाहिये। इस मनुष्य योनिमें भी आलिंगित प्रश्नाक्षर होने पर पुरुष सम्बन्धी चिन्ता; अभिधूमित प्रश्नाक्षर होने पर स्त्री सम्बन्धी और दग्ध प्रश्नाक्षर होने पर नपुंसक सम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिये। स्त्री-पुरुषोंके भी रूप रंगको जाननेके लिये विशेष विचार करते हुये लिखा है कि आलिंगितमें गौर वर्ण; अभिधूमितमें श्याम और दग्धमें कृष्ण वर्ण वाले व्यक्ति की चिन्ता रहती है। इसी प्रकार बालक, युवक और वृद्ध सम्बन्धी चिन्ता का अवान्तर प्रश्नाक्षरोंके द्वारा स्पष्ट विवेचन किया है। यों साधारण दृष्टिसे यह विचार केरलके विचारके समान ही प्रतीत होगा, परन्तु केरलमें प्रश्नाक्षरोंके वर्ण और मात्राओंके ध्रुवाङ्कोंसे गणित करके प्रश्नोंका उत्तर दिया गया है। लेकिन जैन प्रश्नशास्त्र में वर्ण-मात्राओं के ध्रुवाङ्कोंके बिना केवल प्रश्नाक्षरोंके सूक्ष्म विचार विनिमय परसे ही प्रश्नोंके उत्तर दिये गये हैं। दूसरी बात यह है कि केरलकारके सामने जैन प्रश्नशास्त्रके चन्द्रोन्मीलन आयज्ञानतिलक आदि ग्रन्थ रहे हैं, यह ग्रन्थ कारके खण्डन रूप "प्रोक्तं चन्द्रोन्मीलनं शुक्लवस्त्रैस्तच्चायुक्तं" इत्यादि वाक्यसे सिद्ध है। इसी प्रकार राक्षस और पक्षि-योनिके भी अनेक भेद प्रभेद करके उत्तर दिये गये हैं। बिना गणितके यह मनुष्य सम्बन्धी विचार अत्यन्त गूढ़ और गम्भीर है, इसके द्वारा जीव सम्बन्धी मानसिक चिन्ताका ज्ञान भली प्रकार हो सकता है। तथा चोरके रंग, आयु, कद, जाति एवं नामादिका ज्ञान भी भले प्रकार हो सकता है।

धातु योनि के दो भेद हैं—धाम्य और अधाम्य। त द

---

१ "एतान्यक्षराणि सर्वांश्च कथकस्य वाक्यतः प्रश्नाद्वा गृहीत्वा स्थापयित्वा सुष्ठु विचारयेत्। तद्यथा—संयुक्तः, असंयुक्तः, अभिहतः, अनभिहतः, अभिघातितः, इत्येतान्पंचालिंगिताभिधूमितदग्धांश्च त्रीन् क्रिया विशेषान् प्रश्ने तावद्विचारयेत्।"

२ अहरोत्तर वग्गोत्तर वग्गेण य संजुतं अहरम्।
जाणइ पण्णायंसो जाणइ ते हावणं सयलम्॥

फोटोग्राफ़ी संबंधी कुछ शब्दों की व्याख्या

[डाक्टर गोरख प्रसाद]

एक्सपोज़र काउंटर (exposure counter)—काउंटर का अर्थ है गिनने वाला। एक्सपोज़र काउंटर एक ऐसा प्रबंध है जो बराबर सूचित करता रहता है कि कितनी बार प्रकाश-दर्शन दिया जा चुका है। साधारण कैमेरों में यह प्रबंध नहीं रहता। उनमें एक खिड़की लगी रहती है जिसपर लाल सेलुलॉयड लगा रहता है और इसके द्वारा फिल्म के साथ लगे काग़ज़ पर छपा नंबर पढ़ा जा सकता है। पहले जो फिल्म बनते थे वे लाल रोशनी से खराब नहीं होते थे परन्तु अब ऐसे भी फिल्म (पैनक्रोमैटिक फिल्म) बनते हैं जो लाल रोशनी से खराब हो जाते हैं। इस लिये या तो लाल खिड़की पर काला चिपकाऊँ फीता चिपकाये रहना पड़ता है जिसे केवल प्रकाश-दर्शन देने के बाद फिल्म के लपेटते समय संख्या देखने को खोलते हैं या खिड़की पर ढक्कन लगा रहता है या कैमेरे में एक्सपोज़र काउंटर लगा रहता है जिसमें कोई सुई गिनतियों पर घूमती है या कोई अन्य उचित प्रबंध रहता है। यदि कैमेरे में फिल्म काउंटर हो तो अच्छा ही है। न हो तो भी काम चल सकता है।

डबल एक्सपोज़र (double exposure)--प्रतिरोध कैमेरों में कोई ऐसा प्रबंध भी रहता है जिससे भूल से फिल्म के एक ही भाग पर एक बार से अधिक प्रकाश-दर्शन न दिया जा सके। सावधान व्यक्तियों से भी कभी न कभी ऐसी गलती हो ही जाती है कि वे प्रकाश-दर्शन देने के बाद फिल्म लपेटना भूल जाते हैं। इस लिये यदि कैमेरे में कोई ऐसा प्रबंध लगा रहे कि प्रकाश-दर्शन देने के बाद बिना फिल्म लपेटे फिर शटर चले ही नहीं तो अच्छा ही है।

व्यू फ़ाइंडर (view finder)—प्रत्येक हैंड कैमेरे में कोई न कोई ऐसा प्रबंध अवश्य रहता है जिससे पता चले कि प्लेट (या फिल्म) पर किस विषय का चित्र आ रहा है। रिफ्लेक्स कैमेरे में तो लेंज़ से बनी मूर्ति ही अंधे शीशे पर पड़ कर फोटोग्राफ़र को दिखलाई पड़ती है। इस लिये उसमें अलग दृश्यबोधक की आवश्यकता नहीं पड़ती। बकसनुमा कैमेरों में दो दृश्यबोधक लगे रहते हैं जिनमें से एक खड़े चित्र लेते समय दिखलाई पड़ता है, दूसरा बेंड़े चित्र लेते समय। फ़ोल्डिंग कैमेरों में एक ही दृश्यबोधक रहता है जिसे आवश्यकता पड़ने पर घुमा कर बेंड़ा किया जा सकता है। ऐसे दृश्यबोधक को रिवर्सिबिल (reversibile) दृश्यबोधक कहते हैं।

दृश्यबोधक की बनावट कई प्रकार की होती है। वे या तो कैमेरे की तरह हो सकते हैं जिनमें एक ओर सस्ता लेंज़ और दुसरी ओर अंधा शीशा (ground glass) लगा रहता है। बीचमें दर्पण रहता है जिसमें चित्र पड़ी सतह पर दिखलाई पड़े। ऐसे दृश्यबोधक को ग्राउंड ग्लास व्यू फाइंडर (ground glass view finder) कहते हैं। सस्ते कैमेरों में ऐसा दृश्य बोधक रहता है।

यदि उपर्युक्त दृश्यबोधक में अंधे शीशे के बदले उन्नतोदर (बीच में मोटा) सस्ता लेंज लगा दिया जाय तो चित्र बहुत चटक दिखलाई पड़ता है। इस लिए ऐसे दृश्य बोधक को ब्रिलियंट (brilliant) व्यू फाइंडर कहते हैं। फोल्डिंग कैमेरों में साधारणतः ऐसा ही दृश्य बोधक रहता है।

उपर्युक्त दोनों दृश्यबोधकोंमें दर्पण लगा रहता है, और

प ब उ अं सा अक्षर धाम्य और घ थ ध फ भ ऊ व ए अक्षर अधाम्य संज्ञक हैं। सूक्ष्मताके लिये धाम्यके सुवर्ण, रजत, ताम्र, काँसा, लोहा, सीसा, त्रिपु और रैतिका ये आठ भेद बताये हैं और इनका क्रमाक्षर विभाजन बड़ा मनोवैज्ञानिक है। इसी प्रकार मूल योनिके वृक्ष, गुल्म, लता और बल्ली ये चार भेद बताये हैं तथा इनके कई भेद प्रभेद भी स्थिर कर अक्षर विभाजन किया हैं; इस पर से मानसिक मूल सम्बन्धी चिन्ता का ज्ञान बहुत अच्छी तरहसे हो सकता है। वस्तुतः जैनाचार्यों ने मानसिक प्रश्नोंका बड़ा ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। प्रश्नोंकी सभी प्रक्रियाओंका मूलाधार मनोविज्ञान ही लिया है। वर्ण विभाजनमें जो जो संख्याएँ रखी हैं वे अत्यन्त सार्थक और मन की अव्यक्त भावनाओं को प्रकाशित करने वाली हैं।

ऐसे दृश्यबोधकों के इस्तेमाल में दृश्यबोधक और इस लिए कैमेरेको कमरके पास रखना पड़ता है परन्तु कुछ दृश्यबोधकों में दर्पण नहीं लगा रहता और उनको इस्तेमाल करनेके लिये दृश्यबोधक और इस लिये कैमेरेको आँखके पास रखना पड़ता है। ऐसे दृश्यबोधकों को डाइरेक्ट विज़न (direct vision) दृश्यबोधक कहते हैं। इस शब्द का अर्थ है अवक्रदर्शी या सीधा देखने वाला। अवक्रदर्शी दृश्यबोधकोंमें सबसे सरल वह है जिसे वायरफ्रेम (wire-frame) अर्थात तारके चौखटे वाला दृश्यबोधक कहते हैं। इसमें एक ओर तार का चौखटा रहता है और दूसरी ओर आँखकी स्थिति बतलाने के लिये कोई छेद। काम में सुविधा जनक और बनाने में सस्ता होते हुये भी बहुत से कैमेरों में अन्य जाति का दृश्यबोधक लगाते हैं क्योंकि ऐसा कैमेरा बनाना जिसमें चित्रके नापका चौखटा हो, जो दृढ़ हो और जो मुड़कर थोड़े स्थान में आ सके सरल नहीं है।

ऑप्टिकल व्यू फाइंडर (optical view finder)—तारके चौखटेके बदले अकसर नतोदर (बीच में पतला) सस्ता लेंज़ लगा दिया जाता है। तब इसे ऑप्टिकल फाइंडर कहते हैं। अकसर आँख रखनेके स्थान पर साधारण छेद रखनेके बदले एक छोटा सा उन्नतोदर (बीच में मोटा) लेंज़ लगा देते हैं।

पैरालैक्स करेकशन—दृश्यबोधक का लेंज़ और कैमेरे का लेंज़ ठीक एक ही स्थान पर तो रह नहीं सकता। इस लिये दृश्यबोधक और कैमेरे के चित्रों में ज़रा-सा अंतर रहता है और विषय ज्यों-ज्यों समीप आता जाता है त्यों-त्यों यह अंतर बढ़ता जाता है। बहुमूल्य कैमेरोंमेंसे कुछमें ऐसा प्रबंध रहता है कि यह दोष मिटाया जा सकता है। इस दोष का नाम है पैरालैक्स और इसके मिटाने को पैरालैक्स करेकशन (parallax corection) कहते हैं। एक लेंज वाले रिफ्लेक्स कैमेरोंमें इसकी आवश्यकता नहीं रहती।

पोर्ट्रेट अटैचमेंट—जैसा पहले बतलाया जा चुका है, जब कैमेरे में लेंज़ और प्लेट (या फिलम) के बीच की दूरी को घटाने बढ़ाने के लिए कोई प्रबंध नहीं रहता, या रहता भी है तो काफ़ी मात्रा में नहीं रहता, तो लेंज़ के ऊपर एक सहायक लेंज़ लगा देते हैं जिसे पोर्ट्रेट अटैचमेंट या सप्लिमेंटरी (supplementary) लेंज़ कहते हैं। कुछ लोग नाम के कारण भ्रम में पड़ जाते हैं और समझते हैं कि बिना पोर्ट्रेट अटैचमेंट लगाये पोर्ट्रेट अर्थात मनुष्य-चित्र खींचा ही नहीं जा सकता, परन्तु बात ऐसी नहीं है।

पोर्ट्रेट लेंज़ (portrait lens)— जब लेंज़ अनैस्टिगमैट नहीं बन पाते थे तब मनुष्य चित्रण के लिए विशेष लेंज़ बनते थे जो तेज़ तो होते थे, परन्तु बहुत भारी और लंबे फोकल-लंबान के कारण अन्य विषयों के लिए अनुपयुक्त होते थे। इन्हें पोर्ट्रेट लेंज़ कहते थे। अब भी ये सेकंड-हैंड (पुराने) मिलते हैं, परन्तु अनैस्टिगमैट की प्रतिद्वंदिता से इनका बनना बंद हो गया है।

डबलेट (doublet)लेंज़—रैपिड रेक्टिलिनियर को कभी-कभी डबलेट लेंज़ भी कहते हैं।

सीमेंटेड लेंज़—बहुत से लेंज़ों के कुछ अवयव कैनाडा बालसम से इस प्रकार चिपकाये रहते हैं कि वे एक ही शीशा जान पड़ते हैं।

सीमेंटेड का अर्थ है चिपकाये हुए। कुछ अनैस्टिगमैट बिना चिपकाये हुए शीशों के भी बनते हैं। यदि इस तरह का अनैस्टिगमैट लिया जाय तो अच्छा है क्योंकि भारत वर्ष की गरमी और बरसात के कारण चिपकाने वाला मसाला कुछ वर्षों में खराब हो जाता है। परन्तु इतने अधिक लेंज़ों में कोई न कोई अवयव चिपकाया रहता है कि इस बात पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जा सकता।

सिमेट्रिकल (symmetrical) लेंज़—सिमेट्रिकल का अर्थ यह है कि दोनों आधे एक ही तरह के हैं। साधारणत: सिमेट्रिकल लेंज़ से रैपिड रेक्टीलिनियर लेंज़ समझा जाता है, परन्तु सिमेट्रिकल अनैस्टिगमैटसे ऐसा अनैस्टिगमैट लेंज़ समझना चाहिये जिसके दोनों आधे एक ही तरह के हैं और इस लिए आधा लेंज़ अलग भी लंबे फोकल-लंबान के लेंज़ की तरह काम में लाया जा सकता है।

सप्लिमेंटरी (supplementary = सहायक) लेंज़-साधारणतः सप्लिमेंटरी लेंज़से पोर्ट्रेट अटैचमेंट समझा जाता है, परन्तु कैमेरे के फोकललंबान को घटाने बढ़ाने के लिए अन्य सहायक लेंज़ोंका प्रयोग किया जा सकता है। इनका प्रयोग बहुत कम होता है और आरंभ में इनको

न खरीदना चाहिये।

टेलिफ़ोटो लेंज़ (telephoto)—दूरस्थ विषयों का फोटो टेलिफ़ोटो लेंज़ से बड़े पैमाने पर उतरता है, यह पीछे खरीदा जा सकता है।

लेंज़ हुड (Lens-hood)—फ़ोटो लेते समय लेंज़ को धूप या कड़ी रोशनी से बचाने के लिए एक चोंगा (=हुड) का इस्तेमाल किया जा सकता है। उपयोगी वस्तु है परंतु खरीदने के बदले अपने हाथ से भी काले काग़ज़ का बनाया जा सकता है।

फ़िलटर (filter)—साधारणतः फ़ोटोग्राफ़ीमें पीला, हरा और लाल विषय आवश्यकता से अधिक काले दिखलाई पड़ते हैं। नीला आवश्यकता से अधिक सफ़ेद उतरता है, यहाँ तक कि नीले आकाश में सफ़ेद बादलों के रहने पर दृश्य के चित्रों में बादल मिट जाता है। इसका उपाय यह है कि लेंज़ के सामने पीला शीशा (जिसे फिलटर या प्रकाश-छनना कहते हैं) लगा दिया जाय। पीले के बदले अन्य रंगों के प्रकाश-छनने भी लगाये जाते हैं। इन पर ब्योरेवार विचार पीछे किया जायगा। कई प्रकार के चित्रों के लिए विशेष रंगों के प्रकाश-छननों का प्रयोग आवश्यक है, परंतु आरंभ में इनके मोल लेने की आवश्यकता नहीं है।

डिफ्यूज़न डिस्क (diffusion disc)—लेंज़ के सामने इसे लगा देने से चित्र कुछ अतीक्ष्ण हो जाता है। बहुत लोगों को ऐसे चित्र अधिक पसंद आते हैं। आपको भी ऐसे चित्र अच्छे लगें तो एक डिस्क ऐसा खरीद लें, परंतु इसे बाद में ही खरीदना अच्छा होगा।

वायर (wire) या केबुल रिलीज़ (cable release) —शटर के घोड़ों को अँगूठे से दबाने में जब कैमरे के हिलने का डर रहता है तो इसे अक़सर एक विशेष प्रकार से बने तार की सहायता से दबाया जाता है जिसे केबुल रिलीज़ (=शटर-मोचक तार) कहते हैं। प्रायः सभी कैमरों के साथ मिलते हैं।

बॉडी रिलीज़ (body release)—शटर के घोड़े को अँगूठे से दबाने से कैमेरा के हिल जाने का डर रहता है। इस लिये कुछ कैमेरों में कैमेरे के उदर (body) में सुविधाजनक एक दूसरा घोड़ा लगा रहता है। जिसके दबाने से शटर का घोड़ा दबता है। उदर में लगे घोड़े को बॉडी रिलीज़ कहते हैं। कैमेरे में यह लगा हो तो बहुत सुविधा होती है।

डिलेड ऐकशन (delayed action)—जिस शटर में डिलेड ऐकशन का प्रबंध रहता है उस शटर में ऐसा भी किया जा सकता है कि घोड़ा दबाने के दस-पंद्रह सेकंड बाद शटर खुले और बंद हो, इतनी देर में फोटोग्राफ़र स्वयं कैमेरे के सामने इच्छित स्थान में जाकर खड़ा हो सकता है और इस प्रकार बिना दूसरे की सहायता लिए अपना ही चित्र खींच सकता है या चित्र में अपने को भी कहीं रख सकता है। इसकी कभी-कभी ही आवश्यकता पड़ती है, इसलिये इसके लिये विशेष चिंता की आवश्यकता नहीं है। (डिलेड = विलंब से होनेवाली; ऐकशन = क्रिया)

सेल्फ़-टाइमर (self-timer)—जिन शटरों में डिलेड ऐकशन का प्रबंध नहीं रहता उनके शटर मोचक तार में सेल्फ़-टाइमर लगा देने से वही काम होता है जो डिलेड ऐकशन से। सेल्फ़ टाइमर जब चाहे तब मोल लिया जा सकता है क्योंकि यह अलग से बिकता है।

रैक ऐंड पिनियन फोकसिंग (rack and pinion focusing)—अधिकांश प्लेट कैमेरों में लेंज़ को प्लेट से समीप या दूर करने के लिये कैमेरे के अग्रभाग में दाँतीदार पट्टी (रैक) और दाँतीदार छड़ (पिनियन) लगा रहता है। छड़ के सिरे पर घुंडी लगी रहती है जिसके घुमाने से अग्रभाग आगे-पीछे चलता है। इससे बड़ी सुविधा होती है।

लिवर (lever) फोकसिंग—कुछ कैमेरों में कैमेरे के अग्र भाग को आगे-पीछे खिसकाने के लिये एक काँटा लगा रहता है जिसके खिसकाने से लेंज़ थोड़ा-सा आगे पीछे चल सकता है। हाथ से खिसकाने से तो यह प्रबंध अवश्य ही अच्छा है।

फ़ोकसिंग माउंट (focusing mount), फोकसिंग जैकेट (focusing jacket) या हेलिकल (Helical) फ़ोकसिंग—इस प्रबंध में लेंज़ चूड़ीदार नली में जड़ा रहता है। इस नलीको घुमाने से या नली की ढिबरी को घुमाने से लेंज़ थोड़ा बहुत आगे पीछे

चल सकता है। केवल बहुमूल्य कैमेरों में ही ऐसा प्रबंध रहता है।

ग्राउंड ग्लास फ़ोकसिंग स्क्रीन (ground glass focusing screen)—शीशे, एमरी पाउडर आदि जैसे किसी अत्यंत कड़े पदार्थ के चूर्ण से घिस कर अंधा कर देने से ग्राउंड ग्लास (= अंधा शीशा) बनता है। कैमेरे की पीठ में प्लेट के स्थान पर पहले ऐसा शीशा लगा कर देख लिया जाता है कि चित्र ठीक आ रहा है या नहीं, फ़ोकस ठीक है या नहीं। इसलिए ऐसे अंधे शीशे को फोकसिंग-स्क्रीन (फ़ोकस-पर्दा) कहते हैं। प्रत्येक प्लेट कैमेरा में यह रहता है।

थ्री पॉइंट फ़ोकस (three point focus)—विषय की दूरी के हिसाब से लेंज़ और प्लेट (या फिल्म) के बीच की दूरी ठीक करनी पड़ती है। जब विषय की दूरी फ़ुट में न बतला कर उसे केवल तीन समूहों में बाँट दिया जाता है तो थ्री (= तीन) पॉइंट (= विंदु) फोकस कहा जाता है। ये तीन विंदु उदाहरणतः दृश्य, मनुष्य-समूह, और पोर्टेट हो सकते हैं। इससे अभिप्राय केवल यही है कि यह न सोचना पड़े कि विषय कितनी दूर पर है। यह कोई बड़ी बात नहीं है--मुझे तो यह बच्चों का खिलवाड़-सा जान पड़ता है। कुछ कैमेरों में टू (= दो) पॉइंट फोकसिंग रहता है।

रेंज फ़ाइंडर (range finder)- रिफ्लेक्स कैमेरों को छोड़ अन्य कैमेरों में (विशेषकर फिल्म कैमरों में) फोकस ठीक करने के लिए विषय की दूरी का अनुमान करना पड़ता है। परंतु रेंज-फाइंडर (दूरी-मापक) से यह दूरी वस्तुतः नापी जा सकती है। यह अलग भी बिकता है और बहुमूल्य कैमेरों में लगा भी रहता है। उपयोगी वस्तु है, परंतु सस्ते कैमेरे वालों के लिये बहुत आवश्यक नहीं है (कारण फोकस की गहराई के अध्ययन करने पर पता चलेगा।

डेप्थ ऑफ़ फोकस इंडिकेटर (depth of focus indicator)--यह फोकस की गहराई बतलाता है (यह एक आगामी अध्याय में बतलाया जायगा)। बहुत उपयोगी नहीं है।

राइज़िंग फ्रंट(rising front)—यदि कैमेरे का अग्रभाग ऊपर उठ सकता हो तो उसे राइज़िंग फ्रंट (= उठनाग्र) कहते हैं। ऊँचे मकानों का फोटो लेने में इसकी आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक स्टैंड कैमेरा में लेंज़ काफ़ी ऊँचा उठाया जा सकता है। हैंड कैमेरों में से अच्छे प्लेट कैमेरों में उठनाग्र रहता है। परंतु अकसर लेंज़ काफी ऊँचा नहीं उठ सकता। फ़िल्म कैमेरों में उठनाग्र नहीं रहता। उठनाग्र न रहने से जो दोष उत्पन्न होता है वह एनलार्ज करते समय मिटाया जा सकता है, इसलिये उठनाग्र रहने के विषय में विशेष चिंता न करनी चाहिये। रहे तो अच्छा ही है।

क्रॉस फ्रंट (cross-front)—यदि कैमेरे का अग्र भाग अगल-बगल चल सके तो उसे क्रॉस-फ्रंट (= पार्श्व चलाग्र) कहते हैं। बेंड़ा चित्र खींचते समय इससे उठनाग्र का काम निकलता है, इसीलिये पार्श्व चलाग्र बनता है (ऊपर देखो)।

ट्रिपॉड (tripod)--स्थिर विषयों का चित्र लेते समय जब प्रकाश दर्शन $\frac{1}{10}$ सेकंड से अधिक देना पड़ता है तो कैमेरे को किसी दृढ़ वस्तु पर टिकाना पड़ता है और इसके लिये सबसे सुगम वस्तु तिपाई (ट्रिपॉड) है, हैंड कैमेरा से लिये गये अधिकांश चित्रों में बिना तिपाई के भी काम चल जाता है; इसलिए इसे पीछे खरीदा जा सकता है। परंतु जब कभी भी तिपाई खरीदिये तो अच्छी तिपाई लीजिये। सस्ते दाम की तिपाई में शीघ्र ही हचक पैदा हो जाती है या आरंभ से ही (कमज़ोर होने के कारण) वह हिला करती है। ऐसी तिपाई अधिकांश विषयों के लिए बेकार होती है। अधिक जोड़ वाली तिपाई में यह गुण अवश्य होता है कि वे मुड़ कर बहुत छोटी हो जाती हैं, परंतु उपयोगिता की दृष्टि से कम जोड़ों वाली, दृढ़ और लकड़ी की बनी तिपाई अधिक अच्छी होती है।

खुलने पर तिपाई की ऊँचाई इतनी होनी चाहिए कि कैमरा आँखों की ऊँचाई तक पहुँच जाय। ऐसा होने से फोकस देखने के लिए झुकना भी न पड़ेगा; परंतु इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इतनी ऊँचाई से ही स्वाभाविक चित्र आ सकेंगे।

स्टैंड कैमेरा के साथ तिपाई अवश्य रहती है।

परमाणु-बम बनानेके प्रयोग

जर्मनोंसे वैज्ञानिकों के संघर्ष की कहानी

(श्री ई० डी० मास्टरमेन द्वारा)

अब उस बातका रहस्योद्घाटन किया जा सकता है कि पाँच वर्ष तक किस प्रकार ब्रिटिश तथा जर्मन परमाणु-बम बनानेके लिये परस्पर स्पर्धा करते रहे। यदि इनमें से कोई भी पक्ष अपने प्रयत्नोंमें सफल हो जाता तो दूसरे पर सहज ही में विजय प्राप्त कर लेता।

संसार भरके वैज्ञानिक एक विशेष प्रकारके रासायनिक जल पर प्रयोग करते रहे हैं और उनका दृढ़ विश्वास रहा है कि यदि इसका व्यवहार वे बलपूर्वक यूरेनियम धातु पर कर सकें तो उन्हें यूरेनयिमके परमाणुको पृथक करनेमें सफलता मिल जायगी और ऐसा करने में भयानक विस्फोट जनित एक महान शक्तिका भी प्रादुर्भाव हो सकेगा।

इस दिशामें प्रयत्न जारी रखनेके लिये जर्मन वैज्ञानिकों को केवल रासायनिक जलकी पर्याप्त मात्रामें आवश्यकता थी। उस पदार्थ का उत्पादन एक नार्वे निवासी जुकेनमें भारी मात्रामें कर रहा था। उसके कारखाने पर अधिकार होने पर जर्मन वैज्ञानिक अपने प्रयोग आगे बढ़ानेके लिए तैयार हो गये। कारखानेके मैनेजरसे जब जर्मन अधिकारियों ने प्रश्न किया तो देशभक्त होनेके कारण उसने अधिक नही बताया। तब जर्मन अधिकारियों ने कारखाने पर पहरा बैठा दिया, किन्तु प्रोफेसर ट्रेंस्टाड द्वारा कागज नष्ट कर दिये गये और उन्हें कोई सहायता नहीं प्राप्त हो सकी।

प्रोफेसर भाग कर इंग्लैंण्ड पहुँचा

इसी बीच में प्रोफेसर ट्रेंस्टाड भाग कर इंग्लैण्ड पहुँचा और वहाँ उसने प्रयोगों को आगे बढ़ाना आरम्भ कर दिया। जल, स्थल तथा हवाई सेनाके बृटिश वैज्ञानिकोंकी सहायता से परमाणु-बम बनानेकी प्रतियोगिता तेजी से प्रारम्भ हो गयी।

अब प्रश्न था कि जुकेन में रासायनिक जल उत्पन्न करनेका जो कारखाना जर्मनोंके कब्जेमें पहुँच चुका था उसे किस प्रकार नष्ट किया जाय। १५ ब्रिटिश वैज्ञानिकों को इस कार्यके लिये चुना गया। दो हैलीफेक्स बम वर्षक चल पड़े और उनके पीछे २५ छतरी धारी अंग्रेज ग्लाइडरोंमें थे। इसी समय एक जबरदस्त तूफान आया। इसमें एक वायुयान नष्ट हो गया और दूसरेको विवश होकर समयसे पहले ही ग्लाइडर को छोड़ देना पड़ा। ग्लाइडर स्टेवेंजरके निकट भूमिसे लगा, किन्तु यात्री जानते न थे कि वे कहां हैं। वे स्टेवेंजरकी कड़कड़ाती सर्दीमें भोजन, गोली-बारूद तथा तम्बुओंके बिना कई दिन तक भटकते रहे। चौथे दिन श्वेत झंडा दिखा कर उन्होंने जर्मनोंके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मन अफसरका आदेश मिलने पर टामीगनें गर्ज उठीं और पच्चीसों व्यक्तियोंके शव भूमि पर गिर पड़े।

इसके उपरान्त ६००० जर्मन सैनिक पहुँच गये और उन्होंने वहांका कोना-कोना छान डाला कि कहीं और अंग्रेज सैनिक कारखाना नष्ट करनेके इरादे से छिपे तो नहीं हैं।

कारखाना नष्ट करनेका दूसरा प्रयत्न

उपर्युक्त दलका मार्ग-प्रदर्शन ४ नारवेजियनों ने किया था और स्काटलैंड से रेडियो द्वारा आदेश मिलने पर वे अपने शरण-स्थानों में ही छिपे रहे। कई महीने बाद छः छतरीधारी सैनिक कारखाना नष्ट करनेके इरादे से उतरे।

कारखाने पर जबर्दस्त पहरा रहने पर भी ये छः व्यक्ति उसमें घुसकर पहुँच गये। चारों नार्वेजियन टामीगन लिये बन्दूक तान कर बैठ गये। जर्मनों ने जिस तिजौरी में रेडियम और यूरेनियम छिपा कर रखा था उनमें वे विस्फोटक पदार्थ लगा ही रहे थे कि एक कार्यकर्त्ता ने भीतर प्रवेश किया।

उन्होंने उससे कहा "चुपचाप बाहर निकल जाओ। हम कारखानेको नष्ट कर रहे हैं। यह कार्य हम नार्वेके हित साधनके लिये कर रहे हैं।"

कार्यकर्त्ता ने उत्तर दिया "बहुत खूब मित्रो, पूरी सफाई से करना।"

२० मिनट बाद जर्मनोंके पास न तो रासायनिक जल ही था और न यूरेनियम, रेडियम अथवा वह प्रयोगशाला ही। ("डेली एक्सप्रेस से")

विदेशोंमें गया हुआ भारतीय विज्ञान

[ले०—श्री श्यामचन्द्र नेगी और ओम् प्रकाश]

"भारत संसारकी ज्ञानमाता है" यह अनेक महामान्य विदेशियोंने कहा है। लिओन डेलबसको लीजिये, वह कहता है—"आप अमेरिकामें जाइये तो वहां भी आपको यूरोपकी तरह भारतकी सभ्यताका प्रभाव दिखाई देगा।" भारतकी सभ्यता वर्तमान तथा विनष्ट सभी सभ्यताओंसे प्राचीन है। किन्तु विदेशियोंने ईसासे लगभग छः सदी पूर्व विख्यात तक्षशिला विश्वविद्यालयके दिनोंमें, भारतके अक्षय ज्ञानकोषके अमूल्य रत्नोंको ग्रहण किया था और ज्ञान यात्राओंको प्रारम्भ किया था। यहाँ हम यह बतायेंगे कि विदेशी हमारे विज्ञानके कितना ऋणी हैं, जो कि हमारे विशाल और विविध ज्ञानका अंशमात्र है। इतिहासके पृष्ठ इसके साक्षी हैं कि आजके संसारमें कोई ऐसी सभ्यता नहीं है जिसने हमारे ज्ञानको ग्रहण नहीं किया। यही नहीं, अपितु यह परम्परा आज भी बिना व्यवधान के चली आ रही है।

चीन

चीनने भारतसे न केवल आध्यात्मिक ज्ञानकी शिक्षा ग्रहण की है अपितु विज्ञान की भी। जिस तरह आज कल एशियाके लोग किसी विकट-व्याधि की चिकित्सा के लिये यूरोप जाते हैं उसी प्रकार प्राचीन समयमें विदेशी भारत में आते थे। चीनका राजकुमार अपनी आँखकी भयानक बीमारीके इलाजके लिये अपने देश से निराश होकर तक्षशिलामें आया था, जहांसे वह पूर्ण स्वस्थ होकर लौटा था। ७वीं शताब्दिमें और उसके बहुत समय बाद तक भी नालन्दा विश्वविद्यालयके स्नातक चीनकी ज्योतिष सम्बन्धी संस्थाओंमें कार्य करते थे। प्रायः वे उनके अध्यक्ष होते थे।

ग्रीस

प्राचीन ग्रीस निवासी हैलेन्स लोगोंमें यूरोपमें सर्वप्रथम जागृति हुई थी। पीकौक ने 'ग्रीसमें भारत' नामक अपनी किताबमें लिखा है कि लार्ड बायरन अपनी किताब The tiles of greece के लिये भारत का कितना ऋणी है। उन्होंने यहाँसे गणितशास्त्र और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धतिको सीखा था। डा० थीबो ने कहा है कि न केवल ग्रीस अपितु सम्पूर्ण संसार रेखागणितके लिये भारतका सदैव ऋणी रहेगा। श्रौव को जब यह पता लगा था कि पाइथागोरसका सिद्धान्त उस (५८२-५०० ई० पूर्व) से अनेक वर्ष पूर्ववर्ती सूत्र-सूत्रोंमें लिखा है तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ था। डा० मैक्डौनलका कथन है कि पाइथागोरस ने भारतसे गणित सीखी है। पाश्चात्य चिकित्साके जन्मदाता बुकरात (Hippocrates) ने भी आयुर्वेदका आश्रय लिया था। सिकन्दर महान् (३२६ ई० पूर्व) भी अपने साथ भारतीय वैद्योंको रखता था। न्यारकस्, जिसने सिकन्दर को भारतीय युद्धोंमें सहयोग दिया था और जो ३२५ ई० पूर्व तक यहां रहा था, कहता है कि ग्रीक लोगोंको सर्पदंशकी चिकित्सा नहीं आती थी जब कि भारतीय इस विद्यामें पूर्ण निष्णात हैं। थियोफरेशस ३ श. पूर्व भारतमें आयुर्वेदके अध्ययनके लिये आया था। डा० रौयल कहता है कि डायस्कोरोडीस (१ ई० पूर्व) ने भारतके द्रव्यगुणशास्त्रसे बहुत कुछ ग्रहण किया था।

मिस्र

हैलन्स लोगों की ज्ञान की आभा मन्द हो गई और नष्ट हो गई; परन्तु वह ज्ञान मिस्रमें चला गया। सिकन्दर की ग्रीसविजयके बाद अनेक विद्वान् वहां जाकर बस गये और सिकन्दरियाके प्रसिद्ध पुस्तकालयका निर्माण हुआ। मिस्रके लोगों ने अपने ज्ञान की वृद्धि की और भारतीय विज्ञानके सहयोगसे अपने ज्ञान की परिपुष्टि की। अशोकके धर्मप्रचारक स्थविर-पट्टके द्वारा हमारा आयुर्वेद मिस्रमें पहुँचा, जिसके नामसे बिगड़कर थेराप्युटिक्स (therapeutics) बना है। सिकन्दरिया का निवासी एटिअस (३६५-५४५) आयुर्वेद में पूर्णतया निपुण था। तीसरी सदीमें उज्जैनके व्यापारियोंके द्वारा मिस्र लोगों ने भारतीय गणितको सीखा था।

रोम और सीरिया

मिस्र का पतन हो गया और हमारा विज्ञान रोम और सीरियामें पहुँच गया। छठी सदीके लगभग भारतीय गणित और ज्योतिष की सूक्ष्म खोजों ने सीरियन और यहूदियोंको बहुत प्रभावित किया था।

अरब

इस्लाम के उदय के साथ अरब ने हमारी ज्ञानज्योति को ग्रहण किया। यद्यपि सीरियाने अरबका भारतके विद्वानोंसे परिचय करवाया था तथापि इसका मुख्य श्रेय खलीफा अलमन्सूर (७५३-७७४ई०) और हारूँ अलरशीद (७८०-८०८) को ही, क्योंकि वे ज्ञान के परम प्रेमी और विद्वानों के आश्रयदाता थे। उनके यहां बगदाद के दरबार में भारतीय विद्वान थे। अलमन्सूर के यहां कर्क था और हारूँ के यहाँ चाणक्य और मैनाक थे। अरब के विद्वान् बड़ी तत्परता से मौलिक कार्य कर रहे थे और संस्कृत के अनेकों ग्रन्थों को अनूदित कर रहे थे। कर्क के पास एक ज्योतिष की 'बृहत सिन् हिन्द' नामक किताब थी। जो सम्भवतः भारत के प्रतिष्ठित ज्योतिषी वराहमिहिर (५०५-५८७ई०) की 'बृहत्संहिता' थी। सचाऊ ने "अलबूनी का भारत-वर्णन" नामक अपनी किताब में लिखा है कि अरबों ने ज्योतिष के व्यवस्थित ज्ञान को ब्रह्मगुप्त (७शताब्दी) से सीखा है। हमारा इतना गहरा प्रभाव था कि अरब कई सदियों तक उज्जैन से देशान्तर दूरी को नापते थे, जो भारत का ग्रीनविच था। ज्योतिष के अतिरिक्त अरबोंने भारतसे गणित को सीखा था। हैवल कहता है कि अरबों ने भारत से संख्याओं और दशमलवका ज्ञान प्राप्त किया था। ८वीं सदी में मुहम्मद इब्नू मूसा ने अरबी में बीजगणित की प्रथम किताब लिखी थी, जो कि भारतीय नक्षत्र विद्या से ग्रहण की गई थी। लगभग ७वीं सदी में उन्होंने भारत से भौतिक विज्ञान को सीखा था। चीन के प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसांग ने, जो (७शताब्दी) कि भारतमें आया था, लिखता है कि नालन्दा विश्व-विद्यालय में भौतिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। उन्होंने भारतीय वैद्य चाणक्य और मैनाकके द्वारा बहुत कुछ सीखा था। उन्होंने चीर-फाड़ी इत्यादिके उत्तम ग्रन्थ चरक और सुश्रुतके अनुवाद में हारूँ को सहायता दी थी। उन्हें ने भारतसे रसायनभी सीखी थी। स्पेनका एक सैरेसीन भारतीय रसायनसे परिचित था। यही नहीं अपितु 'तलिफ़ सरीक' नामक अरबी ग्रन्थमें लिखा है कि भारतीय संख्याके श्वेत ओषितके प्रयोगको जानते थे जब कि ग्रीक इससे अनभिज्ञ थे।

समय गुज़रा, अरब काल के थपेड़ों को न सह सके। परस्पर-विनाशकारी विपत्तियों ने और मुगलों तथा इसाइयों के धर्मयुद्धों ने अरब की ज्ञान-परिसा को नष्ट कर दिया।

यूरोप और अमेरिका

अरबों का प्रकाश नष्ट हो गया। परन्तु उन्होंने अपने ज्ञान और संस्कृति को कई विश्वविद्यालयों द्वारा यूरोप में पहुँचा दिया जैसे-स्पेन का कारडोवा। किन्तु इसके बाद यूरोप में अज्ञान और विस्मृति छा गई, और, एक दीर्घ समय तक अंधविश्वासों का साम्राज्य हो गया। इस समय को इतिहासमें 'अन्धकारयुग' कहते हैं। जीवन के सभी अंगों पर चर्चों का अधिकार हो गया। वैज्ञानिकों को प्राणदण्ड दिये जाने लगे क्योंकि चर्च के लोग विज्ञान को ईश्वरीय-ज्ञान का विरोधी समझते थे। जो लोग विज्ञान प्रेमी थे और जो अपने को वैज्ञानिक कहते थे, उन्हें कठिन अग्नि परीक्षाओं में से गुजरना पड़ता था। गैलेलियो को 'वेनिस के डोग' के आगे झुकना पड़ा था और ब्रूनों को फांसी पर चढ़ना पड़ा था। इस तरह यूरोप में बुरी अवस्थायें नक्षत्रों की तरह छाई हुई थीं। तो भी इस अन्धकार और विप्लव के समय में उन्होंने भारतीय विज्ञान को अरबों के द्वारा सीखा था।

पिसा निवासी लिओनार्डो के द्वारा भारतीय गणित यूरोप में गई थी। १७वीं सदी तक यूरोप की चिकित्सा पद्धति अरबों पर आश्रित थी, जो हमारे आयुर्वेद की उपज है। पैरेसलसस (१४९३-१५४१) ने यूरोपीय-चिकित्सा में पारे का उपयोग शुरू किया था, जिसने डा० प्रफुल्लचन्द्रराय के अनुसार यह पूर्व से ही सीखा था। १८६४ में होनेवाली मेडिकल कान्फरेन्स में जब हैजा और जलभय आदि की चिकित्सा ज्ञात नहीं थी, तो उन्होंने इनके निवारक उपायों के लिये भारतीय विद्वानों से बहुमूल्य परामर्श मांगे थे। यही नहीं अपितु शिल्य-चिकित्सा का भी बहुत कुछ भाग भारत से गया है। हन्टर ने 'इम्पीरियल गज़ट आफ इन्डिया' में लिखा है कि ब्रिटिश लोगों ने भारतीयों से १८वीं सदी में कृत्रिम नाक बनाना सीखा था। जयपुर के महराज जयसिंह द्वितीय ने नक्षत्र

विद्या के कारण यूरोप में अत्यन्त सम्मान प्राप्त किया था। उसने लहारी की Tabule Astronomica नामक किताब का संशोधन किया था।

अब हम ब्रिटिशकालीन भारत पर दृष्टिपात करेंगे। सरकार ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए बहुत ही कम प्रोत्साहन दिया है। इस बात को दृष्टिकोण में रखते हुए हमारे प्रख्यात पत्रकार श्रीरामानन्द चट्टोपाध्याय ने १९३८ की भारतीय विज्ञान परिषद में भारत की इस अधूरी वैज्ञानिक उन्नति पर शोक प्रकट किया था। तो भी दासता में बंधे हुए भारत ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक उत्पन्न किये हैं।

इसका श्रीगणेश गणित से होता है। प्रो० रामचन्द्र (१८२१–८०) ने अपने स्मरणीय ग्रन्थ "The problem of Maxima and Minima" के द्वारा यूरोपीय गणितज्ञों में सम्मानित पद को प्राप्त किया था। रामानुजन (१८८७–१९२०) की प्रसिद्धि विश्वव्यापी है। वे भारत के प्रथम रॉयल सोसायटी के सदस्य थे। उनके बारे में प्रो० हार्डी एफ-आर-एस ने कहा था कि इस प्रतिभाशाली विद्वान ने उन समस्याओं की कल्पना की थी, जिन्हें यूरोप के उत्तम से उत्तम गणितज्ञ भी १०० वर्षों में पूर्णतया नहीं सुलझा सकते। सन् १९३५ में सर सुलेमान ने सापेक्षवाद की गणना में एक नवीन सिद्धान्त को उपस्थित किया था, और प्रो० आयन्स्टीन की गणना में कुछ दोष बनाये थे। उस वर्ष के सूर्य ग्रहण ने सुलेमान के पक्ष को सत्य सिद्ध किया था। वनस्पति विज्ञान में डा० जगदीशचन्द्र वसु, एफ्-आर-एस्, प्रो०बीरबल साहनी एफ०आर०एस०और डा०बी०एन सिंह की महत्ता प्रख्यात है। डा० वसु ने न केवल मारकोनी से पूर्व 'बेतार के तार' का आविष्कार किया था अपितु उन्होंने अपनी अद्वितीय खोजों के द्वारा भारत के इस प्राचीन मन्तव्य को भी सिद्ध कर दिया कि पौधों में भी जीवन होता है। उनकी अनुसन्धान शाला संसार के वैज्ञानिकों के लिए मक्का है, जैसे डा० बौरोनोफ़ उसे देखने के लिए आये थे। डा० साहनी १९३० और १९३५ में होने वाली केम्ब्रिज तथा एमस्टर्डम की अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान परिषद् के पुरातन विभाग के उपप्रधान रह चुके हैं। डा० सिंह की महत्ता को एडिनबरा विश्वविद्यालय के डा० क्यू सरीखे वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है। वनस्पति शरीर-क्रिया विज्ञान के विशारद डा० क्राउथर को सुडान सरकार ने डा० सिंह के कार्य को विशेष रूप से देखने के लिए भेजा था। उन्होंने आपकी इन शब्दों के द्वारा स्तुति की थी कि 'आप ने मुझे अत्यधिक आनन्द दिया है और मैंने अपनी यात्रा में एक उत्तम कार्य को देखा है। भौतिक विज्ञानी सर सी० वी० रमन् एफ-आर-एस और डा० मेघनाथ साहा एफ-आर-एस संसार के गौरव हैं। १९३१ में रमन को 'रमनप्रभाव सम्बन्धी' खोजों पर नोबेल पुरस्कार मिला था। डा० साहा का नक्षत्र विज्ञान अत्यधिक ऋणी है। संसार के महान् जीवित वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स ने भारतीय विज्ञान परिषद् के रजतजयन्ती के उत्सव पर सभापतित्व पद से भाषण देते हुए डा० साहा को भव्य श्रद्धाञ्जलि दी थी कि वे ही प्रथम वैज्ञानिक हैं जिन्होंने तारों के वर्णपट को स्पष्टतया व्यक्त किया था और इस प्रकार नक्षत्र विद्या के ज्ञान में एक नवीन मार्ग का उद्घाटन किया है। लगभग संसार की सभी वेधशालाएँ आपके आयनीकरण के सिद्धान्त पर कार्य कर रही हैं। रसायन शास्त्रियों में प्रफुल्लचन्द्रराय, डा० पी० सी० खान्खोजे और डा० शान्ति स्वरूप भटनागर एफ-आर-एस अतिप्रसिद्ध हैं। सर ए० पैंडलर ने कहा है कि डा० राय की 'पारदनाइट्रित की खोज ने पारदश्रेणी के खाली स्थान को भर दिया है। इसलिए पारद श्रेणी के पूर्ण अध्ययन के लिए संसार आप का ऋणी है। डा० खान्खोजे एक महान कृषि रसायनज्ञ भारतीय हैं जो मैक्सिको में बसे हुए हैं। वे वहीं की सरकार के कृषिविभाग के संचालक हैं। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृषिपरिषद में बड़े सम्मान से भाग लिया था। भटनागर ने अपनी विद्युत रसायन, कलोद, इमल्शन आदि की खोजों और उनके प्रयोगों के द्वारा आधुनिक रसायन को बहुत कुछ प्रदान किया है। ऋतुविद्या में श्री० एन० बैनर्जी एफ-आर-एस अपनी ऋतुविद्या की परिवर्तन सम्बन्धी खोजों के कारण फ्रांस की प्रसिद्ध 'नौविद्या और ऋतुविद्या अनुसंधान सम्बन्धी समिति' के सदस्य हैं।

[शेष पृष्ठ ६४ पर]

युद्धोत्तर काल में टेलीविजन की उन्नति

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की आशा

(डा० सी० पी० स्नो द्वारा)

१९३६ में संसार में पहली बार इंग्लैंड में ही टेली-विजन व्यवस्था स्थापित हुई। यह व्यवस्था १९३८ तक अन्य किसी देश में स्थापित न हुई थी और इंग्लैंड ही एक मात्र ऐसा देश था जहाँ यह व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के द्वारा बहुत से इंग्लैंडवासी अपने घरों में बैठे बैठे टेनिस और क्रिकट के खेल तथा अन्य दर्शनीय घट-नाएं देखा करते थे।

टेलीविजन का ट्रांसमिटिंग स्टेशन लंदन के उत्तर में था और ३० मील के अर्द्धव्यास में चारों ओर काम करता था। इससे एक चौथाई अंग्रेज जनता लाभ उठाती थी। यही नहीं स्टेशन से ५० मील की दूरी तक यह टेलीवि-जन स्टेशन काम करता था और इसके दृश्य उतने ही स्पष्ट और आनंददायक होते थे जितने सिनेमा के संवाद चित्रों के दृश्य।

दूसरे महायुद्ध से व्यवधान

टेलीविजन की उन्नति में दूसरे महायुद्धके छिड़नेसे बाधा उपस्थित हुई। सैनिक कारणोंसे टेलीविजन स्टेशन बंद कर दिया गया। उस विषय के विशेषज्ञों की अन्यत्र आवश्यकता पड़ी। रेडार की उन्नतिके लिये उनके विशेष ज्ञान की बहुत आवश्यकता थी। ब्रिटेन को यह पता था कि आत्मरक्षा के लिये रेडार का उन्नत करना आवश्यक है। इस ओर से उदासीन होना उसके लिये घातक था। ब्रिटेन एक छोटा सा द्वीप है और शाही वायुसेना के जहाजों की संख्या भी बहुत नहीं थी अतः वैज्ञानिकों ने अपनी पूरी शक्ति इसको उन्नत करने में लगा दी। ब्रिटेन पहले से ही इस ओर से सतर्क था और रक्षात्मक युद्ध के समय अपनी सारी शक्ति लगा कर उसने इसे उन्नत बनाया। पर टेलीविजन को इसका शिकार बनना पड़ा। गत दो वर्षों में ब्रिटेन अपनी शेष शक्ति को संग्रह करके अपना कार्य आरम्भ करने की योजना बना रहा है।

भावी कार्यक्रम

लार्ड हैंकी जैसे संभ्रान्त व्यक्ति की अध्यक्षता में एक सरकारी समिति ने यह सम्मति प्रकट की है कि यदि युद्ध न छिड़ा होता तो मुख्य टेकनिकल समस्या अब तक हल हो गयी होती। यह समस्या ऐसे चित्र उतारने की है, जिन्हें सिनेमा के पर्दे पर दिखाया जा सके। युद्ध के कार्यों से खाली होते ही वैज्ञानिक अनुसंधान में लग जायंगे। रेडारके संबंधमें जो अनुभव वैज्ञानिकों को प्राप्त हुए हैं वे भी उपयोगी सिद्ध होंगे। कुछ ही समय के बाद वह समय आने वाला है जब टेलीविजन द्वारा वैसे ही उत्तम चित्र भेजे जा सकेंगे जैसे सिनेमा चित्र होते हैं।

यह तो भविष्य की बात हुई। वर्तमान समयके लिये भी योजनाएं बन रही है। समिति की सिफारिश है कि १९३९ की टेलीविजन व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र फिर से चालू की जाय। इसके बाद उसे पूर्णता प्रदान की जायगी।

जिन्होंने १९३९ में टेलीविजन का कार्यक्रम देखा है वे उसके मनोरंजन के महत्व को समझ सकते हैं। लंदन का पुराना स्टेशन केवल एक चौथाई जनता की आवश्य-कता पूर्ण करनेमें समर्थ था। अब इसमें विस्तार हो सकता है। टेलीविजन जनता के व्यवहार की वस्तु बनायी जानी चाहिये।

ब्रिटेन का आकार-प्रकार काफी छोटा है। द्वीप में ६ स्टेशन बनाये जायं तो ६० प्रतिशत जनता उससे लाभ उठा सकेगी। यह कार्य शीघ्र ही किया जायगा। जापानी युद्ध समाप्त होनेपर ब्रिटेनवासी वेस्ट मिनिस्टर एबीके समा-रोह अपने घर बैठे देख सकेंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापकता

यह तो श्रीगणेश मात्र है। आगे चल कर टेलीविजन अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु बनेगी और एक देश की घटनाएं दूसरे देशोंमें देखी जा सकेंगी। अटलांटिक पार टेलीविजन द्वारा घटनाओं का विनिमय करने में अभी समय लगेगा। किन्तु फ्रांस और इंग्लैंड के मध्य संबंध शीघ्र स्थापित करने में कोई बाधा नहीं है। अपने देश के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के लिये टेलीविजन सुलभ करने वाला देश ब्रिटेन होगा। इसके बाद ही पश्चिमी यूरोप से उसका सम्बन्ध स्थापित होगा।

फलों और बीजोंका विकिरण

(Dispersal of fruits and seeds)

[ले०—डा० सन्तप्रसाद टण्डन]

पेड़ोंकी अच्छी वृद्धिके लिये उचित स्थान, जहाँ उन्हें ठीक भोजन तथा रोशनी आदि मिल सके, बहुत आवश्यक है। यदि आप किसी पेड़ के बहुत से बीज को एक छोटी सी सीमित ज़मीन में छोड़ दीजिए तो आप यह देखेंगे कि पौधे बहुत घने रूप से एक दूसरे के इतना पास उगे हैं कि उनकी बाढ़ ठीकसे नहीं हो पायी है। बहुत से बीज ऐसे भी रह जायँगे जो उग ही नहीं पाये। यदि उगे हुए सब पौधे उसी स्थान पर लगे रहने दिये जायँ तो उनमेंसे बहुतसे कुछ दिनों बाद नष्ट हो जायेंगे। इस कुल बातका कारण यह है कि उस थोड़ेसे स्थानमें जहाँ इतने अधिक पौधे उग आये हैं इतना खाद्य पदार्थ नहीं है कि सारे पौधोंके भोजनकी आवश्कता पूरी हो सके। ऐसी दशामें सब पौधोंमें भोजनके लिये एक दूसरेसे होड़ होने लगती है और जो पौधे जितना अधिक मज़बूत होते हैं वे उसी अनुपातमें पहले भोजन ज़मीनसे खींच लेते हैं। नतीजा यह होता है कि सभीको आवश्यकतासे कम भोजन मिलता है और बहुतोंको तो इतना थोड़ा मिलता है कि वे मर जाते हैं। वैज्ञानिकोंकी भाषामें इसे जीवनसंग्राम (Struggle for Existence) कहते हैं।

बीजोंके बिखरनेका उद्देश्य इसी परस्परके जीवन-संग्रामको बचाना है जिससे पौधोंको सुरक्षित रूपसे जीवन बितानेका मौका मिल सके। यदि बीज अपने पितृ पेड़ोंके इर्द-गिर्द ही गिर जायँ तो उस स्थानके सीमित भोजनसे उन सबका पोषण नहीं हो सकेगा और जीवन-संग्राम शुरू हो जायगा। खेती करने वाला किसान सदा इस बातको ध्यानमें रखता है और इसी कारण अपने खेतमें बीज इस प्रकार बोता है कि पेड़ अलग अलग थोड़ी-थोड़ी दूरसे उगें और पास पास जमघट न लगा लें। आपने शायद कभी इस बातका निरीक्षण किया हो कि जब कभी किसी खेतमें पौधे घने होते हैं तो उनकी बाढ़ अच्छी नहीं होती और उनके बीजों या फलोंकी उपज भी खराब होती है। यदि खेत गेहूँका है तो गेहूँ पतले तथा छोटे दानेके होंगे और प्रति बीघा उसकी पैदावार भी वज़नमें कम रहेगी।

फलों और बीजोंका विकिरण निम्नलिखित माध्यमों द्वारा होता है—(१) हवा, (२) पानी, (३) जन्तु तथा (४) फलोंमें मौजूद कोई फटनेकी तरकीब।

वायु विकिरण—जिन फलों और बीजोंका विकिरण हवा द्वारा होता है वे अपने रूप तथा रचनाको इस प्रकार बनाते हैं कि हवाको विकिरणके कार्यमें सहायता मिलती है और विकिरणकी क्रिया अधिक सफलतापूर्वक होती है। हवा द्वारा विकिरण होने वाले बीजोंकी विशेषतायें ये हैं—

(१) फल और बीज प्राय: बहुत छोटे, हल्के और चपटे होते हैं जिससे हवा उन्हें बड़ी आसानीसे उड़ा ले जाती है। सिरसाकी फली बड़ी हल्की और चपटी होती है। शीशम और चीड़के बीज काग़ज़की तरह हल्के होते हैं।

(२) कुछ फलोंमें बीजोंके निकलनेके मार्ग और उनकी स्थिति इस प्रकारकी होती है कि प्रत्येक हवाके झोंकेके साथ थोड़ेसे बीज झटकेके साथ फलसे बाहर निकलते हैं और दूर जा गिरते हैं। पोस्तकी ढोंढीमें इसी प्रकारकी तरकीब रहती है और प्रत्येक हवाके झोंकेके साथ थोड़ेसे दाने ऊपरके छेदोंसे निकल कर दूर दूर छितर जाते हैं।

(३) कुछ फलोंमें और बीजोंमें बालोंके झुंड लगे रहते हैं और कुछमें पंख लगे रहते हैं जिनके सहारे वे हवामें बहुत दूर तक उड़ जाते हैं। सूरजमुखीके फल, मदार तथा रुईके बीजोंमें बालोंके झुंड रहते हैं। चिलबिल, ढाक और मेपिल (Maple) के फल पङ्खदार होते हैं।

वायु द्वारा उड़ा ले गये हुए बीजोंमेंसे बहुतसे इधर-उधर ऐसे स्थानोंमें गिर जा सकते हैं जहाँ उन्हें जमने का मौका ही कभी न मिले। उदाहरणके लिये वे तालाब,

नदी या अन्य पानीके स्थानमें या पथरीले तथा अन्य मिट्टी रहित स्थानमें गिर कर व्यर्थ जा सकते हैं। वायु विकरित बीज अच्छी मिट्टीमें ही गिरे इसकी सम्भावना कम रहती है। अतः वायु विकिरण बहुत अपव्यय की रीति है। इसीलिये इस विकिरण पर निर्भर रहने वाले पेड़ोंको बहुत अधिक मिकदारमें बीज पैदा करना पड़ता है जिससे बहुत सा बीज व्यर्थ जानेके बाद भी कुछके ठीक मिट्टीमें पहुँचने की सम्भावना बनी रहे।

जल विकिरण—यह रीति प्रधानतः उन पौधोंमें पायी जाती है जो पानीमें या उसके किनारे उगते हैं। इस प्रकारके बीज प्रायः अपनेको स्पंजकी तरह इतना हल्का बनाते हैं कि वे बहुत आसानीसे पानीमें दूर तक तैर कर जा सकते हैं। कमल इसका उदाहरण है। वायु विकरित बहुतसे बीज भी प्रायः पानीमें गिर पड़ते हैं। उनमें बहुतसे तो नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जिनपर पानीका असर नहीं होता और वे बहते बहते ऐसे स्थानोंमें पहुँच जा सकते है जहाँ उन्हें जमनेका मौका मिल जाता है। कुछ बीज पानीमें तैरती हुई लकड़ियोंके ऊपर गिर कर उनके द्वारा आगे बढ़ जाते हैं। नारियल चूँकि समुद्रके किनारे अधिक होता है इस कारण इसकी बनावट पानीके विकिरणके लिये बहुत उपयुक्त है। इसकी जटायें इसको पानीके ऊपर तैराती रहती हैं और इसका कठोला एण्डोकार्प अन्दरके गर्भकी रचा करता है और वहाँ तक पानी नहीं पहुँचने देता।

जन्तु विकिरण—बहुतसे बीज और फल जन्तुओंके शरीरोंसे चिपक कर दूर दूर तक पहुँच जाते हैं। इसके लिये फलोंके ऊपर प्रायः काँटेदार इस प्रकारके आकार रहते हैं जिनकी सहायतासे वे जन्तुओंके शरीरके बालोंपर आसानीसे चिपक जाते हैं। बरसातके दिनोंमें आपने प्रायः एक प्रकारकी घास देखी होगी जिसके लम्बे बालों वाले बीज कपड़ों आदिमें इतनी मज़बूतीसे चिपक रहते हैं कि जब तक हाथसे उसे न निकाला जाय वे नहीं निकलते। गाजरके बीज भी इसी प्रकारके रहते हैं।

बहुतसे रसीले फलोंके बीज कड़े होते हैं या कड़े एण्डोकार्पके अन्दर रहते हैं। जब इन फलोंको पक्षियाँ, मनुष्य तथा अन्य जन्तु खाते हैं तब फलकी अन्य चीज़ें तो शरीरमें हज़म हो जाती हैं किन्तु बीज अपने कड़ेपनके कारण बिना टूटे मलद्वारसे बाहर निकल आते हैं और जन्तुके जगह जगह मल विसर्जन करनेसे दूर दूर तक फैल जाते हैं। बहुतसे फलोंको स्वादिष्ट तथा रसीला बनानेमें पेड़ोंका उद्देश्य ही यह है कि ये फल जन्तुओं द्वारा खाये जायँ जिससे उनके बीज विकरित हो सकें। आम, अमरूद, टमाटर सेव आदि इसी प्रकारके फल हैं।

फलोंमें फटनेकी तरकीबका रहना—कुछ फल इतने झटकेके साथ फटते हैं कि उनके बीज उछल कर बहुत दूर जा गिरते हैं।

यह बात फलके किसी स्थानपर बहुत अधिक तनाव रहनेके कारण होती है जिसके सबबसे उस स्थानपर ज़रा सा दबाव पड़नेपर फल झटकेसे फटते हैं। छीमी वाले फल इसी प्रकारके हैं (मटर, सेम आदि)। फली सूखनेपर ऐंठती है और बीज एक एक कर छिटक जाते हैं। गुलहज़ारेके पके फलको यदि आपने कभी छुआ होगा तो देखा होगा कि फल छूते ही एक दम सिकुड़ कर फटता है और बीज छिटक कर दूर जा गिरते हैं।

[शेष पृष्ठ ६१ का]

सन् १६३७ में एक भारतीय वैद्य ने स्टालिन की चिकित्सा की थी। जिसके कारण लेनिनग्राड में चिकित्सासम्बन्धी बूटियों की खोज के लिये एक संस्था स्थापित की गई थी। कैलिफोर्निया के डा० क्लार्क ने आयुर्वेद की प्रशंसा करते हुए कहा था—'केवल चरक का अनुसरण करो, जिससे चिकित्सकों का कार्य हलका हो जायेगा और संसार से भयंकर व्याधियों का विनाश हो जायेगा"। अभी संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका ने अपने युद्ध-निर्माण विभाग में एक भारतीय वैज्ञानिक को नियुक्त किया है। डा० होमी वाभा एफ-आर-एस का नाम वैज्ञानिकसंसार में तथा विज्ञान प्रेमियों में अभी ताजा है।

हमने यहां इस विषय को संक्षेप से लिखा है, जिसको अच्छी तरह स्पष्ट करने से लिये एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखी जा सकती है। (अँगरेज़ी से संकलित)

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।॥=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१५ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें, मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।॥),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी, प्रथम भाग १।), द्वितीय भाग ।।=),

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ॥),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।॥),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १॥),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र, सजिल्द; १॥),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

Reg. No. A 372

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २।।),

२४—कलम-पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ४० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १।।),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १।।।),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १।।),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

"यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगड़ान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २।।),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, १२० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३)

२—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई०। इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

३—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं, २)

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)
विज्ञान परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ६१ | सिंह, सम्वत् २००२ अगस्त १९४५ | संख्या ५

वायुमंडलकी सूक्ष्म हवायें

ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन

सृष्टिके आरम्भकालमें मनुष्यके हृदयमें आस पासकी वस्तुओंकी पूरी जानकारी प्राप्त करने तथा प्रतिदिन या प्रायः घटित होने वाली घटनाओंके कारणोंको मालूम करनेकी इच्छा का उदय होना ही विज्ञानका प्रारम्भ कहा जा सकता है। विज्ञानका प्रारम्भ तथा उन्नति दोनों ही मनुष्यकी इसी इच्छाका परिणाम है। जो जो वस्तुयें मनुष्यके सबसे अधिक निकट या सम्पर्कमें थीं उनके सम्बन्धकी बातें मालूम करनेका प्रयत्न सबसे पहले किया गया।

वायुमंडल हमारे चारों ओर है। इसका अध्ययन रसायन विज्ञानमें बहुत पहले ही प्रारम्भ हो गया था। वायुमंडलकी मुख्य मुख्य गैसोंकी जानकारी भी बहुत पहले ही की जा चुकी थी। लेकिन इसकी वे गैसें, जिन्हें सूक्ष्म या अक्रिया-शील हवायें कहते हैं, १९वीं सदीके लगभग अन्त तक मालूम नहीं की जा सकी थीं। यह एक अवश्य आश्चर्यकी बात है कि वायुमंडलका इतना सब अध्ययन तथा निरीक्षण होने पर भी उसमें वर्तमान इन गैसोंकी जानकारी इतने समय तक नहीं हो सकी। इसका कारण स्पष्ट है। वायुमंडलमें इन गैसोंकी मात्रायें इतनी कम हैं और फिर इनके गुण इस प्रकारके हैं कि रसायनज्ञ के हृदयमें कभी इस बातका संदेह भी नहीं उठ पाया कि ऐसी भी कुछ गैसें वायुमंडलमें मौजूद हैं। साथ ही उन दिनों रसायनज्ञके पास परीक्षण तथा निरीक्षणके उतने अच्छे यंत्र तथा अन्य सामग्रियाँ नहीं थीं जो बाद में उसे प्राप्त हुई और जिनकी सहायताके बिना वायुमंडलकी इन गैसोंको खोज निकालना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

वायुमंडल की सूक्ष्म गैसें पाँच हैं—(१) हीलियम (Helium), (२) नियन (Neon), (३) आरगन (Argon), (४) क्रुपटन (Krypton) और (५) ज़ीनन (xenon)। इन गैसोंकी खोज रसायन विज्ञानमें बड़े महत्वकी है। इन गैसोंने रसायन विज्ञान की कई समस्याओं पर सुन्दर प्रकाश डाला और उनके सुलझानेमें सहायता की। इनकी खोज निकालने में कई वैज्ञानिकोंका हाथ रहा है किन्तु खोजका सबसे अधिक श्रेय सर विलियम रैमज़े नामक एक अंग्रेज रसायनज्ञको है। रैमज़ेका नाम रसायनके इतिहासमें इन गैसोंकी खोजके कारण अमर हो गया है। इन खोजोंके उपलक्षमें रैमज़ेको नोबुल पुरस्कार भी प्रदान किया गया था। इन गैसोंकी खोजका इतिहास बड़ा रुचिकर है। उसका थोड़ा वर्णन यहाँ कर देना उचित जान पड़ता है।

आरगनकी खोज

सन् १८९४ में लार्ड रैले नामक प्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक नाइट्रोजनके घनत्व पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने वायुमंडलसे प्राप्त नाइट्रोजन के घनत्वकी तुलना नाइट्रोजन यौगिकोंसे रासायनिक विधि द्वारा प्राप्त नाइट्रोजनके घनत्वसे की। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वायुमंडलके नाइट्रो-

जनका घनत्व रासायनिक नाइट्रोजनके घनत्वसे कुछ अधिक था, अर्थात हवाका नाइट्रोजन रासायनिक नाइट्रोजनसे कुछ भारी था। विज्ञानका प्रारम्भिक ज्ञान रखनेवाला विद्यार्थी भी यह जानता है कि प्रत्येक तत्त्व, चाहे वह जिस प्रकार तथा जहाँसे भी प्राप्त किया जाय, सदा अपने गुणोंमें एक सा रहता है। यदि आपके पास एक टुकड़ा शुद्ध सोनेका है तो उसका घनत्व तथा उसके अन्य सारे गुण एक दूसरे शुद्ध सोनेके टुकड़ेके समान हर बात में होंगे। ज़रा भी किसी प्रकारका अन्तर गुणोंमें नहीं होगा। दो स्थानोंसे प्राप्त नाइट्रोजनके घनत्वका यह अन्तर खटकने वाला था। इस बातका निश्चय करनेके लिए कि यह अन्तर वास्तविक था या प्रयोग या किसी अन्य प्रकारकी त्रुटियोंके कारण था रैलेने इस सम्बन्धमें बहुतसे प्रयोग किये। उसने बहुतसे विभिन्न नाइट्रोजन यौगिकों से भिन्न भिन्न विधियों द्वारा रासायनिक नाइट्रोजनके अलग अलग नमूने तैयार किये तथा वायुमंडलसे भी कई विभिन्न विधियों द्वारा अलग अलग नाइट्रोजन प्राप्त किया। इन सब नाइट्रोजनके नमूनोंके घनत्वोंकी परस्पर तुलना करने पर उसने देखा कि रासायनिक नाइट्रोजनोंके घनत्वोंमें आपसमें कोई अन्तर नहीं है। उसी प्रकार वायुमंडलके नाइट्रोजनके सब नमूनों का घनत्वभी लगभग एकसा ही रहा। किन्तु रासायनिक नाइट्रोजन तथा वायुमंडलके नाइट्रोजनके घनत्वों में परस्पर अन्तर सदा बना रहा। नीचेकी सारणीमें रैलेके प्रायोगिक परिणाम दिये जाते हैं जिससे आपको इन दो प्रकारके नाइट्रोजन के अन्तर की मात्रा ज्ञात हो जायगी।

	घनत्व
(१) रासायनिक नाइट्रोजन	
(अ) नाइट्रिक आक्साइडसे लाल तपे लोहे द्वारा प्राप्त ...	२·३०००८
(ब) नाइट्रस आक्साइडसे लाल तपे लोहे द्वारा प्राप्त ...	२·२९९०४
(स) अमोनियम नाइट्राइटसे प्राप्त ...	२·२९८६९
(उ) यूरियासे सोडियम हाइपोब्रोमाइट की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त ...	२·२९८५
औसत—	२·२९९२७
(२) वायुमंडल का नाइट्रोजन	
(क) लाल तपे ताँबे द्वारा प्राप्त	२.३१०२६
(ख) ,, ,, लोहे ,, ,, ...	२·३१००३
(ग) गरम फैरस हाइड्राक्साइड द्वारा प्राप्त	२·३१०२०
औसत—	२·३१०१६

इस सारणीसे आप भी रैलेकी भाँति इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वायुमंडल और रासायनिक नाइट्रोनके घनत्वोंका यह अन्तर प्रायोगिक त्रुटियोंके कारण नहीं हो सकता, क्योंकि हर प्रयोगमें अन्तरकी मात्रा एक ही सी बनी रहती है।

घनत्वोंके इस अन्तरसे यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि या तो दोनों नाइट्रोजन या उनमेंसे कोई एक एकदम शुद्ध नहीं है; किसी अन्य चीज़की मिलावट अवश्य है। मिलावट के लिए दो सम्भावनायें हो सकती हैं—एक यह कि रासायनिक नाइट्रोजनमें नाइट्रोजनसे हलकी कोई अन्य गैस जैसे हाइड्रोजन मिली हो जो उसके घनत्वको कम कर देती हो और दूसरी यह कि वायुमंडल के नाइट्रोजनमें नाइट्रोजनसे भारी कोई अन्य गैस मिली हो जो उसके घनत्वकी वृद्धिका कारण हो। इन दोनों सम्भावनाओंमेंसे कौनसी अधिक संभव थी यह मालूम करनेके लिए रैलेने निम्न प्रयोग किये।

रैलेने यह देखा कि दोनों नाइट्रोजनमें विद्युत प्रवाह करने पर उनके घनत्वमें कोई अन्तर नहीं होता; घनत्व पहले जैसा ही बना रहता है। रैलेने प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध किया कि रासायनिक नाइट्रोजनमें कोई दूसरी हल्की गैस जैसे हाइड्रोजन, अमोनिया या जल वाष्प का मिश्रण नहीं है। इन प्रयोगोंसे अब केवल एक ही सम्भावना रह गई। वह यह कि वायुमंडलके नाइट्रोजन

में अवश्य नाइट्रोजनसे अधिक घनत्ववाली किसी गैसका मिश्रण है जिसके कारण वायुमंडलका नाइट्रोजन रासायनिक नाइट्रोजनसे भारी है। वायु पर खोज सम्बन्धी पुराने साहित्य का अवलोकन करने पर यह मालूम हुआ कि लगभग १०० साल पहले कैवेन्डिश नामक अंग्रेज़ रसायनज्ञने भी इसकी ओर संकेत किया था, किन्तु सम्भवतः प्रायोगिक कठिनाइयोंके कारण इस खोजको अधूरा छोड़ दिया था। कैवेन्डिशका प्रयोग इस भाँति था।

कैवेन्डिशने यह मालूम करनेके लिए कि हवा में नाइट्रोजनके नामसे एक ही गैस है या इसमें कई गैसोंका मिश्रण है निम्न प्रयोग किया। उसने एक वन्द वरतनमें हवाके साथ बहुतसी शुद्ध आक्सिजन मिलाकर उसमें विद्युत प्रवाह किया। आक्सिजन मिलाकर विद्युत प्रवाह करनेमें उद्देश्य यह था कि हवाकी सारी नाइट्रोजन आक्सिजनके साथ मिलकर नाइट्रस गैसके यौगिकमें वदल जाय। नाइट्रस गैस साबुनके पानीमें घुलनशील होती है। वरतनमें नाइट्रस आक्साइड वन जाने के वाद उसमें साबुनका पानी डालकर इसे शोषित कर लिया। जव और आक्सिजन मिलाने तथा विद्युत प्रवाह करनेसे नाइट्रस गैसका बनना रुक गया तो यह मालूम हो गया कि हवाका सारा नाइट्रोजन निकल गया है। अव इस बची गैसमेंसे आक्सिजनको लीवर आफ़ सलफ़र (Lever of Sulphur, गन्धकका कास्टिक सोडा में घोल) में घुलाकर अलग कर दिया। यह सब करनेके बाद कैवेन्डिशने देखा कि अन्तमें ज़रासी गैस शेष रह गई जो कुल हवाके $\frac{1}{120}$ भागके बराबर थी। अतः उसने यह निष्कर्ष निकाला कि हवाके नाइट्रोजनमें यदि कोई दूसरी गैस मिली है तो वह कुल हवाके $\frac{1}{120}$ भागसे अधिक नहीं है। हवाके इस $\frac{1}{120}$ भागके जाँच करने का कार्य उसने नहीं किया नहीं तो इन सूक्ष्म हवाओंकी खोज उसी समय हो गई होती।

रैलेके प्रयोगके बाद जब लोगों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ तो कैवेन्डिशके पुराने प्रयोगको नये अच्छे अपरेटस द्वारा फिर किया गया। यह देखा गया कि हवाका कुछ भाग सदा शेष रह जाता है जिसका आयतन भी हवाके आयतनके अनुपात से सदा एक ही रहता है। रश्मिचित्र (Spectroscopic) परीक्षासे यह सिद्ध हुआ कि यह बचा हुआ भाग नाइट्रोजन नहीं है।

रैमज़े और रैलेने मिलकर हवामें से आक्सिजनको तपे ताँबे द्वारा तथा नाइट्रोजनको गरम मैगनीसियम द्वारा अलगकर इस नई गैसको प्राप्त किया। रश्मिचित्र परीक्षा द्वारा यह सिद्ध हुआ कि यह गैस और कैवेन्डिश के प्रयोग द्वारा प्राप्त गैस एक ही है। इस नई गैसको आरगन नाम दिया गया। ग्रीक भाषामें आरगनका अर्थ होता है अक्रियाशील"। चूँकि यह गैस किसी भी रासायनिक प्रक्रियामें भाग नहीं लेती इसीसे इसे यह नाम दिया गया। इस गैसके आविष्कारका समाचार प्रथम बार १३ अगस्त सन् १८९४ में छपा। यह हुई आरगनके आविष्कारकी कहानी।

हीलियमकी खोज

हीलियमके आविष्कारकी कहानी सन् १८६८ से प्रारम्भ होती है। १८ अगस्त सन् १८६८ के दिन हिन्दुस्तानमें एक पूर्ण सूर्य्य ग्रहण पड़ा। इस ग्रहणके समय प्रथम वार रश्मिचित्र दर्शक (Spectroscope) द्वारा सूर्य्यबिंबके गैसके बाहरी घेरेका निरीक्षण किया गया। इस घेरेको क्रोमोस्फियर (Chromosphere) कहते हैं। क्रोमोस्फियरके रश्मिचित्र (Spectrum) में वैज्ञानिकोंने एक पीली रेखा देखी जिसे उन्होंने सोडियम धातुकी D रेखा समझा। किन्तु जैनसीन (Janseen) ने अधिक ध्यानसे परीक्षा करने पर बतलाया कि यह रेखा सोडियमकी D_1 और D_2 रेखाओंसे भिन्न है। उसने इस रेखाका नाम D_3 रक्खा। कुछ ही समय बाद फ्रैंकलैंड

और लॉकयर (Frankland and Lockyer) इस परिणाम पर पहुँचे कि यह रेखा उस समय तक मालूम किसी भी पृथ्वीके तत्त्वकी नहीं हो सकती; यह किसी एक नये तत्त्व के कारण होगी जो सूर्य्यमें मौजूद है। इस काल्पनिक तत्त्वका नाम उन्होंने सूर्य्यके नाम पर हीलियम रक्खा (ग्रीक भाषामें सूर्य्यको हेलास कहते हैं)। इस नामको सब ही ज्योतिषियों ने उस तत्त्व के लिए स्वीकार कर लिया जिसके कारण सूर्य्यके क्रोमोस्फियरमें D_3 रेखा दिखलाई देती है। आगे चलकर जैसे-जैसे अधिक निरीक्षण किये गये, यह देखा गया कि D_3 रेखा के साथ ही साथ कई अन्य और रेखायें भी सदा रहती हैं। ये रेखायें भी उसी हीलियम तत्त्वकी समझी गईं।

सन् १८८१ में पामेरी (Palmieri) नामक ज्योतिषीने वेसूवियस ज्वालामुखीसे निकली गैसके रश्मिचित्र में D_3 रेखा देखी। किन्तु पृथ्वी पर हीलियम खोज निकालने का वास्तविक कार्य सर विलियम रैमजेने सन् १८९४ के अन्तिम दिनोंमें किया जब कि वह उन्हीं दिनों आविष्कृत हुई आरगनको प्राप्त करने के लिये भिन्न भिन्न खनिज पदार्थोंकी परीक्षा कर रहे थे। जब रैमज़े आरगनकी इस खोजमें लगे हुये थे मायर्स (Miers) नामक खनिज शास्त्रज्ञ का एक पत्र उन्हें मिला। पत्रमें मायर्स ने कुछ ऐसे यूरेनाइनिटे खनिजोंकी परीक्षा करनेकी सलाह दी थी जिनमेंसे हिलब्रैंड (Hillebrand) ने एक गैस प्राप्त की थी जिसे उसने नाइट्रोजन बतलाया था। इन खनिजोंको गंधकाम्लके साथ गरम करने या अदाहक क्षार (Alkali carbonate) के साथ भूंजने पर हिलब्रैंडको वह गैस मिली थी जिसे उन्होंने नाइट्रोजन समझा था। रैमज़े ने विचार किया कि यदि यह मान भी लिया जाय कि इन खनिजोंमें नाइट्रोजन यौगिक मौजूद हैं तो भी हिलब्रैंडकी विधिसे इन यौगिकोंसे नाइट्रोजन प्राप्त हो इसकी सम्भावना बहुत कम है। अतः रैमजे ने क्लीवीआइट (cleveite) नामक खनिजकी परीक्षा प्रारम्भ की (उन खनिजोंमें से एक जिनसे हिल- ब्रैंड ने नाइट्रोजन प्राप्त हुई बतलाया था)।

हिलब्रैंड ने क्लीविआइटसे प्राप्त गैसमें नाइट्रोजनका वर्तमान रहना इन प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया था—(अ) जब आक्सिजनके साथ मिला कर इसमें विद्युत प्रवाह किया गया तो नाइट्रस गैस बनी; (ब) जब हाइड्रोजन और हाइड्रोक्लोरिक एसिड गैसके साथ मिलाकर विद्युत प्रवाह किया गया तो अमोनियम क्लोराइड (नौसादर) बना; (स) जब इस गैसको वायुशून्य नलीमें भरकर उसमें विद्युत चिनगारी (Electric sparks) डाली गई तो नाइट्रोजनका रश्मिचित्र प्राप्त हुआ। रैमज़े ने क्लीविआइट गैससे अपने प्रयोग करनेके बाद हिलब्रैंडके इन परिणामोंकी सत्यता स्वीकार की क्योंकि इस गैसमें जैसा कि रैमज़े ने बादमें मालूम किया हीलियमके अतिरिक्त लगभग १२ प्रतिशत नाइट्रोजन था।

रैमजेने सन् १८९५ में क्लीविआइटके चूर्ण को हल्के गन्धकाम्लमें गरम किया। जो गैस प्राप्त हुई उसे आक्सिजनके साथ मिलाकर एक बरतन में जिसमें सोडा रक्खा था भर दिया। इस गैस में विद्युत चिनगारी डाली गई। सोडामें शोषित होनेके बाद जो गैस बची उसमेंसे क्षारीय पइरोगैलालके घोल द्वारा आक्सिजन अलग कर दिया। बची हुई गैसको पानीके फुहारेसे धोकर और फिर सुखाकर एक वायुशून्य नलीमें भरा। इसमें विद्युत चिनगारी डाली और गैससे जो किरणें निकलीं उनका रश्मिचित्र दर्शक द्वारा रश्मिचित्र लिया। इस रश्मिचित्र की परीक्षासे ज्ञात हुआ कि इसमें हाइड्रोजन और आरगनके रश्मिचित्र के अतिरिक्त एक चमकीली पीली रेखा है जो सोडियमकी पीली रेखाओंके निकट है किन्तु उनसे भिन्न है। क्रूक्स (Crooks) ने सिद्ध किया कि यह पीली रेखा

सूर्य्यके वायव्य मंडलकी D_3 रेखासे सब बातोंमें मिलती है अतः यह उसी हीलियम तत्त्वके कारण है जो सूर्यमें मौजूद समझा जाता है। इस प्रकार क्लीविश्राइट गैसमें हीलियमका वर्तमान रहना सिद्ध हुआ और इस समयसे हीलियमकी भी पृथ्वीके तत्त्वोंमें गणना हुई।

रैमजे की इस खोजकी पुष्टि शीघ्र ही क्लीव (Cleve) और लॉकयर (Lockyer) द्वारा की गई जिन्होंने ब्रोगेराइट (Broggerite) खनिज से प्राप्त गैसमें हीलियमका वर्तमान रहना रश्मि चित्र द्वारा सिद्ध किया।

हीलियमका आविष्कार हो जानेके बाद हिलब्रैंड ने रैमजेको जो पत्र लिखा उसमें यह बतलाया कि अपने प्रयोगोंमें उसने यह देखा था कि नाइट्रस गैस और अमोनियाका बनना बहुत धीरे धीरे हुआ था तथा क्लीविश्राइट गैसके रश्मिचित्र में बहुत सी ऐसी रेखायें थीं जो नाइट्रोजनकी नहीं थीं। पहली घटनाको उसने कोई महत्व नहीं दिया था क्योंकि वह बहुत हल्की विद्युत धाराका प्रयोग कर रहा था। दूसरी घटनाके सम्बन्धमें उसने लिखा है कि यद्यपि उसने और उसके सहयोगियोंने एक बार शुरूमें यह विचारा था कि सम्भवतः वे लोग क्लीविश्राइट गैसमें किसी नये तत्त्वका रश्मिचित्र देख रहे थे किन्तु चूँकि उसे यह मालूम था कि गैसोंके रश्मिचित्र में दबावके कारण काफ़ी परिवर्तन हो जाया करते हैं, उसने इसे भी विशेष महत्व न देकर वहीं छोड़ दिया था।

वास्तवमें हिलब्रैंडका भाग्य ही उसके विरुद्ध था जिसके कारण हीलियमके इतना निकट पहुँच कर भी वह इसकी खोज न कर सका और रैमजे ने हिलब्रैंडके कार्यके आधार पर ही हीलियमकी खोजका श्रेय प्राप्त किया।

नियमकी खोज

आरगन और हीलियमकी खोज हो चुकनेके बाद रसायनज्ञोंमें इस बात पर कुछ दिनों तक विवाद होता रहा कि तत्त्वोंको मेनडलीफकी सारणी (Mendelleeff's Periodic Table) में कौन-सा स्थान दिया जाय। अन्तमें सब इस नतीजे पर पहुँचे कि इन तत्त्वोंके लिए उस सारणीमें एक नया वर्ग (Group) पहले और आठवें वर्गके बीचमें रखना चाहिए और इस वर्गको शून्य वर्गका नाम देना चाहिये। ऐसा करने पर हीलियम उसी क्षितिज (horizontal) रेखामें रक्खा गया जिसमें लीथियम था। आरगनका स्थान पोटैसियमकी लाइनमें उसके पहले आया। इस प्रबन्धमें शून्य वर्गमें हीलियम और आरगनके बीचमें सोडियमकी लाइनमें एक स्थान रिक्त रह गया। अतः यह सोचा गया कि इस स्थानकी पूर्तिके लिए एक नया तत्त्व अवश्य होगा जिसका परमाणुभार सोडियमके परमाणुभार से २ या ३ इकाई कम होगा। इस प्रकारके संकेत पर वैज्ञानिक इस नये तत्त्वकी खोजमें जुट गये।

इस नवीन तत्त्वकी खोजकी आशामें रैमज़े और ट्रैवर्स ने वायुमंडलसे प्राप्त १८ लीटर आरगन की परीक्षा ध्यानसे करनी शुरू की। इसे डिवार (Dewar) नलीमें भर कर तरल वायु द्वारा ठंढा कर तरल रूपमें परिणत किया गया। २५ घ०सें०तरल प्राप्त हुआ। इस तरलके तापक्रमको बहुत ही धीरे-धीरे बढ़ाया गया और अलग अलग तापक्रमों पर निकली गैसोंको अलग अलग इकट्ठा किया गया। सबसे पहले जो गैस प्राप्त हुई उसका घनत्व लगभग १४.७ था। यह घनत्व लगभग उतना ही था जितना हीलियम और आरगनके मध्य स्थान के तत्त्वके लिए सोचा गया था। इस गैस का रश्मिचित्र लिया गया जिसकी परीक्षासे ज्ञात हुआ कि यह एक नये तत्त्व का रश्मिचित्र है। इस गैस के सम्बन्धमें एक बात और देखी गई। वायुशून्य नलीमें भरी इस गैससे विद्युत प्रवाह करने पर गहरे लाल रंगकी रोशनी निकलती है, किन्तु जैसे जैसे गैस पर दबाव घटाया जाता

है रोशनी का रंग धीरे-धीरे चमकीले नारंगी रंग में बदल जाता है।

इस गैसको तरल वायु द्वारा फिर ठंढा किया गया। यह देखा गया कि गैसका अधिक भाग तरल नहीं हुआ। न तरल होनेवाले इस भागका घनत्व ९.६५ था। इसमें कुछ हीलियम और आरगन अभी अशुद्धियोंके रूपमें मौजूद थीं। इन अशुद्धियोंको इसमेंसे दूर करनेमें कठिनाई मालूम पड़ी। अतः प्रयोग को आरम्भमें ली हुई आरगनसे फिर शुरू किया। इस बार तरल आरगनके साथ कुछ तरल आक्सिजन मिलाकर मिश्रणको धीरे-धीरे वाष्पीकरण करके तीन तापक्रमों पर तीन जगहों में गैस इकट्ठी की। बीचमें जो गैस इकट्ठी की गई उसमेंसे आक्सिजनको तपे ताँबे द्वारा अलग करने पर जो गैस बची उसका घनत्व १०.१ था और वह शुद्ध नई गैस थी। इस गैसका नाम नियन रक्खा गया और इसने हीलियम और आरगनके मध्य रिक्त स्थानकी पूर्ति की। सन् १९१०में वाटसन ने पुनः शुद्ध नियन प्राप्त किया।

सर जे. जे. टामसनने अपनी धन किरणों (Positive ray) द्वारा यह दिखलाया कि वायु से प्राप्त नियन में दो प्रकारके परमाणु हैं। एक का परमाणु भार २० तथा दूसरे का २२ है। २२ भार वाले नियन का नाम मेटानियन रखा गया। रसायनज्ञों ने इन दोनों प्रकारके नियनको अलग अलग प्राप्त करनेके बहुत से प्रयत्न किये किन्तु उन्हें सफलता प्राप्त न हो सकी।

कृपटन और ज़ीननकी खोज

इनकी खोज भी रैमज़े और ट्रैवर्सने ही की। ये लोग आरगन गैसको ठंढा करने के लिए बहुत सी तरल वायु का वाष्पीकरण कर रहे थे। इस वाष्पीकरणके अन्तमें वायुका जो भारी भाग शेष बचा उसमेंसे इन लोगोंने एक गैस अलग की जिसका घनत्व २२.५ था। रश्मिचित्र लेने पर मालूम हुआ कि यह एक नया तत्त्व था। इसका नाम कृपटन रक्खा गया (ग्रीक भाषामें कृपटन का अर्थ छिपा हुआ होता है)। तरल वायु के इस भारी भागमें से एक और भी गैस प्राप्त हुई जिसका घनत्व ६५ था। इसके रश्मिचित्र से भी यह सिद्ध हुआ कि यह एक नया तत्त्व है। इसका नाम ज़ीनन रक्खा गया (ग्रीक भाषामें इसका अर्थ अजनबी होता है)।

इन पाँचों गैसोंके मालूम हो जानेके बाद वैज्ञानिकोंने इस बातका पता लगानेका प्रयत्न किया कि क्या वायु में इनके अतिरिक्त और भी कोई नवीन गैस है? सर जे० जे० टामसन तथा आर० बी० मूर ने अपने प्रयोगों द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि वायुमें ज़ीननसे भारी कोई दूसरी गैस नहीं है। विलसन, बोर्डास (Wilson, Bordas) आदि वैज्ञानिकोंने इसी प्रकार मालूम किया कि वायुमें हीलियमसे हल्की गैस भी दूसरी नहीं है। अतः यह निश्चय हो गया कि वायुमें इन गैसोंके अतिरिक्त और कोई दूसरी नवीन गैस नहीं है।

वायुसे आक्सिजन और नाइट्रोजन अलग करनेके बाद जो अशुद्ध आरगन प्राप्त होती है उसमें पाँचों गैसों की मात्रायें निम्न प्रकार होती हैं :—

हीलियम	०.०५५ प्रति शत
नियन	०.१६ ,, ,,
आरगन	९९.७८५ ,, ,,
कृपटन	०.०००५ ,, ,,
ज़ीनन	०.००००६ ,, ,,

(असमाप्त)

दशांक पद्धति अथा द्वादशांक विलोम पद्धति*

[ले०—प्रो० हरिश्चन्द्र गुप्त, एम० ए०]

वर्तमान युग प्रधानतः संख्या-युग है

वर्तमान युगकी प्रवृत्ति अधिकाधिक संख्यामय भाषा प्रयोग करने की है। रेलवे टाइमटेबिलमें, बीमाकी प्रीमियम-तालिकाओंमें, जलवायु-सूचक रिपोर्टोंमें, रैशनके भावोंमें, सभी जगह अंकोंका सामना होता है। इस युग को संख्या-युग कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। केल्विन नामक वैज्ञानिकने तो यहाँ तक कह डाला कि जो विद्या सांख्यिक भाषामें प्रदर्शितन की जासके वह वास्तविक ज्ञान ही नहीं है। बिल्कुल ऐसा तो नहीं, किन्तु यह सत्य है कि इस युगमें जिन्हें 'गणना' का समुचित ज्ञान नहीं, जीवन संग्राम में उनकी गणना नहीं। क्योंकि अब विवादास्पद प्रश्नके किसी पक्षको सिद्ध करनेके लिए संख्यामय भाषा का प्रयोग ही सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है जिसके सम्मुख संख्या-ज्ञान-विहीन अनभिज्ञ कदापि नहीं ठहर सकता। यही नहीं, हम देखते हैं कि 'परिश्रम निवारक' विधानों की, गणना-मशीनों की तथा सारिणियों की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जाती है। निकट भविष्य में ही 'स्लाइड रूल' (गणनार्थ एक रेखांकित पटरी) घड़ी या तोलक मशीनकी भाँति घर-घरमें दीख पड़ेगा।

जब संख्याओंका इतना महत्व है तो यह अवश्य विचारणीय है कि वर्तमान अंकावलीमें (जिसे अँग्रेज़ लोग अरबी पद्धति कहते हैं परन्तु जो वस्तुतः भारतीय पद्धति है) क्या कोई सुधार नहीं हो सकता? गत २०० वर्षोंमें इस विषय पर कई विद्वानों ने लिखा है जिनमें नैपोलियन बोनापार्ट, हर्शेल, लेबनीज़, और हर्बर्ट स्पेंसरके नाम उल्लेखनीय हैं। एंड्रूज़ की 'नई संख्याएँ' नामक पुस्तक इस विषय पर सबसे आधुनिक और पूर्ण है। दशांक पद्धतिके असंतोषजनक होनेका ज्वलंत प्रमाण यही है कि अभी तक २२४० पौंडका टन, ५२८० फुट का मील और १२ मासका वर्ष आदि सुव्यवस्थित रूपसे प्रयोग में आते ही हैं। दस अंकोंका अन्वेषण स्वतः अत्यन्त महत्वपूर्ण है और न्यूटनकी आकर्षण-शक्तिकी गवेषणा और मुद्रण-कलाके आविष्कारके समान ही विश्व-प्रगतिमें इसका प्रभाव रहा है। किन्तु यदि इसमें लेशमात्र भी सुधार होनेकी संभावना हो तो वह करने ही योग्य है चाहे उसमें कितनी भी कठिनाई हो। भविष्यको वह एक गर्वपूर्ण वरदान होगा।

दशांक और रोमन पद्धतियों का विवरण

प्रचलित दशांक पद्धतिमें शून्यसे नौ तक दस अंक हैं और प्रत्येकका मान धनात्मक है अर्थात् प्रत्येककी क्रिया संख्याके मानमें निश्चित और भिन्न-भिन्न वृद्धि करती है। किसीसे संख्यामें ह्रास नहीं होता। यह पद्धति एक ऐसी मोटरगाड़ी के समान है जिसमें 'रिवर्स गीअर' (पीछेको चलानेवाली कल) न हो जो पीछे चलने के लिए पूरा चक्कर लगा कर मुड़े और तब आगे बढ़े। मुड़नेकी क्रिया वस्तुतः घटाने की क्रिया है। दशांक पद्धति का सबसे महत्वपूर्ण गुण अंकोंका स्थानीय मान है। किसी संख्याका कोई अंक यदि एक स्थान बाईं ओर हट जाय तो उस अंकका स्थानीय मान दस गुना हो जाता है और दाहिनी ओर हटने पर केवल दसवाँ भाग रह जाता है। उदाहरणार्थ ४३ में ४ का स्थानीय मान ४० है लेकिन ३५ में एक स्थान दाहिनी ओर हटने पर इसका स्थानीय मान ५ रह जाता है। संख्याका मान इसके भिन्न अंकोंके स्थानीय मानोंका योगफल होता है।

रोमन पद्धतिमें अंकोंके स्थानीय मान नहीं होते। केवल I को बाँई ओर लगानेसे इसका मान —१ और दाहिनी ओर लगाने से +१ होता है, यथा IV और VI में। स्थानीयमानका सबसे उपयोगी गुण यह है

---

* इस लेखमें विद्वान लेखकने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि वर्तमान अंकगणित-प्रणाली, जिसमें दसकी संख्याको विशेष महत्व दिया गया है, बहुत सुविधा-जनक नहीं है; इससे कहीं अधिक सुविधाजनक प्रणाली वह है जिसमें बारहको यह महत्ता दी जाय। अंकगणित-सुधारकोंके लिये यह लेख अत्यन्त रोचक होगा, परन्तु नौसिखियों को ध्यान रखना चाहिये कि यह लेख पक्षपात-रहित नहीं है।—संपादक

कि केवल अंकोंके गुणनफल स्मरण होनेसे सभी संख्याओं के गुणनफल निकल सकते हैं। ऐसी बात रोमन पद्धति में नहीं है।

अन्य पद्धतियाँ और उनका तुलनात्मक अध्ययन

किन्तु यह निर्विवाद नहीं है कि अंक दस ही माने जायँ और संपूर्ण अंकगणितकी रचना दसको ही आधार मानकर उत्तम होती है। यह कहना कि दोनों हाथोंमें मिलाकर दस अंगुलियाँ है, इस कारण दस तक गिन लेना स्वाभाविक है, कोई पुष्ट प्रमाण नहीं कि यह पद्धति श्रेष्ठ है। हम आठ को अथवा बारह को आधार मान कर अङ्कगणितका प्रासाद खड़ा कर सकते हैं। यदि १२ को आधार माने तो १० और ११ के लिए कोई संकेत निश्चित करने होंगे, १२ को '१०' से व्यक्त करना होगा और १४४ को १००' से। अब प्रश्न यह उठता है कि कौनसी संख्या सर्वश्रेष्ठ आधार होगी। १ से ३० तक की संख्याओंके गुणनखंडों को गिनें तो ज्ञात होगा कि २४ सबसे अधिक संख्याओं से विभाज्य है क्योंकि इसके गुणन खंड हैं २, ३, ४, ६, ८ और १२; फिर १२ हैं जिसके गुणनखंड हैं २, ३, ४, और ६ । १८ के गुणनखंड २, ३, ६, ९ ; २० के २, ४, ५, १० और २८ के २, ४, ७, १४ है। परन्तु २४ अङ्कों की अङ्कावली अत्यधिक लम्बी हो जायगी; उसका प्रयोग भी दुष्कर होगा। इस प्रकार शेष संख्याओंमें १२ ही सर्वश्रेष्ठ है। १८ और २० की तुलना में, १२ में एक विशेष गुण है। क्योंकि यह आरंभ की तीनों संख्याओं २, ३, ४ से विभाज्य है; और यह गुण अत्यन्त महत्वपूर्ण है जैसा कि आगे स्पष्ट होगा। अतएव १२ को ही आधार मानकर क्यों न नवीन गणना-पद्धति स्थापित की जाय? १२ का एक दर्जन और १२ दर्जन का एक ग्रोस बहुत दिनों से प्रचलित हैं।

कहा जा चुका है कि दशांक पद्धति में ऋणात्मक संख्याओंको प्रकट करने की शक्ति नहीं। ऐसा करनेके लिए संख्याके पहले अलगसे ऋण का चिन्ह लगाया जाता है लेकिन अङ्कोंसे स्वत: ऋणात्मक संख्या का बोध नहीं होता। किन्तु विश्व-व्यापारमें हमें दोनों प्रकारकी संख्याएँ मिलती हैं। आयके साथ व्ययकी, लाभके साथ हानिकी, ऊँचाईकी मापके साथ नीचाईकी मापकी, आदि। प्रचलित पद्धतिके इस अभावके कारण बही खातेमें दो खाने रखने पड़ते हैं।

द्वादशांक विलोम पद्धति

इन सब कमियोंको दूर करनेका एकमात्र उपाय यह है कि दसको आधार न मानकर बारहको आधार माना जाय और १२ अङ्कोंमें से ६ अङ्क धनात्मक और ६ ऋणात्मक मान प्रकट करें। इस प्रकार हमें ६ ऋण अङ्कों की (वास्तव में ५ की) रचना करनी पड़ेगी। मान लो ये हैं व्येक $\overline{१}$(=–१), विदो $\overline{२}$ (=–२), विती $\overline{३}$(=–३), विचा $\overline{४}$ (=–४), विपा $\overline{५}$ (=–५) और विछः $\overline{६}$ (=–६)❀।

इस पद्धतिको 'द्वादशांक विलोम पद्धति' कहना उचित होगा। यदि एक संख्याके अङ्कोंके स्थानमें प्रत्येक अङ्कका विलोम लिख दिया जाय तो पूर्व संख्या की सङ्गत 'विलोम संख्या' प्राप्त होती हैं। यह क्रिया 'विलोमीकरण' है। उदाहरणार्थ २$\overline{५}$६ का विलोम $\overline{२}$५$\overline{६}$ है। घटानेवाली संख्या को विलोम करके उसे जोड़ सकते हैं। स्पष्टता के लिए अब इस लेखमें दशांक पद्धतिमें लिखी हुई संख्याओंके नीचे बिन्दुमय रेखा होगी।

विलोम अङ्कोंके समुचित नामोंकी अपेक्षा उनके लिखनेके संकेतों (रूपों) को निर्दिष्ट करना कम कठिन नहीं; क्योंकि रूप ऐसे होने चाहिए जिससे छपनेमें असुविधा न हो। वैसे ही हिन्दी; उर्दू में मुद्रण बड़ा कष्टमय है। शिरोरेखाका प्रयोग करके (लघुरिक्थमें जैसे $\overline{३}$ – ५ में ३ का मान – ३ है) ये विलोम अङ्क दो संकेताक्षरोंके संयोगसे लिखे गये हैं। किन्तु केवल एक एक संकेत वाले रूप ही वांछनीय हैं। अभी तो हम इन्हीं संकेत-संयोगों से काम चलायँगे। द्वितीय बात यह है कि प्रत्येक अङ्क और उसके विलोम के रूपों में सादृश्य होना चाहिए जिससे जोड़ते समय उनके काटने में सुगमता हो। वर्तमान अङ्कों ७, ८, ९ का प्रयोग जारी रक्खेंगे लेकिन तभी जब

❀ये शब्द अङ्कोंके नामोंके प्रथम अक्षरमें विलोम सूचक 'वि' प्रत्यय लगाने से बने हैं; यदि इनसे श्रेष्ठतर नाम रक्खे जा सकें तो वे मान्य होंगे।

वे अकेले अथवा संख्याओं के प्रथम अङ्क हों। सामान्यता इनके रूप क्रमशः १पू, १छ, १३ होंगे। इस प्रकार सात दर्जन और चार को दोनों रूपों ७४ अथवा १पू४ में लिख सकते हैं लेकिन ४ दर्जन और ७ को केवल ५पू ही (न कि ४७)। विछः के बिना भी काम चल सकता है क्योंकि ६ = १६। किन्तु, जैसा आगे स्पष्ट होगा, किसी अमुक संख्या में ६ के दाहिनी ओर यदि धनात्मक अङ्क हो तो उसके बाँए अङ्क को १ बढ़ाकर और छः को विछः कर देने में लाभ है। यथा ६३ को १६३ और ६५ को १६पू लिखेंगे।

स्पष्ट है कि–७२से ७२ तक की संख्याओं को हम पूरे दर्जनों और ६से६ तक के अंकों द्वारा व्यक्त कर सकते हैं और उनका नाम उनके अंकों के नामों के बीच 'म' लगा कर रक्खेंगे। इस प्रकार पू३ को विपामतीन कहेंगे (अर्थात् विपा दर्जन और तीन)। 'म' अक्षर का प्रयोग इसलिए किया गया है कि हिंदी भाषामें प्रयुक्त यौगिक शब्दों एक-एक, अथवा दो-एक से भेद रहे। नामकरणकी यह विधि सरल है और वैज्ञानिक भी। ७२से बड़ी और–७२से छोटी संख्याएँ तीन अंकों की होंगी। उदाहरणार्थं १३४ = ११२ (एकग्रोस व्येकम दो, एक ग्रोस = १४४) २१३ = ०६३–(व्येक ग्रोस विछमतीन)। यद्यपि ये नाम आरंभमें बड़े लगते हैं तथापि कुछ अभ्यास से सरल प्रतीत होने लगेंगे। 'ग्रोस ग्रोस' को महाग्रोस कह सकते हैं। विस्तारभय से इस पद्धतिमें अंकगणितकी चार मूल क्रियाओं का विवरण न देकर इस पद्धतिके लाभोंका वर्णन करते हैं।

दैनिक जीवनमें गुणनखंडों का और फलतः द्वादशांक पद्धति का महत्व—

जब रुपये पैसे, अंडे, ताले, चाकू अथवा कोई भी वस्तु गिननी होती है तो साधारणतः उसे दर्जनों में गिनते हैं क्योंकि एक साथ दो-दो, तीन-तीन अथवा चार-चार तक वस्तुएँ गिन सकते हैं। किंतु यदि दस के हिसाब से गिनना हो तो केवल दो-दो या पाँच-पाँच लेकर ही गिन सकते हैं। साधारण व्यक्तिको २का और ३तक का बोध सरलता से हो जाता है, ४ का उससे कठिन और ५का तो और भी कठिन होता है। अतः बारह के आधार पर गिनने में सुविधा है। उदाहरणके लिए डिब्बाबंदी लीजिये। टेनिसकी गेंदे बंद करने के लिए ऐसा डिब्बा ही काम में आता है जिसकी लम्बाईमें ठीक ३गेंदे और चौड़ाईमें २ आवें; इस प्रकार प्रति डिब्बे में आधी दर्जन गेंदें भर कर आती हैं। २ और ५ का अनुपात डिब्बे के विस्तार के लिए उपयुक्त नहीं होता। पूरे दर्जन गेंदों के लिए ३×४की नापका डिब्बा उपयुक्त होगा। दियासलाई के बक्सों की भी डिब्बा बंदी दर्जनों और ग्रोस के हिसाबसे होती है। अस्तु डिब्बाबंदीमें भी बारहके आधार का ही सिद्धांत अंतर्निहित है। प्रामाणिक परिमाणों को लीजिये। भिन्न-भिन्न परिमाणों के प्रमाण रखने हों तो बड़े परिमाण छोटी इकाइयोंकी ऐसी पूर्ण संख्या के बराबर होने चाहिए जिसके अनेकों गुणनखंड किये जा सकें। उदाहरणार्थ १ फुटवर्ग लकड़ीके यदि भिन्न नापों के शहतीर काटने हों, जिनके परिमाण स्वयं सरल संख्याओं से प्रदर्शित हो सकते हों, तो यह तभी संभव है जब फुट बारह इंचका हो। वस्तुतः १, २, ३, ४, ६ इंच के परिमाण के बीस भिन्न प्रकार के शहतीर कट सकते हैं जिनके विस्तार (परिच्छेद के) पूर्ण इंचों के होंगे। साथही एकही नापके सभी शहतीर काटने पर लकड़ी कुछ भी व्यर्थ नहीं जायगी। इसके विपरीत यदि फुट दस इंच का होता तो १, २, ५ इंच के भिन्न परिमाणोंके परिच्छेद केवल ६ही होते।

ज्यामिति से एक दृष्टांत लीजिए। एक सम्पूर्ण भ्रमणमें ४ समकोण होते हैं। यदि हम यहाँ भी दसके ही आधार पर अवलम्बित होते तो या तो समकोणको ही छोड़ बैठते (क्योंकि समकोण तब पूरे दशमांश के बराबर नहीं होता) या भ्रमण को ही कोण नापने का माप न मानते। उस स्थिति में उत्तर और दक्षिण तो रहते किंतु पूर्व, पच्छिम लुप्त ही हो जाते। किंतु बारहके आधार पर यह सभी बातें ठीक बैठती हैं। इसी प्रकार हमें दिन को २, ३, ४ १२, २४ (न कि दस) भागोंमें विभाजित करना सुविधामय होता है क्योंकि चौबीस घंटे के दिनमें प्रत्येक अंश पूर्ण घंटे पर ही पड़ता है। अंकगणित के दृष्टि-विंदुसे देखिये। दो अंकोंके गुणनफलोंमें शून्य पर समाप्त होने

वाली संख्याओंका (जिन्हें अँगरेज़ी में 'राउंड' कहते हैं और हिंदी में 'रुंड' कहना अनुचित न होगा क्योंकि रुंड 'राउंड' का अपभ्रंश भी माना जा सकता है। साथही इसका अर्थ यह है जो देही का दीर्घतर भाग है जैसे कि रुंड संख्या अधिक शुद्ध संख्या का) बाहुल्य होगा। प्रचलित पद्धति में केवल २, ४, ६, ८ को ५से गुणा करने पर कुल ४ रुंड संख्याएँ प्राप्त होती हैं। द्वादशांक पद्धति में (४̄, २̄, २, ४, ६) को ६से गुणा करने पर और ४̄, ४ को ३ अथवा ३̄से रुंड संख्याएँ मिलेंगी और वे हैं ९। दूनी से अधिक। इनके बाहुल्य से गुणनविधिमें यह सुविधा होती है कि हासिल जोड़ने की क्रियामें सरलता आ जाती है और त्रुटियोंकी संभावना कम हो जाती है।

विलोम अंकावली से लाभ

कई एक अंकों की संख्यामें प्राथमिक अंकही संख्यामान निर्दिष्ट करने में सर्वोपरि है और दाहिनी ओरके अंकोंकी महत्ता क्रमशः घटती जाती है। इस कारण हम यह धारणा कर सकते हैं कि दाहिनी ओर के अंक प्राथमिक अंकों के निर्दिष्ट संख्यामान में केवल संशोधन रूप हैं। किंतु यदि संख्या में अंक धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों प्रकारके हों तो संख्या का मान-ज्ञान उतनेही अंकोंसे अपेक्षतया अधिक विशुद्ध होगा। यही नहीं वरन् जितने अंकों तक शुद्ध मान लेना हो उतने अंक रख अवशिष्ट बाईं ओरके अंकोंको निस्संकोच छोड़ सकते हैं। उदाहरणार्थ ४६·३̄६१̄ का तीन सार्थ अंकों तकका मान ४६·३̄ है। किंतु दशमलव पद्धतिमें ४६·३६१ का तीन सार्थांक-मान ४६·४ होगा। यहाँ ३ के आगे वाले अंक ६ पर भी ध्यान करना पड़ता है। विलोम पद्धतिमें निकटतम गणनाके लिए यदि संख्याओंका अंतिम भाग, 'पूँछ' काट दें तो जितने अंक रह जायं वे सब सार्थमान के परिचायक हैं। परंतु प्रचलित पद्धतिमें ऐसी सुविधा न होनेसे साधारण व्यक्ति को निकटतम गणित से स्वाभाविक भय होता है, क्योंकि विलोम पद्धति में लिखी संख्याओं में ऋणात्मक और धनात्मक अंक लगभग बराबर ही आएँगे, अतः कई एक संख्याओंको भी जोड़नेमें प्रत्येक खानेका (एक ही स्थानीय मान वाले) योगफल एक छोटी ही संख्या होगी। इस प्रकार त्रुटियोंकी संभावना कम रह जाती है। साथमें एक लाभ और है। यदि कुछ द्वादशमलव स्थानों तक शुद्ध योगफल अभीष्ट हो तो उतने ही द्वादशमलव स्थान तकके अंकों को रहने दें और शेष का विसर्जन कर दें तो अधिकांशमें उत्तर शुद्ध होगा। अर्थात् निकट-मान निर्दिष्ट करनेके लिए संख्याओंकी पूँछ काट सकते हैं क्योंकि उनके योगफल का प्रभाव 'सांग्रहिक' नहीं होता; वह घटता बढ़ता न्यून ही रहता है। जैसा कि कहा जा चुका है दोनों प्रकार की (ऋणात्मक और धनात्मक) संख्याओंको एक साथ जोड़नेमें इस विलोम पद्धतिमें कोई असुविधा नहीं होती वरन् सुविधा ही होती है, बहीखातेमें आय और व्ययके दो खाने रखने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि ध्येय तो विधि मिलाना होता है। वह एक ही खानेमें जोड़से निर्दिष्ट हो सकती है। इस रीतिसे कागजकी भी बचत होगी और सुविधा भी, क्योंकि लेनदेन की राशियाँ कटती जायँगी।

दैनिक जीवनमें हम देखते हैं कि यदि कोई भिन्नात्मक राशि कहना हो तो उसके निकटतम पूर्णांक मानमें घटा-बढ़ी कर उसे प्रकट करते हैं, यथा पौने छः। विलोम पद्धतिमें लिखेंगे भी इसे इसी भाँति, अर्थात् ६·३̄, जिससे इसका ६से नैकट्य स्पष्ट हो जाता है। गिननेमें भी ४ दर्जन और ८ न कह कर ४ कम ५ दर्जन कहनेमें आता है। द्वादशांक विलोम पद्धतिमें इसे लिखेंगे भी ५४̄· तोलने में सुविधा इसीमें होती है कि बाँट दोनों पलड़ोंमें रक्खे जायँ जो विलोम पद्धति का द्योतक है। तोलको नई पद्धतिमें तुरंत लिख सकते हैं। प्रचलित पद्धतिमें विलोमांक न होनेसे प्रयोगशालाओं के आदेशोंमें से इस पर विशेष आग्रह होता है कि बाँट एक ही पलड़ेमें रक्खे जायँ और इस कारण १, २, २, ५, १०, २०...आदि मात्राओं के कई एक हटी बाँट रखना आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत यदि विलोम पद्धति प्रचलित हो तो केवल १, ३, ९, २७ के बाँटों से ही काम चल जाय। विलोम पद्धति में एक लाभ और है। दाहिनी और बाईं दिशाओं का संकेत हम केवल संख्या द्वारा ही कर सकते हैं, अलग से दिशाको व्यक्त करनेकी आवश्यकता नहीं। यदि दाहिनी दिशाके मापोंको धनात्मक मानें तो जिन

संख्याओंका प्रथम अंक धनात्मक होगा वे दाहिनी दिशा के माप हैं और प्रथमांक विलोमांक वाली संख्याएँ बाईं दिशाके। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिणका भी, बिना स्पष्ट कहे केवल संख्यासे ही अर्थ लगाया जा सकता है। जंत्रियों में 'समय का समीकरण' नाम का संशोधन दिया रहता है; वह कहीं धनात्मक कहीं ऋणात्मक होनेसे समझने में त्रुटि हो जाती है। नवीन पद्धतिमें सभी संशोधन जोड़े जाते हैं, और त्रुटिकी संभावना न्यूनतम हो जाती है।

नवीन पद्धतिके प्रचारकी आवश्यकता

पाठकगण के सम्मुख द्वादशांक विलोम पद्धतिकी कुछ विशेषताएँ वर्णित की गई हैं। इससे उन्हें यह स्पष्ट होगया होगा कि यदि एक सहस्र वर्ष पूर्व ही, जब अंक गणित का ज्ञान इतना उन्नत नहीं था, किसी दूरदर्शी व्यक्तिने इस पद्धतिका प्रचार किया होता तो क्या ही अच्छा होता। किंतु वे कहेंगे कि अब इस पद्धतिका अनुसरण करने में कितनी ही कठिनाइयाँ हैं। १. सब व्यक्तियों को एक नया अंकगणित सीखना होगा। अब तक जितनी पुस्तकें दशांक पद्धतिमें छपी हैं वे फिरसे मुद्रित करनी होंगी; और यह स्वयं एक क्रांति है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि उन्नति कभी क्रांतिमय पथसे विचरण नहीं करती किंतु उसका विकास होता है। विकासवाद का मूल मंत्र 'सुयोग्य स्थापतित्व' है। अतएव यदि किसी पुष्ट विचार अथवा आविष्कारको समुचित प्रोत्साहन मिले और अज्ञान एवं रूढ़ियोंके कुठाराघातसे उसका कोमल अंकुर कुचल न डाला जाय तो वह अवश्य स्थापित हो जायगा। अत: हमें जनता में यह प्रकाशित करना चाहिए कि वर्तमान दशांक पद्धति दोषपूर्ण है और इसमें सुधार अत्यंत वांछनीय है। द्वादशांक विलोम पद्धति अत्यंत स्वाभाविक और उपादेय है और आरंभमें प्रायोगिक रूपसे जहाँ सम्भव हो इस पद्धति का अनुसरण होना चाहिए। भ्रम निवारणार्थ दोनों पद्धतियोंको सभेद रखने के लिए यह वांछनीय है कि नई पद्धतिमें अंकोंकी रचना कुछ भिन्न हो, यद्यपि विलोम अंकों की उपस्थितिसे प्रत्यक्ष पता चल जायगा कि अमुक स्थानमें नवीन पद्धति का प्रयोग हो रहा है।

ज्योतिष विज्ञान संबंधी जैन ग्रन्थ

[ले०—श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर]

विज्ञान परिषद् से सरल विज्ञानसागर नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। उसके कुछ अध्याय "विज्ञान" पत्र के गत अंकोंमें प्रकाशित हुए हैं जिससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थ निर्माण में लेखक ने बहुत श्रम किया है। इस ग्रन्थमें भारतीय ज्योतिष सम्बन्धी साहित्य एवं उसके रचयिताओं परभी अच्छा प्रकाश डाला गया है, पर उनमें ज्योतिष सम्बन्धी जैनग्रन्थोंमें से केवल एकही यंत्रराज नामक जैन ग्रन्थका परिचय प्रकाशित देखकर इस लेखमें अन्य जैन ज्योतिष ग्रन्थोंके सम्बन्धमें संक्षेपमें प्रकाश डाला जा रहा है।

ज्योतिष विज्ञानकी ओर प्राचीन समयसे जैन विद्वानों की अच्छी दिलचस्पी रही है। आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व रचित एवं वि० सं० ५१० में संकलित और लिखित जैन आगमों से इस सम्बन्धमें काफी जानकारी पाई जाती है। स्थानाङ्गम्, समवायाङ्गम् और भगवती सूत्रादि प्राचीन मुख्य आगमों में से अंग ग्रन्थोंमें ज्योतिष सम्बन्धी उल्लेख पाये हैं। चंद्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति नामक उपाङ्ग तो इस विषय के स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंसे ढाई हजार वर्ष पूर्व चंद्र, सूर्य, नक्षत्रादिके सम्बन्धमें भारतीय मान्यताओं का भलीभांति पता चलता है। वेदाङ्ग ज्योतिषको समझनेमें भी इन ग्रन्थोंकी उपयोगिता बहुत अधिक है[1]।

इसके पश्चात्वर्ती ग्रन्थोंमें ज्योतिष-रत्न-करंडक, प्रश्न-व्याकरण (जयप्राभृत), गणिविज्जा, मंडलप्रवेश और

---

१ हिन्दीके सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य पं० हजारी प्रसादजी द्विवेदी अपने "हिन्दी साहित्यकी भूमिका" ग्रन्थके पृ० २५०में इन ग्रन्थों के सम्बन्ध में लिखते हैं— "उपाङ्गोंमें से कई (नं० ५-६-७) बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। उनमें ज्योतिष, भूगोल, खगोल आदि का वर्णन है। सूर्यप्रज्ञप्ति और चंद्रप्रज्ञप्ति संसारके ज्योतिषिक साहित्यमें अपना अद्वितीय सिद्धान्त उपस्थित करती हैं। वेदांग-ज्योतिष की भांति ये दोनों ग्रन्थ खीष्ट पूर्व छठी शताब्दीके भारतीय ज्योतिष विज्ञान के रेकार्ड हैं।"

अंगविज्जा आदि ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। उपर्युक्त सभी ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है। इनमें से चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और ज्योतिषरत्नकरंडक पर मलयागिरी रचित संस्कृत टीकायें भी उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त भद्रबाहुसंहिता२ ग्रन्थ भी प्राकृतमें था पर अभी वह संस्कृत|का मिलता है जिसका रचना समय अभी अनिश्चित है।

संस्कृत भाषाका सर्व प्रथम ज्योतिष ग्रन्थ लग्नशुद्धि है जिसे सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्रसूरिजी ने वि० आठवीं शताब्दीमें बनाया है। इसके पश्चात् १३वीं शताब्दीसे निरन्तर जैन विद्वानोंने मौलिक ज्योतिष ग्रन्थ एवं टीकायें रची है जिनकी संख्या ५००से अधिक है। इतने विशाल जैन ज्योतिष साहित्यके सम्बन्धमें अभी तक हमारी जानकारी नहींके बराबर है यह परम खेद का विषय है।

१३वीं शताब्दीके ज्योतिष सम्बन्धी जैन ग्रन्थोंमें नरचंद्रसूरि रचित ज्योतिषसार, "नारचंद्र" नाम से प्रसिद्ध है। प्रश्नशतक, जन्मसमुद्रवृत्ति (बेड़ाजातक) उदयप्रभ सूरिकृत, आरंभसिद्धि और पद्मप्रभ सूरि का भुवनदीपक (गृहभाव प्रकाश) ज्योतिष विज्ञानके प्रसिद्ध ग्रन्थों में है। इसी प्रकार सं० १३०५ में हेमप्रभ सूरि रचित त्रैलोक्यप्रकाश भी ताजिक प्रश्नोंके सम्बन्धी महत्पूर्ण ग्रन्थ हैं। १५वीं शताब्दीका यंत्रराज और राज शेखर इसी कृत दिनशुद्धिदीपिका, और ज्योतिषसार अच्छे ग्रन्थ हैं। १७वीं शताब्दीमें हर्षकीर्ति रचित ज्योतिषसारोद्धार, जन्मपत्री पद्धति, पद्मसुंदर का हायनसुंदर ज्योतिषहीर और १८वीं श०में मेघमहोदय, ज्योतिषरत्नाकर, जन्मपत्री पद्धति, मानसागरी पद्धति आदि बहुतसे महत्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। उपरोक्त सभी ग्रन्थ श्वेताम्बर जैन विद्वानोंके रचित हैं। इसी प्रकार दिगंबर जैन विद्वानोंने भी बहुतसे ज्योतिष विषयक ग्रन्थ बनाये पर उनका रचना समय मुझे ज्ञात नहीं है और न मैंने उन ग्रन्थों को स्वयं देखा ही है, अतः उनके सम्बन्धमें प्रकाश नहीं डाला जा सका।

मौलिक ग्रन्थ| रचना करने एवं जैन ज्योतिष ग्रन्थों पर टीकायें रचनेके अनंतर जैन विद्वानोंने जैनेतर ज्योतिष ग्रन्थों पर भी बहुत सी टीकायें बनाई हैं; जिनमें से ताजिकसार, करण कुतुहल आदि पर सुमति हर्ष की टीकायें एवं ज्योतिर्विदाभरण पर भावप्रभ सूरि की, ग्रहलाघव पर यशस्व सागरकी टीकायें तो बहुत ही उपयोगी हैं।

वीर शासन जयंती महोत्सव पर गतवर्ष कलकत्तेमें पं० नेमिचंद्रजी शास्त्रीने, जो ज्योतिषके अच्छे विद्वान हैं, जैन ज्योतिष साहित्यके महत्वके सम्बन्धमें एक विस्तृत खोज शोधपूर्ण निबंध पढ़ा था जिसमें इस विषय पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है। परिशिष्ट रूपमें उन्होंने ५००से अधिक जैन विद्वानों के रचित जैन ज्योतिष ग्रन्थों की सूची भी संग्रह की है। अतः सरल विज्ञानसागरके लेखक महोदय पं० नेमिचंद्रजी शास्त्री—जैन सिद्धान्त भवन पो० आरा से पत्र व्यवहार कर आवश्यक जानकारी प्राप्त करें एवं अपने ग्रन्थमें जैन विद्वानोंकी सेवाको उचित स्थान आवश्य दें यही मेरा नम्र अनुरोध है।

मेरी जानकारीमें अभीतक जिन-जिन ज्योतिष ग्रन्थोंका पता चला है उनकी सूची १ नीचे दी जा रही है। आशा है इससे समुचित लाभ उठाया जायगा। निमित्त शास्त्रके ८ अंश माने जाते हैं। उनके सभी अंगो पर (जैसे स्वप्न, सामुद्रिक, शकुन) जैन विद्वानों ने ग्रन्थ बनाये हैं। इन सब विषयोंके साधारण उल्लेख तो उनके जैन ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं।

श्वेताम्बर जैन ज्योतिष ग्रन्थ

प्राकृत-संस्कृत

१ सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति सह, वृ० मलयगिरि, प्रकाशक आगमोदय समिति सूरत

२ प्राकृत भद्रबाहु संहिता के कुछ उद्धरणमेघ महोदयमें पाये जाते हैं। संस्कृत भद्रबाहुसंहिताकी एक प्राचीन प्रति भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूनेमें है। मुनि जिन विजयजी उसे छपानेका विचार कर रहे हैं। इसी नाम का एक ग्रन्थ दि-समाज की ओरसे छपा भी है पर वह जुगलकिशोरजी मुख्तारके मतानुसार १७वीं शताब्दी का है।

१ कई वर्ष पूर्व ऐसी ही एक सूची जैन सिद्धान्त भास्करके या ४ सं० २से४ में मैंने वैद्यक ग्रन्थों की सूचीके साथ प्रकाशित की थी। उसी का यह संशोधित एवं परिवर्तित रूप है।

२ चंद्रप्रज्ञप्ति वृत्ति सह, वृ० मलयगिरि
३ ज्योतिष करंडक वृत्ति सह, वृ० ,, प्र० कमभवेद मोरहीयत राजेन
४ गणिविज्जा
५ मंडल प्रवेश
६ प्रश्न व्याकरण (जयप्राभृत) जैसलमेर व्याटपभंडार
७ भद्रबाहु संहिता (सं०) भद्रबाहु
८ ,, (सं०) ,, सं० भा० रि० इ० पूना
९ लग्नशुद्धि, हरिभद्रसूरि (८वीं शताब्दी)
१० ज्योतिषसार-नारचंद्र, नरचंद्र सूरि (१३वीं श०)
११ ,, टीका, सागरचंद्रसूरि (१४वीं श०)
१२ जन्म समुद्र सटीक, नरचंद्रसूरि (१३वीं श०)
१३ ज्योतिष प्रश्न चतुर्विंशिका नरचंद्रसूरि (१३वीं श०), हमारे संग्रह में
१४ प्रश्नशतक, नरचंद्रसूरि (१३वीं)
१५ आरंभसिद्धि, उदयप्रभसूरि (१३वीं) प्र० लब्धिसूरि ग्रन्थमाला पो० छाणी
१६ आरंभसिद्धि टीका हेमहंस सं० १५०४ ,,
१७ भुवन दीपक पद्मप्रभसूरि (१४वीं) प्रकाशित
१८ ,, वृत्ति सिंहतिलकसूरि सं० १३२६
१९ ,, टीका, ख० रत्नधीर सं० १८०६
२० त्रैलोक्यप्रकाश हेमप्रभसूरि सं० १३०५
२१ मेघमाला हेमप्रभसूरि, भा० रि० इं० पूना
२२ दिन शुद्धि दीपिका गा० १४४ प्रा० रत्नशेखर सूरि (१५वीं)
२३ दिन शुद्धिदीपिका विश्वप्रभाटीका मु० दर्शनविजय प्र० चारित्र स्मारक सीरीज बढ़वाण
२४ यंत्रराज, महेंद्रसूरि सं० १४३७
२५ ,, वृत्ति, मलयचंद्रसूरि
२६ ज्योतिषसार (प्रा०) प्र० भगवानदास जैन जयपुर, हि० अनुवाद सह
२७ हायन सुन्दर, पद्मसुन्दर (१७वीं)
२८ ज्योतिष मंडल विचार, विनयकुशल सं० १६५२
२९ दोष रत्नावली, जयरत्न सं० १६६२, खंभात
३० ज्योतिषसारोद्धार, हर्षकीर्ति सूरि (१७वीं)
३१ जन्मपत्री पद्धति ,, ...
३२ जन्मपत्री पद्धति लब्धिचंद्र सं० १७५१ कार्तिक
३३ ,, महिमोदय (१८वीं) हमारे संग्रह में
३४ ,, (मान सागरीपद्धति) मानसागर !
३५ मेघ महोदय (वर्ष प्रबोध) मेघविजय सानुवाद प्र० भगवानदास जैन जैपुर
३६ उदय दीपिका, मेघविजय
३७ ज्योतिष रत्नाकर, महिमोदय
३८ यशोराजराजि पद्धति, यशस्व सागर सं० १७६२
३९ तिथिसारणी, बाघजी मुनि सं० १७८३
४० ज्योतिः प्रकाश
४१ ज्योतिष सार संग्रह

भाषामें

४२ जोइ सहीर हीरकलश सं० १६२१ हमारे संग्रहमें
४३ गणित सादियो, महिमोदय सं० १७३३ राखीपूनदा हमारे संग्रहमें
४४ उदयविलास बे० सूरि जिनोदय, जैसलमेर भंडार
४५ मेघमाला, मेघराज सं० १८८१
४६ पंचाग नयन महिमोदय सं० १७२४ माघसुदी २ हमारे संग्रहमें
४७ लग्नघटिका चौपइ, सोमविमल
४८ ज्योतिषसारोद्धारयों, आनंद मुनि सं० १७३१
४९ लीलावत यों (गणित) लालचंद सं० १७३६ बीकानेर, हमारे संग्रहमें
५० वर्षफलाफल चौपइ, सूरचंद (१७वीं)
५१ विवाहपटल चौपई, अभयकुशल
५२ ,, रूपचंद
५३ ,, हीर

संस्कृत (अवशिष्ट)

५४ मासहानि वृद्धिविचार, नेमा कुशल
५५ ज्योतिषलग्नसार, विद्याहेम सं० १८३०
५६ जगचंद्रिका सारणी हीरचंद्र
५७ षटऋतु संक्रान्ति विचार, खुस्याल
५८ इष्टतिथिसारिणी, लक्ष्मीचंद्र सं० १७६०
५९ महायु, पुण्यतिलक
६० प्रतिष्ठासुहिर, समधसुन्दर

सामुद्रिक

६१ अंगविद्या (प्रा०)
६२ कररेहालक्खण
६३ सामुद्रिकतिलक, दुर्लभराज
६४ हस्तसंजीवन, मेघविजय
६५ हस्तकांड, पार्श्वचंद्र
६६ अंगफुरकण चौपइ, हेमाचंद

स्वप्न

६७ स्वप्न सहातिका, जिनवल्लभ मुनि (१३वीं)
६८ स्वप्न चिन्तामणि दुर्लभराज
६९ स्वप्नप्रदीप, वर्द्धमानसूरि

शकुन

७० यात्रा के ढलि गर्गापि
७१ शकुनदीपिका चौपई जयविजय सं० १६६०
७२ शकुनशस्त्र जिनदत्त सी (१३वीं)
७३ शकुनसारोद्धार माणिक्यसूरि
७४ शकुनरत्नावलि, वर्द्धमानसूरि
७५ शकुनावलि, सिद्धसेन
७६ अबयदी शकुनावलि रामचंद सं० १८१७ नागपुर
७७ शकुनप्रदीप (हिन्दी) लक्ष्मीचंद्रति जयधर्मः सं० १७६२ पानीपंथ

रमल

७८ रमलशास्त्र मेघविजय
७९A ,, भोजसागर
७९B ,, सार विनयदानसूरि

स्वरोदया

८० स्वरोदया भाषा चिदानंद सं० १८०७

अनुपलब्ध

८१ कालकसंहिता
८२ भद्रबाहुसंहिता (प्रा०)
८३ तिथिकुलक
८४ चातुर्यशिव कुलक
८५ मेघमाला विजयहीरसूरि

जैनेतर ग्रन्थों पर जैन टीकायें*

८६ गणितलिक वृत्ति सिंहतिलकसूरि सं० १३२२ प्रकाशित
८७ गणितसार वृत्ति, सिद्धसूरि
८८ लघुजातक टीका भक्तिलाभ सं० १५७१ बीकानेर
८९ ,, वार्त्तिक मतिसागर सं० १६०५ संग्रहमें
९० ,, दवा, खुस्यालसुन्दर
९१ जातकपद्धति (वृत्तिः) जनेश्वरसूरि बड़ौदा
९२ ,, दीपिका सुमतिहर्ष सं० १६७३
९३ ताजिकसार टीका सुमतिहर्ष सं० १६७७
९४ करणकुतुहल टीका, सुमतिहर्ष सं० १६७८
९५ होरामकरंदवृत्ति, सुमतिहर्ष
९६ महादेवीसारणी वृत्ति धनराज १६९२
९७ विवाहपडल टीका हर्षकीर्तिसूरि
९८ ,, माला ऊमर
९९ ,, विद्याहेम
१०० ग्रहलाघव वार्त्तिक शाश्वतसागर सं० १७६०
१०१ ,, टिप्पन राजसोम
१०२ ज्योतिषविदाभरणवृत्ति भावप्रभसूरि सं० १७६८
१०३ षटपंचाशिकावाला, महिमोदय
१०४ चंद्रार्कीवृत्ति, कृपाविजय
१०५ भुवनदीपकवाला लक्ष्मीदित्रप १७६७ मि०
१०६ महूर्त्तचिन्तामणि टया चतुरविजय
१०७ चमत्कारचिंतामणि टया मतिसार १८२७ फरीदकोट
१०८ ,, वृत्ति अभयकुशल
१०९ बसंतराज शकुन टीका भानुचन्द्र गणि

दिगम्बर जैन ज्योतिष ग्रन्थ

१ गणितसार सटिप्पन, महावीराचार्य (११वीं)
२ केवलज्ञानहोरा, चंद्रसेन
३ आयज्ञान तिलक (प्रा०) भट्ट केसरि
४ ,, टीका (सं०)
५ जिनेन्द्रमाला (स०)
६ ,, टीका
७ ज्ञानप्रदीपिका, प्रकाशित
८ निमित्त शास्त्र, भूमिपुत्र
९ निमित्तदीपक, जिनसेन

* विशेष जाननेके लिये मेरा उक्त नाम वाला लेख देखें जो "भारती विजय" भाग २ अ० ३-४ में प्रकाशित हो चुका है।

व्यावहारिक-मनोविज्ञान

कल्पना और मौलिकता

[ले० राजेन्द्र बिहारी लाल, एम० एस० सी०, इण्डियन-स्टेट-रेलवेज़]

लोगों से अगर पूछा जाय कि क्या उनके पास अच्छी कल्पना शक्ति है तो उनमें से अधिकांश तुरन्त यह सोचने लगेंगे कि क्या उनका मन असम्भवके साम्राज्यमें उड़ान कर सकता है या क्या वे प्रेमचन्द और शरत बाबूकी तरह सुन्दर उपन्यास लिख सकते हैं। पर सच पूछिये तो कल्पना विचारकी एक ऐसी क्रिया नहीं है जिसका सम्बन्ध केवल वास्तविकता और सम्भावनाके क्षेत्रसे परे की बातोंसे रहता है या जिसका उद्देश्य हमारे अवकाशके समयमें केवल हमारा मनोरंजन करना होता है, बल्कि यह तो दैनिक जीवनकी एक ऐसी अत्यन्त आवश्यक

१० ज्योतिषपटल, मसावीर
११ होराज्ञान, गौतम
१२ सामुद्रिक शास्त्र
१३ शकुनदीपक
१४ अरहन्तपासा केवलि, विनोदीलाल
१५ ,, ,, बृन्दावन, प्रकाशित
१६ अक्षरीकेवली शकुन
१७ अरिष्टाध्याय (प्रा०)
१८ वरपिंगलि (कनाड) प्रभचंद्र
१९ जातकतिलक श्रीधर
२० आपसद्भावमवरण महिषेण
२१ ऊर्धकांड दुर्मादवे
२२ रिह समुच्चय दुर्मादवे (सं० १०८९)
२३ जिनसंहिता

नंकित

२४ चंद्रोन्मीलन
२५ गर्गसंहिता

टिप्पणी—कुछ ग्रन्थों और ग्रन्थकारोंके नाम साफ़-साफ़ नहीं पढ़े जा सके, इसलिए अशुद्ध छपे हैं। पाठकगण क्षमा करें।

क्रिया है जो हमारे सोचने विचारने और काम करनेके मार्ग पर प्रकाश डालती है और जिसके बिना हमारे और कार्य दूसरोंके अनुकरण या अपनी तात्कालिक धुन पर ही अवलम्बित रह जाते हैं। मानव जीवनमें कल्पना का क्षेत्र व्यापक है न कि संकुचित।

कल्पना हमारी मानसिक आँखोंके सामने उन चीज़ों-की प्रतिमायें उपस्थित कर देती है जो हमारे भौतिक नेत्रोंके सामने मौजूद न हों। इसका मुख्य काम है पदार्थों की अनुपस्थितिमें उनकी प्रतिमाओंको मनमें प्रगट करना अथवा उनके सम्बन्धमें विचारोंका बनाना। ये प्रतिमाएँ कभी तो ऐसे पदार्थों या विषयोंकी होती हैं जिन्हें हम स्वयं, या दूसरोंकी सहायतासे, पहले अनुभव कर चुके हैं, और कभी ऐसी बातोंसे सम्बन्ध रखती हैं जो हमारे लिए बिलकुल नई हैं और जो हमारे अनुभवमें पहले कभी नहीं आई। कल्पनाकी इन दो क्रियाओंका भेद शीघ्र ही स्पष्ट हो जायगा। एकमें पुराने विचारों और प्रतिमाओं का पुनः उद्भव होता है, दूसरीमें नई प्रतिमाओं या नये विचारोंका निर्माण। पहलीको हम पुनरुद्भावक और दूसरी को रचनात्मक कल्पना कहेंगे।

पुनरुद्भावक कल्पना

इतिहास, साहित्य, कला इत्यादिके समझनेमें कल्पना की आवश्यकता होती है क्योंकि इन चीज़ोंको तभी समझ सकते हैं जब कि अपने सामने उनके काल, लेखक, या कलाकारके विचारोंका चित्र साफ़-साफ़ बन जाय। इसी तरह विज्ञानके समझने के लिए भी कल्पनाकी बड़ी ज़रूरत होती है। उदाहरणार्थ जब तक आपकी मानसिक दृष्टिके सामने अणुओं और परमाणुओंका ठीक-ठीक चित्र नहीं बन जाता तब तक आप उन्हें समझ ही कैसे सकते हैं! कल्पनाकी इन सब क्रियाओंको हम पुनरुद्भावक कह सकते हैं। इस पुनरुत्पादक कल्पना द्वारा हम अपने मन-में उन चित्रोंको दोबारा उपस्थित कर देते हैं जो दूसरोंके लिखनेया बोलनेके कारण पहले अंकित हुए थे या जो हमारे निजी पिछले अनुभवोंसे बनकर स्मृतिके रूपमें संचित थे। यही अतीतके चित्रोंको हमारे समक्ष उपस्थित करती है और इस भाँति हमें भूतकालके भूपतियों, महर्षियों तथा वीरोंके साथ रहनेका अवसर प्रदान करती

है। कल्पनाके इस प्रयोगमें हमारा काम पीछे-पीछे चलना रहता है न कि अगुआ बनना, नक़ल करना नकि उत्पन्न करना, नई बातोंका समझना नकि उनका आविष्कार करना।

रचनात्मक कल्पना

दूसरोंके विचार, भाव और कृतियोंके समझने या उनकी व्याख्या करनेके सिवा कल्पनाका एक और बड़ा महत्त्वपूर्ण काम है। मान लीजिये कि कविता पढ़नेकी जगह आप स्वयम् एक काव्यकी रचना कर रहे हैं या किसी चित्र को देखनेकी जगह आप स्वयम् एक चित्र बना रहे हैं। ऐसी अवस्थामें आपका उद्देश्य दूसरोंके पीछे-पीछे चलना या उनकी नक़ल करना नहीं होता बल्कि दूसरोंके लिए एक नये उदाहरण या चित्रका निर्माण करना होता है। कल्पनाकी इस क्रियाको हम रचनात्मक क्रिया कह सकते हैं। दुनियाकी उन्नतिके लिए ऐसे व्यक्तियोंकी परम आवश्यकता है जो नये मार्ग दिखायें, नई वस्तुएँ या नये विचार पैदा करें। सच तो यह है कि हर किसी को, चाहे उसका पद कितना ही छोटा हो या उसका जीवन कितना ही नीरस हो यह आवश्यक है कि वह कुछ न कुछ हद तक मौलिकता या स्वयं किसी न किसी कामको प्रारम्भ करनेकी क्षमता रक्खे। यह योग्यता बहुत हद तक रचनात्मक कल्पना को काममें लानेकी दक्षता पर ही निर्भर रहती है।

कल्पना शक्तिका महत्व

कल्पना शक्ति एक अत्यन्त ही मूल्यवान व्यावहारिक पूँजी है। यह बड़ी सफलता पाने वाले व्यक्तियोंका विशेष लक्षण है। अगर नेपोलियन एक महान् सेनाध्यक्ष था तो इसीलिए कि उसने परम्पराकी रूढ़ियोंको तोड़ा और एक नये प्रकारके सामरिक कौशलकी कल्पनाकी जिसका मुकाबला बहुत समय तक कोई दूसरा न कर सका। इसी तरह नफ़ील्ड और हेनरीफ़ोर्ड जैसे शिल्पकारोंकी सफलता भी उनकी कल्पना-शक्तिके कारण है जिसने उनके सामने नई सम्भावनाओं, नये कार्यक्रम और संगठन तथा कामके नये-नये ढंगोंका प्रादुर्भाव किया। न्यूटन और आइन्स्टाइन जैसे विचारकोंने जो नई मानव-विचार-प्रणाली स्थापित की वह न केवल इस वजहसे कि उनके पास ज्ञानका बृहद् भण्डार था बल्कि इस कारण कि उन्होंने अपने मनकी सामग्रीसे विचारों और व्याख्याओंका नया ताना बाना बुना।

साधारण क्षेत्रमें भी रचनात्मक कल्पना ही सफलताका प्रधान सूत्र है। यदि आप उपन्यास, नाटक या कविता लिखना चाहते हैं तो सबसे पहले आपको यही रहस्य समझना पड़ेगा। एक प्रबन्धक कर्मचारी जो किसी संस्था को जमे हुए पुराने ढर्रे पर योग्यता पूर्वक चलाता है एक दूसरे व्यक्तिकी अपेक्षा कहीं कम मान्य होता है जो कि काम करनेके नये ढंगोंका अनुसन्धान करता है और नवीन कार्य-कौशलकी रचना करता है। ईमानदारी और मेहनतसे काम करने वाला अवश्य ही समाजका उपयोगी तथा आदरणीय सदस्य है जो अपने परिश्रमके पुरस्कारसे कभी वंचित नहीं रह सकता। पर यदि वह इससे अधिक और कुछ नहीं है और यदि उसमें रचनात्मक कल्पना-शक्तिका अभाव है तो वह किसी नई व्यावसायिक क्रिया या उम्दा माल या और अधिक सफल आर्थिक संस्थाकी रचना करके या किसी उपन्यास अथवा गल्पको लिखकर अपने साथियोंमें विशिष्ट स्थान नहीं प्राप्त कर सकता, उसकी गणना साधारण वर्गमें ही रहेगी। अगर आप इस प्रकारके क्षेत्रोंमें सफलता पानेके इच्छुक हैं तो आपको अपनी कल्पना शिक्षित तथा विकसित करना चाहिए। उन्नति करनेकी यह आवश्यक शर्त है।

हमारे दैनिक कामकाज में भी कल्पना का बहुत बड़ा हाथ रहता है। कल्पना भविष्य पर दृष्टि डाल कर हमारे लिए नमूने तैयार करती है और योजनायें बनाती है। यही हमारे आदर्शों का निर्माण करती है और पहले ही से हमें आने वाली उस अवस्था का सुख-स्वप्न दिखा देती है जब हम उन आदर्शों को चरितार्थ कर चुके होंगे। कल्पना भविष्य में होनेवाली बातों का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित कर देती है और उनका कुछ न कुछ आभास पहलेसे करा देती है। हमारे किसी कार्यसे भविष्य में किस फल की आशा की जाय, हमारे कहे या लिखे हुए शब्दों का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, हमारे किसी प्रस्ताव, प्रार्थना या मांग के विरुद्ध दूसरों के किन-किन

आपत्तियोंके पेश करने की सम्भावना है—यह सब पहले ही से कल्पना द्वारा समझा जा सकता है। इसीसे हम दूसरोंके मनके अन्दर पैदा होनेवाले विचारों और भावनाओं का अन्दाज़ पहलेसे लगा लेते हैं जिससे हम उनकी शंकाओं का समाधान करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। अगर कल्पना न हो या उसका उचित प्रयोग न किया जाय तो हम कितने ही काम ऐसे कर डालें जिनसे दूसरोंको या अपने ही को हानि पहुँचे और जिनके लिए बाद में बहुत पछताना पड़े। कल्पना वर्तमानमें आकर हमारे हर काम को प्रभावित करती है चाहे वह कितना ही सरल या जटिल क्यों न हो। मानसिक प्रवाहके लिए यह वैसेही पथप्रदर्शन का काम करती है जैसे एक दीपक अन्धकारमें चलते हुए उस पथिक के लिए जो कि दीपक को अपने साथ ले जाता है। नेपोलियनने सच कहा था कि "विश्व पर कल्पना ही का साम्राज्य है।" इसी तरह आपकी कल्पना आपके जीवन पर शासन करती है।

मानसिक शक्तियोंमें कल्पना का स्थान सबसे ऊँचा है। दूसरी शक्तियाँ—जैसे समझने और याद रखनेकी—हमारे जीवनमें बड़ी ही उपयोगी और आवश्यक हैं। उनके बिना जीवन का कारोबार चलना असम्भव होगा। यह बात तो शायद कल्पनाके सम्बन्धमें नहीं कही जा सकती पर कल्पना एक बड़े उच्च कोटि की शक्ति है। उसका काम नये विचारोंका उत्पादन करना, नई बातोंको खोज निकालना और उन बातोंको स्पष्ट रूपमें देखना है जिनका प्रत्यक्ष और वर्तमान संसारमें नाम-निशानभी नहीं और जिनका अस्तित्व केवल सम्भावना या भविष्य या अतीत के ही जगत में रहता है।

कल्पना शक्ति का विकास

क्या कल्पना-शक्ति मनुष्यके वशकी वस्तु है? क्या प्रयत्नों द्वारा उसको बढ़ाना या विकसित करना सम्भव है? क्या यह सच नहीं कि कुछ लोगोंको जन्मसे यह शक्ति विशेष मात्रामें मिली रहती है और कुछ लोग इससे वंचित रहते हैं? निस्सन्देह मनुष्यमात्रमें और प्रकारकी योग्यताओं की तरह कल्पना-शक्ति की मात्रामें भी भिन्नता रहती है। कुछ लोगोंमें दस प्रकारकी योग्यता रहती है, कुछ लोगोंमें पाँच और कुछमें एक ही प्रकार की। परन्तु ऐसा कोई नहीं जिसमें कोई न कोई योग्यता न हो। हर व्यक्तिमें कमसे कम एक प्रकारकी योग्यता अवश्य रहती है। इसी प्रकार कल्पना-शक्तिकी मात्रा कुछ व्यक्तियोंके पास कम हो सकती है पर वह निस्सन्देह बढ़ाई जा सकती है। उन लोगोंके काममें भी जिन्हें प्रकृतिने प्रचुर मानसिक बल प्रदान किया है या जो बड़े ही प्रतिभा-सम्पन्न हैं, विकास या उन्नति का क्रम दीख पड़ता है—उनकी शक्तियाँ भी समय बीतनेके साथ बढ़ती हुई जान पड़ती हैं। ऐसा बहुतही कम होता है कि वे आरम्भसे ही अपनी पूरी शक्ति प्रगट करने लगें। उनकी रचनात्मक क्षमताका वर्षों तक पालन-पोषण होता रहता है और उनकी योग्यता समयके साथ और भी अधिक विस्तृत, मौलिक और गहन बन करही अपनी चरम सीमा तक पहुँचती है। शेक्सपियर और डार्विनकी रचनाओंसे भी कालान्तर एवं क्रमशः विकास ही का पता चलता है। वे भी अपने काम और जीवन द्वारा अपनी कल्पना-शक्ति को शिक्षित और परिवर्द्धित करते दिखाई देते हैं और जो बात दस प्रकार की योग्यता रखने वाला व्यक्ति कर सकता है वही बात—यद्यपि निश्चयही कम मात्रा में—एक योग्यता रखने वाला भी प्राप्त कर सकता है। यदि हम प्रकृति से मिली हुई कल्पना शक्तिकी मात्राको नहीं बढ़ा सकते तो अपने आपको इस तरह अवश्य शासित कर सकते हैं कि जितनी भी कल्पना शक्ति हमारे पास है उसीसे हमारी मानसिक कल अधिक दूरी तक और अधिक तेजी से जा सके।

इसीलिए किसीको यह समझने की आवश्यकता नहीं है कि उसके भाग्यमें जीवनभर कल्पना-विहीन परिश्रम करने वाला बना रहना ही लिखा है। अगर आप ऐसे भाग्यके विचार से दबे रहते हैं तो दोष आप ही का है न कि आपके प्रारब्ध का। इसका कारण है उदासीनता एवं कुछ निराशा और ईश्वराधीनता का भाव। मगर इससे भी ज़्यादा इसका कारण है इस बात से अनभिज्ञता कि आप उन्नति कर सकते हैं। कल्पना-शक्तिसे जिस प्रकार बहुतोंने लाभ उठाया है उसी प्रकार आपभी उठा सकते हैं और उन्नति कर सकते हैं यदि आप मनोविज्ञान के बताये हुए मार्ग पर चलें।

कल्पना और अन्तश्चेतना

मस्तिष्क, उसकी क्रियाओं और उसकी रचनात्मक या कल्पनात्मक शक्तियों के सम्बन्धमें बहुत कुछ तो अभी तक रहस्य के पर्दे ही में छिपा है पर इतना अवश्य मालूम है कि कल्पनामें सचेत और अचेत मन दोनोंही का संयोग रहता है। अधिक ठीक तो यह कहना होगा कि उच्चश्रेणी का अधिकांश मानसिक काम अन्तश्चेतना के भीतर होता है। मनोविज्ञान वेत्ताओं ने इसके बहुतसे प्रमाण संग्रह किए हैं। इसका उत्तम दृष्टान्त हैमिल्टन द्वारा की गई एक गणित-सम्बन्धी खोज है। कोई पन्द्रह वर्ष तक वह एक प्रश्नको हल करनेमें लगे रहे पर सफलता न मिली। एक दिन जब वह अपनी पत्नी के साथ टहल रहे थे उनको ऐसा जान पड़ा कि विचार सम्बन्धी बिजली का घेरा बन्द हो गया और उससे जो चिनगारियाँ निकलीं वह वही मौलिक समीकरण थे जिनकी तलाशमें वे वर्षोंसे थे। उन्होंने वहीं जेब से एक नोटबुक निकाली और उन समीकरणोंको लिख लिया। इसका एक बड़ा विचित्र उदाहरण चार्लट ब्रोंट (Charlotte Bronte) के जीवनमें मिलता है। उसकी लिखी एक पुस्तकमें एक पात्रने दवाकी एक ख़ूराकके साथ कुछ अफ़ीम खा ली। उसके बाद उस पात्रके मन और शरीरकी दशाका जो वर्णन उसने पुस्तक में किया है वह इतना सत्य है कि उसे लेखिकाके एक मित्र ने उससे पूछा कि क्या कभी उसने अफ़ीम खाई थी। चारलट ब्रोंट ने उत्तर दिया कि उसने अफ़ीम कभी नहीं खाई, और बतलाया कि अफीम खा लेनेके प्रभाव का जो वर्णन उसने लिखा वह उसको उसी क्रिया से मिला जिसका अवलम्बन वह सदा ऐसे मौक़ोंपर लिया करती थी जब उसे किसी ऐसी बात का वर्णन करना होता था जो उसके निजी अनुभवमें कभी न आई हो। ऐसे अवसरों पर वह कई रात सोने से पहले अपने इच्छित विषय पर गम्भीर चिन्तन किया करती थी। यहाँ तक कि अन्त में, शायद उसकी कहानी की प्रगति कई हफ़्तों तक बन्द रहती थी, उसे एक दिन सवेरे नींद से जागने पर सब बातें साफ़-साफ़ दिखाई पड़ने लगती थीं, मानों उसने उसे स्वयं अनुभव किया हो। उसके बाद उसका वर्णन अक्षरशः उसी तरह कर देती थी जैसा कि वह घटित हुई। नये विचारों को प्राप्त करने की यह बड़ी पुरानी रीति है। पुराने ज़माने के लोगों को जब कभी कोई गहन प्रश्न हल करना होता था तो रात को सोने से पहले वह उससे अपने दिमाग़ को भर लेते थे क्योंकि उन्हें अनुभव से यह मालूम हुआ था कि ऐसा करने से एक दिन सबेरे उसका हल उन्हें मिल जायगा।

यद्यपि आधुनिक मनोविज्ञान ने अभी इतनी उन्नति नहीं की है कि वह उन नियमों या शर्तों की ठीक-ठीक व्याख्या कर सके जो कि कल्पना-शक्ति के विकास के लिए पर्याप्त हैं, या उन साधनों का सुझाव कर सके जिनके द्वारा वे अवस्थायें इच्छानुसार पैदा की जा सकें, फिर भी मनोवैज्ञानिकों के निर्णय निश्चय ही कुछ ऐसी बातें बता सकते हैं जो मौलिकता के लिए आवश्यक और उपयोगी हैं। आगे इन्हीं नियमों का वर्णन किया गया है।

कार्यक्षेत्रका नियत करना

कल्पनाशक्ति की उन्नतिके प्रयासमें पहली सीढ़ी यह है कि अपने लिए इच्छा, आवश्यकता और योग्यताके अनुसार एक निश्चित विषय या कार्यक्षेत्र निर्धारितकर लिया जाय।

व्यायाम करने से सारे शरीर में बल का संचार होता है। हाथ, पैर और पुट्ठे सुडौल और दृढ़ बनते हैं और काम करने की क्षमता बढ़ जाती है। इसी प्रकार शायद आप सोचते होंगे कि यदि मनकी शक्तियोंको उपयुक्त व्यायाम और अभ्यास द्वारा मज़बूत बना लिया जाय तो उनसे हर अवसर पर और हर काम में लाभ उठाया जा सकेगा। पर वास्तव में ऐसा नहीं होता। एक बड़ी विचित्र बात यह है कि मन की अधिकतर शक्तियाँ और क्रियायें विशेषोन्मुख—नकि व्यापक—होती हैं। अवधान, स्मृति, कल्पना इत्यादि सभी चुने हुए क्षेत्रों में समुन्नत हो सकती हैं, पर उनकी पटुता उन विशिष्ट विषयों तक ही सीमित रहेगी। एक व्यक्ति गणित में चतुर है पर उसकी बुद्धि शायद व्याकरण और इतिहास में नहीं चल पाती। एक मनुष्य जो अपने व्यवसाय या अपने प्रिय विषय से सम्बन्ध रखने वाली छोटी-छोटी बातोंको भी खूब याद रखता है जब कि वह दूसरी बातें बड़ा प्रयत्न करने परभी स्मरण नहीं रख सकता बल्कि शीघ्र ही भूल जाता है। इसी

तरह एक मनुष्य की कल्पना भी उसके विशेष विषयके सम्बन्धमें नये-नये विचार पैदा करने की योग्यता प्राप्त कर सकती है पर यह आशा करना ठीक न होगा कि एक विषयमें कल्पना-शक्ति बढ़ाने से वह क्षमता दूसरे विषयों में भी उपयोगी सिद्ध होगी।

मन की समस्त शक्तियाँ और क्रियायें चुने हुए विशेष क्षेत्रोंमें ही उन्नति कर सकती हैं—उनकी पक्षता अति ही विशेष ढंगसे काम करती है। यह बात कल्पना के सम्बन्ध में भी लागू होती है, बल्कि सच तो यह है कि कल्पना जितनीही उच्चकोटि की शक्ति है उतनीही विशेष (Specialised) ढंग से वह काम करती है।

जिस तरह स्मृति पर शासन करने में या उसकी उन्नति करनेमें हमारा लक्ष्य यह नहीं रहता कि एक व्यापक धारण शक्ति पैदा करें बल्कि स्मृति के कुछ विशेष कार्यों में अपनी दक्षता को बढ़ाना, इसी प्रकार कल्पना को अपने अधिकारमें रखने और उस पर शासन करने में हमारा ध्येय कुछ मनोवांछित दिशाओंमें अधिकाधिक योग्यता प्राप्त करना रहता है। एक उपन्यास लेखक का मन जो अपने चुने हुए काममें अत्यन्त उपजाऊ है, यांत्रिक आविष्कारोंमें या युद्ध कौशल में बिलकुल बंजर या ऊसर हो सकता है। हमको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए और उसीके अनुसार प्रबन्ध करना चाहिए कि कल्पना का काम अत्यन्त ही विशेष प्रकार (Specialised) का होता है। कदाचित् इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण चार्ल्स डार्विन था, जिसने अपने जीवनके अन्तिम दिनों में यह शोक प्रगट किया कि वर्षों मन को विज्ञान पर एकाग्र करने के कारण वह कविता का प्रेम बिलकुल ही खो बैठा। यह आवश्यक नहीं है कि हम सब को ऐसा ही मूल्य चुकाना पड़े, परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि अगर हमको चावल पैदा करना है तो हम खेतमें बाजरा कदापि न बोयँगे। यही बात कल्पना परभी लागू होती है। पहले आप तय कर लीजिए कि किस तरह की फ़सल पैदा करनी है, तब उचित प्रकारके बीज अपने मन के खेत में बो दीजिये, फिर उनको हर तरहसे खाद देने, सींचने और बढ़ाने में लग जाइये।

कल्पनाकी सामग्री

दूसरी बात जो ध्यानमें रखने योग्य है यह है कि रचनात्मक कल्पनाके काममें कोई चीज़ बिलकुल मौलिक या सर्वथा नई नहीं होती। भौतिक दुनियाँकी भाँति मानसिक दुनियाँमें भी मनुष्य कोई नई चीज़ शून्यसे उत्पन्न नहीं कर सकता। वह केवल इतना ही कर सकता है कि जो कुछ पहले से मौजूद है उसमें सुधार या उलट फेर करके उसे नये क्रम या रूपमें उपस्थित कर दे। कवियों या उपन्यासकारोंकी उत्तमसे उत्तम रचनायें भी उसी विचार सामग्रीसे बनती हैं जो पहलेसे उनके कब्जेमें रहती हैं।

कुछ लोग यह समझ लेते हैं कि ज्ञान या जानकारी का कल्पनासे कोई सम्बन्ध नहीं है और मानसिक रचना का अर्थ है कि कुछ नहीं में से कुछ पैदा कर लिया जाय। यह तो सच है कि निर्जीव दिखावटी जानकारी काल्पनिक रचनाकी शत्रु हो सकती है। पर जीता जागता ज्ञान तो, जो कि पचकर आपके मनका एक अंग बन गया है, कल्पनाका प्राणाधार है। स्कौट, डार्विन आदि बड़े बड़े लेखक और वैज्ञानिकों ने कड़े परिश्रमसे अपने विशेष विषयोंमें विश्व-कोष की सी जानकारी संचितकी थी। इन लोगों ने अपनी नई रचनाओंकी सामग्री तथ्योंकी कड़ी चट्टानोंसे खोदकर निकाली थी। उनके उद्भवकी नींव उनके कठिन परिश्रम पर ही बनी थी।

बहुधा एक नौसिखिया यह मान लेनेकी भूल कर बैठता है कि रचनात्मक कामका कठिन और ठीक ठीक परिश्रमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका यह भ्रम घातक है। कोई भी व्यक्ति किसी विषयके बारेमें अच्छी तरह नहीं विचार सकता जब तक कि वह उसे अच्छी तरह जानता नहीं। बिना यथेष्ट ज्ञानके नये विचार या तो मनमें प्रगट ही नहीं होते और अगर होते भी हैं तो इतनी थोड़ी मात्रामें कि उनका कोई मूल्य नहीं। सदैव तथ्य ही नये विचारोंके सबसे अच्छे प्रवर्तक होते हैं। इसलिये यदि कभी आप नये विचारोंके अभावसे रुक जाँय तो तथ्योंकी ओर ध्यान दीजिये। यही आपके लिए नये साधन और काम करनेके नये ढंग मालूम करनेकी सबसे उत्तम रीति है। कुछ वर्ष हुए एक

प्रयोग किया गया था जिससे यह पता चला कि लोगों के पास जो ज्ञान या जानकारी है उसकी मात्रा और उनकी रचनात्मक या मौलिक रूपसे विचार करनेकी योग्यतामें एक निश्चित सम्बन्ध है। प्रतिभावान् पुरुषोंकी मानसिक क्रियाओंके बारेमें हम जो कुछ जानते हैं उससे भी इसी नतीजेकी पुष्टि होती है। शेक्सपियर ने अपनी अधिकतर रचनाओंकी सामग्री पुरानी किताबों और कहानियोंमें से निकाली थीं। कितने ही आदमियों ने, जिनकी कृतियोंकी उड़ान, विस्तार और नवीनतामें दैवी भेंटकी झलक दीख पड़ती है, अपनी सफलताको अनगिनत घण्टों तक निहायत सूखे और अरोचक पदार्थों का अध्ययन करके और उनमें से तथ्योंको चुन कर ही प्राप्त किया। कार्लाइल बड़े कड़े परिश्रमसे लिखता था और अपनी इतिहासकी बड़ी बड़ी पुस्तकोंका एक एक पृष्ठ लिखनेसे पहले उस विषयकी जानी हुई सभी प्रामाणिक पुस्तकें देख लेता था। डाक्टर जान्सन का कहना था कि एक पुस्तकके लिखनेके लिए लेखकको आधा पुस्तकालय उलट डालना चाहिये। मानसिक पुतलीघर में से सुन्दर और नवीन पदार्थ तभी तैयार होकर निकल सकते हैं जब उसमें उत्तम कच्चा माल प्रचुर मात्रामें पहुँचाया जाय।

विस्तार पूर्वक विश्लेषण

नये विचार पैदा करनेके लिए तीसरा नियम यह है कि जमाकी हुई मानसिक सामग्री या प्रश्नके तथ्यों पर गहरा सोच विचार किया जाय और उनका विस्तार पूर्वक विश्लेषण किया जाय।

कल्पना तभी दो या अधिक प्रतिमाओंको मिलाकर एक कर सकती है और उनमें से एक नया विचार पैदा कर सकती है जब उन तथ्योंको जिनसे विषयका सम्बन्ध है भली भाँति समझ लिया जाय और उनका मूल्य आँक लिया जाय। जितने अधिक स्पष्ट और चमकीले आपके विचार होंगे उतनी ही सुगमतासे वह जुड़कर नये विचार बना सकेंगे।

जाने हुए तथ्योंका सविस्तार विश्लेषण करना कई तरहसे लाभकारी है। एक तो यह उन विचारोंको जो मन में पहलेसे मौजूद हैं, क्रमबद्ध करता है। दूसरे यह नये तथ्योंकी खोजमें जिनका अब तक पता नहीं, सहायक होता है, जैसे कि रासायनिक विश्लेषणसे हमें रेडियम मिल गया। तीसरे यह मनको उपमायें या समानतायें ढूँढ़ लेनेमें मदद देता है, क्योंकि बहुधा बड़ी महत्वपूर्ण समानतायें बड़े विचित्र ढङ्गसे छिपी रहती हैं। चौथे यह एक सच्चे संश्लेषणके लिए मार्ग खोल देता है। सच तो यह है कि सावधानीसे किये गये कुल विश्लेषण में प्रायः सदैव ही नवीन परिणामोंका निकालना शामिल रहता है।

मनन और चिंतन

जब आप अपने काम करने की मेज छोड़ें तभी अपने कार्यको न छोड़ दें। अगर आपकी इच्छा केवल साधारण जीविका उपार्जन करना ही है तो ऐसा करना बिलकुल ठीक हो सकता है। पर यदि आप काल्पनिक दूरदर्शिता प्राप्त करना चाहते हैं तो ऐसा करना कदापि उचित नहीं। आपको अपने कामको अपने साथ मन में लिए रहना चाहिये। अकेले रहने के अवसरोंको अत्यन्त मूल्यवान समझकर उपयोग कीजिये। ऐसे मौके पानेका प्रयत्न कीजिये। यही अवसर हैं जिनके द्वारा आप नित्य कर्मके विशेषज्ञसे बढ़कर—जो कि कोई भी काम करने वाला कुछ समय बीतने पर बन जाता है—एक उत्पादक विशेषज्ञ बन सकते हैं।

जब आप अपनी मेज और उन विस्तृत कार्योंसे जिनका प्रतीक आपकी मेज है छुट्टी पावें तो अपने सारेके सारे कामको साथ न लिये रहें—उसकी छोटी बातोंको अथवा दैनिक कर्मोंको साथ नहीं रखना चाहिये। केवल बड़े बड़े प्रश्नोंके ही सम्बन्धमें विचार करना चाहिए। उसके बड़े बड़े सम्बन्धोंको और अच्छी तरह समझनेका प्रयत्न कीजिये। यह सोचिये कि उसमें क्या क्या सुधार किए जा सकते हैं। ऐसा करनेमें आपका अभिप्राय ऐसी आदत डालना है जिससे मनका कार्य और प्रवाह आपके अभीष्ट विषयकी ओर बिना रोक टोकके चलता रहे। कल्पनाके क्षेत्रमें बहुत सी सफलताओंका रहस्य छुट्टीके घंटोंका उचित उपयोग ही है। कुछ लेखक हर रोज अपना कुछ समय इस काम के लिये अलग निकाल रखते हैं जब वह अपने काम पर

एकाग्र मनसे ध्यान लगाते हैं चाहे वह एक भी लाइन लिखें या न लिखें। आपको ठीक ऐसा करनेकी आवश्यकता तो नहीं पर याद रखनेकी बात यह है कि ये लोग एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक नियमको काममें ला रहे हैं जिसका आपको भी आदर और प्रयोग करना चाहिये।

चिन्तन, मनन और कड़े परिश्रमके ही द्वारा सुविख्यात लेखकों ने अपनी रचनायें लिखीं। ऐडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक वेल्थ औफ नेशन्स (Wealth of Nations) के लिखनेमें दस वर्ष और Gibbon ने अपना 'रोमन साम्राज्यकी अवनति और पतन' (Decline and fall of the Roman Empire) नामक ग्रंथ लिखनेमें बीस वर्ष लगाये। जब एक कवियित्री ने वर्डस्वर्थको बताया कि उसने अपने एक काव्यकी रचनामें ६ घन्टे व्यतीत किये तो वर्डस्वर्थ ने उत्तर दिया कि वह स्वयं उसमें ६ हफ्ते लगाता। रड्यार्ड किप्लिंग ने अपनी छोटी-छोटी कहानियोंको, जो कि उत्कृष्ट कृतियाँ हैं, बड़ी कड़ी मेहनतसे लिखा। उनके लिखनेकी क्रियाका जिक्र करते हुए उसने लिखा कि वह उन कहानियोंको लिख लेने पर वैसे ही पड़ा रहने देता था फिर कुछ समय बाद उन्हें पढ़कर उनके अनावश्यक शब्दों, वाक्यों और प्रकरणोंको काली रोशनाई और ब्रुशसे काला करके मिटा दिया करता था। इस तरह उसकी कहानियाँ तीनसे पाँच वर्ष तक पड़ी रहती थीं और हर साल उत्तरोत्तर छोटी होती जाती थीं। नेपियर बीस साल तक कठिन परिश्रम करता रहा तब कहीं जाकर लघुगणक Logarithm का अनुसन्धान कर पाया।

कामके बाद विराम

मौलिकताकी चौथी शर्त यह है कि कुछ देर मानसिक परिश्रम, गहरी छानबीन और चिन्तन करनेके बाद या तो मानसिक क्रियाशक्तिको कुछ समयके लिए बन्द कर दिया जाय या दिमाग को किसी दूसरे विषयमें लगाया जाय।

देखनेमें आता है कि बहुत देर तक अचेत काम होनेके उपरान्त ही आकस्मिक उद्गार पैदा होते हैं। बिलकुल निष्फल दीख पड़ने वाले उद्योगके बाद कुछ दिन बीत जाने पर ही वे प्राप्त होते हैं। इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। एक बार क्लार्क मैक्सवेल ने प्रोफेसर टाम्सनको एक साध्य (proposition) दिया जिस पर मैक्सवेल स्वयं बहुत दिनसे लगे हुए थे। टाम्सन ने मैक्सवेलको एक लम्बा पत्र लिखा जिसमें इसके सिद्ध करनेके अनेक सुझाव थे पर कोई भी ठीक नहीं उतरता था। कुछ दिन बाद जब टाम्सन रेलमें सफ़र कर रहा था तो उसे इच्छित लब्ध फल (Solution) मिल गया। सर वाल्टर स्कौट जब कभी दिनके समय किसी कठिनाईको हल करनेमें असफल रह जाता था तो वह सदा यह आशा रखता था कि अगले दिन प्रातःकाल उसे उस प्रश्नका हल मिल जायगा। उसे अपने प्रातःकालके विचारों पर बड़ा भरोसा रहता था और यदि उसे दिनमें काम करनेके समय कोई मनोवांछित विचार न मिल पाता तो वह कहा करता था कि कोई चिन्ता नहीं! मैं कल सवेरे सात बजे उसे पा जाऊँगा। हैमिल्टन, चार्लाट ब्रोंट और टाम्सनको तुरन्त ही इच्छित फल न प्राप्त हो सका। उसका कारण यही था कि अचेत क्रियाओं को अपना काम पूरा करनेके लिए समयकी आवश्यकता थी और ज्योंही वह काम पूरा हुआ उन्होंने उसके परिणाम या फलको तुरन्त ही सचेत मनमें भेज दिया। परिश्रम और विश्रामको बार बार दुहराना ही मौलिकताकी कुञ्जी है।

बड़े प्रतिभावान् व्यक्ति भी उत्कृष्ट मौलिक विचारोंको इच्छानुसार नहीं बुला सकते और ऐसा जान पड़ता है कि बहुत देर तक किसी विषय पर मनको एकाग्र करना एक मनोवैज्ञानिक भूल है। ठीक तरीका तो यह है कि कुछ देर तक ध्यान पूर्वक काम किया जाय उसके बाद फिर किसी दूसरे चित्ताकर्षक काममें मन लगाया जाय। फ्रांस के एक लेखकका कहना था कि "जब से मैंने पढ़ना बन्द किया तब से मैंने बहुत कुछ सीखा है और सच तो यह है कि हमारी फुरसतके वक्त की चहल क़दमियों ही में हमारे बड़े-बड़े मानसिक और नैतिक अनुसन्धान किये जाते हैं।" प्रोफेसर महाफी (Mahaffy) ने रेनीडी कार्टे (Rene Descates) के सम्बन्धमें लिखा है

कि वह बहुत सोया करता था और उत्तम कार्यके उत्पादन के लिए निरुद्योगिताकी विशेषकर सिफ़ारिश किया करता था। प्रोफ़ेसर विलियम जेम्स ने अध्यापकोंको व्याख्यान देते हुए बताया कि उनके एक दोस्त जब किसी विशेष काममें सफलता प्राप्त करनेके इच्छुक होते थे तो किसी दूसरे विषयके सम्बन्धमें सोचने लगते थे और इसका परिणाम अच्छा ही होता था।

उचित अंशोंमें दिमागी बेकारी अन्तश्चेतनाको काम करनेका मौका देती है। इसके विपरीत दिमाग़ी मेहनत जिसमें आपकी आँख और दिमाग़ निरन्तर लगे रहते हैं आपके जाग्रत मानसिक जीवनके सारे क्षेत्र पर अधिकार जमा लेती है जिसके कारण अचेत मनको स्वयं काम करने का या सचेत मनके पास सन्देश भेजनेका बहुत कम अवसर मिलता है। इस मानेमें किसी वैज्ञानिक लब्धफल (Solution) को पानेके लिए या कविताका ऐसा पद लिख डालनेके लिए जो दिमाग़में उमड़ रहा है, कड़ा मानसिक परिश्रम करना मनोविज्ञानके नियमोंके बिलकुल विरुद्ध है, जब तक मनको बेकारी या मनोरंजन द्वारा विश्राम न दिया जाय। अचेत मनको इतना अवसर अवश्य मिलना चाहिए कि वह अपनी रचनात्मक शक्तिका प्रयोग कर सके।

शायद यह माननेके लिए कोई आसानीसे तैयार न होगा कि बेकारीमें भी कोई गुण है क्योंकि सर्व मान्य सिद्धान्त तो यही है कि मनुष्यको सदा काम करते रहना चाहिए। पर क्या कामके मूल्यके सम्बन्धमें जो प्रचलित विचार हैं वह अक्षरशः सत्य हैं? यह तो अवश्य सत्य है कि परिश्रमसे चरित्रका अनुशासन होता है, मगर दिमाग़ी तरक्कीके लिए रोज़मर्राके काममें डूबे रहना या किसी प्रकारकी खोजमें निरन्तर बिना किसी विषय-परिवर्तन या विश्राम के लगा रहना सरासर भूल है। किसी एक विषय पर मनको बहुत देर तक एकाग्र किए रहनेसे दिमाग़ न केवल थक जाता है बल्कि एक ही दिशामें सोचते रहने के कारण उसमें बहुधा ऐसी लकीरें पड़ जाती हैं जो उसकी उर्बर शक्ति को दबा देती हैं। एक बुद्धिमान विचारक जो किसी प्रकारके अनुसन्धान करनेके लिए उत्सुक है दूसरे सब काम छोड़कर एक ही विषयके पीछे पड़कर और उसीमें निरन्तर अविराम ढंगसे लगे रह कर अपने दिमाग़ को कभी नहीं थका डालता, बल्कि वह जानता है कि सावधानीसे काम करनेके बाद उस ओरसे सचेत मनको हटा लेना चाहिए जिससे इच्छित फलके पैदा करनेमें अन्तश्चेतना भी उचित रूपसे भाग ले सके।

"कामके बाद विराम" के नियम का एक और कारण यह है, जैसा कि प्रकृतिमें और जगह भी देखने में आता है—कि मानसिक क्षेत्रमें भी आवर्तन (Rhythm या Periodicity) का राज्य है। दिनके बाद रात आती है, समुद्र की लहरोंमें चढ़ाव के बाद उतार होता है, दिल फैलने के बाद सिकुड़ जाता है—इसी तरह दिमाग़के भी फैलने और सिकुड़ने के समय होते हैं जो बारी-बारीसे प्रगट होते रहते हैं। कुछ विशेष समय ऐसे होते हैं जब कि मनकी उर्बर शक्ति तीव्र होती है, और नये विचार गहराइयोंमें से बुलबुलों की तरह उठ कर निकल आते हैं। इसके विपरीत कुछ समय ऐसे होते हैं जबकि मनकी उर्बराशक्ति शिथिल होती है और उसमें नये विचार नहीं उठते। ऐसी शिथिलताके समय में मनके घोड़े को एड़ लगाकर ज़बरदस्ती उससे नये विचार पैदा करनेकी कोशिश करना व्यर्थ है। ऐसे कालमें न तो बेकार कोशिश करके शक्ति को नष्ट करना चाहिए और न असफलताके कारण निराश होना या अपनी खोज ही को छोड़ बैठना चाहिए—बल्कि आशा और उत्साह के साथ उर्बर कालके आने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। मानस-सागर में ज्वार-भाटा किस-किस समय आता है इसका तो अभी ठीक-ठीक पता नहीं है मगर निरूपण और अनुभव से सम्भव है हर व्यक्ति अपने लिए उर्बरकालों का पता लगा ले और फिर उनसे लाभ उठा सके।

[अपूर्ण]

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण, ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ।।=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १।।),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ।।।),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=),

८—निर्णायक (डिटर्मिनेंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ।।),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।=),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ।।।),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १।।),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १।।)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र; सजिल्द; १।।),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २), सजिल्द २॥),

२४—कलम-पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२५—ज़िल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १॥),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र; २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

"यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगडान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, १२० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालयके शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पृष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३)

२—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम०आई०एल०ई०। इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

३—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं, २)

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान-परिषद्, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

****

भाग ६१	कन्या, सम्वत् २००२ सितम्बर १९४५	संख्या ६

****

परमाणु-शक्ति और परमाणु-बम

[लेखक—श्री कुन्दनसिंह सिंगवी, भौतिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और अनुवादक श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव]

इतिहासका सबसे बड़ा स्फोटन (धड़ाका) १६ जुलाई १९४५ ई० को निउमेक्सिकोके रेगिस्तानमें नहीं हुआ था जब कि एक भारी इस्पातकी मीनार जिसमें परीक्षा करनेका परमाणु बम रखा हुआ था वायुमण्डलके ऊर्ध्व तलकी पतली हवामें ऐसी चमकके साथ उड़कर विलीन हो गई जो मध्याह्न के सूर्यकी चमकसे कई गुना अधिक थी और जिससे उत्पन्न हवाके झोंके ने २५० मील दूरकी खिड़कियोंको भी झनझना दिया था, वरन् १९३९ की जनवरीमें बर्लिनके कैसर विल्हेल्म इंस्टीट्यूट आव् टेक्निकल रिसर्चकी एक छोटी सी कोठरी की दीवारोंके भीतर हुआ था जब यूरेनियमका परमाणु दो भागोंमें तोड़ दिया गया था। उस समय इंस्टीट्यूटकी खिड़कीका एक शीशा भी नहीं झनझनाया था। उस समय जर्मनीके दो प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी डाक्टर ओटो हान और एफ् स्ट्रोसमैन ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि साढ़े छः वर्ष उपरान्त उनके महत्व पूर्ण आविष्कार के कारण हिरोशीमाका पूरा नगर क्षण भरमें उड़ा कर हवामें मिला दिया जायगा। वे इसकी कल्पना कैसे कर सकते थे? वे तो सभी सत्यान्वेषकोंकी तरह इस बातकी जाँच कर रहे थे कि परमाणुके गर्भ (nucleus) में क्या रहस्य भरा हुआ है।

इस समय परमाणु-बमकी धाक साधारण मनुष्योंके हृदयमें ही नहीं वरन् उन साधारण वैज्ञानिकोंके हृदयमें भी जम गयी है जो खोजके इस विशेष क्षेत्रसे अनभिज्ञ हैं। उन लोगों के लिए जो भौतिक विज्ञानके इस क्षेत्रमें सैद्धांतिक और प्रायोगिक अन्वेषणमें जुटे हुए हैं यह समाचार विस्मयकारी नहीं जान पड़ता। परमाणुमें जो वृहत्शक्ति बन्द थी उसे ही इन वैज्ञानिकों ने मुक्तकर दिया है। जब यूरेनियमके परमाणुका एक बीज फूटता है तो इसके दो टुकड़े हो जाते हैं और साथ ही साथ २० करोड़ इलेक्ट्रन वोल्ट शक्ति विकिरण, गरमी और वेगके रूपमें उत्पन्न होती है। यद्यपि यह २० करोड़ इलेक्ट्रन वोल्ट की शक्ति उस बीजके लिए बहुत बड़ी है जिसमें यह होती है तथापि उपयोगिताके विचारसे यह बहुत ही कम है क्योंकि ऐसे ऐसे ५ पद्म (५×१०^{१५}) बीजोंके स्फोटनसे इतनी शक्ति उत्पन्न हो सकती है जिससे ५ सेरका बोझा १० फुट ऊँचा उठाया जा सके। परन्तु इतने असंख्य स्फोटनोंके लिए आध सेर यूरेनियमके एक खरब भागके भी टुकड़ेसे काम चल जायगा यदि परमाणुको तोड़नेकी क्रिया अधिक कौशल और संग्रहके साथ की जाय। १९३९ में यही समस्या थी और ६ वर्षके लगातार प्रयत्नसे सफलता मिल ही गयी जिसके कारण कुछ दिनोंसे समाचारपत्रों के मुख पृष्ठ भरे रहते हैं।

परमाणु सौर-परिवारकी तरह है

संसार जिस द्रव्यसे बना है वह सब छोटे-छोटे कणोंसे बने हैं जिन्हें परमाणु कहते हैं जो गत शताब्दीके अंत तक अविभाज्य और पदार्थके सबसे छोटे अंश समझे जाते थे। परन्तु अब

देखा गया है कि परमाणु एक क्षुद्र सौर परिवार की तरह है जिसका बीज (nucleus) सूर्यकी तरह नाभिमें स्थिर रहता है और विद्युत् कण (electron) इसके चारों ओर अपनी अपनी कक्षाओंमें ग्रहकी तरह परिक्रमा करते हैं। परमाणु बीज कितना छोटा होता है इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक सेंटीमीटर घनके आयतनमें एक करोड़ अरब × एक करोड़ अरब अथवा $१०^{३२}$ केन्द्र समा सकते हैं (यह याद रहे कि एक इंचमें ढाई सेंटीमीटर होते हैं)। परमाणुका कुल द्रव्य बीजमें ही एकत्र रहता है। द्रव्य (matter) के सारे भौतिक और रासायनिक गुण परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रनोंसे संबंध रखते हैं और बीज साधारणतः किसी क्रियामें भाग नहीं लेता। बीस वर्ष पहले इस बीजकी बनावटके बारेमें बहुत कम जानकारी थी और अभी हाल में ही ज्ञात हुआ है कि इसमें भी छोटे-छोटे कण होते हैं जिनको प्रोटन (proton) और निउट्रन (neutron) कहते हैं। अभी तक यह समझा जाता है कि यह अविभाज्य हैं अर्थात् इनसे भी छोटे टुकड़े अब तक नहीं पाये गये हैं। इन दोनोंमें प्रायः बराबर द्रव्य मान (mass) होता है परन्तु निउट्रनमें कोई विद्युत शक्ति नहीं पायी जाती और प्रोटनमें धनात्मक विद्युत भरी रहती है। यह दोनों प्रबल आकर्षण शक्तिके द्वारा बीजके भीतर बँधे रहते हैं। यथार्थमें परमाणु बीज पानीकी बून्दकी तरह है जिसमें निउट्रन और प्रोटन अणु (molecule) की तरह रहते हैं। संसारके भिन्न-भिन्न प्रकारके तत्वोंमें जो अंतर देख पड़ता है वह बीजके भीतरके इन प्रोटनों और निउट्रनोंकी संख्याके कारण है। यदि किसी तत्वके प्रोटनों और निउट्रनोंकी संख्या में कमी बेशी कर दी जाय तो वह दूसरे तत्व में बदल सकता है; लोहे से सोना बनाया जा सकता है जो पहले कपोल-कल्पित बात समझी जाती थी।

कीमियागरोंका स्वप्न सच निकला

स्वर्गीय लार्ड रथरफोर्डने सन् १९१९ में पहले पहल एक तत्वको बदलकर दूसरा बना देने में सफलता प्राप्तकी इन्होंने नाइट्रोजनको हीलियम गैस के बीज (nuclens) के द्वारा जिसे अल्फा कण कहते हैं तोड़कर अक्सिजन तैयार किया। लार्ड रथरफोर्ड के इस आविष्कारके उपरान्त इस बीस वर्षमें परमाणुके बीज को निउट्रन और प्रोटन रूपी बाणों से तोड़कर सैकड़ों तत्वोंका परिवर्तन कर दिया गया है। लोहेको सोनेमें बदलनेकी क्रिया अब कीमियागरों का स्वप्न नहीं है वरन् रासायनिक प्रयोगशाला में सचमुच की गयी है यद्यपि अभी इसे व्यापारिक मात्रामें नहीं बना सकते। सब परमाणु-अस्त्रों (Atomic missiles) में निउट्रन का स्थान अद्वितीय है क्योंकि यह बीज (nuclens) के केन्द्र में बिना किसी रुका- के घुस सकता है और इस प्रकार एक मंदगामी निउट्रन भी बीजमें प्रवेश करके उसको टुकड़े-टुकड़े कर सकता है।

परमाणु-बीज का भेदन (fission)

१९३९ ईस्वी तक भौतिक विज्ञान तत्व-परिवर्तन (transmutation) के प्रयोगों में परमाणु बीजोंके केवल ऊपरही ऊपर धक्का लगाकर अपने काम में सफल हुए थे। इनसे उस अपरिमित शक्तिका एक अत्यन्त छोटा भाग बाहर आता था जो गर्भमें निहित था। १९३९की जनवरीमें हान और स्ट्रैसमानने पहले पहल यूरेनियमके परमाणु बीज को मन्दगामी निउट्रन से तोड़कर दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया जिससे अपरिमित शक्ति उत्पन्न हुई। जिस समय यूरेनियमका परमाणु बीज टूटा उस समय कई अनोखी और विस्मयजनक घटनाएँ हुईं। दो टुकड़ों के सिवा कुछ खाली निउट्रन भी बाहर निकल आये। ये दो नये टुकड़े अस्थायी थे और प्रतिक्रिया की शृङ्खलाके पूरे चक्रमें निउट्रनों तथा अन्य कणोंको उभाड़ते हुए अंतमें शान्त हो जाते थे। फल यह था कि परमाणुओं और अति-

NUCLEAR FISSION Fig. 1

लती है, और यूरेनियम के लक्ष्य गरम हो जाते हैं। शायद गौण निउट्रन गरमीसे इतने तीव्र हो जाते हैं कि वे फिर तोड़-फोड़का काम नहीं कर सकते। इस प्रकार प्रतिक्रिया आगे बढ़कर महान् कार्य करनेकी जगह बिना चाभी की घड़ी की तरह रुक जाती है। चित्र १ से प्रकट होता है कि यूरेनियमके परमाणु-बीजका भेदन किस प्रकार होता है।

निम्नांकित बातोंसे पता चलेगा कि यूरेनियमसे कितनी अपरिमित शक्ति निकल सकती है। यूरेनियमके परमाणु बीज का एक भेदन २० करोड़ इलेक्ट्रनवोल्ट शक्ति निकालता है। इसलिए आध सेर यूरेनियमसे ३७ अरब बी. ओ.टी.
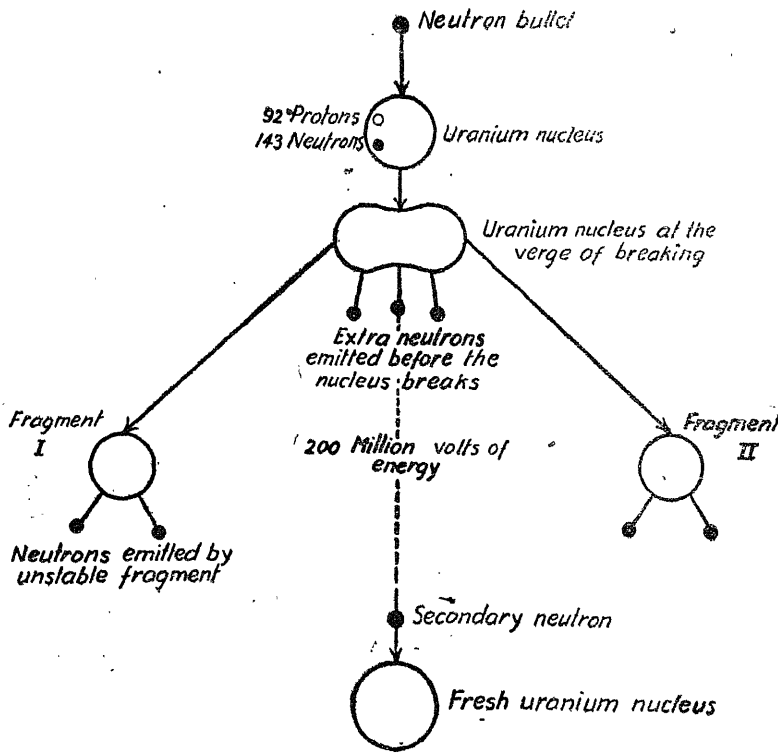
रिक्त निउट्रनोंका एक अद्भुत मिश्रण बन जाता था। अब प्रश्न यह हुआ कि क्या इन अतिरिक्त या गौण निउट्रनोंसे यह काम नहीं लिया जा सकता कि वे स्वयम् एक बीजसे निकलकर दूसरे परमाणु बीज में घुसकर उसे तोड़ दें जिससे दूसरा स्फोटन हो और दूसरे स्फोटन के निउट्रन तीसरे स्फोटनमें भाग लेते हुये स्फोटनोंकी एक शृङ्खला बना दें। क्या इससे यह संभव नहीं था कि यूरेनियम एक भयंकर विस्फोटक सिद्ध हो जाय? परन्तु उस समय तो प्रयोगशालाकी खिड़कीके एक शीशेमें भी झनक नहीं उठी। किस कारण यह क्रिया शृङ्खलाबद्ध नहीं हुई? इसका कारण निउट्रनका वेग था। यह पता जल्दी ही लग गया कि मंदगामी निउट्रन भेदनकी क्रियामें बहुत फलोत्पादक होते हैं। जैसे-जैसे प्रतिक्रिया बढ़ती है अधिक-अधिक शक्ति निक-

शक्ति निकलेगी जो उतनी गरमीके समान होगी जो १६५० टन बंगालका कोयला जलानेसे निकलती है। १ टन हमारे २७ मन १३ सेरके बराबर होता है इतनी गरमी दस अश्वबल की मोटर को दिन रात बिना रुके ३० वर्ष तक चला सकती है। यदि यह सब शक्ति इकट्ठी करके मानव लाभ के कामों में लगायी जाय तो संसार कितना अच्छा हो सकता है। परन्तु दुर्भाग्यसे बाजारमें जो यूरेनियम मिलता है वह तीन प्रकारके परमाणुओं का मिश्रण होता है जिसमें उस कोटि के परमाणु एक हज़ार पीछे केवल ७ ही होते हैं जिससे भेदन किया जा सकता है। इसलिए अब प्रश्न यह है कि इस विशेष प्रकारका यूरेनियम कैसे प्राप्त किया जाय जिससे हम परमाणु शक्ति को अपने नियन्त्रण में कर सकें। १९४० ई० में प्रो० डबल्० क्रास्नी अर्गन ने इसको वड़ी मात्रा में अलग करने

का प्रयत्न किया था। ३० फुट लम्बे तापप्रसारक नलों (heat diffusion tubes) से केवल १·३ मिलीग्राम ऐसा यूरेनियम एक दिनमें निकलता है। इस दरसे ३ वर्षमें एक ग्राम (लगभग एक माशा) ऐसा यूरेनियम निकाला जा सकता था। १९४५ ई० में वैज्ञानिकों ने बहुत ही पेचदार क्रियाओंके द्वारा व्यापारिक मात्रामें इसके अलग करनेकी विधि ढूँढ़ निकाली। पाठकगण सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि इसके कारखानेका विस्तार कितना होगा जिसके बनानेमें प्रेसीडेंट ट्रूमैन के अनुसार सवा लाख आदमी लगे थे।

शुद्ध भौतिक विज्ञानका विजयोत्सव

अब तक यह बतलाया गया कि परमाणु बीज के भेदनसे कितनी अपरिमित शक्ति उत्पन्न हो सकती है परन्तु साधारण मनुष्यको अब तक यह नहीं मालूम कि इतनी शक्ति कहाँ से आती है। उत्तर बड़ा सरल है। अभी तक हम यही समझते आये हैं कि शक्ति और द्रव्यमान (energy and mass) दो पृथक पदार्थ हैं और इनमें कोई संबंध नहीं है। परन्तु ऐंस्टाइनके सापेक्षवाद ने बहुत पहलेसे असंदिग्ध प्रमाणों द्वारा यह सिद्धकर रखा है कि शक्ति और द्रव्यमान् अभिन्न हैं। उसने दोनोंका संबंध गणितके इस सूत्रद्वारा प्रकट किया है, श = द्र. प्र.^{2} ($e = mc^2$), जहाँ श शक्तिका, द्र द्रव्यमान्का और प्र प्रकाशकी प्रति सेकंड गति अर्थात् १८६००० मील प्रति सेकंडका बोधक हैं। द्रव्यमान् चाहे जितना कम हो उसको प्रकाश की गति के वर्गसे गुणा करने पर शक्ति की बहुत बड़ी मात्रा हो जाती है। उदाहरणके लिए यदि यह संभव होता कि आधपाव साधारण कोयलेको शक्तिमें पूरी तरह बदल दिया जाय तो उपर्युक्त सूत्रके अनुसार १० खरब तापकी इकाइयाँ (calories) उत्पन्न होंगी जिससे ५० लाख टन पानी उबालकर भाफमें बदला जा सकता है जो दुनिया भरकी सारी कलों (machinary) के पहियेको एक वर्ष तक चला सकती है। यूरेनियमके परमाणु-बीजके प्रत्येक भेदनसे उत्पन्न टुकड़ोंके द्रव्यमानोंका योग मूल बीजके द्रव्यमान से कम होता है। द्रव्यमानका यह क्षय, यद्यपि बहुत कम है, अपरिमित शक्तिमें बदल जाता है जैसा कि हम ऊपर देख आये हैं। १ ग्राम (१ माशा) यूरेनियममें २० × १०^{26} परमाणु होते हैं और एक भेदनमें २ करोड़ इलेक्ट्रान वोल्ट शक्ति उत्पन्न होती है इसलिए हमको आश्चर्य नहीं करना चाहिए यदि यह शक्ति इस्पातकी मीनारोंको भाफ में परिणत कर दे।

एक और प्रश्न केवल साधारण मनुष्योंके लिए नहीं वरन् विज्ञानके विद्यार्थियोंके लिए बड़े महत्वका यह है कि मंदगामी निउट्रनकी गोली उस परमाणु बीजको कैसे तोड़ देती है जिसमें निउट्रन और प्रोटन एक बड़ी आकर्षण शक्तिसे बंधे रहते हैं। यह बतलाया गया है कि परमाणु बीज पानीकी बूँदकी नाईं है। मंदगामी निउट्रन बीजमें बिना किसी प्रतिरोधके घुस जाता है और वहां इसकी शक्ति बीजके कुल अवयवोंमें समान रीति से बँट जाती है। इससे परमाणु बीजमें हलचल उत्पन्न हो जाती है और वह उस गुब्बारेकी तरह स्पन्दन करने लगता है जो बड़ी तेजीसे फैलने या सिकुड़ने लगता है। स्पन्द का विस्तार (amplitude) बढ़ने लगता है, यहां तक कि अंतमें आकर्षण शक्ति परमाणु बीजके अवयवों को एकत्र रखनेमें असमर्थ हो जाती है और फल यह होता है कि इसके दो टुकड़े हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने अबतक जाने गये ९२ तत्वों में यूरेनियमको इसलिए चुना है कि यह सब तत्वोंसे भारी होता है इसलिए इसके परमाणुके अवयवोंमें आकर्षण शक्ति अपेक्षतः दुर्वल होती है। यूरेनियमके भेदनके लिए कमसे कम हलचल उत्पन्न करने वाली शक्तिसे काम चल जाता है क्योंकि यह स्थिरताकी सीमा पर है।

परमाणु बमकी यान्त्रिक रचना (mechanism) शायद ऐसी होगी

परमाणु बमकी यथार्थ यान्त्रिक रचनाका
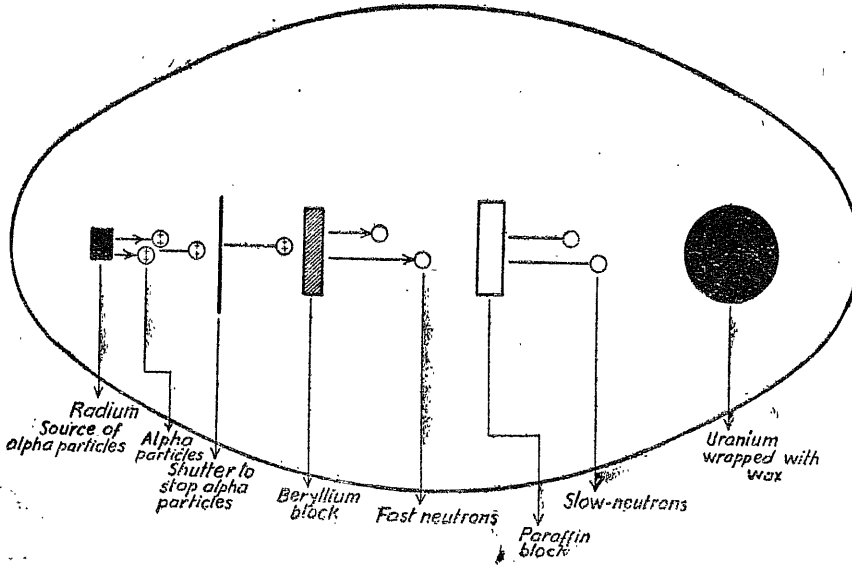
ATOMIC BOMB. Fig. 2

वैज्ञानिक वेचारेका इसमें कोई अपराध नहीं है क्योंकि उसने तो ईश्वरीय शक्तिको मनुष्यके हाथमें कर दिया है और यह मनुष्यका काम है कि इसको जिस तरह चाहे काममें ले आवे। हमें आशा करनी चाहिए कि मनुष्यता और नैतिकता सस्ते दामों नहीं बेची जायगी और यदि सत्ताधारी लोग जाति

पता नहीं है, परन्तु परमाणु-बीज संबंधी भौतिक विज्ञानकी जानकारीसे कुछ अनुमान किया जा सकता है (चित्र २)। रेडियमसे निकले आलफा कण (alpha particls) बेरिलियमके मोटे परदे (block) को धका मारते हैं जिससे घुसने वाले निउट्रन पाराफीन मोमके परदेमें घुसने पर मंद हो जाते हैं। यही मंदगामी निउट्रन यूरेनियम-के विशेष रूप (isotope) के परमाणु बीजमें घुसकर उसको तोड़ देते हैं। इस क्रियाको केन्द्री-भूत करनेके लिए यूरेनियम मोमसे लपेट दिया जाता है जिससे आगे बनने वाले गौण निउट्रन जो भेदनसे उत्पन्न होते हैं मंद पड़ जाते हैं। धड़ाका उत्पन्न करने वाली सारी सामग्री एक अंडे के बराबर आवरणके भीतर आ सकती है। एक परदेके कारण आलफा कण बेरिलियमको चोट नहीं पहुँचा सकते और यंत्ररचना ऐसी होती है कि यह उसी समय निकलती है जब बम फूटने को होता है। चित्र २ में परमाणु बमके प्रधान अवयव दिखलाये गये हैं।

इतिहासमें इससे पहले मानव समाजके सामने इससे कठिन प्रश्न कभी नहीं उपस्थित हुआ था।

द्वेष और क्षुद्र राष्ट्रीयतासे ऊँचे तलपर उठ जायं तो परमाणु की स्फोटन शक्ति अधिक उपयोगी कामोंमें लगायी जा सकती है।

टिप्पणी—इस लेख में जो चित्र दिये गये हैं वे अंग्रेज़ी दैनिक अमृत बाज़ार पत्रिकाकी कृपासे प्राप्त हुए हैं जिसके लिए विज्ञान उसका अभारी है। —सम्पादक

रूसी वैज्ञानिकके परमाणु सम्बन्धी परीक्षण

केम्ब्रिजमें प्रोफेसेर कुपितजा का अनुसंधान

परमाणु बम की कहानी वैज्ञानिक इतिहासमें एक चमत्कार है। इस दिशामें अनुसन्धान कार्य आजसे १० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था।

प्रोफेसर पीटर कुपितजा ब्रिटेनमें अनुसन्धान कार्यमें अग्रणी थे। वे भौतिक विज्ञानके विशेषज्ञ हैं। वे महान् चुम्बकीय शक्तियों द्वारा परमाणु पर आक्रमण करनेके सम्बन्धमें छानबीन करते रहे हैं। कुछ समय तक परीक्षण करनेके बाद उनके लिए केम्ब्रिजमें एक नयी प्रयोशाला बनाई गई। रायल सोसाइटी ने इसके निर्माणके लिए १५००० पौंड दिये।

१९३० में एक सम्मेलनमें भाग लेनेके लिए वे रूस गए थे और अभी तक वहीं पर हैं। परन्तु ब्रिटेनमें उन्होंने जो काम प्रारम्भ किया था—वह निरन्तर जारी रहा है।

यूरेनियम "२३५" की शक्ति

एक पौंड ५०,००,०००पौंड कोयलेकी शक्ति रखता है

परमाणु बम के सम्बन्धमें की गई सरकारी घोषणाओं पर विचार करने के बाद शिकागो विश्वविद्यालयके वैज्ञानिकों ने यह मत स्थिर किया है कि चमकदार धातु यूरेनियम की विचित्र विशेषताओं और उससे निकलने वाले घातक "यू-२३५" से सम्बद्ध मुख्य समस्या सुलझ गई है।

स्वयं यूरेनियम बहुत सस्ता है—इसका भाव १० शिलिंग प्रति पौंड है। एक पौंड "यू-२३५"-१४० पौंड यूरेनियमसे अलग किया जा सकता है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि "यू-२३५" की एक छोटी सी मात्रासे एक हवाई जहाज संसारके गिर्द चक्कर लगा सकता है। उसके एक पौंड वजन की शक्ति ५०,००,००० पौंड कोयले अथवा ३०,००,००० पौंड पेट्रोल की शक्ति के बराबर होती है।

परमाणु में निहित महान शक्ति

परमाणु की रचना और भी छोटे कणों विद्युत्कणों, उदासीन कणों आदि से होती है। इनको आपस में जोड़ने वाली महान् शक्तियाँ होती हैं। यदि परमाणुओं को विभक्त किया जाय और उनमें निहित शक्तियाँ फूट पड़ें तो ये महान् शक्तियाँ सुलभ हो सकती है। कोयलेकी तुलना में इसकी शक्ति करोड़ों गुना होती है।

युद्धसे कुछही पूर्व सबसे भारी धातु यूरेनियन को अलग करने की एक विधि का पता लग चुका था। इसके लिये एक विशेष प्रकारके उप-परमाणविक कण द्वारा जिसे उदासीन कण कहते हैं प्रहार किया गया। विघटित होने पर यूरेनियनमें से और भी उदासीन कण निकलते थे। इससे यह संभावना हुइ कि नये उदासीन कण यूरेनियम पर और भी प्रहार करके उसे विघटित कर सकते हैं और इस प्रकार क्रम आगे चल सकता है। नये परमाणु-बमों का आधार संभवतः यही प्रतिक्रिया या इससे मिलती-जुलती कोई चीज है।

चूंकि भारी पानी का उल्लेख किया गया है अतः यह संभावना कि प्रहार करनेमें जिन गोलियोंका व्यवहार हुआ है वे डियूट्रान अर्थात् भारी हाइड्रोजन का केन्द्र है। यह हाइड्रोजनका ही रूप हैं और इसका आकार सामान्य हाइड्रोजन से दुगना बड़ा होता है। इस प्रकारके बममें एक बार जहां विघटन की प्रणाली आरम्भ हुई कि प्रत्येक परमाणु अपने चारों ओर के परमाणुओं को विघटित कर देगा। इससे बहुत बड़ी मात्रामें शक्ति उत्पन्न होगी और भयानक विस्फोट होगा।

मांचेस्टर में किया गया प्रारम्भिक कार्य

परमाणु संबंधी आधुनिक भावना मांचेस्टर विश्वविद्यालय की भौतिक प्रयोगशाला में डा० रदरफोर्ड द्वारा किये गये प्रयोगों का परिणाम है। मांचेस्टर गार्जियनका वैज्ञानिक संवाददाता लिखता है कि उन्होंने ही पहली बार कृत्रिम रूप में परमाणु को विघटित भी किया।

उनके शिष्य जेम्स चैडविक, जो अब लिवरपूलके प्रोफेसर सर जेम्स चैडविक के नाम से विख्यात है, उनके अत्यन्त प्रतिभाशाली सहकारी थे। उनकी शिक्षा मांचेस्टर के एक सेकंडरी स्कूलमें और मांचेस्टर विश्वविद्यालयमें हुई थी और उसके बाद वे डा० रदरफोर्ड के पास कैम्ब्रिज चले गये। वहीं १९३२में प्रोफेसर चैडविक ने उदासीन कणों का आविष्कार किया। इस कणमें परमाणुओं के अन्तर को अद्भुत सरलतासे बेधने की शक्ति होती है क्योंकि परमाणुओंके अन्तरमें पहुँचने पर वैद्युत आवेशके अभावके कारण वह हटता नहीं।

उसी वर्ष मांचेस्टरके एक अन्य विद्यार्थी प्रोफेसर जे० डी० काकक्राफ्ट ने यन्त्र द्वारा परमाणु को अलग किया और परमाणु को तोड़नेका कार्य औद्योगिक उन्नति की सीमा में आ गया।

राष्ट्रपति ट्रूमेन ने परमाणु विघटक एक महान् यंत्र का उल्लेख किया है जिसका उपयोग परमाणु बमों के निर्माणमें हुआ है। इनमें सबसे प्रसिद्ध वृत्तकण (साइक्लोट्रोन) है जिसका आविष्कार केलेफोर्निया के प्रोफेसर ई० ओ० लारेंसने किया था और प्रोफेसर काकक्रोफ्ट द्वारा प्रारम्भिक काम किये जानेके बाद इसका पहले पहल उन्होंने ही व्यवहार किया।

परमाणु बम

[ले०—श्री रामचरण मेहरोत्र एम-एस० सी०, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय]

आदि कालसे मनुष्य दो दिशाओं में खोज करता रहा है। इसमें प्रथम है प्रकृति पर विजय पाना और प्रकृतिके शक्ति-स्रोतों को अपने प्रयोग में लाना। इसी प्रयासमें उसने अग्निका पता लगाया, सूर्य्य की गरमीको इस्तेमाल किया, हवा व पानीसे शक्ति उत्पादित की और बिजली पर प्रयोग किये। शक्तिके दृष्टि कोणसे उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम भागको "भापका युग" और बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्धको "बिजलीका युग" कह सकते हैं। इस वर्ष हमने शक्तिके एक नये युगमें पदार्पण किया है, जिसे "परमाणुका युग" नाम देना उपयुक्त होगा। आजसे लगभग दस वर्ष पहिले वैज्ञानिकोंका ध्यान शक्तिके एक नये खजाने की ओर गया और वह था परमाणुओंके केन्द्रोंमें एकत्रित शक्तिका उत्पादन व प्रयोग।

अपने निकटवर्त्ती लोगोंसे अधिक धनवान होनेकी स्वाभाविक इच्छाने दूसरी खोजको प्रोत्साहन दिया और वह थी "पारस" की खोज। किसी प्रकारसे कम मूल्यवाली धातुओंको बहु-मूल्य सोने और चाँदी में परिवर्त्तित किया जा सके, यह था उस खोजका लक्ष्य। आजका वैज्ञानिक जानता है कि पारस बनानेकी जो विधियाँ उन पुराने लोगों ने खोज निकाली थीं वह सब गलत थीं, पर वह एक बिलकुल नवीन विधिसे उसी काम में सफल हो गया है जिसमें उसके पूर्वज असफल रहे। बड़े पैमाने पर तो नहीं, पर बहुत ही छोटे प्रयोगशालाके पैमाने पर तो आजका वैज्ञानिक तत्त्व-परिवर्त्तन कर ही सकता है। इन्हीं दो उपर्युक्त खोजोंके फल स्वरूप आज हमको चमत्कारिक वस्तु मिली है—'परमाणु बम'।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम दस और बीसवीं शताब्दीके ४५ वर्ष विज्ञानके लिए बहुत फलदायक रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके अंतमें टामसन ने "इलेक्ट्रान" का पता लगाया और मालूम किया कि उस पर विद्युत्‌का ऋणात्मक चार्ज है और उसका भार हाइड्रोजनके एक परमाणुके भारका १/१८४० है। उन्हीं वर्षों में रैन्टजन ने एक्स किरणों और बेकेरल ने रैडियोएक्टिविटीका पता लगाया। बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भिक कालमें टामसन ने धनात्मक चार्जके कणोंका पता लगाया। हाइड्रोजनके केन्द्रमें उपस्थित धनात्मक चार्ज वाला कण सबसे हल्का था और उसे "प्रोटान" का नाम दिया गया। इसी प्रकार हाइड्रोजनसे भारी दूसरी गैस "हीलियम" के केन्द्रको "α कण" का नाम दिया गया। इसका भार प्रोटान या हाइड्रोजन परमाणुसे चौगुना और चार्ज प्रोटानका दुगुना था। इन्हीं धनात्मक चार्ज वाले कणों पर प्रयोग करते समय टामसन ने "समस्थानिकों" (Isotope) का पता लगाया। समस्थानिकोंके अन्वेषणसे स्पष्ट हो गया कि सब तत्त्वोंके परमाणु प्रोटानों और इलेक्ट्रानोंके बने हैं और इसलिए हर प्रकारके परमाणु का भार हाइड्रोजनके परमाणु भारसे "पूर्ण संख्या गुणा" ही भारी होगा और फलतः यह भी स्पष्ट हो गया कि तत्वोंके परमाणु भार इस कारण आंशिक है कि वह भिन्न भारों परन्तु एकसे गुणों वाले परमाणुओंके मिश्रण होते हैं। उदाहरणके लिए टामसन ने पता लगाया कि नियान गैस जिसका परमाणु भार २०·२ है, दो प्रकारके परमाणुओंसे मिलकर बना है जिनका परमाणु भार क्रमशः २० और २२ है। सन १९१३ में भोजले के प्रयोगों ने स्पष्ट कर दिया कि सम स्थानिकोंके गुण एकसे होते हैं और उसका कारण यह है कि किसी भी तत्वके समस्थानिकोंके परमाणुओं के केन्द्रों पर स्थित धन-चार्ज एक ही मात्राका होता है और फलतः इस केन्द्रके चारों ओर उसी धनचार्जकी मात्राके बराबर ऋण-चार्जवाले इलेक्ट्रान घूमा करते हैं—उदाहरणके लिए नियानके दो समस्थानिक हैं जिनका भार २० और २२ है।

पर इन दोनों प्रकारोंके परमाणुओंके केन्द्र पर १० इलेक्ट्रानोंके बराबर ही धन-चार्ज है और दोनोंमें केन्द्रके बाहर १० इलेक्ट्रान घूमा करते हैं। तत्वों के परमाणुओंमें केन्द्रके बाहर घूमने वाले इलेक्ट्रानोंकी संख्या बहुत ही मुख्य संख्या है, इसपर उस परमाणुके सब गुण आधारित होते हैं और इस संख्याको उस तत्वकी 'परमाणु संख्या' का नाम दिया गया है। आजकल किसी भी तत्वके परमाणुको दिखानेके लिए उसका भार उसके दाहिने ऊपरकी ओर और उसकी परमाणु संख्या उसके बायें नीचेकी ओर लिखते हैं। उदाहरणतः नियानके दो प्रकारके परमाणुओंको इस प्रकार दिखाया जाता है : $_{10}$नियान^{20} और $_{10}$नियान^{22}। परमाणु संख्याके अन्वेषण ने यह स्पष्ट कर दिया कि संसारके सब पदार्थ केवल ९२ प्रकारके तत्वोंसे मिलकर बने हैं। इन तत्वोंमें सबसे हल्का हाइड्रोजन है और सब से भारी यूरेनियम, जिनकी परमाणु संख्या क्रमशः १ और ९२ है। सब तत्व एक ही प्रकारके कणों प्रोटानों और इलेक्ट्रानोंसे मिलकर बने हैं, इसलिए यह अवश्य ही सम्भव होना चाहिये कि यदि इन प्रोटानों व इलेक्ट्रानोंकी संख्यामें परिवर्तन किया जा सके तो एक तत्व दूसरे तत्वमें परिवर्त्तित किया जा सकता है। इस विचारको वैज्ञानिकों ने किस प्रकार सफल किया, इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

सन १९१९ में रदरफोर्ड ने मालूम किया कि जब α कण नाइट्रोजनके ऊपर डाले जाते हैं या दूसरे शब्दोंमें जब नाइट्रोजन परमाणुओं पर α कणों द्वारा बमबाजी की जाती है तो उसमें से हाइड्रोजनके केन्द्रिक कण "प्रोटान" निकलते हैं— यह प्रथम प्रयोग था जिसमें वैज्ञानिक एक तत्व को दूसरे तत्वमें परिवर्तन कर देनेमें सफल हुआ :

$_{7}$नाइट्रोजन^{14} + $_{2}$हीलियम^{4} —>
$_{1}$हाइड्रोजन^{1} + $_{8}$आक्सीजन^{17}
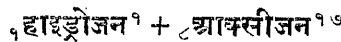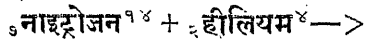
यह परिवर्तन इतना नवीन प्रकारका था कि बहुत से वैज्ञानिकोंका ध्यान इसने अपनी ओर आकर्षित किया। अगले १० सालोंमें चादविक, रदरफोर्ड, एलिस आदि ने α कणों द्वारा हल्के तत्वोंमें "तत्व परिवर्तन" के बहुतसे उदाहरण इकट्ठे कर दिये। सन १९३० में काकराफ्ट और वाल्टन ने दिखाया कि यदि काफी ज्यादा वोल्टेज पर प्रोटान फेंके जायें तो वह भी तत्व परिवर्तन कर देनेमें सफल हो सकते हैं। पर १९३२ तक वैज्ञानिकों ने देखा कि उनके 'तत्व परिवर्तनके प्रयोग पोटेसियमसे हल्के तत्वोंमें तो सफल हो जाते थे परन्तु पोटैसियमसे भारी तत्वोंमें किसी भी प्रकारके कण "तत्व-परिवर्तन" में सफल नहीं होते थे। उनका विचार था कि यदि इन बमबाज़ कणोंकी गति वोल्टेज बढ़ाकर बढ़ा दी जाये तो शायद यह पोटेसियमसे भारी तत्वोंमें भी तत्व-परिवर्तन कर सकेंगे। परन्तु शीघ्र ही एक नये कणके अन्वेषण ने उनके विचारोंको दूसरी ओर बदल दिया। यह नया कण "न्यूट्रान" था। इसका भार प्रोटानके बराबर था पर इस पर किसी भी प्रकार का विद्युतात्मक चार्ज नहीं था। इस कणके अन्वेषणका श्रेय बोथे, बेकर, जालियो और चादविकको है। उन्होंने पता लगाया कि जब α कणोंसे बेरीलियम पर बमबाजीकी जाती है तो "न्यूट्रान" निकलते हैं :

$_{4}$बेरीलियम^{9} + $_{2}$हीलियम^{4} —> न्यूट्रान^{1} +
कारबन^{12}
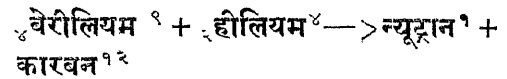
इस प्रकार प्राप्त कणों की दो मुख्य विशेषताएँ थीं एक तो उन पर कोई भी विद्युतात्मक चार्ज न था और दूसरे वह बहुत ही वेगसे (लगभग 3×10^{9} सेण्टीमीटर प्रति सेकिण्ड) निकलते थे। यह दोनों ही विशेषताएँ "तत्व परिवर्तन" में सहायक थीं। वेगके अतिरिक्त विद्युतात्मक उदासीनता भी सहायता देती है क्योंकि परमाणुके केन्द्रों और α कणो या प्रोटानोंमें जो विकर्षण होता था वह यहाँ अनुपस्थित था। जल्द ही तत्व परिवर्तनके प्रयोग पोटेसियमसे भारी

परमाणुओं पर भी सफल होने लगे।

चाद्‌विक, स्ट्रासमान, फ़ान हाल्बान, कोवारस्की आदि ने न्यूट्रानोंका प्रयोग करके तत्व-परिवर्तन के बहुतसे नये उदाहरण दिखाये। एक सबसे मुख्य बात जो इन प्रयोगोंसे मालूम हुई यह थी कि कुछ "परिवर्तित तत्वों" में वही गुण थे जो रैडियोएक्टिव पदार्थोंमें होते हैं—यानी उनके केन्द्र भी α कण, β कण और γ किरणें देते हैं। इस रैडियोएक्टिविटीको "कृत्रिम रेडियोऐक्टिविटी" नाम दिया गया है। इन प्रयोगों में एक बात स्पष्ट दिखाई दी कि तत्वपरिवर्तनों में धीमे न्यूट्रान भी लगभग उतनी ही सफल होते थे जितने कि तेज़, और आश्चर्य यह था कि कुछ प्रयोगोंमें तो केवल धीमे ही न्यूट्रान सफलता पाते थे। फरमी और उसके साथियों ने १९३५ में पता लगाया कि जब न्यूट्रान हाइड्रोजन, पानी या किसी भी हाइड्रोजनके यौगिकके अन्दर से गुज़रते हैं तो वह बहुत धीमे पड़ जाते हैं।

शीघ्र ही वैज्ञानिकोंने इस नये कणको धीरे-धीरे भारीसे भारी तत्वों पर प्रयोग करना आरम्भ किया। फ़रमी ने देखा कि जब इन धीमे न्यूट्रानोंको यूरेनियम या थोरियम पर फेंका जाता है तो नये प्रकारके तत्व बनते हैं जिनकी परमाणुक संख्या ९२ से भी ज्यादह है। इन्हें उसने "ट्रान्स-यूरेनियक" तत्वोंका नाम दिया। इस प्रकार हान, स्ट्रासमान, माइतनर, फ़रमी आदि वैज्ञानिकों ने ४ वर्षोंके अन्दर ही कई नये तत्वोंका पता लगाया जिनकी परमाणुक संख्या ९३ से ९७ तक थी। ऐसा लगता था कि इसी प्रकार आगे चलते जाने से बहुत से नये तत्व मालूम हो जायेंगे। परन्तु शीघ्र ही कुछ तथ्य ऐसे मालूम हुये जिन्होंने साफ़ तौरसे स्पष्ट कर दिया कि यूरेनियम उपर्युक्त विधि से नहीं परिवर्त्तित होता, बल्कि यूरेनियमका केन्द्र न्यूट्रान द्वारा दो भागोंमें विभाजित हो जाता है।

$$_{९२}\text{यूरेनियम} + {}_{०}\text{न्यूट्रान}^{१} \longrightarrow {}_{५६}\text{बेरियम} + {}_{३६}\text{क्रिपटन}$$
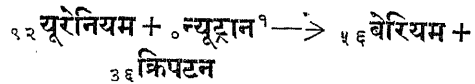
यूरेनियम विदित तत्वोंमें सबसे भारी तत्व है। यूरेनियम की रैडियोएक्टिविटी से स्पष्ट है कि यूरेनियमका केन्द्र अस्थायी होता है। जब ऐसे अस्थायी केन्द्र पर धीमे न्यूट्रानों द्वारा बमबाज़ी की जाती है तो यह केन्द्र उस न्यूट्रान को भी सम्मलित कर लेता है। परन्तु यूरेनियम का नया केन्द्र प्राकृतिक यूरेनियमके केन्द्रसे भी अधिक अस्थायी हो जाता है। फलतः यह केन्द्र दो छोटे छोटे भागोंमें विभाजित हो जाता है; इनमेंसे पहिला है बेरियम और दूसरा है क्रिपटन। यह दोनों नये तत्व भी रैडियोएक्टिव होते हैं। उनकी "कृत्रिम रैडियोएक्टिविटी" से और दूसरे तत्व, αकण और इलेक्ट्रान निकलते हैं। इस तरह यूरेनियम पर न्यूट्रानोंसे बमबाज़ी करने से अन्तमें फल स्वरूप दो समूहके कई नये तत्व मिलते हैं; जिनमें से प्रथम है क्रिपटन समूह जिस, में क्रिपटन, ब्रोमीन, रूबीडियम, स्ट्रानशियम, और मालीबडेनम देखे गये हैं; द्वितीय समूह है बेरियम समूह जिसमें ज़ीनन, एण्टीमनी, टेल्यूरियम, आयोडीन, लैनथानम और सीज़ियम पाये गये हैं। इस प्रकार यूरेनियमके केन्द्र बिलकुल विध्वंस हो जाते हैं और कई प्रकार के हलके तत्वके परमाणु इस ध्वंसके फल स्वरूप प्राप्त होते हैं—इसीलिए इस प्रकारके परिवर्तन को हान, स्ट्रासमान और माइतनर, फ्रिश ने "केन्द्रिक ध्वंस" (nuclear fission) का नाम दिया है। इस केन्द्रिक ध्वंस के फलस्वरूप साधारणतः बहुत बड़ी मात्रामें शक्ति भी निकलती है—ऐसा अनुमान है कि प्रत्येक यूरेनियम परमाणु के विध्वंस होने पर २००×१०^{६} इलेक्ट्रान वोल्ट शक्ति उत्पादित होती है। इस शक्तिका स्रोत असल में पदार्थ की थोड़ी सी मात्रा है जो शक्ति के रूपमें परिवर्त्तित होकर बाहर निकलती है। आइनस्टाइनके गुरके अनुसार "अ" मात्राके

शक्ति में परिवर्त्तित होने पर "$अ \times ग^{२}$" शक्ति निकलेगी जब कि 'ग', प्रकाश की गति को सूचित करता है। इस प्रकार बहुत थोड़ी-सी पदार्थ की मात्रा इतनी अधिक शक्ति का उत्पादन कर देती है। इतनी शक्ति निकलने के साथ ही साथ यूरेनियम के ध्वंस के समय न्यूट्रान भी निकलते हैं। १९३९-४० में फ़ान हाल्वान, जोलियो, कोवारस्की ने देखा कि प्रत्येक यूरेनियम परमाणु के विध्वंस होने पर लगभग ३ न्यूट्रान निकलते हैं। इसलिए यह सोचा गया कि यदि यह न्यूट्रान यूरेनियम के और परमाणुओं को विध्वंस कर सकें तो एक प्रकार का "क्रमिक (chain) परिवर्तन" सम्भव हो सकेगा और फलस्वरूप बहुत बड़ी मात्रा में शक्ति निकलेगी :—

$$\text{यूरेनियम} + \text{न्यूट्रान} \xrightarrow[\text{केन्द्रिक ध्वंस}]{} ३\ \text{न्यूट्रान}$$

$$३\ \text{यूरेनियम} + ३\ \text{न्यूट्रान} \xrightarrow[\text{केन्द्रिक ध्वंस}]{} ९\ \text{न्यूट्रान}$$

यही विचार परमाणु-शक्ति को उत्पादित करने का प्रथम ठीक प्रयास था। क्योंकि एक न्यूट्रानसे एक यूरेनियम परमाणु का ध्वंस होता, उसके फलस्वरूप ३ न्यूट्रान निकलते जो ३ यूरेनियम परमाणुओं को विध्वंस करते, इससे ९ न्यूट्रान निकलते जो आगे चलकर २७ न्यूट्रान देते और इसी प्रकार क्रमशः यह परिवर्त्तन आगे बढ़ता जाता। एक ग्राम यूरेनियममें लगभग $\frac{६.०६ \times १०^{२३}}{२३५.}$ परमाणु होंगे, इसलिए यदि एक ग्राम यूरेनियम के सब परमाणु उपर्युक्त विधिसे विध्वंस किये जा सकते तो $\frac{६.०६ \times १०^{२३}}{२३५} \times २०० \times १०^{६} = ५ \times १०^{२६}$ इलेक्ट्रान वोल्ट शक्ति निकलती जो साधारण कैलोरी के पैमाने पर लगभग $\frac{५ \times १०^{२६} \times १.५९ \times १०^{-१२}}{४.१८ \times १०^{७}} =$ २×१०^{१२} कैलोरी शक्ति के बराबर होती। यह शक्ति कितनी अधिक है यह साधारण रासायनिक क्रियाओं में उत्पादित शक्ति से तुलना करके अनुमान किया जा सकता है। उदाहरणतः

$$\text{कार्बन} + \text{आक्सीजन} = \frac{\text{कार्बन डाई आक्सा-}}{\text{इड} + ९४,३८०\quad \text{कैलोरी}}$$

यानी १२ ग्राम कार्बन के जलनेसे ९४,३८० कैलोरी गर्मी निकलती है; इसलिए एक ग्राम यूरेनियमके विध्वंससे निकलने वाली २×१०^{१०} कैलोरी गर्मी लगभग ३ करोड़ ग्राम कार्बन जलने से पैदा होगी।

यूरेनियमके इस क्रमिक विध्वंस के अन्वेषणसे वैज्ञानिक परमाणुओंके केन्द्रोंमें स्थिति शक्ति को उत्पादित करनेके बहुत निकट आगये, परन्तु अभी उन्हें कई बड़ी कठिनाइयों का सामना करना था। वैज्ञानिकों ने बहुत जल्दी मालूम कर लिया कि यूरेनियम का केवल २३५ परमाणु भार वाला समस्थानिक इस ध्वंस में भाग लेता है जो यूरेनियममें लगभग ०.७% की मात्रामें उपस्थित होता है। बाक़ी यूरेनियम लगभग सब का सब २३८ भारवाले परमाणुओंका बना होता है। ये परमाणु इस ध्वंस में कोई भाग नहीं लेते और जब तक यूरेनियमका २३५ भारवाला समस्थानिक काफ़ी मात्रा में एकत्रित नहीं हो जाता यह क्रमिक क्रिया सम्भव नहीं होती। सन् १९४० में स्वीडेन के वैज्ञानिक क्रास्नो एरगोन ने इस समस्थानिक को अलग करने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके उपकरण में पृथक करने की गति इतनी धीमी थी कि उस गति से लगभग ३ सालों में एक ग्राम समस्थानिक जमा किया जा सकता था।

अब यदि यूरेनियम के २३५ भार वाले समस्थानिक के किसी यौगिक की कुछ मात्रा लेकर पानी में घोल लें, (पानी न्यूट्रानों को धीमा करनेके लिए लेते हैं जिससे सब न्यूट्रान यूरेनियमके परमाणुओंके विध्वंस में सफल हो सकें) तो इस प्रकार ऊपर दिया हुआ कृत्रिम परिवर्तन सम्भव हो सकेगा। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन के लिए नियंत्रण की भी विशेष आव-

श्यकता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रत्येक यूरेनियमके परमाणुके विध्वंस होने पर शक्ति निकलेगी और यह शक्ति जमा होती जायेगी, जिससे उपकरण व उसमें उपस्थित पदार्थों का तापमान बढ़ता जायेगा। यदि यही क्रिया क्रमिक रूप में जारी रहे तो एक अवस्था ऐसी आ जायेगी जब उपकरण बढते हुए तापमान को सहन न कर सकेगा और विस्फोटित हो जायेगा। फल स्वरूप यूरेनियम के अध्वंसित परमाणु व न्यूट्रान सब बिखर जायेंगे और क्रमिक परिवर्तन रुक जायेगा। इसलिए परमाणु बम बनानेके लिए एक कठिनाई क्रमिक परिवर्तन पर नियंत्रण करने की थी जिससे जब तक उपस्थित यूरेनियम के सब परमाणु विध्वंस न हो जायें विस्फोट न हो। वैज्ञानिक ऐदलर और फ़ान हाल्बान ने इसके लिए एक बहुत ही कौशलपूर्ण विधि का पता लगाया। कैडमियम के परमाणु न्यूट्रानों को सोख लेते हैं और यह शोषणशक्ति न्यूट्रानों की गति बढ़नेसे बढ़ती जाती है। यदि यूरेनियम के साथ थोड़ासा कैडमियम का यौगिक भी उपस्थित हो तो वह न्यूट्रानों को सोख लेगा, जिससे क्रमिक क्रिया इतनी तेज़ी से आगे नहीं बढ़ पायेगी कि आवश्यकता से पहिले विस्फोट हो जाये। यदि कैडमियम उपस्थित हो तो ज्यों ज्यों तापमान बढता है निकले हुए न्यूट्रानों की गति बढ़ती जाती है पर साथही साथ उनके कैडमियममे शोषित होनेकी भी गति बढ़ती जाती है। फलस्वरूप एक अवस्था ऐसी आ जायेगी जब एक क्षणमें जितने न्यूट्रान निकलेंगे उतने ही कैडमियम शोषित कर लेगा। इस प्रकार क्रमिक क्रिया नियंत्रित हो जायगी। बम को घेरनेवाले इस्पात आदि की मज़बूती ऐसी की जा सकती है कि वह तभी विस्फोटित हो जब कि सब यूरेनियम परमाणुओंके विध्वंससे शक्ति एकत्रित हो जाये। यदि ऊपर दी हुई विधि सही है, तो यूरेनियमके बमके प्रयोगमें केवल एक कठिनाई रह जाती है। वह है यूरेनियमसे उसके २३५ भार वाले समस्थानिक निकालना। यूरेनियम के दोनों समस्थानिकोंके भार इतने निकट हैं कि कोई भी विधि उन्हें तेज़ीसे अलग नहीं कर सकती। प्रत्येक विधि इतनी धीमी होगी कि उसको सफल बनाने के लिए बहुत बड़ी फैक्टरी और बहुत अधिक कार्य्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होगी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि परमाणु बम बनानेमें किसलिए अमेरिका का इतना द्रव्य खर्च हुआ और क्यों इतने बड़े पैमाने पर फैक्टरी बनानी पड़ी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि परमाणु बम की यदि ऊपर दी हुई विधि ही सही है, तो परमाणु बम बनाने के लिए इन वस्तुओंकी मुख्य आवश्यकता होगी: (१) रेडियम, जो αकण दे, (२) बेरीलियम जिसपर αकण गिर कर न्यूट्रान दें, (३) हाइड्रोजन का कोई ऐसा यौगिक जो इन कणों को धीमा कर दे। ऐसा अनुमान है कि इसके लिए पैराफ़ीन, मोम इस्तेमाल किया जाता है, (४) यूरेनियम का २३५ समस्थानिक और (५) कैडमियम साल्ट जो विध्वंस की क्रमिक क्रिया को नियंत्रित कर सके।

अनुमान किया जाता है कि एक बम बनाने में लगभग ११ पाउण्ड यूरेनियम की आवश्यकता होती है। इतनी मात्रा यूरेनियमकी पानेके लिए टनों खनिजको इस्तेमाल करना पड़ता है। कुछ लोगों ने हिसाब लगाकर बताया है कि यदि एक पाउण्ड यूरेनियम विध्वंस किया जाये तो इतनी शक्ति पैदा हो सकती है कि न्यूयार्कको १०२ खण्ड वाली "एम्पायर बिल्डिङ्ग" हवा में २० मील उड़ जाय। यह बिलकुल सही है कि परमाणु बम से निकली हुई शक्ति इतनी काफ़ी होती है कि इस्पात के बड़े बड़े गुम्बदों को गला देती है। हिरोशिमामें एक परमाणु बम फेंका गया। उससे कितना नुक़सान हुआ यह आज तक अन्दाज़ा नहीं किया जा सका। परमाणु से उसी समय

जो हानि हो जाती है उसके अतिरिक्त भी एक बहुत बड़ी हानिका डर रहता है और वह हानि अदृश्य होती है। जैसा कि कहा गया है यूरेनियमके परमाणुके विध्वंस होने पर बेरियम और क्रिपटन निकलते हैं और यह दोनों नये बने तत्त्व "रेडियोएक्टिव" होते हैं—इनसे गामा किरणें निकलती हैं जो एक्स किरणों की भाँति होती हैं पर उनसे बहुत अधिक सक्रिय होती हैं। इन गामा किरणोंसे बहुतसे ज़ख्म हो जाते हैं जो अन्दुरूनी होते हैं और हफ्तों इन ज़ख्मों का कुछ पता नहीं लगता, फिर यकायक अन्दर ही अन्दर कुल हिस्सेको सड़ा डालते हैं। इन गामा किरणोंसे शारीरिक ही नहीं मानसिक भी प्रभाव पड़ता मालूम दिया है। जापानमें मित्र राष्ट्रोंकी फ़ौजके साथ वैज्ञानिक भी गये हैं जो इस बातका पता लगायेंगे कि परमाणु बमसे कितनी और किस प्रकारकी हानियाँ हुई हैं।

ऐसा भी विचार है कि अमेरिकनोंने परमाणु बमकी काट भी पता लगा ली है—यह शायद रादरके सिद्धान्त पर होगी। रादरकी तरङ्गो द्वारा यह पता चल सकता है कि परमाणु बम किस ज़गह फेंका जा रहा है। उसकी सही स्थिति भी पता लगाई जा सकती है। अब यदि कोई ऐसी तरकीब हो सके कि वह बम ज़मीनसे काफ़ी ऊँचाई पर विस्फोटित किया जा सके तो उससे हानि बहुत कम हो जायगी।

इसमें सन्देह नहीं कि युद्धने परमाणु-शक्तिके अन्वेषणमें बहुत सहायता दी। एक दूसरेका गला काटने पर तत्पर राष्ट्रोंमें यह होड़ हुई कि कौन इस भयानक शक्तिका पहिले पता लगा कर दूसरे पर इस्तेमाल करता है। इसी कारण प्रत्येक देशमें परमाणुबम व परमाणु शक्तिके प्रयोगोंको बिल्कुल ही छिपा कर रक्खा गया जिससे दूसरे राष्ट्र उससे लाभ न उठा सकें, पर यह स्पष्ट है कि परमाणु बम बनानेमें अब केवल एक ही समस्या मुख्य है वह है। आर्थिक परमाणु बमके लिए एक बहुत ही बड़े पैमाने पर यांत्रिक कलाकी बहुत होशियारीसे गढ़ी फ़ैक्टरीकी आवश्कता है और कोई भी राष्ट्र थोड़े ही समयमें इस शक्ति को युद्धके लिए प्रयोगमें ला सकेगा। विज्ञानके इस नये अन्वेषणसे आगेका युद्ध कितना भयंकर होगा इसका अनुमान करना भी कठिन है। इस ओर प्रयत्न बहुत तेज़ीसे जारी हैं कि इस शक्तिको दूसरे लाभदायक तथा शान्तिपूर्ण कार्य्यों में प्रयोग किया जाये और आशा है कि वैज्ञानिक अपने इस नये अन्वेषणको मानवताके लाभके लिए शीघ्र प्रयोग कर अपने ऊपर थोपे गये कलङ्क को थोड़ा बहुत धो सकेंगे।

नये परमाणु-बम

यूरेनियन के विघटन की विधि

नये परमाणु-बमकी रचनाके लिये आवश्यक यूरेनियम एक कठोर और श्वेतवर्ण धातु है जिसका पता १७८९ में लगा था किन्तु १८४० तक वह प्रकाशमें न आ सका। यह काले रंग की खनिज मिट्टीके रूपमें पाया जाता है और रश्मि उत्पादक अथवा रेडियोधर्मी होता है। इसीमें से यूरेनियम को अलग किया जाता है। यह कार्नवाल, बोहीमिया, नार्वे, अमरीकाके कई भागों और बेलजियन कांगो में पाया जाता है।

यूरेनियम रेडियमधर्मी धातु का समृद्धतम स्रोत है। कनाडासे ही इसे परमाणु-बम बनानेके लिये अमरीका भेजा गया था। कनाडाकी सरकारने एलडोराडो माइनिंग ऐंड स्मेल्टिंग कंपनी को परमाणु-बम कार्यक्रमके अंगके रूपमें अपने हाथमें लिया है। १९४४के जनवरी मासमें यह कदम इसलिये उठाया गया था यूरेनियन की प्राप्तिमें कोई बाधा न पड़े।

परमाणु लोहा, आक्सीजन, अलुमीनियम, आदि पदार्थों का छोटेसे छोटा कण है। यदि १० करोड़ परमाणुओं को एक पंक्तिमें रखा जाय तब कहीं उसकी लंबाई एक इंच होगी।

वायुमण्डलकी सूक्ष्म हवायें

[ले०—डा० सन्तप्रसाद टंडन]

सूक्ष्म गैसों के पाने के स्थान

आरगन—जैसा कि इनके इतिहाससे विदित हुआ होगा ये सभी वायुमें मौजूद हैं। वायुमें आरगनकी मात्रा एक प्रतिशत है। यद्यपि प्रतिशतमें यह मात्रा बहुत कम मालूम होती है किन्तु सारी वायुमें कुल आरगन कितनी है इसका हिसाब लगाने पर पता चलता है कि पृथ्वीके प्रत्येक वर्ग मीलके क्षेत्रमें लगभग ८००,०००,००० पौंड आरगन मौजूद है। पानीमें कुछ घुलनशील होनेके कारण यह समुद्रोंके पानीमें भी घुली अवस्थामें काफ़ी रहती है। बाज़ारमें बिकनेवाली तरल वायुमें इसकी मात्रा २·८ प्रतिशत रहती है। वर्षाके पानीमें आरगन और नाइट्रोजनका अनुपात हवासे अधिक रहता है क्योंकि आरगन नाइट्रोजनकी अपेक्षा पानीमें अधिक घुलनशील है। बाथ स्थानके पानी के सोतेसे निकलनेवाली गैसोंमें आरगन १·३६ प्रतिशत रहती है। अन्य स्थानोंके सोतोंकी गैसों में भी आरगनका रहना बतलाया गया है। मिडिल ब्रो (Middlesbrough) नामक स्थान के पास नमककी खानमें से निकले सोतेकी गैसों में आरगन नाइट्रोजनके साथ मिली हुई निकलती है।

आरगन कुछ पेड़ोंमें तथा जन्तुओंके रक्तमें भी पायी जाती है। जहाँ-जहाँ आरगन पायी जाती है इसके साथ नाइट्रोजन भी अवश्य मिली रहती है और इन दोनोंकी मात्रायें लगभग उसी अनुपात में रहती हैं जो वायुमें है।

सूर्य्य तथा अन्य तारोंकी रोशनीके रश्मि-चित्रों में आरगनके रश्मिचित्र की रेखायें देखनेका प्रयत्न कई लोगों ने किया किन्तु ये कभी नहीं दिखलाई दीं। फिर भी इसके आधार पर यह निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता कि आरगन इन आकाशीय पिंडोंमें मौजूद नहीं है, क्योंकि यह देखा गया है कि यदि आरगनके साथ ३·४ प्रतिशत नाइट्रोजन मिली हो तो नाइट्रोजनका ही रश्मिचित्र दिखलाई देता है, आरगनका नहीं। सम्भव है ऐसा ही कोई कारण इन आकाशीय पिंडोंमें आरगनका रश्मिचित्र न दिखलाई देनेका हो। रैमज़ेने पुच्छलतारेके रूपमें गिरे आकाशीय खनिजोंमें आरगनका मौजूद रहना बतलाया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भव है आकाशीय पिंडोंमें यह मौजूद हो।

हीलियम—हीलियम पृथ्वीमें बहुत काफ़ी फैली हुई है यद्यपि अधिकतर स्थानोंमें इसकी मात्रा बहुत ही थोड़ी है। यह वायुमें, समुद्र तथा नदियों के जलमें, बहुतसे खनिज सोतोंकी गैसोंमें तथा बहुतसी पुरानी चट्टानों और खनिजोंमें पायी जाती है। यह सूर्य्यके वायव्य मंडलमें मौजूद है। पुच्छलतारेके एक लोहेके टुकड़ेमें भी यह पाई गई है। रश्मि चित्र-दर्शकके द्वारा आकाशीय पिंडोंका निरीक्षण करने पर यह पता लगता है कि हीलियम बहुतसे तारोंमें मौजूद है।

रैमज़े ने मालूम किया है कि वायुमें हीलियम ०·००००५६ प्रतिशत तोल में तथा ०·०००४ प्रति-शत आयतन में है।

कुछ स्थानों से निकलने वाली प्राकृतिक गैसों में भी हीलियम काफ़ी मात्रामें पाई जाती है। ऐसे स्थान अमेरिकामें कई हैं। अतः संसारमें सबसे अधिक हीलियम अमेरिकाके ही पास है। इन स्थानोंमें टेक्सास (Texas), ओकलाहोमा (Oklahoma), तथा कन्सास (Kansas) मुख्य हैं।

हीलियम बहुत सी खनिजों तथा चट्टानों में साधारणतः अकेली ही पाई जाती है। इससे यह अनुमान ठीक मालूम होता है कि खनिजों तथा चट्टानोंमें इसकी उत्पत्ति उनमें मौजूद किसी

रश्मि शक्तिक (radioactive) पदार्थके विनष्ट होनेसे हुई है।

हीलियम जिन खनिजोंमें पाया जाता है उनमें मुख्य ये हैं—क्लीवाइट तथा पिचब्लेन्ड (Pithblende) जातिके खनिज, मोनाज़ाइट (Monazite), फरगूसोनाइट (Fergusonite), ब्रोगेराइट (Broggerite), समरस्काइट (Samarskite), थोरियानाइट (Thorianite), और यूक्सेनाइट (Euxenite)।

नियन—वायुमें यह ०'००१२३ प्रतिशत आयतन के हिसावसे तथा ०'०००८६ प्रतिशत तोलके हिसाबसे मौजूद है। बाथके सोतोंकी गैसोंमें भी यह थोड़ा मौजूद है। खनिजोंमें नियन अभी तक नहीं मिली है।

क्रुपटन—वायुमें इसकी मात्रा बहुत थोड़ी है। एक ग्राम क्रुपटन ७,०००,००० ग्राम वायुमें है। कुछ गरम सोतोंकी गैसोंमें भी यह आरगनके साथ पाई जाती है। क्लीवाइटसे प्राप्त हुई हीलियममें भी इसकी थोड़ी मात्रा रहती है।

ज़ीनन—हवाके १७०,०००,००० आयतनमें केवल एक आयतन ज़ीनन मौजूद है। तोलके हिसाबसे ४०,०००,००० ग्राम हवामें एक ग्राम ज़ीनन है। सूक्ष्म गैसोंमें इसी की मात्रा सबसे कम है। कुछ सोतों की गैसोंमें भी इसकी थोड़ी मात्रा पाई गई है।

सूक्ष्म गैसोंका प्राप्त करना

हीलियम—जैसा कि पहले बताया जा चुका है हीलियम तीन मुख्य स्थानोंमें विशेष रूपसे रहती है—(१) वायु, (२) कुछ खनिज, तथा (३) कुछ खनिज सोते। इन्हीं पदार्थोंसे हीलियम प्राप्तकी जाती है। प्राप्त करनेकी विधियाँ नीचे दी गई हैं।

रेडियम ब्रोमाइडके घोलसे भी हाइड्रोजन तथा आक्सिजनके साथ कुछ हीलियम निकलती है।

खनिजोंसे हीलियम प्राप्त करना

किसी उपयुक्त खनिज (मोनाज़ाइट बालू या क्लीवाइट) को अकेले या हल्के गन्धकाम्लके साथ गरमकर हीलियम बनाने का तरीका ही प्रारम्भमें सबसे सस्ता था।

(१) इस विधिमें जो अपरेटस प्रयोग होता है वह चित्र १में दिखलाया गया है। खनिज को खूब महीन पीस कर लोहेकी नली अ में भर दिया जाना है। नलीके मुँह पर रबर का डाट रहता है जिसके भीतर से होकर एक पतली नली जाती है। अ नली का भट्टीके बाहर वाला भाग दो दीवारोंके परिच्छद से आवेष्ठित रहता
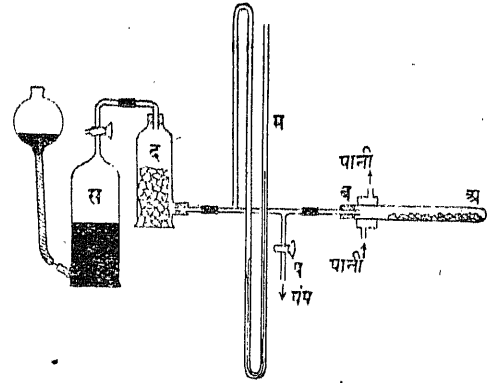
चित्र १

है। इस परिच्छदमें ठंढे पानीके आने जाने का प्रबन्ध रहता है जो अ नलीके इस भाग को ठंढा बनाये रखता है और रबर के डाट तथा रबर के जोड़ों को भट्टीकी गरमीसे जलने नहीं देता। अ नलीसे जो गैस निकलती है वह द बर्तनमें पहुँचती है जहाँ पोटास भरा रहता है। पोटास इस गैसमें मौजूद पानी तथा कार्बन डाइ-आक्साइड को सोख लेता है। यहाँसे फिर यह गैस निकल कर स बर्तनमें इकट्ठी होती है। स में या तो पारा

या पोटास का गाढ़ा घोल भरा रहता है। प नली एक पंपसे जुड़ी रहती है। म एक मैनो-मीटर है जो अपरेटस्के अन्दरके दबाव को बतलाता है।

प्रयोग करते समय खनिज को अ नलीमें भरनेके बाद सारे अपरेटसके अन्दरकी हवा पंप द्वारा निकालकर अन्दर शून्य (Vacuwm) कर दिया जाता है। नली को गरम करने पर खनिजसे धीरे-धीरे गैस कई घंटों तक निकलती रहती है। जब अन्दर इतनी गैस इकट्ठी हो जाती है कि वहाँ का दबाव वायुमंडलके दबावके बराबर हो जाता है तो गैस स वर्तनमें इकट्ठी की जाती है। जब खनिजसे और गैस का निकलना बंद हो जाता है तो स वर्तन को डाटसे बंद कर दिया जाता है और अपरेटस के अन्दर की बची हुई गैस को पंपसे खींचकर या तो स बर्तनमें पहुँचा दिया जाता है या अन्य वर्तनमें।

ऊपर की विधिमें कभी-कभी थोड़ा परिवर्तन भी कर दिया जाता है। इस परिवर्तित विधिमें खनिज को कार्बन डाइ आक्साइडके वायुमंडलमें गरम करते हैं और निकली गैस को पोटासके ऊपर इकट्ठा करते हैं।

खनिज को एक पोरसिलेनकी नलीमें १०००°-१२००° श पर गरम करनेसे सबसे अच्छा परिणाम मिलता है।

(२) दूसरी विधिमें, जिसमें समयभी कम लगता है और गैसको मात्राभी अधिक प्राप्त होती है, खनिज को लगभग उसीकी तौलके बराबर पोटैसियम वाइसलफेटमें मिश्रित कर एक कड़े काँचकी नलीमें गरम किया जाता है।

(३) कुछ खनिजोंसे हीलियमकी सबसे अधिक मात्रा उनको हल्के गन्धकाम्लके साथ गरम करने पर प्राप्त होती है। इस विधिमें जो अपरेटस इस्तेमाल होता है उसका रूप चित्र २में दिखलाया गया है। खनिज कड़े काँचके बने एक बड़े गोल फ्लास्कमें (क गन्धकाम्लके साथ गरम किया जाता है। इस फ्लास्कका रबरका डाट (र) कुछ अन्दर घुसा रहता है और इसके ऊपर पारे की एक पर्त रहती है जिससे कहींभी कोई छिद्र खुला नहीं रह पाता। कन्डेन्सरका (स) ऊपरी सिरा आवश्यकतानुसार पंपसे या गैस इकट्ठा करनेके बर्तनसे जोड़ दिया जाता है।
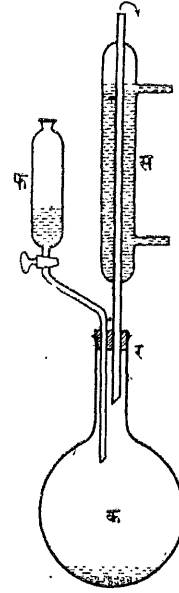
चित्र २

प्रयोग इस भाँति किया जाता है। खूब महीन पिसा हुआ खनिज फ्लास्कमें भर दिया जाता है। कीप फ, से कई बार थोड़ा-थोड़ा पानी फ्लास्क में डालते हैं और कन्डेन्सरमें पंप लगाकर हरबार पानीके वाष्प को खींच कर बाहर निकाल देते हैं। ऐसा करनेसे फ्लास्ककी सारी हवाभी पानी के वाष्पके साथ बाहर निकल जाती है। अब हल्के गन्धकाम्ल (१:८) को गरम कर उसकी हवा निकालनेके बाद कीप द्वारा फ्लास्कमें डालते हैं और इसके साथ खनिज को लगभग आध घंटा तक उबालते हैं। फ्लास्क में बनी गैस कन्डेन्सर से होती हुई गैस इकट्ठा किये जानेवाले बर्तनमें पहुँच जाती है। प्रयोगके अन्तमें जो गैस फ्लास्कमें बची रह जाती है उसेभी पंप द्वारा गैसवाले बर्तन में पहुँचा देते हैं।

यह विधि सबसे सरल और सस्ती है। अधिकतर वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगके लिए इसी विधि द्वारा हीलियम प्राप्त की थी।

प्राकृतिक गैसोंमें से हीलियम निकालना

कुछ सोतोंसे निकलनेवाली प्राकृतिक गैसोंमें हीलियम की काफ़ी मात्रा रहती है। इनमें बाथ, मैज़ीर्स (Maziers) और टीनी सफियोनी (Tini Suffioni) के सोते तथा डेक्सटर

(Dexter) का गैसका कुआँ मुख्य हैं। इन खनिज सोतोंसे चित्र ३ में दिखलाये आपरेटस द्वारा गैस इकट्ठी की जाती है। व एक टीनका बर्तन है जिसके दोनों सिरों पर टोटी लगी है। इसके ऊपरी सिरे पर एक नली अ जुड़ी रहती है। व बर्तन तथा अ नली शुरूमें पानी से भर दी जाती है। अ नलीके दूसरे सिरे पर लगी कीप को सोतेके पानीसे निकलती गैसके ऊपर लगा कर ब और स टोटियों को खोल देते हैं। गैस कीपसे होती हुई व बर्तनमें पहुँचती है। जैसे-जैसे गैस इस बर्तनमें इकट्ठी होती है इसका पानी स टोटीसे निकलता जाता है। जब स से पानी निकलना बन्द हो जाता है और गैस निकलनी शुरू होती है तो यह मालूम हो जाता है कि बर्तन गैससे पूरा भर गया है। अब दोनों टोटियों को बंद कर बर्तन अलग रख देते हैं।
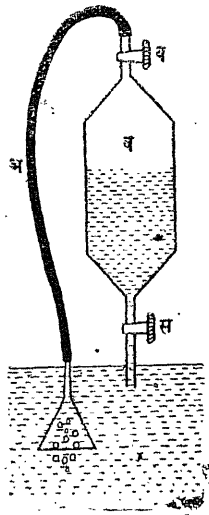
चित्र ३

वायुसे हीलियम प्राप्त करना

हवासे हीलियम तथा अन्य सूक्ष्म गैसें क्लाउड (Claude) के अपरेटस द्वारा प्राप्तकी जाती हैं। इस अपरेटसका वर्णन नियनके साथ किया गया है।

जब तरल वायुकी एक बड़ी मात्रा धीरे-धीरे वाष्पीकरण होने दी जाती है तो पहले आक्सिजन और फिर नाइट्रोजन निकलती है। इन दोनोंके निकलनेके बाद वायुका जो भाग बर्तनकी तलीमें बच रहता है उसमें कुछ क्रुपटन और ज़ीननके साथ मिली हुई मुख्यतया आरगन रहती है। इन तीनों में आरगन अधिक उड़नशील है। अतः इस भाग को तरलकर और पुनः वाष्पीकरण करने पर आरगन पहले उड़कर अलग निकल आती है और क्रुपटन और ज़ीनन बर्तन में बची रह जाती हैं। क्रुपटन और ज़ीननके भागको पुनः तरल में परिणतकर उबलती तरल वायुके तापक्रम पर रक्खा जाता है। इस तापक्रम पर क्रुपटन तो उड़ जाती है किन्तु ज़ीनन तरलकी ही अवस्थामें बची रह जाती है। इस प्रकार आरगन, क्रुपटन और ज़ीनन ये तीनों अलग-अलग प्राप्त हो जाती हैं।

वायुके नाइट्रोजन वाले भागमें हीलियम और नियन रहती हैं। अतः इस भागको ठंढाकर पुनः तरलमें परिणत किया जाता है, और तरलकी सतह पर हवाकी धारा प्रवाहित की जाती है। ऐसा करने पर तरलका जो भाग पहले उड़कर निकलता है उसमें लगभग सारी नियन और हीलियम आ जाती हैं। इनके साथ कुछ नाइट्रोजन, आक्सिजन तथा आरगन भी मिली रहती हैं। आक्सिजन और नाइट्रोजनको रासायनिक विधिसे अलगकर लिया जाता है। बची हुई गैस, जिसमें नियम, हीलियम और कुछ आरगन रहती हैं, को तरलकर वाष्पीकरण करने पर आरगन अलग हो जाती है और हीलियम और नियन एक साथ बची रहती हैं। इन दोनोंके मिश्रणको पुनः तरल में परिणतकर उबलते तरल हाइड्रोजन के तापक्रम पर रखते हैं। इस तापक्रम पर नियन तरल या ठोसकी अवस्थामें रहती है और हीलियम गैसकी अवस्थामें। अतः दोनों अलग-अलग प्राप्त हो जाती हैं।

लकड़ीके कोयलेमें भिन्न-भिन्न गैसोंको सोखने की भिन्न भिन्न शक्ति होती है। कोयलेके इस गुणका लाभ उठाकर डिवार (Dewar) ने वायुकी भिन्न-भिन्न गैसोंको अलग-अलग प्राप्त किया। तरल वायुके तापक्रम पर हीलियम और नियनके अतिरिक्त वायुकी सब गैसें कोयले द्वारा शोषित हो जाती हैं।

इसी प्रकार आरगन और हीलियमके मिश्रण में से प्लैटिनम आरगनको तो सोख लेती है किन्तु हीलियम को नहीं। अतः प्लैटिनम द्वारा ये दोनों एक दूसरेसे अलग की जा सकती हैं।

हीलियम को शुद्ध करना

अन्य सूक्ष्म गैसोंकी अपेक्षा नीचेके तापक्रमों पर यह अधिक उड़नशील है। इस कारण इसके शुद्ध करनेमें विशेष कठिनाई नहीं होती।

यदि नाइट्रोजन और हाइड्रोजनकी मिलावट है तो गैसको पहले मैगनीसियमके चूरे और बिना बुझे चूनेके गरम मिश्रणके ऊपर ले जाते हैं। यहाँ नाइट्रोजन मैगनीसियम और चूनेसे मिल कर रासायनिक यौगिकके रूपमें गैससे अलग हो जाता है। इसके बाद गैसको तपे ताँबेकी आक्साइडके ऊपर प्रवाहित करते हैं। यहाँ हाइड्रोजन ताँबेकी आक्साइड से आक्सिजन लेकर पानीके रूपमें हो जाता है। इस प्रकार हीलियमसे नाइट्रोजन और हाइड्रोजन अलग हो जाते हैं।

क्लीवाइट और मोनाज़ाइटसे प्राप्त हीलियममें अन्य सूक्ष्म गैसें नहींके बराबर होती हैं और नाइट्रोजन और हाइड्रोजनको ऊपरकी विधि द्वारा निकालनेके बाद काफ़ी शुद्ध हीलियम प्राप्त हो जाती है।

सोतों से प्राप्त हीलियममें अन्य सूक्ष्म गैसें भी मिली रहती हैं। इसमेंसे ऊपरकी रीतिसे नाइट्रोजन और हाइड्रोजन निकालनेके बाद अन्य सूक्ष्म गैसें निकाली जाती हैं। यदि आरगन मौजूद है तो गैसको बहुत कम दबावमें तरल वायुके वाष्पीकरण द्वारा ठंढा किया जाता है। इस तापक्रम पर नाइट्रोजन तथा आरगन तो तरल अवस्थामें परिणत हो जाती हैं किन्तु हीलियम गैस ही बनी रहती है और अलग कर ली जाती है। यदि नियन मौजूद है तो गैसको तरल हाइड्रोजन द्वारा ठंढा किया जाता है। इस तापक्रम पर नियन तथा अन्य सूक्ष्म गैसें तरल हो जाती हैं किन्तु हीलियम गैसकी दशामें रहती है और अलग कर ली जाती है।

चित्र ४
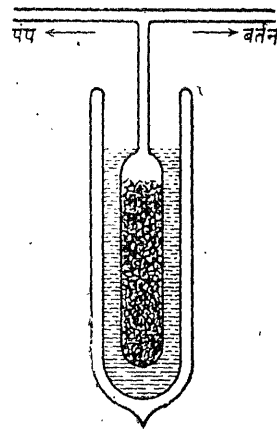
हीलियम को शुद्ध करनेका सबसे अच्छा तरीका नारियलके कोयले द्वारा है। डिवार ने मालूम किया कि तरल वायुके तापक्रम पर नारियलका कोयला हीलियम को छोड़कर अन्य सब गैसोंको पूर्ण रूपसे शोषित कर लेता है। इस विधि द्वारा हीलियमको शुद्ध करनेके लिए चित्र ४ में दिखलाया अपरेटस काममें लाया जाता है। इस अपरेटसमें अशुद्ध हीलियमको नारियलके ठंढे कोयलेके सम्पर्कमें लगभग आध घंटा रहने दिया जाता है। इसके बाद शुद्ध हीलियमको पंप द्वारा अपरेटससे निकाल कर एक बर्तनमें भर लेते हैं।

जैकेराड (Gaquerod) और पेरोट (perrot) ने मालूम किया कि ११००° श ताप क्रम पर रक्खे क्वार्ट्ज़ (quartz) के भीतरसे हीलियम और हाइड्रोजन निकल जाती हैं किन्तु अन्य गैसें नहीं निकलतीं। अतः क्वार्ट्ज़ (quartz) के इस गुणके आधार पर हीलियमको शुद्ध किया जा सकता है। इस विधिमें प्रयोगमें आने वाले अपरेटसका रूप चित्र ५ में दिखलाया गया है। ब क्वार्ट्ज़ (quartz) का बल्ब है जो प्लैटिनमकी चौड़ी नली अ के अन्दर रक्खा हुआ है। प्लैटिनम नलीके अन्दर अशुद्ध हीलियम ५ प्रतिशत आक्सिजनके साथ मिश्रितकर वायुमंडलसे कुछ अधिक दबाव पर भेजी जाती है। बल्बके अन्दर की सब हवा पंप द्वारा निकाल कर शून्य कर
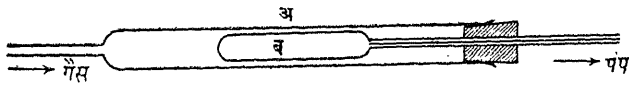
चित्र ५

दिया जाता है। अब प्लैटिनम नलीका मध्य भाग ११००° तापक्रम पर गरम किया जाता है। हीलियम बल्बकी दीवारसे घुसकर अन्दर पहुँच जाती है और पंप द्वारा एक बर्तनमें भर ली जाती है। इस विधि द्वारा हीलियमको शुद्ध करनेमें समय अधिक लगता है किन्तु जो हीलियम प्राप्त होतो है वह बहुत शुद्ध होती है।

व्यावहारिक-मनोविज्ञान

[ले०—श्री राजेन्द्र बिहारी लाल, एम० एस० सी०, इण्डियन-स्टेट-रेलवेज़]

(विज्ञान भाग ६१ संख्या ४ के आगे)

संवेग-शक्ति

कल्पना शक्ति बढ़ानेका पाँचवाँ उपाय यह है कि अपने चुने हुए विषय या कार्य क्षेत्र पर अपनी भावना, अनुराग और ध्यानको केन्द्रित किया जाय। रुचि या शौककी ताक़त न केवल सचेत मनको संचालित करती है बल्कि यह अचेत मन पर प्रभाव डालने और उसको प्रेरित करनेका भी एक उत्तम साधन है। एक चुने हुए कामके प्रति तीव्र अनुराग मनकी तमाम बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्रित और संगठित कर देता है जिससे उनका बल कई गुना बढ़ जाता है। भावना या उत्साह हीसे वह शक्ति पैदा होती है जिसके द्वारा सचेत मन चुने हुए विषयमें कड़ा परिश्रम करता है। इसी शक्तिसे उत्तेजित होकर अन्तरमनके भीतर पुराने विचार आपसमें मिलकर नये जुट्ट बन जाते हैं और इसीके कारण वे नये जुट्ट अन्तश्चेतनाकी सतहको पार कर बाह्य मनमें प्रगट हो जाते हैं, जैसे पानीके अणु (molecules) ताप बल पाकर पानीकी सतहसे बाहर निकल कर भापका रूप धारण कर वायुमण्डलमें आ जाते हैं। यही वह शक्ति है जो मनकी शक्तियोंके अस्तव्यस्त अंगोंको एक दिशामें कर देती है जिससे मन एक प्रबल चुम्बककी तरह अपने अनुरूप पदार्थों, विचारों और तथ्योंको अपनी ओर खींच लेता है और उनसे नये जुट्ट बना देता है।

रसायन शास्त्रकी उपमा

मन द्वारा नये विचारोंके उत्पादनकी तुलना हम रासायनिक क्षेत्रमें नये पदार्थोंके पैदा करनेकी क्रियासे कर सकते हैं। कुछ रासायनिक तत्वों या यौगिकोंमें परस्पर इतना प्रबल खिंचाव होता है कि अगर वे केवल एक दूसरेके सम्पर्कमें आ जाते हैं तो तुरन्त ही रासायनिक ढंगसे मिलकर एक या अधिक नये पदार्थोंको उत्पन्न कर देते हैं। उनके बीच रासायनिक क्रिया मानो आपसे आप हो जाती है। लेकिन कुछ दूसरे पदार्थ ऐसे होते हैं जिनमें आपसमें खिंचाव होते हुए भी रासायनिक संयोग उस समय तक नहीं होता जब तक कि उन्हें कोई बाहरी उत्तेजना न मिले जिसके द्वारा ताप, प्रकाश या बिजलीके रूपमें शक्ति पहुँचायी जाय जो रासायनिक क्रियाको आरम्भ कर दे। इस सम्बन्धमें रसायन शास्त्रके ज्ञाताओंको याद होगा कि वे किस प्रकारसे प्रयोगशालामें भिन्न-प्रकारके पदार्थ बनाया करते थे—जहाँ पर एक परखनली में रासायनिक सामग्री रहती थी जिसको वे काँचकी एक डंडीसे चलाते रहते थे और आवश्यक गर्मी पहुँचानेके लिए एक लैम्प या बर्नर रहता था।

क्या ही अच्छा होता यदि मनुष्यके मनमें नये विचार पहले प्रकारकी रासायनिक क्रियाओंकी तरह ही पैदा हो सकते यानी आपसे आप बिना परिश्रमके। मगर वास्तव में ऐसा नहीं होता बल्कि नये विचारोंके पैदा होनेकी क्रिया तो दूसरे प्रकारके रासायनिक परिवर्तनोंके समान है जिसमें कि नये पदार्थोंको बनानेके लिए रासायनिक पदार्थोंके अतिरिक्त उनको क्षोभक (Stirres) और ज्वालक (Bunsen Burner) भी चाहिए। मनकी प्रयोगशालामें रासायनिक पदार्थ तो वे तथ्य, (facts) अनुभव या ज्ञान हैं जो अवलोकन, निरीक्षण, वार्त्तालाप, अध्ययन तथा दूसरे उपायों द्वारा संग्रह किए गये हैं। चलाना या हिलाना इकट्ठा किए हुए तथ्योंका

मन द्वारा मनन तथा विश्लेषण है और वह शक्ति जो रासायनिक क्रिया को आरम्भ करती है और नये यौगिकों को सम्भव करती है एक चित्ताकर्षक रुचि पर चुम्बकीय लक्ष्यसे उत्पन्न होती है। नये विचार शून्यमेंसे तो पैदा हो ही नहीं सकते। इसलिए ज्ञानका एक बड़ा भांडार रखनेका मूल्य तो स्पष्ट ही हो जायगा। दूसरे इन तथ्यों-को मनमें इतने ध्यानसे घुमाना, उन पर सोच विचार करना, उनको ग्रहण करना और उनका विश्लेषण करना चाहिए ताकि समय पूरा होने पर अन्तश्चेतना उन्हें सचेत मनमें नये व्यूहोंके रूपमें पुनरुद्भावन कर सके। और अन्तिम बात यह है कि एक हृदयग्राही शौक़ या लक्ष्य होना चाहिए जो न केवल आपको अपने विषय सम्बन्धी जानकारी इकट्ठा करने और पचानेमें मदद देगा बल्कि वह शक्ति भी प्रदान करेगा जो पुराने विचारोंमें से नये जुट पैदा करनेके लिए परमावश्यक है।

कदाचित इस बातके मान लेनेमें कोई कठिनाई न होगी कि नये विचार अकारण या अकस्मात नहीं बन सकते बल्कि किसी उद्देश्य या लक्ष्य द्वारा निर्दिष्ट किये जाते हैं। इसे दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि कल्पनाकी क्रिया उद्देश्य सम्बन्धी विचारसे ही आरम्भ होती है। इस निर्देषक विचारके साथ साथ उस उद्देश्य पूर्तिके लिए इच्छा भी सम्मिलित रहती है। मनमें जमा किये हुए और समय समय पर उठने वाले विचारोंमें से जो निर्देशक विचारके अनुरूप होते हैं उनको मन काममें ले आता है और बाक़ी जो इस विचारके अनुरूप नहीं होते या किसी दूसरे कारणसे अरुचिकर होते हैं उन्हें मन छोड़ देता है। कल्पना शक्ति बढ़ानेकी सारी क्रिया इस बात पर अवलम्बित है कि एक मानसिक झुकाव पैदा किया जाय। मनुष्य किसी वांछित या विशेष प्रकारके कल्पना फलको प्राप्त करनेमें अपने चित्तको लगाता है या यों कहिये कि किसी अभीष्ट विषय या क्षेत्रमें अपनी कल्पना शक्तिको उन्नत करना चाहता है और धीरे-धीरे उसमें एक विशेष प्रकारकी अभिरुचि या अनुराग पैदा कर लेता है। वह अपनी इच्छा शक्ति या व्यवसाय (will) को भी उसी इच्छित दिशामें संगठित कर लेता है। पूरी सफलता प्राप्त करनेमें वर्षों लग सकते हैं पर अन्तमें वह व्यक्ति अपने विषय या चुने हुए क्षेत्रमें ऐसी तीव्र कल्पना शक्ति, विचारोंका उपजाऊपन और विकल्प या पक्षान्तर (Alternating) का ज्ञान प्राप्त कर लेता है जिन्हें देखकर एक नौसिखिया आश्चर्यचकित रह जाता है।

जब हम इस बातकी छान बीन करते हैं कि कल्पना मनके भीतर ही भीतर क्या चीज़ है जो पुराने विचारोंको मिलाकर नये विचारोंकी उत्पत्ति करती है तो हमें पता चलता है कि विचारोंके संयोगका सबसे फलोत्पादक कारण उनकी समानता या सादृश्यकी शक्ति ही है। इस बातको हम इस तरह समझ सकते हैं कि आपके जीवनमें कोई काम, व्यापार मनबहलावका धन्धा (Hobby) या योजना है जिसके लिये आप बड़े उत्सुक हैं। बहुत अच्छा! आपके प्रिय उद्देश्यमें चाहे वह कुछ भी हो जो आपकी गहरी अभिरुचि है वह एक चुम्बक का काम करती है। उस चुम्बकको आप बार बार अपने संचित अनुभवमें, जिसे स्मृति कहते हैं, डालते हैं तब वही चुम्बक खींच कर अपने सदृश पदार्थों को निकाल लेता है और साथही साथ उन दूसरी चीज़ों को अलग कर देता है जिनसे प्रबल भिन्नता या अन्तर है। आप अपने दैनिक जीवनके अनुभवों कोभी इस चुम्बककी सीमाके अन्दर लाते हैं तो वही फल मिलता है। सम्भव है कि आप जान-बूझ कर ऐसा न करते हों। अधिकतर यह क्रिया अनजानमें आपके अन्तर मनमेंही होती रहती है। पुराने विचारोंमें समानता और असमानता ढूँढ़ निकालना नये विचारोंके उत्पादन की क्रिया का बड़ा अंश है।

दुनियामें हर अच्छी चीज़को प्राप्त करनेके लिए उसकी कीमत अदा करनी पड़ती है। इसी तरह कल्पना सम्बन्धी योग्यता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि आप अपने मनको जी जानसे किसी चुने हुए प्रिय काममें लगा दें। आप और हम शायद बाहरकी सड़कों पर मीलों चले जाते हैं। वहाँ मनुष्योंके झुण्ड और उनका आना-जाना देखते हैं पर इन सबका हमारे ऊपर कोई असर नहीं होता। एक उपन्यासकार जो उसी जगह टहलने जाता है और उन्हीं दृश्यों को देखता है, जब घर लौटता है तो अपने साथ आधी दर्जन कहानियाँ आरम्भ करनेके लिए नये विचार ले आता है। इसका कारण यह यह है कि

वह अपने विशेष विषय पर ध्यान लगाये रहता है जिससे कि उसके मन पर पड़ी हर एक गहरी छापसे उसे एक कहानी का मसाला मिल जाता है। एक आदमी वर्षों मोटरगाड़ी या रेडियो सेट् चलाता है पर इस बातका ज़रा भी शौक अपने मनमें नहीं लाता कि कैसे उनमें सुधार किया जा सकता है। एक दूसरा आदमी थोड़ाभी किसी यंत्र पर काम करता है तो उसके मनमें तरह-तरहके विचार पैदा हो जाते हैं—चाहे वे असाध्यही क्यों न हों—कि कैसे उस यंत्रकी उन्नति की जाय या कैसे उसे एक और अच्छे नये ढंगसे बनाया जाय। दोनों प्रकारके मनुष्योंमें क्या अन्तर है? प्रधानतः यह कि वह अपने विषयमें किस सीमा तक तल्लीन है? कल्पनाशक्तिकी शिक्षाके लिए न केवल मनकी दूसरी शक्तियोंकी शिक्षा बल्कि भावनाओंका उचित प्रयोग और ठीक मानसिक वृत्ति का पैदा करनाभी परमावश्यक है। दिमाग को सुचारु रूपसे काममें लानेमें जिन तत्वोंका हाथ रहता है उनमें भावना या संवेग (Emotion) का स्थान सर्वप्रधान है और भावनाही योग्यता और प्रतिभाका असली रहस्य है। अभिरुचि या अनुरागके रूपमें भावनाही मनकी संचालक शक्ति है और जिस कामसे आप प्रेम करते हैं उसके चारों ओर आपकी कल्पना निरन्तर विचरती रहती है और उसी उद्योगितासे नये विचार उत्पन्न होते रहते हैं।

सहानुभूति

अनुरागसे मिलता-जुलता भावनाका एक और रूप है जो कल्पनाके काममें—विशेषकर कवियों और उपन्यासकारोंके लिए—बड़ा लाभदायक है। हमारा संकेत सहानुभूतिकी ओर है। सहानुभूति पैदा करना कल्पनाशक्ति बढ़ानेके लिए छठा उपाय है जिसका सुझाव हम यहाँ करते हैं। यहाँ पर सहानुभूतिसे हमारा तात्पर्य समवेदना या दूसरोंके लिए जो कष्टमें हों, दुःख अनुभव करना नहीं है बल्कि कल्पनामें दूसरोंके संग होकर उनके भावों को समझना व महसूस करना है चाहे वे किसीभी परिस्थिति में हों। हम उन लोगोंके साथ-साथ भी महसूस कर सकते हैं जो नाच-गा रहे हों ठीक उसी प्रकार, जैसे कि उन लोगों के साथ जो कि किसी कष्टसे पीड़ित हों। सहानुभूति का अभिप्राय है पात्र (objcet) से अपने को एक कर देना; उसके विचार और भावनाओंमें जाकर बैठ जाना या यों कहिए कि थोड़ी देरके लिए अपने निजी व्यक्तित्व के बाहर निकलकर उसकी भावनाओंके भीतर घुस जाना। इसीके द्वारा हम दूसरोंके हृदयके विचारों और भावनाओं को समझ सकते हैं जो दूसरी तरह तो हमारे लिए एक बन्द पुस्तकके समान हैं। इस प्रकार अपने व्यक्तित्वके बाहर निकलना कल्पनाही का काम है; पर इसमें प्रवर्तक शक्ति सहानुभूति ही है। असलमें दोनों सहानुभूति और कल्पना-मिलकर काम करते हैं और यह कहना कठिन है कि एक नये विचारके निर्माणमें उनका अलग-अलग कितना हाथ है।

एक कवि मीठे संगीत और चमत्कारी विचारोंसे भरी हुई कवितायें तर्क शास्त्र या दलीलों द्वारा नहीं लिखता बल्कि भावनाके जरिये से; और यह भावना सहानुभूति के रूपमें प्रगट होती है। प्रकृति, सौन्दर्य, मानवीय आनन्द, दुःख शोक इत्यादि कविकी शीघ्र ग्राही (sensitive) बुद्धि पर अंकित हो जाते हैं क्योंकि उदासीनता या विरोधका भाव रखनेकी जगह हर एक तथ्यमें सम्पूर्ण मन और हृदयसे घुस जाता है जिससे वह सच्चाई को इतने अच्छे तरीकेसे ग्रहण कर लेता है जितना वह और किसी साधन द्वारा न कर सकता।

एक व्यवसायी या किसी और काम करने वालेको भी सहानुभूतिकी उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी एक कविको। अन्तर केवल इतना ही है कि उनके सहानुभूति को प्रगट करनेके ढंग और उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। एक न्यायाधीश भी, जोकि फ़ौजदारीके एक पेचीदा मुकद्दमेंकी साक्षी को सुलझाना चाहता है, सहानुभूति ही को काममें लाता है कि अपनेको अभियुक्तके मन और हृदयमें रख सके और दोनों पक्षोंके गवाहोंकी प्रवृत्तियोंको समझ सके। अगर वह अपना फैसला केवल बयानोंको तराजूकी भाँति तोल कर ही देता है तो संभव है कि वह अन्याय कर बैठे।

सच तो यह है कि यदि कोई व्यक्ति यह चाहता है कि उसके पास एक रचनात्मक मन हो जो नये विचारोंके पैदा करनेमें फलदायक हो तो उसकी एक बड़ी आवश्य-

कता सहानुभूति है। उसमें दूसरोंके साथ महसूस करने की योग्यता होनी चाहिये। इसी भावनाके साथ कल्पना भी रहती है। दोनों अभिन्न हैं। कल्पनाशक्ति शिक्षा का सबसे बड़ा अंग है कि ठीक-ठीक मानसिक और भावना सम्बन्धी गुण प्राप्त किए जायँ।

शायद कुछ लोग यह प्रश्न करें कि सहानुभूतिकी शक्तिको कैसे प्राप्त किया जाय। कमसे कम एक विषयमें तो अवश्य ही आपके पास सहानुभूति पहलेसे मौजूद है—आपके प्रधान लक्ष्य या उद्देश्यके सम्बन्ध में। कोई बात जिसके बारेमें आप उत्साहपूर्ण हैं; उसमें अवश्य ही आपको सहानुभूति होगी। जिस किसी चीज़के प्रति आपके हृदयमें उत्साह या उत्सुकता होगी उसमें आपको अवश्य ही सच्ची सहानुभूति भी होगी।

सिद्धान्त बनाकर जांच करना

सातवाँ उपाय जो नये विचारोंके बनानेमें अथवा छिपे हुए लब्ध-फल (solution) के खोज निकालनेमें बड़ी सहायता करता है वह यह है कि जब कभी आपको किसी व्यवसाय या कारोबार सम्बन्धी समस्याकी जाँच करनी हो तो आप हमेशा एक सिद्धान्त स्थिर कर के, बल्कि अच्छा तो यह होगा कि कई विकल्प सिद्धान्त बना लें और फिर उन सब की एक एक करके परीक्षा करें। सच्चाई तक पहुँचनेके लिए यह सबसे अच्छा रास्ता है। यही तरीका तमाम वैज्ञानिक खोजमें काम में लाया जाता है।

डार्विन की आदत थी कि वह हर विषयमें एक काल्पनिक सिद्धान्त बना लेता था। जो कुछ प्रमाण उसे निरूपण (observation) और प्रयोग द्वारा मिलते थे उन्हीं के आधार पर वह एक सिद्धान्त बना लेता था और फिर उसीकी दिशामें काम करना आरम्भकर देता था। हर पेशे और हर व्यवसायमें एक काल्पनिक सिद्धान्त बना लेनेका नियम उतना ही उपयोगी है जितना एक वैज्ञानिक के लिए। मान लीजिये एक व्यवसायीके कारोबार के मुनाफेमें कमी आ रही है और साधारण निरीक्षण करने पर उसका कोई कारण नहीं मिलता तो ऐसी दशा में क्या किया जाय? एक बार फिर जाँच कीजिये—इस बार एक निश्चित सिद्धान्त बना कर—जैसे कि विज्ञापन में त्रुटि है या माल अच्छा नहीं है—और कुल मामले की इस दृष्टिसे परीक्षा कीजिये। बिना एक कसौटी बनाये आप केवल अंधेरेमें ही भटकते रहते हैं और अपनी जाँच के बाद अपने को वहींका वहीं पाते हैं। पर एक सिद्धान्त बना लेनेके बाद आप आत्म-विश्वाससे आगे बढ़ते जाते हैं क्योंकि आपके पास एक पैमाना है और यद्यपि आपको यह पता चले कि आप को विज्ञापनमें कोई त्रुटि नहीं है मगर आशा इस बात की है कि आपको ठीक उस बात का पता चल जायगा जिसकी वजहसे आपके लाभमें कमी हो रही है।

उपमा (Analogy)

नये विचार पैदा करने और विशेषकर प्रकृतिके गुप्त नियमोंको ढूंढ निकालनेका आठवाँ उपाय उपमा का प्रयोग है।

हमारा मन अनुभवसे विचार जमा करता है। ये विचार श्रेणियोंमें विभाजित किये जाते हैं, और हर श्रेणी के गुणोंके लिए अलग माप बनाया जाता है। अधिकतर नये तथ्य जाने हुए तथ्योंसे विभिन्नता हीके कारण पहचाने जाते हैं पर उनके अनुसन्धानका आरम्भ बहुधा समानता और सादृश्यकी बातों हीसे होता है। हमारी तमाम मानसिक क्रियाओं पर विभिन्नता और सादृश्यका शासन रहता है। यदि हम मंगल ग्रह निवासियोंकी कल्पना करते हैं तो भी मानवीय शब्दोंमें सोचे बिना नहीं रह सकते—किन बातोंमें वे हमारे समान हैं और किन बातोंमें हमसे विभिन्न।

सच तो यह है कि समानता (Analogy) हमारे तमाम सोचनेकी एक आवश्यक विधि है। और अक्सर अद्भुत प्रतिभावान् व्यक्ति केवल इतना ही करते हैं कि मानसिक या प्राकृतिक घटनाओंमें ऐसी समानतायें या सम्बन्ध खोज निकालते हैं जिनका पहले पता न था। हैवलाक एलिस (Havelock Ellis) ने अपनी पुस्तक Impressions and Commente में इस बातको बड़ी स्पष्टतासे यों लिखा है कि अरस्तूकी

[शेष पृष्ठ १४३ पर]

सम्पादकीय

डा० श्याम सुन्दर दास का स्वर्गवास

चार वर्ष पूर्व ७ अगस्त १६४१ को भारतने कवि-सम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी मृत्युका समाचार सुना था। देश व भाषाके इस सेवकके निधनसे देश शोकाकुल था। अभी उस महान् आत्माके विरहका दुःख लोग हल्का भी न कर पाये थे कि इस वर्षकी ७ अगस्तको मातृ-भाषाका एक दूसरा प्रेमी यमराज ने उनसे छीन लिया। डा० श्यामसुन्दर दासके निधनसे हिन्दी संसार-को भारी क्षति पहुँची है। पर विधिके आगे मनुष्य विवश है। 'जो आता है उसे जाना ही पड़ता है, यही संसार का क्रम है' यह सोचकर संतोष करना ही पड़ता है।

डा० श्यामसुन्दर दासकी अनन्त कृतियोंसे सब ही हिन्दी प्रेमी परिचित है। प्राचीन साहित्यकी खोज में उन्होंने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये वह जनताके लिये अत्यन्त ही लाभप्रद हैं। उनकी मौलिक कृतियां, तथा वे वृहत् ग्रन्थ जिनका उन्होंने संपादन किया, सब ही उच्चकोटिके हैं। उनकी अमर कृति नागरी प्रचारिणी-सभा है। वह अब नहीं हैं, किन्तु उनकी यह सभा चिरकाल तक हिन्दी भाषाकी सेवा करती रहेगी और इस प्रकार चिरस्मरणीय डा० श्यामसुन्दर दासकी स्मृतिको और भी चिरस्थायी बनाये रहेगी।

हिन्दी संसार उनके ऋणसे उऋण नहीं हो सकता। प्रत्येक हिन्दी प्रेमीका कर्त्तव्य है कि वह उनकी इस सभाकी उन्नतिके लिये सदा जी-जानसे यत्न करे। मातृभाषासे प्रेम व उसकी सेवा करना ही पूज्य श्यामसुन्दर दासजीके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि होगी; उनके जीवनके प्रिय कार्य मातृभाषाकी सेवाको सदा करते रहना ही उनका सबसे अच्छा स्मारक होगा।

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्तकी हीरक-जयन्ती

पिछली ११ अगस्तको काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओरसे काशीमें श्री गुप्तजीकी हीरक जयन्ती बड़े समा-रोहसे मनाई गई। देशके अन्य भागोंमें भी हिन्दी-प्रेमी जनताने इस अवसर को उचित समारोहके साथ मनाया। उत्सवका पूर्ण आयोजन होने पर ७ अगस्त को बाबू श्यामसुन्दर दास जीके निधन हो जानेसे लोगोंका हृदय शोकग्रस्त था, फिर भी राष्ट्रकविका सम्मान करनेमें किसी प्रकारकी कमी नहीं की गई।

गुप्तजी भारतके श्रेष्ठ राष्ट्रकवि हैं। उनकी रचनायें नवीन कल्पनाओं से ओत-प्रोत है। रामराज्य की उनका कल्पना, गांधीवादकी उनकी व्याख्या सब अपना निजी अपनत्व रखती हैं। साकेत, पंचवटी, यशोधरा, द्वापर कुणाल आदि उनकी सबही रचनाओंमें प्राचीन कथानकों में नवीनता मिलती है। उनकी भारत-भारती प्रत्येक हिन्दुत्व प्रेमी युवक का कंठहार है।

हम लोगोंकी कामना है कि भगवान् गुप्तजी को चिर-आयु करे जिससे वह भविष्य में भी अपनी सजीव कृतियों द्वारा देश व जातिका उपकार कर सकें।

समालोचना

"उद्यम का 'साबुन' अंक" हिन्दी 'उद्यम' विशेषांक 'साबुन', अगस्त १६४५, संपादक वि०ना० वाडे-गांवकर, धर्मपेठ, नागपुर, मूल्य १) रु०। 'उद्यम' का यह विशेषांक जनताके लिये बड़ा उपयोगी है। इस अंक को पढ़नेसे साधारण पढ़े लिखे लोगोंको भी साबुन विषयक ज्ञान हो सकता है। इसका अध्ययन करके घरेलू कार्यके लिये तथा छोटे पैमाने पर व्यवसाय करनेके लिये सुगमता से साबुन तैयार किया जा सकता है। आशा है भविष्यमें भी इस प्रकारके अन्य व्यवसायोंके संबंधमें 'उद्यम' द्वारा जनता का ज्ञान बढ़ेगा।

जैनसिद्धान्त भास्कर भाग १२ किरण १ और दि जैन ऐंटीक्वेरी भाग ११ संख्या १—प्रकाशक जैन सिद्धान्त भवन, आरा पृष्ठ संख्या ५२ और २८ आकार रायल अठपेजी (जुलाई १६४५ दोनोंका संयुक्त वार्षिक मूल्य ६)

पहले यह जैन पुरातत्त्व और इतिहास विषयक महत्त्व-पूर्ण पत्रिका त्रैमासिक थी परन्तु कई कठिनाइयोंके कारण अब षाण्मासिक कर दी गयी है। जैनसिद्धान्तभास्कर हिन्दीमें और दि जैन ऐंटीक्वेरी जैसा नामसे प्रकट है, अंग्रेजीमें निकलते हैं। दोनोंके सम्पादक बड़े-बड़े विद्वान्

हैं। हिन्दी भागमें "जैनधर्म और कला," "भंडारा जिलेमें जैन पुरातत्त्व," जैनकथासाहित्य आदि ८ उत्तम लेख, साहित्य समालोचना और जैन सिद्धान्त भवनका वार्षिक विवरण हैं। सभी लेख उत्तम कोटिके विद्वानोंकी लेखनीसे जैनधर्म- के साहित्य और प्रवर्तकोंके संबंधमें लिखे गये हैं और पढ़ने योग्य हैं।

अंग्रेज़ी भागके सम्पादक भी वही हैं। इसमें पाँच उत्तम लेख जैन इतिहास और पुरातत्त्व पर हैं। इनके लेखक भी उच्चकोटिके विद्वान् हैं। इसका दूसरा लेख है। "A critical examination of Svetambara and Digambara chronological traditions।" इसमें विद्वान् लेखक ने श्वेताम्बर और दिगंबर कथा साहित्यसे यह निश्चय करनेका सफल प्रयत्न किया है कि विक्रम संवतके संस्थापक विक्रमादित्यका समय ईसा से पूर्व ५८ ई० में आरंभ होता है और इनके १३५ वर्ष उपरान्त शक संवत्के प्रवर्तक 'नहवान' का समय आता है। इस नहावनको ही इतिहासमें नहवान् बतलाया गया है। इस लेख से सिद्ध होता है कि भारतीय इतिहासकी बहुतसी गुत्थियोंको सुलझानेके लिए जैन साहित्यसे पर्याप्त प्रकाश मिल सकता है।

—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

[पृष्ठ १४१ का शेष]

व्यावहारिक-मनोविज्ञान

यह कहावत बड़ी सुन्दर और सत्य है कि रूपक या उपमाका उस्ताद होना ही सबसे महत्त्व पूर्ण बात है। यह अद्भुत प्रतिभा (Genius) का लक्षण है क्योंकि इसका अर्थ है असमान चीजोंमें समानता ढूँढ़ निकालनेकी योग्यता। सब बड़े विचारक रूपकके उस्ताद हुए हैं क्योंकि स्पष्ट और चमकदार विचार सोचनेमें प्रतिमाओंका प्रयोग होता है और जिस विचारक की उपमायें धुँधली या हलकी हैं उसका सोचना भी धुँधला और हलका ही होगा। हम जो उपमाको पसन्द करते हैं उसका कारण यह है कि इसकी सहायतासे बहुतसी चीज़ोंको छोटा करके (Reduct) हम एक कर देते हैं, और ऐसा करना दर्शनशास्त्रके निर्माणका एक आधार है। इसलिए यदि किसी मनुष्यको एक ऐसी रीतिकी तलाश है जिससे लाभदायक फलकी आशाकी जा सके तो उसे चाहिए कि अपने प्रश्नको एक असम्बद्ध (Isolatd) समस्या खयाल करने की जगह उसके सदृश तथ्योंको दूसरे क्षेत्रोंमें तलाश करें क्योंकि उनका अध्ययन अवश्य ही उसके मुख्य प्रश्न पर कुछ न कुछ प्रकाश डालेगा। विज्ञानका हर एक विद्यार्थी इस बातको जानता है कि अनुसन्धानके काममें उपमा या तुलनाका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैज्ञानिक खोजमें उपमाका इतना महत्त्व इसी कारण है कि संसारका निर्माण नियम और व्यवस्था पर है और उसमें एक न्याय संगत योजना है।

विज्ञान

प्रयाग की विज्ञान परिषद् का मुख पत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर सन्तप्रसाद टंडन डी० फ़िल

विशेष संपादक

डाक्टर श्री रंजन

डाक्टर सत्य प्रकाश

डाक्टर विशंभर नाथ श्रीवास्तव

श्री श्रीचरण वर्मा

डाक्टर रामशरण दास

भाग ६०-६१

अक्टूबर १९४४-मार्च १९४५

प्रकाशक

विज्ञान परिषद, इलाहाबाद।

अनुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन

गणित

चिकित्सा शास्त्र

जीवनी

ज्योतिष

बागवानी

भाषा विज्ञान

भौतिक विज्ञान

मनोविज्ञान

रसायन

साधारण

औद्योगिक रसायन

चिकित्सा शास्त्र

जीवन विज्ञान

ज्योतिष

भाषा विज्ञान

मनोविज्ञान

रसायन

साधारण

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंकी सम्पूर्ण सूची

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन—ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालगराम भार्गव एम० एस-सी० ; ।)

२—ताप—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी० ; चतुर्थ संस्करण; ॥=),

३—चुम्बक—हाईस्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; सजि०; ॥=)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी० ; १॥),

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृष्ठ संख्या १२१४ ; १४० चित्र तथा नकशे—ले० श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द; दो भागोंमें; मूल्य ६) । इस भाष्यपर लेखकको हिन्दी साहित्य सम्मेलनका १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

६—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस सी०; ॥।),

७—समीकरण मीमांसा—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥), द्वितीय भाग ॥=),

८—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स)—गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस सी० ; ॥),

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित—इंटरमीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी० ; १।),

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन ; ।–),

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।),

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।),

१३—मनुष्यका आहार—कौन-सा आहार सर्वोत्तम है—ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=),

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।),

१५—रसायन इतिहास—इंटरमीडियेटके विद्यार्थियोंके योग्य—ले० डा० आत्माराम डी० एस-सी०; ॥।),

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान परिषद्के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग-व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत—१३० पृष्ठ, कई चित्र—सम्पादक श्री रामदास गौड़ ; १॥),

१८—फल-संरक्षण—दूसरापरिवर्धित संस्करण-फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; २१२ पृष्ठ; २५ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; २),

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट ; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र, सजिल्द; १॥)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र, सजिल्द; १॥),

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन—ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १॥),

२२—लकड़ी पर पॉलिश—पॉलिशकरनेके नवीन और पुराने सभी ढंगोंका ब्योरेवार वर्णन । इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख-

Reg. No. A 372

प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर, एम०, ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १॥),

२३—उपयोगी नुसखे तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ; २००० नुसखे, १०० चित्र; एक-एक नुसखेसे सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हज़ारों रुपये कमाये जा सकते हैं। प्रत्येक गृहस्थके लिये उपयोगी; मूल्य अजिल्द २) सजिल्द २॥),

२४—कलम पेबंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; ५० चित्र; मालियों, मालिकों और कृषकोंके लिये उपयोगी; सजिल्द; १॥),

२५—जिल्दसाज़ी—क्रियात्मक और ब्योरेवार। इससे सभी जिल्दसाज़ी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए०; १८० पृष्ठ, ६२ चित्रसजिल्द १॥),

२६—भारतीय चीनी मिट्टियाँ—औद्योगिक पाठशालाओं के विद्यार्थियोंके लिये—ले० प्रो० एम० एल मिश्र, २६० पृष्ठ; १२ चित्र; सजिल्द १॥),

२७—त्रिफला—दूसरा परिवर्धित संस्करण प्रत्येक वैद्य और गृहस्थके लिये—ले० श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार, २१६ पृष्ठ; ३ चित्र (एक रङ्गीन); सजिल्द २)

यह पुस्तक गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय १३ श्रेणी द्रव्यगुणके स्वाध्याय पुस्तकके रूपमें शिक्षापटलमें स्वीकृत हो चुकी है।"

२८—मधुमक्खी-पालन—ले० पण्डित दयाराम जुगडान, भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्योलीकोट सरकारी मधुवटी; क्रियात्मक और ब्योरेवार; मधुमक्खी पालकोंके लिये उपयोगी तो है ही, जनसाधारणको इस पुस्तकका अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा; मधुमक्खियों की रहन-सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। ४०० पृष्ठ; अनेक चित्र और नकशे, एक रंगीन चित्र; सजिल्द; २॥),

२९—घरेलू डाक्टर—लेखक और सम्पादक डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस०, डी० टी० एम०, प्रोफेसर डाक्टर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी०, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। २६० पृष्ठ, १५० चित्र, आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर); सजिल्द; ३),

३०—तैरना—तैरना सीखने और डूबते हुए लोगोंको बचाने की रीति अच्छी तरह समझायी गयी है। ले० डाक्टर गोरखप्रसाद, पृष्ठ १०४, मूल्य १),

३१—अंजीर—लेखक श्री रामेशवेदी, आयुर्वेदालंकार-अंजीर का विशद वर्णन और उपयोग करनेकी रीति। पृष्ठ ४२, दो चित्र, मूल्य ॥),

यह पुस्तक भी गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय शिक्षा पटलमें स्वीकृत हो चुकी है।

३२—सरल विज्ञान सागर, प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। बड़ी सरल और रोचक भाषा में जंतुओंके विचित्र संसार, पेड़ पौधों की अचरज भरी दुनिया, सूर्य, चन्द्र और तारोंकी जीवन कथा तथा भारतीय ज्योतिषके संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। विज्ञानके आकार के ४५० पष्ठ और ३२० चित्रोंसे सजे हुए ग्रन्थ की शोभा देखते ही बनती है। सजिल्द, मूल्य ६)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—भारतीय वैज्ञानिक—(१२ भारतीय वैज्ञानिकोंकी जीवनियां) श्री श्याम नारायण कपूर, सचित्र और सजिल्द; ३८० पृष्ठ; ३)

२—यान्त्रिक-चित्रकारी—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा, ए० एम० आई० एल० ई०। इस पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको अँग्रेज़ीमें 'मिकैनिकल ड्राइंग' कहते हैं। ३०० पृष्ठ, ७० चित्र; ८० उपयोगी सारिणियां; सस्ता संस्करण २॥)

३—वैक्युम-ब्रेक—ले० श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवेमें काम करने वाले फ़िटरों, इंजन-ड्राइवरों, फ़ोरमैनों और कैरेज एग्ज़ामिनरोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ; ३१ चित्र, जिनमें कई रंगीन हैं, २)

विज्ञान—मासिक पत्र, विज्ञान परिषद् प्रयागका मुखपत्र है। सम्पादक डा० संतप्रसाद टंडन, लेक्चरर रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय। वार्षिक चन्दा ३)

विज्ञान परिषद्, ४२, टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।